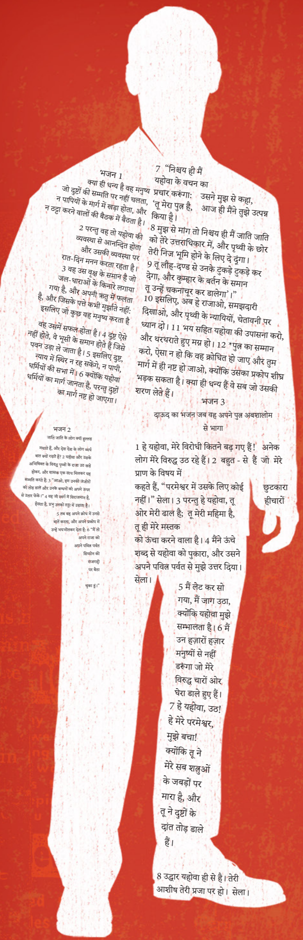

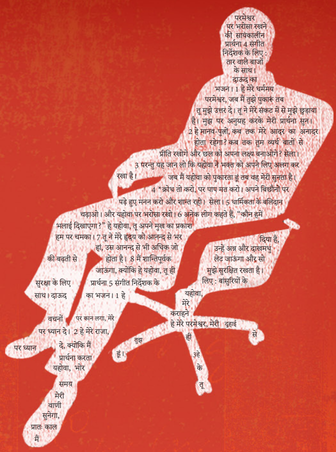

आर.सी. स्प्रोल

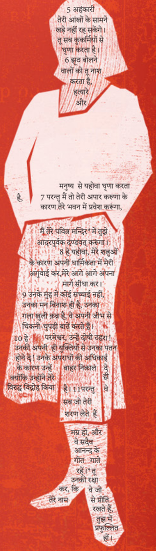

सभी हैं ईश्वरविज्ञानी

विधिवत् ईश्वरविज्ञान *का* एक परिचय

अनुमोदन

"क्या आपने कभी चाहा है कि मसीही ईश्वरविज्ञान सरल बना दिया जाए? आर.सी. स्प्रोल के पास यह वरदान है कि वे बातों के महत्व को घटाए बिना उनको सरल बनाते हैं। वे उस पिता के समान हैं जो अपने बच्चे को तैरना सिखा रहा है। वे हमें हमारी क्षमता से अधिक गहरे पानी में ले जाते हैं, परन्तु हमें डूबने नहीं देते हैं। इसलिए मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ कि परमेश्वर के ज्ञान के इस जलाशय में प्रवेश करें। यदि आप यह सीखना चाहते हैं कि बाइबल को क्या बात भिन्न बनाती है, परमेश्वर कौन है, ख्रीष्ट क्यों मरा, पवित्र आत्मा किसी व्यक्ति के प्राण में कैसे कार्य करता है, या न्याय के दिन क्या होगा, तो इन पृष्ठों में आप एक बुद्धिमान शिक्षक से स्पष्ट उत्तर को पाएँगे।"

—डॉ. जोएल आर. बीकी
अध्यक्ष और विधिवत् ईश्वरविज्ञान तथा उपदेशकला के प्राध्यापक
प्यूरिटन रिफॉर्म्ड थियोलॉजिकल सेमिनरी, ग्रैण्ड रैपिड्स, मिशिगन

एक युवक ने एक बार मुझसे कहा कि एक रात उसने स्वप्न में ईश्वरविज्ञानियों की सेना को उसकी ओर आते हुए देखा। आर.सी. स्प्रोल सबसे आगे उन सबकी अगुवाई कर रहे थे। जब आप इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो आप उस स्वप्न को समझेंगे। क्योंकि इस में वह ईश्वरविज्ञान है जिसकी जड़ें पवित्रशास्त्र में हैं, जो कलीसिया के उत्तम ईश्वरविज्ञानियों द्वारा पोषित है, और इसको ऐसी स्पष्टता और सरलता से समझाया गया है जो एक कुशल ईश्वरविज्ञानी-संचारक की पहचान है।

"क्या आपको इस पुस्तक को पढ़ने के लिए एक ईश्वरविज्ञानी होना आवश्यक है? निस्सन्देह। परन्तु इस शीर्षक का अर्थ यही है: आप एक ईश्वरविज्ञानी हैं—किन्तु बड़ा प्रश्न यह है कि क्या आप एक अच्छे ईश्वरविज्ञानी हैं या नहीं हैं! इसलिए, *सभी हैं ईश्वरविज्ञानी* पुस्तक को पढ़ें, इसमें चिन्ह लगाएँ, और इस पर गहनता से मनन करें। जब आप इसको पढ़ चुके होंगे तो आप निश्चित रीति से और अधिक स्वस्थ तथा और अधिक आनन्दित ईश्वरविज्ञानी होंगे।"

—डॉ. सिन्क्लेएर फर्गसन
शिक्षक
लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़

"आर.सी. स्प्रोल एक उत्कृष्ट शिक्षक हैं, जो कठिन ईश्वरविज्ञानीय अवधारणाओं को सरल भाषा में समझाने में निपुण हैं। यहाँ वे विधिवत् ईश्वरविज्ञान के प्रत्येक बड़े भाग को एक संक्षिप्त, सुस्पष्ट, निष्पक्ष रीति से समझाते हैं। यह एक नए विश्वासी से लेकर एक अनुभवी पास्टर तक, सब के लिए एक अति मूल्यवान संसाधन है। यह बात तो सत्य है कि हम सब ईश्वरविज्ञानी हैं। डॉ. स्प्रोल *श्रेष्ठतर* ईश्वरविज्ञानी बनने में हमारी सहायता करते हैं।"

—डॉ. जॉन मकार्थर
पास्टर-शिक्षक, ग्रेस कम्यूनिटी चर्च
अध्यक्ष, द मास्टर्ज़ यूनिवर्सिटी ऐण्ड सेमिनरी,
सन वैली, कैलिफॉर्निया

आर.सी. स्प्रोल ने ईश्वरविज्ञान का एक ऐसा छोटा, विस्तृत सारांश लिखा है जिसे मैं आने वाले कई वर्षों तक की अपनी कक्षाओं में पढ़ने के लिए कहूँगा। यह बाइबलीय रीति से विश्वासयोग्य है, दृढ़ता से धर्मसुधारवादी है, दो हज़ार वर्षों की मसीही परम्परा पर आधारित है, और हमारी सांसारिक संस्कृति के लोगों के मस्तिष्क के लिए महत्वपूर्ण प्रश्नों को सम्बोधित करता है। सदा के जैसे इस बार भी, वे पाठक के ध्यान को खींचे रहते हैं। बहुत समय के लिए मैंने विद्यार्थियों को बर्खोफ *(Berkhof)* की *समरी ऑफ क्रिस्चियन डॉक्ट्रिन (Summary of Christian Doctrine)* नामक पुस्तक को धर्मसुधारवादी विधिवत् ईश्वरविज्ञान के एक विश्वसनीय तथा संक्षिप्त स्रोत के रूप में पढ़ने के लिए दिया है। यह अभी भी बहुत उपयोगी है, परन्तु मैं सोचता हूँ कि इस श्रेणी में किसी और पुस्तक से अधिक अब मैं उन्हें स्प्रोल की *सभी हैं ईश्वरविज्ञानी* पुस्तक पढ़ने के लिए दूँगा। त्रिएकता, पूर्वनिर्धारण, सृष्टि, स्वर्गदूत और दुष्टात्माएँ, स्वर्ग और नरक: ये सब और इनके साथ कई और विषय भी, इस रीति से उचित और विश्वसनीयता से व्यक्त किए गए हैं जो परमेश्वर के लिखित वचन का आदर करती है, और उन लोगों का आत्मिक निर्माण करेगी जो इसके सत्य के प्रति संवेदनशील हैं।

—डॉ. डगलस एफ. केली
ईश्वरविज्ञान के सेवामुक्त प्राध्यापक
रिफॉर्म्ड थियोलॉजिकल सेमिनरी, शारलेट्, नॉर्थ कैरोलायना

आर.सी. स्प्रोल

सभी हैं ईश्वरविज्ञानी

विधिवत् ईश्वरविज्ञान का एक परिचय

Everyone's a Theologian: An Introduction to Systematic Theology
© 2014 by R.C. Sproul
Originally published in English by Reformation Trust Publishing
a division of Ligonier Ministries
421 Ligonier Court, Sanford, FL 32771

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means—electronic, mechanical, photocopy, recording, or otherwise—without the prior written permission of the publisher, Reformation Trust Publishing. The only exception is brief quotations in printed reviews.
Cover design: Gearbox Studios
Cover illustration: Gearbox Studios
Interior design and typeset: Katherine Lloyd, The DESK

First Hindi Translation and Print 2023
This Hindi edition is issued in arrangement with Ligonier Ministries, USA.
Translated and published by 'For The Truth Press Pvt. Ltd.'
For sales and distribution in India and not for export therefrom.

Hindi ISBN: 978-81-957631-4-6 (Paperback)
Hindi ISBN: 978-81-958502-0-4 (eBook)

For the Truth is a publishing company which exists to print, publish & distribute resources for the Church in India.

प्रथम हिन्दी अनुवाद एवं संस्करण 2023
'सभी हैं ईश्वरविज्ञानी: विधिवत् ईश्वरविज्ञान का एक परिचय' का यह हिन्दी संस्करण
'फॉर द ट्रूथ प्रेस प्राइवेट लिमिटेड' द्वारा अनुवादित एवं प्रकाशित किया गया है।

अधिक संसाधनों के लिए *फॉर द ट्रूथ* की वेबसाइट पर जाएँ:
www.forthetruth.in

forthetruth.in

मेरे परिवार को,
जो सेवकाई के वर्षों में
अत्यधिक प्रेमी और समर्थक रहा है

विषय-सूची

भाग एक: परिचय *(INTRODUCTION)*

अध्याय 1 ईश्वरविज्ञान क्या है?....3
अध्याय 2 ईश्वरविज्ञान का विषय-क्षेत्र और उद्देश्य....8
अध्याय 3 सामान्य प्रकाशन और प्राकृतिक ईश्वरविज्ञान....14
अध्याय 4 विशेष प्रकाशन....20
अध्याय 5 पवित्रशास्त्र की प्रेरणा और उसका अधिकार....25
अध्याय 6 अचूकता और त्रुटिहीनता....30
अध्याय 7 ग्रन्थसंग्रहण....35
अध्याय 8 पवित्रशास्त्र और अधिकार....40

भाग दो: ईश्वरविज्ञान विशिष्ट *(THEOLOGY PROPER)*

अध्याय 9 परमेश्वर का ज्ञान....47
अध्याय 10 सारतत्त्व में एक....52
अध्याय 11 व्यक्ति में तीन....57
अध्याय 12 असंचारीय गुण....61
अध्याय 13 संचारीय गुण....66
अध्याय 14 परमेश्वर की इच्छा....71
अध्याय 15 ईश्वरीय-प्रावधान....76

भाग तीन: नृविज्ञान और सृष्टि *(ANTHROPOLOGY AND CREATION)*

अध्याय 16 *क्रिएशियो एक्स निहिलो*....87
अध्याय 17 स्वर्गदूत एवं दुष्टात्माएँ....93
अध्याय 18 मनुष्य की सृष्टि....99
अध्याय 19 पाप का स्वभाव....104
अध्याय 20 मूल पाप....108
अध्याय 21 पाप का प्रसारण....113
अध्याय 22 वाचाएँ....120

भाग चार: ख्रीष्टविज्ञान *(CHRISTOLOGY)*

अध्याय 23 बाइबल का ख्रीष्ट....127
अध्याय 24 एक व्यक्ति, दो स्वभाव....133
अध्याय 25 ख्रीष्ट के नाम....138
अध्याय 26 ख्रीष्ट की अवस्थाएँ....143
अध्याय 27 ख्रीष्ट के पद....149
अध्याय 28 ख्रीष्ट क्यों मरा?....154
अध्याय 29 प्रतिस्थापनीय प्रायश्चित्त....160
अध्याय 30 प्रायश्चित्त का विस्तार....166

भाग पाँच: आत्माविज्ञान *(PNEUMATOLOGY)*

अध्याय 31 पुराने नियम में पवित्र आत्मा....173
अध्याय 32 नए नियम में पवित्र आत्मा....178
अध्याय 33 अधिवक्ता (सहायक)....182
अध्याय 34 पवित्र आत्मा का बपतिस्मा....188
अध्याय 35 आत्मा के वरदान....194
अध्याय 36 आत्मा का फल....201
अध्याय 37 क्या आश्चर्यकर्म आज के लिए हैं?....207

भाग छः: उद्धारविज्ञान *(SOTERIOLOGY)*

अध्याय 38 सामान्य अनुग्रह....215
अध्याय 39 चुनाव और परित्यक्ति....220
अध्याय 40 प्रभावशाली बुलाहट....226
अध्याय 41 केवल विश्वास के द्वारा धर्मीकरण....232
अध्याय 42 बचाने वाला विश्वास....237
अध्याय 43 लेपालकपन और ख्रीष्ट के साथ मिलन....242
अध्याय 44 पवित्रीकरण....247
अध्याय 45 सन्तों का डटे रहना....252

भाग सात: कलीसियाविज्ञान *(ECCLESIOLOGY)*

अध्याय 46 कलीसिया के बाइबलीय चित्र....261
अध्याय 47 कलीसिया: एक तथा पवित्र....265
अध्याय 48 कलीसिया: विश्वव्यापी तथा प्रेरितीय....269
अध्याय 49 कलीसिया में आराधना....274
अध्याय 50 कलीसिया की विधियाँ (संस्कार)....279
अध्याय 51 बपतिस्मा....284
अध्याय 52 प्रभु भोज....289

भाग आठ: युगान्तविज्ञान *(ESCHATOLOGY)*

अध्याय 53 मृत्यु और मध्यवर्ती अवस्था....295
अध्याय 54 पुनरुत्थान....299
अध्याय 55 परमेश्वर का राज्य....305
अध्याय 56 सहस्राब्दी....309
अध्याय 57 ख्रीष्ट का पुनःआगमन....315
अध्याय 58 अन्तिम न्याय....320
अध्याय 59 अनन्त दण्ड....326
अध्याय 60 स्वर्ग और पृथ्वी का नया बनाया जाना....331

परिशिष्ट विश्वास वचन....337
विषय सूचकाँक....341
वचन सूचकाँक....351

भाग एक

परिचय

Introduction

अध्याय 1

ईश्वरविज्ञान क्या है?

What is Theology?

कई वर्षों पूर्व, एक जाने-माने मसीही महाविद्यालय ने मुझे उसके शिक्षकों और प्रबन्धकों को इस प्रश्न पर सम्बोधित करने के लिए आमन्त्रित किया कि: "एक मसीही महाविद्यालय या विश्वविद्यालय क्या है?" मेरे आगमन पर, महाविद्यालय के अध्यक्ष ने मुझे परिसर का भ्रमण कराया। भ्रमण के समय, मैंने कुछ कार्यालयों के द्वारों पर यह अभिलेख पाया, "धर्म विभाग।" संध्या के समय जब शिक्षकों को सम्बोधित करने का समय आया, तो मैंने उस अभिलेख का उल्लेख किया जिसे मैंने देखा था, और मैंने पूछा क्या उस विभाग का नाम सदैव यही था? एक वरिष्ठ शिक्षक ने उत्तर दिया कि वर्षों पहले उस विभाग को "ईश्वरविज्ञान का विभाग" कहा जाता था। किन्तु कोई भी मुझे नहीं बता पाया कि उस विभाग का नाम क्यों बदल दिया गया।

"धर्म" या "ईश्वरविज्ञान"—इससे क्या अन्तर पड़ता है? शैक्षणिक जगत में धर्म का अध्ययन परम्परागत रूप से समाजशास्त्र या फिर नृविज्ञान *(anthropology)* के व्यापक सन्दर्भ के अन्तर्गत आता है, क्योंकि धर्म, विशेष परिस्थितियों में मनुष्यों की आराधना की रीतियों से सम्बन्ध रखता है। इसके विपरीत ईश्वरविज्ञान, परमेश्वर का अध्ययन है। इस बात का अध्ययन करने में कि धर्म के विषय में मनुष्य के क्या विचार हैं तथा परमेश्वर के स्वभाव व चरित्र का अध्ययन करने में बड़ा ही अन्तर है। पहला तो अपनी सोच में पूर्णतः प्राकृतिक है। दूसरा तो अलौकिक है, क्योंकि वह उन बातों का अध्ययन करता है, जो इस संसार की वस्तुओं से परे हैं और ऊपर हैं।

अपने उपदेश में शिक्षकों को यह समझाने के पश्चात्, मैंने यह भी कहा कि एक सच्चा मसीही महाविद्यालय या विश्वविद्यालय, इस विचार के प्रति समर्पित होता है कि परमेश्वर का सत्य ही सर्वश्रेष्ठ सत्य है, और यह भी कि वही अन्य सभी सत्य की नींव और स्रोत है। हम जो कुछ भी

सीखते हैं—अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, जीवविज्ञान, गणित—उसे हमें परमेश्वर के चरित्र की व्यापक वास्तविकता के प्रकाश में समझना चाहिए। इसीलिए मध्य युग में, ईश्वरविज्ञान को "विज्ञान की रानी" तथा दर्शनशास्त्र को "उसकी दासी" कहा जाता था। किन्तु आज रानी को उसकी राज-गद्दी से हटाया जा चुका है, तथा कई प्रकरणों में, उसे निर्वासन में भेजा जा चुका है, और अब उसके स्थान पर, एक हड़पनेवाला शासन कर रहा है। हमने ईश्वरविज्ञान को धर्म के साथ प्रतिस्थापित कर दिया है।

ईश्वरविज्ञान की परिभाषा

इस पुस्तक में, हम ईश्वरविज्ञान की बात कर रहे हैं, विशेष कर विधिवत् ईश्वरविज्ञान *(Systematic Theology)* की जो मसीही विश्वास के मुख्य सिद्धान्तों का एक सुव्यवस्थित, सुसंगत अध्ययन है। इस अध्याय में, मैं विधिवत् ईश्वरविज्ञान के विज्ञान का संक्षिप्त परिचय तथा कुछ आधारभूत परिभाषाएँ दूँगा।

ईश्वरविज्ञान शब्द में प्रत्यय है, *विज्ञान,* जो अन्य विद्याशाखाओं *(disciplines)* और विज्ञानों के नामों में भी पाया जाता है, जैसे कि *जीवविज्ञान, शरीरविज्ञान,* और *नृविज्ञान।* यह प्रत्यय यूनानी शब्द *लोगोस (logos)* से आता है, जिसे हम यूहन्ना के सुसमाचार के आरम्भ में पाते हैं: "आदि में वचन था, और वचन परमेश्वर के साथ था, और वचन परमेश्वर था" (यूहन्ना 1:1)। यूनानी शब्द *लोगोस* का अर्थ है "वचन" या "विचार," या फिर "तर्क," जैसा कि इस प्रकार एक दार्शनिक ने इसका अनुवाद किया है (इसी शब्द से हम अंग्रेज़ी का शब्द *लौजिक-logic* अर्थात् तर्क भी प्राप्त करते हैं)। तो जब हम जीवविज्ञान का अध्ययन करते हैं, हम जीवन के शब्द या तर्क को देख रहे हैं। नृविज्ञान मनुष्यों के विषय में शब्द या तर्क है, क्योंकि यूनानी में *ऐन्थ्रोपोस* शब्द का अर्थ *मनुष्य* है। ईश्वरविज्ञान का पहला भाग यूनानी शब्द *थीयोस (theos)* से आता है, जिसका अर्थ "ईश्वर" है, तो ईश्वरविज्ञान स्वयं परमेश्वर का शब्द या तर्क है।

ईश्वरविज्ञान एक बहुत व्यापक शब्द है। यह केवल परमेश्वर को ही नहीं सन्दर्भित करता है परन्तु उन सब विषयों को जिसे परमेश्वर ने हम पर पवित्रशास्त्र में प्रकट किया है। ख्रीष्ट का अध्ययन, ईश्वरविज्ञान के विषय के अन्तर्गत होता है जिसे हम "ख्रीष्टविज्ञान" *(Christology)* कहते हैं। इसमें पवित्र आत्मा का अध्ययन भी सम्मिलित है जिसे हम "आत्माविज्ञान" *(Pneumatology)* कहते हैं, पाप का अध्ययन जिसे "पापविज्ञान" *(Hamartiology)* कहा जाता है, और भविष्य की बातों का अध्ययन जिसे हम "युगान्तविज्ञान" *(Eschatology)* कहते हैं। ये ईश्वरविज्ञान की उपशाखाएँ हैं। ईश्वरविज्ञानी "ईश्वरविज्ञान विशिष्ट" *(Theology Proper)* की भी बात करते हैं, जिसका विशेष सन्दर्भ स्वयं परमेश्वर के अध्ययन से है।

कई लोग *ईश्वरविज्ञान* शब्द से सन्तुष्ट रहते हैं परन्तु जब वे विशेषक शब्द *विधिवत्* को सुनते हैं

तो वे असहज हो जाते हैं। यह इसलिए है, क्योंकि हम एक ऐसे समय में रहते हैं, जिसमें कुछ प्रकार की प्रणालियों के प्रति व्यापक विरोध है। हम निर्जीव प्रणालियों का आदर करते हैं—कम्प्यूटर प्रणालियाँ, अग्नि चेतावनी प्रणालियाँ, और विद्युत्-परिपथ प्रणालियाँ—क्योंकि हम समाज के लिए इनके महत्व को समझते हैं। किन्तु जब वैचारिक प्रणालियों या जीवन और संसार को सुसंगत रीति से समझने की बात आती है, तो लोग असहज होते हैं। इस प्रकार की सोच का एक कारण है अस्तित्ववाद *(Existentialism)*—जो कि पाश्चात्य इतिहास में एक सबसे अधिक प्रभावशाली दर्शन बन के उभरा था।

दर्शनशास्त्र का प्रभाव

अस्तित्ववाद, अस्तित्व का एक दर्शन है। इसकी पूर्वधारणा यह है कि सारतात्विक *(essential)* सत्य जैसा कुछ भी नहीं है; इसके विपरीत, केवल विशेष *(distinctive)* अस्तित्व है—सारतत्त्व *(essence)* नहीं, किन्तु अस्तित्व *(existence)* है। परिभाषा के अनुसार, अस्तित्ववाद वास्तविकता की सामान्य *(generic)* तन्त्र-प्रणाली से घृणा करता है। यह एक प्रणाली-विरोधी *(anti-system)* विचारधारा है, जो अनेक सत्यों को तो स्वीकारती है, किन्तु *सत्य* को नहीं तथा उद्देश्यों को तो स्वीकारती है किन्तु *उद्देश्य* को नहीं। अस्तित्ववादी *(Existentialists)* यह विश्वास नहीं करते हैं कि वास्तविकता को व्यवस्थित रीति से समझा जा सकता है क्योंकि वे संसार को अन्ततः अस्त-व्यस्त और अर्थहीन या उद्देश्यहीन होने के दृष्टिकोण से देखते हैं। एक व्यक्ति जीवन को केवल वैसे जीता है, जैसे उसका उससे सामना होता है; इसमें सब बातों को अर्थ प्रदान करने के लिए कोई व्यापक दृष्टिकोण नहीं है, क्योंकि अन्ततः जीवन अर्थहीन है।

पाश्चात्य सभ्यता पर इसकी सन्तानों सापेक्षवाद *(Relativism)* और अनेकवाद *(Pluralism)* के साथ, अस्तित्ववाद का अत्यन्त प्रभाव पड़ा है। सापेक्षवादी *(Relativist)* कहता है, "इस मूल सत्य को छोड़ कर कोई भी मूल सत्य नहीं है कि मूलतः कोई मूल सत्य नहीं है। सभी सत्य सापेक्षिक हैं। जो एक के लिए सत्य है वही दूसरे के लिए झूठ हो सकता है।" विपरीत दृष्टिकोण में तालमेल लाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया जाता है (जिसे कोई भी प्रणाली अवश्य करना चाहेगी) क्योंकि, सापेक्षवादियों के अनुसार, सत्य को विधिवत् रीति से समझना असम्भव है।

इस प्रकार के दर्शनशास्त्र ने, यहाँ तक कि धर्मविद्यालयों *(seminaries)* में भी ईश्वरविज्ञान पर गहरा प्रभाव डाला है। विधिवत् ईश्वरविज्ञान न केवल अस्तित्ववादी विचार, सापेक्षवाद और अनेकवाद के प्रभाव के कारण तीव्र गति से भूला बिसरा हुआ विषय बनता जा रहा है, किन्तु इसलिए भी क्योंकि कुछ लोगों की त्रुटिपूर्ण विचारधारा है कि विधिवत् ईश्वरविज्ञान, बाइबल को एक दार्शनिक प्रणाली में बलपूर्वक ढालने का प्रयास है। कुछ लोगों ने बाइबल को दार्शनिक प्रणाली में बलपूर्वक ढालने का प्रयास *किया है*, उदाहरण के लिए, *रेने डेकार्ट* *(René Descartes)* और उसके तर्कबुद्धिवाद *(Rationalism)* तथा *जॉन लॉक* *(John Locke)* और उसके

इन्द्रियानुभववाद *(Empiricism)* ने। जो लोग ऐसे प्रयास करते हैं, वे परमेश्वर के वचन को उसके स्वयं के अर्थ के अनुसार समझने का प्रयास नहीं करते हैं; इसके विपरीत, वे एक पूर्वनिर्धारित प्रणाली को पवित्रशास्त्र पर बलपूर्वक थोपना चाहते हैं।

यूनानी मिथक में प्रोक्रस्टीस *(Procrustes)* नामक एक डाकू था, जो लोगों पर आक्रमण करने के उपरान्त उन्हें एक लोहे के पलंग पर सही बैठाने के लिए बिस्तर को बड़ा करने के स्थान पर उनके पैरों को काट देता था। पवित्रशास्त्र को किसी भी पूर्वनिर्धारित तन्त्र-प्रणाली में बलपूर्वक डालने के प्रयत्न इसी प्रकार से पथभ्रष्ट हैं, और इन्हीं के परिणामस्वरूप विधिवत् ईश्वरविज्ञान का विरोध हुआ है। किन्तु विधिवत् ईश्वरविज्ञान, पवित्रशास्त्र को किसी दर्शन या प्रणाली में बलपूर्वक डालने का प्रयास नहीं करता है, परन्तु इसके विपरीत यह पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं को खोजकर उन्हें एक सुव्यवस्थित, विषय-सम्बन्धी रीति से समझना चाहता है।

विधिवत् ईश्वरविज्ञान की पूर्वधारणाएँ

विधिवत् ईश्वरविज्ञान कुछ पूर्वधारणाओं पर आधारित है। प्रथम पूर्वधारणा यह है कि परमेश्वर ने अपने आप को न केवल सृष्टि ही में किन्तु नबियों और प्रेरितों के लेखों के द्वारा भी प्रकट किया है, और यह कि बाइबल परमेश्वर का वचन है। यह *सर्वोत्कृष्ट* ईश्वरविज्ञान है। यह *थियोस* का पूर्ण *लोगोस* है।

द्वितीय पूर्वधारणा यह है कि जब परमेश्वर अपने आप को प्रकट करता है, तो वह अपने स्वयं के चरित्र और स्वभाव के अनुसार ऐसा करता है। पवित्रशास्त्र हमें बताता है कि परमेश्वर ने एक विधिवत् संसार को बनाया है। वह भ्रम का स्रोत नहीं है क्योंकि वह कभी भी भ्रमित नहीं हुआ है। वह स्पष्टता से सोचता है और ऐसी बोधनीय रीति से बात करता है, जिसको समझा जा सकता है।

तृतीय पूर्वधारणा यह है कि पवित्रशास्त्र में परमेश्वर का प्रकाशन इन्हीं गुणों को प्रकट करता है। इसके लेखकों की विविधता के पश्चात् भी परमेश्वर के वचन में एकता है। परमेश्वर का वचन कई शताब्दियों के समय काल में अनेक लेखकों के द्वारा लिखा गया है तथा यह विभिन्न विषयों को सम्बोधित करता है, पर उस अनेकता में एकता है। पवित्रशास्त्र में पाई जाने वाली सब जानकारियों की एकता—भविष्य की बातें, प्रायश्चित्त, देहधारण, परमेश्वर का न्याय, परमेश्वर की दया, परमेश्वर का प्रकोप—स्वयं परमेश्वर में पाई जाती है, जिसके कारण जब परमेश्वर बात करता है और अपने आप को प्रकट करता है, तो उस विषय-वस्तु में एकता तथा सुसंगतता *(coherence)* पाई जाती है।

परमेश्वर का प्रकाशन समनुरूप *(consistent)* भी है। ऐसा कहा गया है कि समनुरूपता छोटी मानसिकता की काल्पनिक उपज है, किन्तु यदि यह सच होता तो हमें यह कहना पड़ता कि

परमेश्वर की समझ छोटी है, क्योंकि वह अपने अस्तित्व और चरित्र में पूर्णतः समनुरूप है। वह कल, आज, और युगानुयुग एक-सा है (इब्रानियों 13:8)।

जब एक विधिवत् ईश्वरविज्ञानी पवित्रशास्त्र के पूर्ण व्यापकता को समझने के लिए अपने कार्य को करते हुए पूछ-ताछ करता है कि सब कुछ एक साथ कैसे सटीक बैठता है, तब ये पूर्वधारणाएँ उसका मार्गदर्शन करती हैं। बहुत से धर्मविद्यालयों में विधिवत् ईश्वरविज्ञान का विभाग नए नियम के विभाग और पुराने नियम के विभाग से पृथक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि विधिवत् ईश्वरविज्ञानी के ध्यान का केन्द्र पुराने नियम के प्राध्यापक और नए नियम के प्राध्यापक के ध्यान के केन्द्र से भिन्न है। बाइबल के विद्वान ध्यान देते हैं कि परमेश्वर ने अपने आप को समय के विभिन्न कालों में कैसे प्रकट किया है, जबकि विधिवत् ईश्वरविज्ञानी उस जानकारी को लेता है, तथा उसको एक साथ रखता है और यह दिखाता है कि यह कैसे सार्थक एवं सम्पूर्णता से सटीक बैठता है। निश्चय ही, यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, और मुझे निश्चय है कि कभी भी किसी ने इसे सिद्धता से नहीं किया होगा।

जब मैं विधिवत् ईश्वरविज्ञान का अध्ययन करता हूँ, तो मैं ईश्वरीय प्रकाशन के विस्तार की विशिष्ट, गहन सुसंगति पर सदैव भौंचक्का रह जाता हूँ। विधिवत् ईश्वरविज्ञानी समझते हैं कि ईश्वरविज्ञान का प्रत्येक बिन्दु अन्य सभी बिन्दुओं को सम्बोधित करता है। जब परमेश्वर बोलता है, तो प्रत्येक बात जो वह कहता है, उसका प्रभाव अन्य सभी बातों पर पड़ता है। इसलिए हमारा निरन्तर जारी रहने वाला कार्य यह देखना है कि सभी विषय एक स्वाभाविक, सार्थक और समनुरूप सम्पूर्णता में कैसे सटीक बैठते हैं। हम इस पुस्तक में यही कार्य करेंगे।

अध्याय 2

ईश्वरविज्ञान का विषय-क्षेत्र और उद्देश्य

The Scope and Purpose of Theology

ईश्वरविज्ञान एक विज्ञान है। कई लोग प्रबल रूप से इस बात से असहमत होते और दावा करते हैं कि विज्ञान और ईश्वरविज्ञान के बीच में एक बड़ा अन्तर है। वे कहते हैं कि विज्ञान वह है जिसे हम आनुभविक *(empirical)* पूछताछ और छानबीन के द्वारा सीखते हैं, जबकि ईश्वरविज्ञान उनसे उपजती है जो धार्मिक भावनाओं से उत्तेजित होते हैं। तथापि ऐतिहासिक रीति से, विधिवत् ईश्वरविज्ञान को एक विज्ञान समझा गया है।

ईश्वरविज्ञान और विज्ञान

विज्ञान शब्द एक लातीनी शब्द से आता है जिसका अर्थ "ज्ञान" है। मसीही लोग विश्वास करते हैं कि परमेश्वर के ईश्वरीय प्रकाशन के द्वारा, हमारे पास परमेश्वर का वास्तविक ज्ञान है। यदि परमेश्वर का ज्ञान असम्भव होता तो ईश्वरविज्ञान को सही रीति से विज्ञान नहीं कहा जा सकता है। ज्ञान की खोज ही विज्ञान का सारतत्त्व है। जीव विज्ञान का विज्ञान जीवित प्राणियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की एक खोज है, भौतिक विज्ञान का विज्ञान भौतिक वस्तुओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास है, और ईश्वरविज्ञान का विज्ञान परमेश्वर का सुसंगत, समनुरूप ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रयास है।

सभी विज्ञान ऐसे प्रतिमानों *(paradigms)* या प्रतिरूपों *(models)* का उपयोग करते हैं जो समय के साथ परिवर्तित होते या विस्थापित होते हैं। *प्रतिमान विस्थापन (paradigm shift)* किसी भी शिक्षा की शाखा के वैज्ञानिक सिद्धान्त में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। यदि आपका सामना 1950 के उच्चविद्यालय की भौतिक विज्ञान की पुस्तक से होता, तो आप देखते

कि उस समय प्रस्तुत किए गए कुछ सिद्धान्तों को अब ढा दिया गया है। कोई भी उनको गम्भीरता से नहीं लेता है क्योंकि भौतिक *विज्ञान* के सिद्धान्तों में उसके बाद के वर्षों में बड़े परिवर्तन हुए हैं। यही बात तब हुई जब न्यूटनीय *(Newtonian)* भौतिक विज्ञान ने भौतिक विज्ञान के पिछले सिद्धान्तों को प्रतिस्थापित किया। फिर ऐल्बर्ट आइंस्टीन *(Albert Einstein)* आये और उन्होंने एक नयी क्रान्ति का आरम्भ किया, और हमें भौतिक विज्ञान के विषय में अपनी समझ को पुनः परिवर्तित करना पड़ा। एक प्रतिमान विस्थापन तब होता है जब एक नया सिद्धान्त किसी पुराने को प्रतिस्थापित करता है।

प्राकृतिक विज्ञानों में प्रतिमान विस्थापन का आरम्भ अधिकाँशतः विसंगतियों *(anomalies)* की उपस्थिति के कारण ही होता है। एक विसंगति एक ऐसा अंश या छोटी बात होती है जो किसी सिद्धान्त *(theory)* में सटीक नहीं बैठती है; तथा यह एक ऐसी बात होती है जिसको सिद्धान्त पूर्णतः समझा नहीं पाता है। यदि कोई व्यक्ति दस हज़ार बातों को एक सुसंगत चित्र में सही बिठाने का कार्य करे, तो यह कार्य कुछ उस प्रकार होगा जैसे कि कोई व्यक्ति दस हज़ार टुकड़ों की किसी पहेली के चित्र पर कार्य करता है, और वह एक टुकड़े को छोड़कर शेष सभी को सही बिठा लेता है, तो अधिकाँश वैज्ञानिक इसे एक अच्छा प्रतिमान मानेंगे। 9999 रीति से जोड़ी गई संरचना जो सही बैठती है, वह तो खोजे गए आँकड़ों *(data)* के लगभग प्रत्येक भाग को समझाएगी तथा उसका समाधान दिखाएगी। तौभी, यदि बहुत अधिक विसंगतियाँ उपस्थित होंगी—यदि आँकड़ों की बहुत बड़ी मात्रा को उस संरचना में नहीं बाँधा जा सकता है—तो सिद्धान्त बिखर जाएगा।

जब विसंगतियाँ अधिक संख्या में या अधिक प्रभावशाली होती हैं, तो वैज्ञानिक पिछली पीढ़ियों की पूर्वधारणाओं को चुनौती देने के लिए, और नई खोज तथा जानकारियों को उचित रीति से समझाने वाली एक नई संरचना का निर्माण करने के लिए, विवश होकर पुनः अध्ययन करने के लिए लौटता है। यह उन कई कारणों में से एक है जिनके कारण हम विज्ञान में निरन्तर परिवर्तन और महत्वपूर्ण प्रगति को देखते हैं।

जब बाइबल को समझने की बात आती है, तो कार्य पद्धति भिन्न होती है। ईश्वरविज्ञान के विद्वान दो हज़ार वर्षों से उसी जानकारी के साथ कार्य करते आ रहें हैं, जिसके कारण एक बड़े प्रतिमान विस्थापन की सम्भावना नहीं है। निस्सन्देह, हम सटीक समझ के नये अंशों को प्राप्त करते हैं, जैसे कि किसी यूनानी या इब्रानी शब्द का अति सूक्ष्म अन्तर जिससे पिछली पीढ़ियों के विद्वान अवगत नहीं थे। तौभी, आज ईश्वरविज्ञान के अधिकाँश परिवर्तन पुरातत्त्व की नई खोज या प्राचीन भाषाओं के अध्ययन से प्रेरित नहीं हैं; वे इस ईश्वर-रहित संसार में उत्पन्न होने वाले नए दर्शनशास्त्रों से तथा उन आधुनिक दर्शनशास्त्रों और पवित्रशास्त्र में प्रकट प्राचीन विश्वास के बीच संयोग व विलय के प्रयासों से प्रेरित होते हैं।

इसी कारण से मैं एक रूढ़िवादी *(conservative)* ईश्वरविज्ञानी हूँ। मुझे सन्देह है कि मैं ऐसी

कोई अन्तर्दृष्टि प्राप्त करूँगा जिस पर मुझ से अधिक महान् मस्तिष्कों के द्वारा पहले ही अधिक ध्यान से कार्य न किया गया हो। वास्तव में, जब ईश्वरविज्ञान की बात आती है, तो मुझे नयेपन में कोई रुचि नहीं है। यदि मैं भौतिकविज्ञानी होता, तो मैं व्याकुल करने वाली असंगतियों को समझाने के लिए सदैव नए-नए सिद्धान्त बनाने का प्रयास करता रहता, किन्तु जब ईश्वरविज्ञान की बात आती है तो मैं समझ-बूझकर ऐसा करने से पीछे हटता हूँ।

दुःख की बात है, कि अनेक लोग नएपन को खोजने के लिए बहुत इच्छुक रहते हैं। शैक्षणिक संसार में, कुछ नई या रचनात्मक बात को खोजने के लिए सदैव दबाव रहता है। मुझे एक व्यक्ति स्मरण आता है जिसने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि नासरत का यीशु कभी अस्तित्व में ही नहीं था। वरन् उसके अनुसार यीशु तो एक ऐसे प्रजनन-पंथ के सदस्यों की मिथक रचना था, जिन्होंने यीशु को नशीले पदार्थों के प्रभाव के अधीन निर्मित किया था। उसका यह प्रस्ताव नया अवश्य ही था किन्तु जितना नया था उतना ही मूर्खतापूर्ण भी था।

निस्सन्देह, नएपन के प्रति आकर्षण केवल हमारे युग में ही नहीं है। प्रेरित पौलुस ने भी इसका सामना एथेंस में अरियुपगुस के दार्शनिकों के साथ किया था (प्रेरितों के काम 17:16-34)। हम अपने ज्ञान में प्रगति और समझ में वृद्धि अवश्य चाहते हैं, किन्तु हमें सावधान रहना चाहिए कि हम इस प्रलोभन में न फँसें कि हम केवल नयापन के लिए ही कुछ नया ले कर आयें।

विधिवत् ईश्वरविज्ञान के स्रोत

विधिवत् ईश्वरविज्ञानी के लिए प्रमुख स्रोत बाइबल है। वास्तव में, ईश्वरविज्ञान के अध्ययन की तीनों विद्याशाखाओं के लिए बाइबल ही प्राथमिक स्रोत है: बाइबलीय *(Biblical)* ईश्वरविज्ञान, ऐतिहासिक *(Historical)* ईश्वरविज्ञान और विधिवत् *(Systematic)* ईश्वरविज्ञान। बाइबलीय ईश्वरविज्ञान का कार्य यह समझना है कि पवित्रशास्त्र की बातें समय के साथ कैसे प्रकट होती हैं, और यह कार्य विधिवत् ईश्वरविज्ञानी के लिए स्रोत का काम करता है। बाइबलीय विद्वान पवित्रशास्त्र का निरीक्षण करता है और दोनों पुराने एवं नए नियम में शब्दावलियों, धारणाओं तथा विषय के प्रगतिशील विकास का अध्ययन यह देखने के लिए करता है कि कैसे प्रकाशन के इतिहास में उनका उपयोग किया गया है तथा उन्हें समझा गया है।

आज धर्मविद्यालयों में समस्या बाइबलीय ईश्वरविज्ञान करने की विधि है जिसे “परमाणुवाद” *(Atomism)* कहा जाता है, जिसमें पवित्रशास्त्र का प्रत्येक “परमाणु” *(atom)* अकेला खड़ा रहता है। एक विद्वान सम्भवतः अपने आप को केवल गलातियों की पत्री में पौलुस के उद्धार के सिद्धान्त का अध्ययन करने के लिए सीमित करने का निर्णय कर सकता है, जबकि दूसरा विद्वान इफिसियों में उद्धार के विषय पर पौलुस की शिक्षा पर पूर्णतः ध्यान देता है। इसका परिणाम यह होता है कि दोनों लोग उद्धार के अलग दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं—एक गलातियों से और

दूसरा इफिसियों से—किन्तु इसे जाँचने में वे असफल होते हैं कि दोनों दृष्टिकोणों में कैसे सामंजस्य स्थापित होता है। परमाणुवादी विचारधारा की पूर्वधारणा यह है कि पौलुस ने परमेश्वर की प्रेरणा में होकर गलातियों और इफिसियों को नहीं लिखा था, इसलिए परमेश्वर के वचन में कोई व्यापक एकता नहीं है, कोई सुसंगति नहीं है। हाल के वर्षों में, ईश्वरविज्ञानियों से यह दृढ़-कथन सुनना सामान्य बात रही है कि न केवल "प्रारम्भिक" पौलुस तथा "बाद वाले" पौलुस के ईश्वरविज्ञान में अन्तर है, किन्तु यह भी कि बाइबल के जितने लेखक हैं उतने ही ईश्वरविज्ञान भी हैं। उनके अनुसार पतरस का ईश्वरविज्ञान है, यूहन्ना का ईश्वरविज्ञान है, पौलुस का ईश्वरविज्ञान है, और लूका का ईश्वरविज्ञान है, और वे सब एक साथ सही तालमेल नहीं खाते हैं। पवित्रशास्त्र की सुसंगति के विषय में यह नकारात्मक दृष्टिकोण है, और यही जोखिम होता है जब कोई व्यक्ति बाइबल के प्रकाशन की सम्पूर्ण संरचना के विषय में सोचे बिना, केवल बाइबल के किसी बहुत छोटे भाग पर ध्यान देता है।

विधिवत् ईश्वरविज्ञान की दूसरी विद्याशाखा या अन्य स्रोत है, ऐतिहासिक ईश्वरविज्ञान। ऐतिहासिक ईश्वरविज्ञानी देखते हैं कि सैद्धान्तिक शिक्षाऐं ऐतिहासिक रीति से कलीसिया के जीवन में कैसे विकसित हुई हैं, विशेषकर संकट कालों में—जब विधर्मताएँ *(heresies)* उभरीं और कलीसिया ने प्रतिउत्तर दिया। आज जब कलीसियाओं और धर्मविद्यालयों में तथाकथित नए-नवेले विवाद आते हैं, तो ईश्वरविज्ञानी खीज खाते हैं, क्योंकि कलीसिया ने अतीत में बार-बार इन नए प्रतीत होने वाले विवादों को अनुभव किया है। इतिहास में कलीसिया ने विवादों को हल करने के लिए महासभाएँ *(councils)* आयोजित की, जैसे कि नीकिया *(Nicea)* की महासभा (325 ईस्वी) और चाल्सीदोन *(Chalcedon)* की महासभा (451 ईस्वी)। उन घटनाओं का अध्ययन करना ऐतिहासिक ईश्वरविज्ञानियों का कार्य है।

विधिवत् ईश्वरविज्ञान तीसरी विद्याशाखा है। विधिवत् ईश्वरविज्ञानी का कार्य है बाइबलीय आकड़ों के स्रोत को देखना; ऐतिहासिक घटनाक्रम के स्रोतों को जो विवादों और कलीसियाई महासभाओं तथा तत्पश्चात् उनसे उत्पन्न विश्वास वचनों *(creeds)* और अँगीकार वचनों *(confessions)* से आए हैं; और महान् विद्वानों की अंतर्दृष्टियाँ जिनके द्वारा अनेक शताब्दियों से कलीसिया आशीषित हुई है। नया नियम हमें बताता है कि परमेश्वर ने अनुग्रह में होकर कलीसिया को शिक्षक दिए हैं (इफिसियों 4:11-12)। सब शिक्षक ऑगस्टीन *(Augustine)*, मार्टिन लूथर *(Martin Luther)*, जॉन कैल्विन *(John Calvin)*, या जोनाथन एडवर्ड्स *(Jonathan Edwards)* जैसे कुशाग्र-बुद्धि वाले तो नहीं हैं। और न ही इन लोगों के पास प्रेरितीय *(Apostolic)* अधिकार है, किन्तु उनके गहन शोध का कार्य और उनकी समझ की बहुत अधिक गहराई ने प्रत्येक युग की कलीसिया को लाभ पहुँचाया है। थॉमस अक्वाइनस *(Thomas Aquinas)* को रोमन कैथोलिक कलीसिया द्वारा "द डॉक्टर ऐन्जेलिकस" या "स्वर्गदूत जैसा

डॉक्टर" कहा जाता था। रोमन कैथोलिक लोग यह विश्वास नहीं करते हैं कि थॉमस अक्काइनस की शिक्षा त्रुटिहीन *(infallible)* थी, किन्तु कोई भी रोमन कैथोलिक इतिहासकार या ईश्वरविज्ञानी उनके योगदान की उपेक्षा भी नहीं करता है।

एक विधिवत् ईश्वरविज्ञानी न केवल बाइबल और कलीसिया के विश्वास वचनों तथा अँगीकार वचनों का अध्ययन करता है, किन्तु वह उन महान् शिक्षकों की अन्तर्दृष्टियों का भी अध्ययन करता है जिन्हें परमेश्वर ने इतिहास काल में दिया है। विधिवत् ईश्वरविज्ञानी सब आकड़ों को देखता है—बाइबलीय, ऐतिहासिक और विधिवत्—और उन सब में सामन्जस्य बैठाता है।

ईश्वरविज्ञान का महत्व

जो मुख्य प्रश्न है वह तो इन सब अध्ययनों के महत्व के विषय में है। अनेक लोगों की धारणा यह है कि ईश्वरविज्ञान के अध्ययन का महत्व अत्यन्त कम है। वे कहते हैं, "मुझे ईश्वरविज्ञान की आवश्यकता नहीं है; मुझे केवल यीशु को जानने की आवश्यकता है।" तौभी प्रत्येक मसीही के लिए ईश्वरविज्ञान से बचना असम्भव है। यह परमेश्वर द्वारा हम पर प्रकट सत्य को समझने के लिए हमारा प्रयत्न है—ऐसा कार्य जिसे प्रत्येक मसीही करता है। तो प्रश्न यह नहीं है कि क्या हम ईश्वरविज्ञान के कार्य में सम्मिलित होंगे या नहीं; परन्तु प्रश्न यह है कि हमारा ईश्वरविज्ञान त्रुटिहीन है या त्रुटिपूर्ण। अध्ययन करना और सीखना महत्वपूर्ण है क्योंकि परमेश्वर ने अपने लोगों पर स्वयं को प्रकट करने के लिए अत्यधिक यत्न किया है। उसने हमें एक पुस्तक दी है, जो अलमारी में रखकर सूखे फूल को दबाने के लिए नहीं है, किन्तु पढ़े जाने, खोजने, सीखने, अध्ययन और मुख्य रूप से समझे जाने के लिए है।

प्रेरित पौलुस के लेखों में एक महत्वपूर्ण पद तीमुथियुस को लिखी गई दूसरी पत्री में पाया जाता है: "सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है और शिक्षा, ताड़ना, सुधार और धार्मिकता की शिक्षा के लिए उपयोगी है, जिससे कि परमेश्वर का भक्त प्रत्येक भले कार्य के लिए कुशल और तत्पर हो जाए" (2 तीमुथियुस 3:16-17)। इस खण्ड को उन दावों का अन्त कर देना चाहिए जो कहते हैं कि हमें सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है या कि सिद्धान्त का कोई महत्व नहीं है। बाइबल का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से लाभ मिलता है। क्योंकि बाइबल सर्वशक्तिमान परमेश्वर द्वारा प्रेरित है, यह हमें एक मूल्यवान और लाभदायक संसाधन देती है और वह संसाधन सिद्धान्त *(doctrine)* है।

बाइबल ताड़ना के लिए भी उपयोगी है। शैक्षणिक जगत बाइबलीय आलोचना *(biblical criticism)* में अत्यधिक ऊर्जा निवेश करता है, जिसे कभी-कभी उच्चतर आलोचना *(higher criticism)* भी कहा जाता है, जो कि पवित्रशास्त्र की एक विश्लेषणात्मक *(analytical)* आलोचना है। किन्तु जिस बाइबलीय आलोचना के कार्य में हमें लगना चाहिए, वह तो हमें आलोचक के विपरीत आलोचना का पात्र बनाती है। दूसरे शब्दों में, बाइबल *हमारी* आलोचना

करती है। जब हम परमेश्वर के वचन के पास आते हैं, तो परमेश्वर का वचन हमारे पाप को उजागर करता है। पाप-के-सिद्धान्त के समान ही, बाइबलीय मनुष्य-का-सिद्धान्त *(biblical doctrine of man)* भी हमसे सम्बन्धित है, और जब हम पवित्रशास्त्र के स्थल के पास आते हैं, तो अपने पापी होने के कारण हम ताड़ना पाते हैं। हम सम्भवतः अपने मित्रों की आलोचना को अनसुना कर सकते हैं, परन्तु हम बुद्धिमान गिने जाएँगे यदि हम परमेश्वर की उस आलोचना को सुनते हैं जो पवित्रशास्त्र में हमारे पास आती है।

पवित्रशास्त्र झूठे जीवन और झूठे विश्वास दोनों के सुधार के लिए भी उपयोगी है। कुछ समय पहले, एक मित्र के निवेदन करने पर, मैंने *न्यू यॉर्क टाइम्स* की सूची के अनुसार एक प्रख्यात पुस्तक को पढ़ा जिसका विषय था कि मृतक लोगों से बात करने वाले मध्यस्थ कैसे बनें? मैंने लगभग आधी पुस्तक पढ़ी और फिर मुझे रुकना पड़ा। उस पुस्तक में इतनी आत्मिक गन्दगी और इतना झूठ था कि पुराने नियम में परमेश्वर की व्यवस्था की साधारण समझ वाले लोग भी उन झूठी बातों को पहचान जाते। हम पवित्रशास्त्र से झूठी शिक्षा और झूठे जीवन के सम्बन्ध में इसी प्रकार के सुधारों के लाभ को प्राप्त करते हैं।

अन्त में, पवित्रशास्त्र "धार्मिकता की शिक्षा के लिए उपयोगी है, जिससे कि परमेश्वर का भक्त प्रत्येक भले कार्य के लिए कुशल और तत्पर हो जाए।" ईश्वरविज्ञान का उद्देश्य हमारी बौद्धिक जिज्ञासा को शान्त करना ही नहीं है किन्तु परमेश्वर के मार्गों में हमें शिक्षा देना है जिससे कि हम परिपक्वता और उसके प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता में बढ़ सकें। इसीलिए हम ईश्वरविज्ञान के कार्य में सम्मिलित होते हैं।

अध्याय 3

सामान्य प्रकाशन और प्राकृतिक ईश्वरविज्ञान

General Revelation and Natural Theology

हम पहले ही देख चुके हैं कि मसीही विश्वास अनुमानित दर्शनशास्त्र पर आधारित नहीं है; यह एक प्रकाशित *(revealed)* विश्वास के रूप में या तो स्थिर रहता है या फिर गिरता है। मसीही विश्वास का आधारभूत दावा यह है कि जिस सत्य को हम मसीही होने के नाते अपनाते हैं वह हमारे पास स्वयं परमेश्वर की ओर से आया है। हम अपनी आँखों से उसे नहीं देख सकते, परन्तु हम प्रकाशन के माध्यम से उसे जान सकते हैं, उसने वह आवरण हटा दिया है जो उसको हम से छिपाता है। जो छिपा हुआ है उसे समझाना या प्रकट करना *प्रकाशन* है।

ईश्वरविज्ञान में, हम प्रकाशन के प्रकारों के बीच में भेद करते हैं। *सामान्य प्रकाशन* और *विशेष प्रकाशन (special revelation)* के बीच में एक महत्वपूर्ण भेद है। इस अध्याय में, मैं सामान्य प्रकाशन पर ध्यान देना चाहता हूँ। पवित्रशास्त्र हमें बताता है कि परमेश्वर सब सत्य का स्रोत है। सब कुछ उससे प्रवाहित होता है और जिस प्रकार से एक सोता, भले ही वह छोटा हो किन्तु एक विशाल नदी का स्रोत हो सकता है। परमेश्वर स्रोत है, वह सब सत्य का सोता है। दूसरे शब्दों में, न केवल धार्मिक सत्य परन्तु *सारे* सत्य परमेश्वर के प्रकाशन के कार्य पर निर्भर हैं।

जो सिद्धान्त पहले ऑगस्टीन द्वारा और बाद में थॉमस अक्वाइनस द्वारा सिखाया गया है वह यह है कि हम सृष्टि होने के नाते कुछ भी ज्ञात नहीं कर सकते थे यदि परमेश्वर ने हमारे लिए ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं किया होता। ऑगस्टीन ने इस विचार को शारीरिक दृष्टि के माध्यम से समझाया। उसने कहा कि यदि सटीक दृष्टि वाले लोगों को भी किसी ऐसे कक्ष में रखा जाए जो सुन्दर वस्तुओं से भरा हो, तौभी वे उसमें की सुन्दरता को नहीं निहार पायेंगे क्योंकि वह कक्ष

अन्धकार से भरा हुआ है। यद्यपि उनके पास उस कमरे में सुन्दर वस्तुओं को निहारने के लिए आवश्यक साधन है, परन्तु जब तक उन वस्तुओं को प्रकाश में न लाया जाए, तो तीव्र दृष्टि वाले लोग भी उन्हें देखने में असक्षम होंगे। इसी रीति से, ऑगस्टीन ने कहा, हमारे लिए किसी भी सत्य को जानने के लिए ईश्वरीय प्रकाशन की ज्योति आवश्यक है। अक्वाइनस ने ऑगस्टीन को शब्दशः *(verbatim)* उद्धरित करते हुए यह कहा कि अन्तिम विश्लेषण में सब सत्य और ज्ञान परमेश्वर पर निर्भर है, सत्य के स्रोत के रूप में और ऐसे जन के रूप में जो हमारे लिए यह सम्भव करता है कि हम कुछ ज्ञात भी कर सकते हैं। इसलिए, जब वैज्ञानिक लोग सत्य को अपनी प्रयोगशालाओं में परखना चाहते हैं और साथ ही हमारे इस दृढ़ कथन के कारण हमें नीचा दिखाते हैं कि हम अपने धार्मिक विश्वास की विषय-वस्तु के लिए प्रकाशन पर भरोसा रखते हैं, तो हम सीधे-सीधे यह कह सकते हैं कि यदि सृष्टिकर्ता ने प्रकाशन नहीं दिया होता और उसने हमें सृष्टि के अध्ययन के माध्यम से सीखने की क्षमता का वरदान नहीं दिया होता तो वे परखनली के द्वारा कुछ भी नहीं सीख पाते।

परमेश्वर का अनावरण

सब प्रकार के सत्य में परमेश्वर द्वारा स्वयं के अनावरण *(unveiling)* को दो कारणों से "सामान्य" *(general)* कहा जाता है। प्रथम, यह प्रकाशन सामान्य है क्योंकि यह ऐसा ज्ञान है जो सब को दिया गया है। ईश्वरीय सामान्य प्रकाशन संसार में सब लोगों के लिए उपलब्ध है। परमेश्वर अपने आप को केवल कुछ विशिष्ट *(specific)* व्यक्तियों पर ही प्रकट नहीं करता है; उसका आत्म-प्रकाशन *(self-revelation)* तो प्रत्येक मनुष्य पर प्रकट है। सम्पूर्ण संसार उसका दर्शक है। उदाहरण के लिए बाइबल कहती है, "आकाश परमेश्वर की महिमा का वर्णन कर रहा है, और आकाशमण्डल उसकी हस्तकला को प्रकट कर रहा है" (भजन 19:1)। कोई भी व्यक्ति जिसके पास शारीरिक दृष्टि है प्रकृति के नाट्यशाला में प्रवेश कर सकता है और तारे, चाँद और सूरज के द्वारा परमेश्वर की महिमा को देख सकता है। यह एक भव्य नाट्यशाला है।

तथापि, शारीरिक रीति से नेत्रहीन इससे पूर्ण रीति से वन्चित नहीं हैं, क्योंकि बाइबल उस ज्ञान के विषय में भी बात करती है जिसे परमेश्वर मनुष्यों के प्राणों में डालता है। वह मनुष्य को एक विवेक देता है, जिसके द्वारा वह अपने आप को लोगों पर आन्तरिक रीति से प्रकट करता है। परमेश्वर ने सब मनुष्यों को उचित और अनुचित समझने की क्षमता दी है, यहाँ तक कि नेत्रहीन जन्मे लोगों के पास भी परमेश्वर का आन्तरिक ज्ञान है (रोमियों 1:19-20)।

इसलिए, सारांश में, *सामान्य* शब्द का अर्थ है कि सब लोग दर्शक हैं; प्रत्येक मनुष्य पर परमेश्वर का प्रकाशन प्रकट है। करोड़ों लोगों ने कभी बाइबल नहीं देखी है और न ही पवित्रशास्त्र का प्रचार सुना है, परन्तु उन्होंने प्रकृति की नाट्यशाला में जीवन जीया है, जहाँ परमेश्वर अपने आप को प्रकट करता है।

इस प्रकार के प्रकाशन को *सामान्य* कहने का दूसरा कारण यह है कि इसकी विषय-वस्तु एक

रीति से सामान्य प्रकार की है; अर्थात्, यह हमको उद्धार के इतिहास में परमेश्वर के कार्य के विषय में विस्तार से नहीं बताता है, जैसे कि प्रायश्चित्त *(atonement)* या ख्रीष्ट* का पुनरुत्थान। कोई भी व्यक्ति सूर्यास्त का अध्ययन करके यह ज्ञात नहीं कर सकता है कि आकाश परमेश्वर के उद्धार की योजना की घोषणा कर रहा है; उसके लिए उस व्यक्ति को बाइबल को पढ़ना आवश्यक है। पवित्रशास्त्र में विशिष्ट जानकारी है जिसे प्रकृति के अध्ययन करने के द्वारा कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता है।

हमें सामान्य और विशेष प्रकाशन के बीच की भिन्नता को समझना होगा। सामान्य प्रकाशन प्रत्येक को दिया जाता है और यह हमें परमेश्वर के विषय में सामान्य जानकारी देता है। यह पवित्रशास्त्र के प्रकाशन से भिन्न होता है। बाइबल विशेष प्रकाशन की श्रेणी में आती है, और केवल वे ही इसे प्राप्त करते हैं जिनके पास बाइबल या उसकी विषयवस्तु तक पहुँच है। परमेश्वर के कार्य और योजनाओं के विषय में विशेष प्रकाशन कहीं अधिक बढ़कर विस्तार से जानकारी देता है।

प्राकृतिक प्रकाशन

कभी-कभी, सामान्य प्रकाशन को "प्राकृतिक प्रकाशन" *(natural revelation)* कहा जाता है, ऐसा शब्द जो कि भ्रमित करने वाला हो सकता है। ईश्वरविज्ञान की भाषा में *प्राकृतिक प्रकाशन* शब्द *सामान्य प्रकाशन* का पर्यायवाची है क्योंकि सामान्य प्रकाशन हमारे पास प्रकृति में और प्रकृति के द्वारा आता है।

सामान्य प्रकाशन में, परमेश्वर हमें केवल पृथ्वी ग्रह देकर यह अपेक्षा नहीं करता है कि हम अपनी तर्कबुद्धि के द्वारा और उसने जो कुछ यहाँ रखा है उसके आधार पर पता लगाएँ कि वह कौन है? हम एक चित्रकारी का अध्ययन ध्यान से कर सकते हैं और उसके बनाए जाने के प्रकार से और प्रयोग किए गए रंगों के द्वारा पता लगा सकते हैं कि चित्रकार कौन है, परन्तु सामान्य प्रकाशन इस प्रकार से कार्य नहीं करता है। सृष्टि एक माध्यम है जिसके द्वारा परमेश्वर अपने आप को सक्रिय रीति से प्रकट करता है। प्रकृति परमेश्वर से स्वतन्त्र नहीं है; वरन्, परमेश्वर संसार के माध्यम से अपने आपको व्यक्त करता है। वह अपने आपको आकाशमण्डल, संसार और सब सृजी गई वस्तुओं की महिमा और गौरव के द्वारा व्यक्त करता है।

परमेश्वर का प्रकाशन जो प्रकृति के माध्यम से प्राप्त होता है उसको प्राकृतिक प्रकाशन कहते हैं। यह शब्द *प्राकृतिक प्रकाशन,* सरल रीति से कहा जाए तो, उन कार्यों को या क्रियाओं को सन्दर्भित करता है जिनके द्वारा परमेश्वर अपने आप को प्रकृति में और उसके माध्यम से प्रकट करता है।

प्रकृति के माध्यम से सीखना

अध्ययन की एक और श्रेणी है, जिसे "प्राकृतिक ईश्वरविज्ञान" *(natural theology)* कहा जाता है। प्राकृतिक (या सामान्य) प्रकाशन और प्राकृतिक ईश्वरविज्ञान एक ही बात नहीं हैं।

* यद्यपि परम्परागत रीति से यूनानी शब्द *ख्रिस्टोस* को हिन्दी अनुवादों में 'मसीह' के रूप में अनुवाद किया गया है, इसके लिए 'ख्रीष्ट' शब्द अधिक उपयुक्त है। इसका कारण यह है कि 'मसीह' शब्द इब्रानी भाषा के *मशियाख* अर्थात् मसीहा शब्द से लिया गया है, जबकि नया नियम की मूल भाषा यूनानी है। अन्य भाषाओं के बाइबल अनुवादों में भी *ख्रिस्टोस* के लिए *ख्रिस्टोस* पर आधारित शब्दों का ही उपयोग किया गया है। इसलिए, इस पुस्तक में 'मसीह' के स्थान पर 'ख्रीष्ट' का उपयोग किया गया है।

प्राकृतिक प्रकाशन वह है जो परमेश्वर करता है, जबकि प्राकृतिक ईश्वरविज्ञान वह कार्य है जो प्राकृतिक प्रकाशन के साथ मनुष्य करता है।

अब बहुत समय से, ईश्वरविज्ञानियों में विवाद रहा है कि क्या हम प्रकृति के द्वारा परमेश्वर के विषय में सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं, अर्थात्, क्या *प्राकृतिक ईश्वरविज्ञान* एक फलदायक प्रयास है। कुछ लोग दृढ़ता से इस विचार का विरोध करते हैं कि बिना उद्धार पाए मनुष्य के पास परमेश्वर के विषय में जानने की कुछ भी क्षमता है। 1 कुरिन्थियों 2:14 में पौलुस कहता है कि शारीरिक मनुष्य परमेश्वर को नहीं जानता और न जान सकता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेरित भी इस सम्भावना को नकारता है कि पवित्र आत्मा के प्रकाशन से हटकर, हम प्रकृति के माध्यम से परमेश्वर के विषय में कुछ भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु रोमियों 1 में जो कि प्राकृतिक ईश्वरविज्ञान के विषय में पवित्रशास्त्र का आधारभूत खण्ड है, प्रेरित कहता है कि प्रकृति के माध्यम से हम *अवश्य* परमेश्वर के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं।

परमाणुवादी *(atomists)* दावा करते हैं कि रोमियों को लिखते समय पौलुस ने एक बात पर विश्वास किया था और जब उसने 1 कुरिन्थियों को लिखा तो किसी और बात पर। अन्य शब्दों में, वे कहते हैं कि पौलुस के द्वारा बात करते हुए परमेश्वर ने अपना मन परिवर्तित किया। अन्य लोग कहते हैं कि 1 कुरिन्थियों 2 और रोमियों 1 की भिन्नताएँ बाइबल में विरोधाभास का एक स्पष्ट उदाहरण है। किन्तु, “जानना” *(to know)* क्रिया को यूनानी और इब्रानी दोनों में एक से अधिक प्रकार से उपयोग किया जाता है। एक ज्ञान है जिसे हम “संज्ञानात्मक ज्ञान” *(cognitive knowledge)* कहते हैं जो किसी वस्तु की एक बौद्धिक जागरूकता *(intellectual awareness)* की ओर इंगित करती है, और फिर एक व्यक्तिगत, घनिष्ठ ज्ञान है। दृष्टान्त के रूप में जब बाइबल एक पुरुष द्वारा अपनी पत्नी को “जानने” की बात करती है, तो एक पुरुष और स्त्री के बीच में सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध को दर्शाने के लिए क्रिया “जानने” का उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार से पौलुस परमेश्वर की बातों के विषय में आत्मिक परख के विषय में कुरिन्थियों को यह कहते हुए लिखता है कि पाप में हमारी पतित स्थिति के कारण हमारे पास वह आत्मिक परख नहीं है। वहाँ वह एक ऐसे ज्ञान के विषय में लिख रहा है जो केवल बौद्धिक संज्ञान *(intellectual cognition)* से बढ़कर है।

रोमियों 1 में पौलुस लिखता है, “परमेश्वर का प्रकोप मनुष्यों की समस्त अभक्ति और अधार्मिकता पर स्वर्ग से प्रकट होता है, क्योंकि वे सत्य को अधर्म से दबाए रखते हैं” (पद 18)। पौलुस यहाँ यह दिखाने में रुचि रखता है कि हमारे लिए बचाए जाना क्यों आवश्यक है? वह सम्पूर्ण संसार को यह प्रदर्शित करने के लिए परमेश्वर के न्यायालय के सामने लाता है कि सब को सुसमाचार की आवश्यकता है क्योंकि प्रत्येक को दोषी पाया गया है—यीशु को ठुकराने के कारण नहीं, जिसके विषय में बहुतों ने कभी नहीं सुना है, किन्तु परमेश्वर पिता को ठुकराने के कारण, जिसने

अपने आप को स्पष्ट रीति से प्रत्येक मनुष्य पर प्रकट किया है। पापी होने के नाते हमारा स्वभाव है कि हम अधर्म में होकर सत्य को दबाते हैं (अन्य अनुवाद कहते हैं "कुचलते हैं," "रोकते हैं," या "घोटते हैं")। पौलुस कहता है कि जो मनुष्यों ने परमेश्वर के प्रकाशन के साथ किया है उस बात को लेकर परमेश्वर क्रोधित है।

पौलुस आगे कहता है, "परमेश्वर से सम्बन्धित ज्ञान मनुष्यों पर प्रकट है; क्योंकि परमेश्वर ने उन पर प्रकट किया है" (पद 19)। "प्रकट" के लिए यूनानी शब्द *फनेरोस (phaneros)* है; लातीनी भाषा में यह *मैनिफेस्टम (manifestum)* है, जिससे अंग्रेज़ी शब्द *मैनिफेस्ट (manifest)* आता है, जिसका अर्थ है: वह जो स्पष्ट है। इसमें विचार यह है कि परमेश्वर ने संसार में गूढ़ बातें नहीं छिपा रखी हैं जिससे कि मनुष्य को किसी गुरु की आवश्यकता पड़े यह समझाने के लिए कि परमेश्वर अस्तित्व में है; इसके विपरीत वह अपने विषय में जो प्रकाशन देता है वह *मैनिफेस्टम* है—वह स्पष्ट है। पौलुस आगे कहता है, "क्योंकि जगत की सृष्टि से ही परमेश्वर के अदृश्य गुण स्पष्ट दिखाई देते हैं" (पद 20अ)। यह विरोधाभासी कथन प्रतीत हो सकता है—कोई जन अदृश्य वस्तुओं को कैसे देख सकता है? तौभी इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। हम स्पष्ट रीति से देखते हैं परन्तु सीधे तौर से नहीं। हम अदृश्य परमेश्वर को नहीं देखते हैं, परन्तु हम दृश्य संसार को देखते हैं, और वह हमें परमेश्वर के प्रकाशन की ओर ले जाता है। परमेश्वर का अदृश्य चरित्र दृश्य वस्तुओं के माध्यम से प्रकट किया जाता है।

परमेश्वर के प्रकाशन को न देख पाने के लिए मनुष्य के पास कोई बहाना नहीं है: "क्योंकि जगत की सृष्टि से ही परमेश्वर के अदृश्य गुण, अनन्त सामर्थ्य और परमेश्वरत्व उसकी रचना के द्वारा समझे जाकर स्पष्ट दिखाई देते हैं, इसलिए उनके पास कोई बहाना नहीं" (पद 20)। जो लोग परमेश्वर के पास आने से नकारते हैं वे अपने नकारने को इस दावा के द्वारा सही ठहराने का प्रयास करते हैं कि परमेश्वर अपने अस्तित्व के विषय में पर्याप्त प्रमाण देने में विफल हुआ है, किन्तु रोमियों में पौलुस उस बहाने को इस कठोर वास्तविकता के साथ हटा देता है: "क्योंकि यद्यपि वे परमेश्वर को जानते थे, तौभी उन्होंने उसे न तो परमेश्वर के उपयुक्त सम्मान, और न ही धन्यवाद दिया; वरन् वे अनर्थ कल्पनाएं करने लगे, और उनका निर्बुद्धि मन अन्धकारमय हो गया" (पद 21)। बाइबल इस बात को लेकर स्पष्ट है कि प्रकृति में परमेश्वर द्वारा स्वयं का प्रकाशन हमें उसके चरित्र के विषय में सच्चा और स्पष्ट ज्ञान प्रदान करता है।

माध्यम द्वारा प्रकाशन और माध्यम रहित प्रकाशन

हमें *माध्यम (mediate) के द्वारा* प्रकाशन और *माध्यम रहित (immediate)* सामान्य प्रकाशन के बीच भिन्नता पर ध्यान देना चाहिए। *माध्यम के द्वारा* और *माध्यम रहित* शब्दों का सम्बन्ध किसी वस्तु के प्रयोग या कार्य से है जो दो स्थानों के मध्य पाया जाता है। परमेश्वर पारलौकिक है और हम

पृथ्वी पर हैं। जो परमेश्वर के प्रकाशन की मध्यस्थता करता है वह प्रकृति है; दूसरे शब्दों में, प्रकाशन का माध्यम प्रकृति है, ठीक उसी प्रकार से जैसे समाचार पत्र या टीवी प्रसारण संचार के माध्यम हैं, जिसके कारण संचार की ऐसी पद्धतियों को एक साथ "संचार माध्यम" *(media)* कहा जाता है। इसी प्रकार, सामान्य प्रकाशन का प्रमुख माध्यम प्रकृति है।

माध्यम रहित सामान्य प्रकाशन (immediate general revelation), एक अन्य मार्ग का वर्णन करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसके द्वारा परमेश्वर हम पर अपने आप को प्रकट करता है। रोमियों 2:15 में, पौलुस कहता है कि परमेश्वर की व्यवस्था हमारे हृदयों पर लिखी गयी है, जिस बात को जॉन कैल्विन ने *सेन्सस डिविनिटाटिस (sensus divinitatis),* या परमेश्वर के प्रति चेतना कहा था। यह परमेश्वर के प्रति एक जागरूकता है जिसे उसने मनुष्य के मन में रोपा है, और यह जागरूकता हमारे विवेक में और परमेश्वर की व्यवस्था के ज्ञान में प्रकट होती है। हम उस ज्ञान को किसी माध्यम के द्वारा नहीं बटोरते हैं; इसके विपरीत, यह परमेश्वर की ओर से हमारे पास सीधे आता है, जिसके कारण इस प्रकार के प्रकाशन को "माध्यम रहित" कहा जाता है।

सामान्य प्रकाशन के माध्यम से परमेश्वर का अनन्त सामर्थ्य और ईश्वरत्व सम्पूर्ण जगत में स्पष्ट किए जाते हैं। उस प्रकाशन का हमारे द्वारा पापपूर्ण दमन, परमेश्वर के उस ज्ञान को नहीं मिटा पाता है, जिसे उसने हमें प्रकृति के माध्यम से तथा हमारे हृदयों में दिया है।

अध्याय 4

विशेष प्रकाशन

Special Revelation

यद्यपि परमेश्वर स्वयं को सब लोगों पर सब स्थानों पर किसी न किसी रीति से प्रकट करता है और इसको सामान्य प्रकाशन कहा जाता है, किन्तु एक अन्य प्रकार का प्रकाशन है, विशेष प्रकाशन, जिसको प्राप्त करने का अवसर संसार के प्रत्येक व्यक्ति के पास नहीं है। विशेष प्रकाशन छुटकारे हेतु परमेश्वर की योजना को प्रकट करता है। यह हमें देहधारण, क्रूस, और पुनरुत्थान के विषय में बताता है —ऐसी बातें जो प्राकृतिक जगत के अध्ययन के द्वारा नहीं सीखी जा सकती हैं। यह प्राथमिक रीति से पवित्रशास्त्र में पाया जाता है (किन्तु अनन्य रूप से नहीं-*though not exclusively)*। बाइबल इस बात की साक्षी देती है कि परमेश्वर ने विशेष रीति से स्वयं को कैसे प्रकट किया है:

> प्राचीनकाल में, परमेश्वर ने नबियों के द्वारा पूर्वजों से बार बार तथा अनेक प्रकार से बातें करके, इन अन्तिम दिनों में हमसे अपने पुत्र के द्वारा बातें की हैं, जिसे उसने सब वस्तुओं का उत्तराधिकारी ठहराया और जिसके द्वारा उसने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना भी की। वह उसकी महिमा का प्रकाश और उसके तत्त्व का प्रतिरूप है, तथा अपने सामर्थ्य के वचन के द्वारा सब वस्तुओं को सम्भालता है। वह पापों को धोकर ऊँचे पर महामहिमन् की दाहिनी ओर बैठ गया। (इब्रानियों 1:1-3)

हम स्वयं परमेश्वर से विशिष्ट जानकारी प्राप्त करते हैं, और ज्ञान के विषय में यह अद्भुत तथ्य मसीही समझ के आधार में उपस्थित है।

दर्शनशास्त्र का एक उपविभाग ज्ञानमीमाँसा *(Epistemology)* है, जो कि ज्ञात करने का विज्ञान है। यह विश्लेषण करता है कि मनुष्य किन रीतियों से ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हैं। इस

विषय पर बड़े वाद-विवाद होते हैं कि क्या मनुष्य प्राथमिक रीति से मस्तिष्क के द्वारा सीखते हैं—ज्ञान के प्रति *बुद्धिसम्पन्न (rational)* मार्ग—या इन पाँच ज्ञानेंद्रियों के द्वारा अर्थात् दृष्टि, ध्वनि, स्वाद, स्पर्श और सुगन्ध—*आनुभविक (empirical)* मार्ग। मसीही समाज में भी यह विवाद बना हुआ है कि क्या तर्कबुद्धि प्राथमिक है या फिर ज्ञानेन्द्रियाँ प्राथमिक हैं। यद्यपि, मसीही होने के कारण, हम सब को सहमत होना चाहिए कि मसीहियत अन्ततः उस ज्ञान पर आधारित है जो हमारे पास स्वयं परमेश्वर से आता है। सत्य को हमारे द्वारा निर्धारित करने हेतु इस विश्वास को थामे रहना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि जो ज्ञान परमेश्वर से आता है वह उन सब बातों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है जिन्हें हम अपनी स्थिति के विश्लेषण से, अन्तरावलोकन से, या हमारे आस-पास के संसार का अध्ययन करने से ज्ञात करते हैं।

पुराने नियम के समयों में, परमेश्वर ने कुछ अवसरों पर लोगों से सीधे बात की। कुछ ऐसे भी अवसर थे जब उसने अपने आप को स्वप्नों द्वारा और विशेष चिन्हों के द्वारा प्रकट किया, जैसे उसने गिदोन के साथ किया। ऐसे समय थे जब परमेश्वर ने पर्चियों के डाले जाने के द्वारा, याजकों द्वारा ऊरीम और तुम्मीम के प्रयोग के द्वारा, और ईश्वरदर्शनों *(theophanies)* के द्वारा अपने आप को प्रकट किया। अंग्रेज़ी का शब्द *थियॉफनी* यूनानी शब्द *थीयोस* और *फनेरोस* से आता है। *थीयोस* का अर्थ है "परमेश्वर" और *फनेरोस* का अर्थ है "प्रकटीकरण।" तो थियॉफनी साधारण रीति से अदृश्य परमेश्वर का एक दृश्य प्रकटीकरण हुआ करता था।

सम्भवतः पुराने नियम का सबसे चिरपरिचित ईश्वरदर्शन वह जलती हुई झाड़ी है, जिसका सामना मूसा ने मिद्यान के जंगल में किया था। जब मूसा ने एक जलती हुई झाड़ी को देखा जो आग द्वारा भस्म नहीं हो रही थी, तो वह झाड़ी के पास गया, और परमेश्वर ने स्पष्ट रूप से मूसा से झाड़ी में से यह कहते हुए बात की, "मैं जो हूँ, सो हूँ" (निर्गमन 3:14)। झाड़ी अदृश्य परमेश्वर का एक दृश्य प्रकटीकरण था। वह बादल का खम्भा और आग का खम्भा जिसने निर्गमन के पश्चात् जंगल में भटकते समय इस्राएल का मार्ग-दर्शन किया, वे भी अदृश्य परमेश्वर के दृश्य प्रकटीकरण थे।

नबी और प्रेरित

परमेश्वर ने प्राथमिक रीति से नबियों के माध्यम से इस्राएल के लोगों से बातचीत की, जिनको हम "प्रकाशन के अभिकर्ता" *(agents of revelation)* कहते हैं। नबी ठीक हमारे ही जैसे मनुष्य थे। वे मनुष्यों की भाषा का प्रयोग करते थे और क्योंकि वे परमेश्वर से जानकारी प्राप्त करते थे इसलिए उनके शब्द ईश्वरीय प्रकाशन के पात्र या वाहक जैसे कार्य करते थे। इसीलिए वे अपनी

नबूवतों का आरम्भ इन शब्दों से करते थे, "यहोवा यों कहता है।" नबियों के शब्दों को लेखों में लिखा गया और वे परमेश्वर के लिखित वचन बन गए। इस प्रकार, पुराना नियम यद्यपि हमारे जैसे लोगों द्वारा लिखा गया, किन्तु वे हम से भिन्न रीति से, परमेश्वर द्वारा उसके लोगों के लिए प्रवक्ता होने के लिए निर्धारित किए गए।

निस्सन्देह, प्राचीन इस्राएल में प्रत्येक जन जो नबी होने का दावा करता था, वास्तव में, नबी नहीं था; जी हाँ, इस्राएल का सबसे बड़ा संघर्ष विरोधी राष्ट्रों के साथ नहीं किन्तु झूठे नबियों के साथ छावनी में या नगर के फाटकों के भीतर था। झूठे नबी परमेश्वर की ओर से सच्चे प्रकाशन के विपरीत जो लोग सुनना चाहते थे उस बात को लोगों को सिखाने के लिए जाने जाते थे। अपनी पूरी सेवा काल में, यिर्मयाह झूठे नबियों से घिरा हुआ था। जब यिर्मयाह ने परमेश्वर के आने वाले न्याय के विषय में लोगों को चिताने का प्रयास किया, तो झूठे नबियों ने यिर्मयाह की नबूवत का विरोध किया और उसके सन्देश को दबाने के लिए प्रत्येक सम्भव प्रयास किया।

एक झूठे नबी और सच्चे नबी के मध्य में भेद करने के कुछ उपाय थे। इस्राएलियों को यह ज्ञात करने के लिए कि ईश्वरीय प्रकाशन का सच्चा पात्र कौन है तीन परीक्षणों को लागू करना था। प्रथम परीक्षण ईश्वरीय बुलाहट थी, इसी कारण नबीगण यह दिखाने के लिए उत्सुक रहते थे कि वे सीधे परमेश्वर द्वारा बुलाए गए थे और कार्य के लिए नियुक्त किए गए थे। पुराने नियम में हम कई नबियों को देखते हैं जिसमें आमोस, यशायाह, यिर्मयाह और यहेजकेल सम्मिलित हैं, जो अपने श्रोताओं के लिए उन परिस्थितियों का वर्णन करते हैं जिनके द्वारा वे नबूवत के लिए विशेष रीति से बुलाए गए और अभिषिक्त किए गए थे।

नए नियम में, नबी के समकक्ष *(counterpart)* प्रेरित थे। नबी और प्रेरित साथ में कलीसिया की नींव बनते हैं (इफिसियों 2:20)। एक प्रेरित का मुख्य चिन्ह था कि उसे ख्रीष्ट के द्वारा सीधे बुलाहट प्राप्त हुई थी। *प्रेरित* शब्द एक ऐसे व्यक्ति को सन्दर्भित करता है जो किसी भेजने वाले व्यक्ति के अधिकार के द्वारा भेजा गया है या नियुक्त किया गया है। यीशु ने अपने प्रेरितों से कहा, "जो तुम्हें ग्रहण करता है वह मुझे ग्रहण करता है, और जो मुझे ग्रहण करता है, वह मेरे भेजने वाले को ग्रहण करता है" (मत्ती 10:40)। विवादास्पद रीति से नए नियम का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रेरित, पौलुस, आरम्भिक बारह में से एक नहीं था। सम्भवतः पौलुस यीशु को पृथ्वी पर उसकी सेवा के समय नहीं जानता था, और वह पुनरुत्थान का प्रत्यक्षदर्शी नहीं था जैसा कि शेष थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पौलुस के पास प्रेरित होने के लिए आवश्यक प्रत्यायक *(credentials)* नहीं थे, और इसी कारण नया नियम दोनों पौलुस की स्वयं की साक्षी के द्वारा और लूका की साक्षी के द्वारा,

दमिश्क के मार्ग पर पौलुस की बुलाहट की परिस्थितियों का वर्णन करता है। इसके अतिरिक्त, अन्य प्रेरितों ने पौलुस की प्रेरिताई की प्रमाणिकता की पुष्टि की।

पुराने नियम में एक सच्चे नबी का द्वितीय परीक्षण आश्चर्यकर्मों की उपस्थिति थी। पुराने नियम के सभी नबियों ने आश्चर्यकर्म नहीं किए, परन्तु मूसा के दिनों में अनेक आश्चर्यकर्मों के आरम्भ होने के साथ उनकी सेवा की पुष्टि हुई और एलिय्याह के दिनों तक बनी रही, और अन्य नबी उसी क्रम में आते रहे। सच्चे आश्चर्यक्रम और झूठे आश्चर्यकर्म में भेद करना अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय था क्योंकि कृत्रिम आश्चर्यकर्म भी होते थे, जैसे कि वे जो फिरौन की राजसभा में जादूगरों द्वारा किए गए थे। उनके तथा-कथित आश्चर्यकर्म केवल धोखा देने वाली चालें थीं।

एक सच्चे नबी का तृतीय परीक्षण परिपूर्णता थी; दूसरे शब्दों में, क्या नबी द्वारा घोषित बातें घटित हुईं? झूठे नबियों ने बतलाने का प्रयास किया कि क्या होने वाला है, परन्तु जब उनकी नबूवतें पूरी नहीं हुईं, तो उनके सन्देश झूठे प्रमाणित हुए।

दोनों पुराने नियम के नबियों और नए नियम के प्रेरितों के द्वारा, हमें विशेष प्रकाशन के लिखित अभिलेख प्रदान किए गए हैं। यह हमारे पास ख्रीष्ट के अभिकर्ताओं से, प्रकाशन के उसके अधिकृत अभिकर्ताओं द्वारा आया है। यीशु ने अपने हस्ताक्षर वाली कोई भी पाण्डुलिपि *(manuscript)* नहीं छोड़ी है; वह किसी पुस्तक का लेखक नहीं था। उसके विषय में सब कुछ जो हम जानते हैं वह नए नियम के अभिलेखों में पाया जाता है जो हमारे पास उसके प्रेरितों के कार्य के द्वारा पहुँचा है। वे उसके दूत *(emissaries)* हैं, जिनको उसके स्थान पर बोलने के लिए उसका अधिकार दिया गया था।

देहधारी वचन

इब्रानियों का लेखक विशेष प्रकाशन के अन्य आयाम को इंगित करता है, सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन, जो कि देहधारी वचन है। हमारे पास लिखित वचन है, जो हमें विशेष प्रकाशन देता है, परन्तु हमारे पास परमेश्वर का देहधारी वचन भी है, वह जिसके विषय में लिखित वचन बात करता है। जो परमेश्वर के वचन को धारण *(embodies)* करता है वह स्वयं यीशु है, जैसा कि इब्रानियों का लेखक यह कहते हुए घोषणा करता है, "प्राचीनकाल में परमेश्वर ने नबियों के द्वारा पूर्वजों से बार-बार तथा अनेक प्रकार से बातें करके, इन अन्तिम दिनों में हम से अपने पुत्र के द्वारा बातें की हैं, जिसे उसने सब वस्तुओं का उत्तराधिकारी ठहराया और जिसके द्वारा उसने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना भी की" (इब्रानियों 1:1-2)।

जब चेले यीशु के साथ ऊपरी कक्ष में एकत्रित थे, तो फिलिप्पुस ने उससे कहा, "हे प्रभु, हमको पिता दिखा दे और यही हमारे लिए पर्याप्त है।" यीशु ने प्रतिउत्तर दिया, "फिलिप्पुस, मैं इतने समय से तुम्हारे साथ हूँ, तौभी तू मुझे नहीं जानता?... क्या तू विश्वास नहीं करता कि मैं पिता मैं हूँ, और पिता मुझ में है?" (यूहन्ना 14:8-10)। सब प्रेरितों का मुखिया, उसको जिसे परमेश्वर ने अपने स्वःप्रकटीकरण *(self-disclosure)* के सर्वश्रेष्ठ पात्र के रूप में चुना है, वह तो स्वयं ख्रीष्ट है। ख्रीष्ट में हम पिता के प्रकाशन की परिपूर्णता से भेंट करते हैं, और हम केवल पवित्रशास्त्र के द्वारा ही ख्रीष्ट से भेंट करते हैं।

अध्याय 5

पवित्रशास्त्र की प्रेरणा और उसका अधिकार

The Inspiration and Authority of Scripture

सोलहवीं शताब्दी के धर्मसुधार *(Reformation)* का मुख्य कारण केवल विश्वास *(faith alone)* के द्वारा धर्मीकरण *(justification)* का सिद्धान्त था, परन्तु उसकी सतह से थोड़ा ही नीचे एक अन्य महत्वपूर्ण विषय था—अधिकार।

जब मार्टिन लूथर ने धर्मीकरण के सिद्धान्त के विषय में रोमन कैथोलिक कलीसिया के अगुवों के साथ वाद-विवाद किया, तो उनको चतुराई से एक ऐसी स्थिति में डाला गया जहाँ उनको सार्वजनिक रीति से अँगीकार करना पड़ा कि उनके विचार कलीसिया द्वारा पहले कहे गए कथनों से और भूतपूर्व पोपगणों के कुछ कथनों से सहमत नहीं थे। इस बात ने लूथर के लिए संकट को उत्पन्न किया; कलीसिया या पोप के अधिकार पर प्रश्न उठाना लूथर के दिनों में अस्वीकरणीय था। तौभी लूथर अपनी बात पर स्थिर रहे और अन्ततः 1521 में वर्म्स की धारा-सभा *(Diet of Worms)* में, उन्होंने कहा:

> जब तक मैं पवित्रशास्त्र की साक्षी या स्पष्ट तर्कबुद्धि के द्वारा दृढ़ निश्चयी नहीं हो जाऊँ (क्योंकि मैं केवल पोप पर या केवल महासभाओं पर भरोसा नहीं करता हूँ, क्योंकि सब जानते हैं कि उन्होंने अनेक त्रुटियाँ की हैं और स्वयं की बातों का खण्डन किया है), मैं पवित्रशास्त्र द्वारा बाध्य हूँ जिसे मैंने उद्धृत किया है और मेरा विवेक परमेश्वर के वचन का बन्दी है। मैं अपनी किसी भी बात को नहीं नकार सकता और नकारूँगा भी नहीं, क्योंकि विवेक के विरुद्ध जाना न तो सुरक्षित है और न ही उचित है। मैं इसके सिवाय कुछ और नहीं कर सकता, मैं इस बात पर स्थिर हूँ, परमेश्वर मेरी सहायता करे, आमीन।*

* *Luther's Works*, vol. 32, ed. George W. Forell (Philadelphia: Fortress, 1958), 113

उस संघर्ष से धर्मसुधार का नारा *सोला स्क्रिप्चुरा* आया, जिसका अर्थ है "केवल-पवित्रशास्त्र।" लूथर और अन्य धर्मसुधारकों ने कहा कि केवल एक ही अधिकारी के पास अन्ततः हमारे विवेक को बाँधने का सम्पूर्ण अधिकार है। लूथर ने न तो कलीसिया के लघुतर अधिकार को नीचा दिखाया और न ही नीकिया और चाल्सीदोन जैसे ऐतिहासिक महासभाओं के महत्व को घटाया। जो मुख्य बात वह कह रहे थे वह यह थी कि यहाँ तक कि कलीसिया की महासभाओं के पास भी बाइबल के अधिकार के तुल्य अधिकार नहीं है। इस बात ने बाइबल के अधिकार के स्वभाव और आधार पर ध्यान आकर्षित किया।

लेखकत्व और अधिकार

पवित्रशास्त्र की प्रमुखता *(primacy)* और अधिकार *(authority)* के विषय में धर्मसुधारकों के दृष्टिकोण में बाइबल का लेखकत्व *(authorship)* आधारभूत था। ध्यान दीजिए कि अंग्रेज़ी में ये दो शब्द कितने निकट हैं, *ऑथोरिटी (अधिकार)* और *ऑथरशिप (लेखकत्व)*। अंग्रेज़ी में दोनों शब्दों में *ऑथर (लेखक)* शब्द पाया जाता है। धर्मसुधारकों ने कहा कि यद्यपि बाइबल एक-एक पुस्तक करके प्रकट हुई और मानवीय लेखकों द्वारा लिखी गई थी, किन्तु बाइबल का अन्तिम निर्णायक लेखक पौलुस, लूका, यिर्मयाह, या मूसा नहीं थे, परन्तु स्वयं परमेश्वर था। परमेश्वर ने अपने अधिकार को मानवीय लेखकों के लेखों के द्वारा प्रयोग किया, जिन्होंने संसार के लिए उसके प्रवक्ता के रूप में सेवा की।

मानव लेखकों के पास परमेश्वर के अधिकार का सौंपा जाना कैसे सम्भव हुआ? जैसे कि हमने पिछले अध्याय में देखा था कि नबियों ने दावा किया था कि उनके सन्देश परमेश्वर से आए थे, और इसीलिए ऐतिहासिक रीति से पवित्रशास्त्र के स्वभाव को दर्शाने के लिए दो लातीनी वाक्याँश प्रयोग किए गए हैं। एक वाक्याँश है *वरबम डेय (verbum Dei)* जिसका अर्थ है "परमेश्वर का वचन", और दूसरा है *वॉक्स डेय (vox Dei)* जिसका अर्थ है "परमेश्वर की वाणी"। धर्मसुधारक *(Reformers)* विश्वास करते थे कि यद्यपि परमेश्वर ने व्यक्तिगत रीति से उन शब्दों को नहीं लिखा जो बाइबल के पृष्ठों में प्रकट होते हैं, तौभी वे उसके वचन वैसे ही हैं, मानो जैसे कि वे हमें सीधे स्वर्ग से दिए गये हैं।

तीमुथियुस को लिखे गए अपने दूसरे पत्र में, पौलुस लिखता है, "सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है" (2 तीमिथियुस 3:16क)। जिस यूनानी शब्द का यहाँ "पवित्रशास्त्र" के रूप में अनुवाद किया गया है, वह शब्द *ग्राफे (graphē)* है जिसका सरल अर्थ है "लेख।" यद्यपि, यहूदी लोगों के लिए, *ग्राफे* शब्द का विशेष सन्दर्भ पुराने नियम के लिए था। इसके साथ ही "यह लिखा है" वाक्याँश एक तकनीकी शब्द था जिसका उपयोग वे बाइबलीय लेखों *(writings)* की ओर विशेष सन्दर्भ करते हुए समझते थे। 2 तीमुथियुस का यह स्थल बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ *पवित्रशास्त्र* शब्द का विशेष सन्दर्भ पुराने नियम के लिए है, और उसी तर्क के विस्तार के द्वारा

नए नियम में प्रेरितों के लेखों को भी सम्मिलित करता है, क्योंकि प्रेरितों को अपने अधिकार की चेतना थी कि वे पवित्र आत्मा द्वारा प्रकट किए गए नए नियम के परमेश्वर के वचन को सौंप रहे थे। (उदाहरण के लिए, प्रेरित पतरस पौलुस के लेखों को शेष पवित्रशास्त्र के लेखों के साथ सम्मिलित करता है; 2 पतरस 3:16 देखें। पौलुस आदेशात्मक प्रकाशन देने के लिए अपने अधिकार के प्रति सचेत है; 1 कुरिन्थियों 7:10-16 देखें।) पौलुस तब एक आश्चर्यजनक दावा करता है जब वह कहता है कि ये सब लेख, सभी *ग्राफे* ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा दिए गए हैं।

श्वास से निकला

इंगलिश स्टैंडर्ड वर्ज़न *(English Standard Version)* में जिस शब्द का अनुवाद "श्वास से निकला" *(breathed out)* किया गया है उसी का अनुवाद किंग जेम्स वर्ज़न *(King James Version)* में तथा दूसरे अनुवादों में "प्रेरणा के द्वारा दिया गया" *(given by inspiration)* किया गया है। प्रेरणा-के-सिद्धान्त के लम्बे इतिहास के कारण, हमें 2 तीमुथियुस 3:16 के अर्थ में और जिस प्रकार से कलीसिया के इतिहास में *प्रेरणा* शब्द को समझा गया है उसमें भेद करना चाहिए।

बी.बी. वॉरफील्ड *(B.B. Warfield)* ने एक बार इंगित किया कि 2 तीमुथियुस 3:16 का वास्तविक अर्थ इस बात से अधिक सम्बन्धित नहीं है कि परमेश्वर ने अपने सन्देश को (मानवीय लेखकों के द्वारा) कैसे संचारित किया किन्तु उस सन्देश के स्रोत से है। अक्षरशः, पौलुस यहाँ लिखता है कि सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र *थियोप्न्यूस्टोस (theopneustos)* है, अर्थात् , "परमेश्वर की श्वास से निकला," जिसका सम्बन्ध उस बात से है कि परमेश्वर बाहर श्वास में क्या निकालता है इसके विपरीत कि परमेश्वर किस में श्वास डालता है। पौलुस के शब्दों के पीछे का प्रवाह यह है कि सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र परमेश्वर से बाहर श्वास में निकला है। श्वास बाहर निकालने को अंग्रेज़ी में *एक्सपिरेशन (expiration)* कहा जाता है, जबकि श्वास भीतर खींचने को *इन्सपिरेशन (inspiration)* कहा जाता है, इसलिए तकनीकी रीति से हमें इस वाक्याँश का अनुवाद इस प्रकार करना चाहिए कि सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र "श्वास भीतर खींचने (इन्सपिरेशन)" के स्थान पर "परमेश्वर के श्वास बाहर निकालने (एक्सपिरेशन)" के द्वारा दिया गया है। तो मुख्य बात यह है कि जब पौलुस बल देता है कि सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र परमेश्वर के श्वास से निकला है, तो वह यह कह रहा है कि इसका मूल उद्गम परमेश्वर है। परमेश्वर इन लेखों का स्रोत है।

जब हम एक अवधारणा *(concept)* के रूप में प्रेरणा की बात करते हैं, तो हम पवित्र आत्मा के कार्य की बात कर रहे हैं, जो विभिन्न समयों में लोगों पर आया और अपने सामर्थ्य से उनका अभिषेक किया, जिससे कि वे परमेश्वर के सच्चे वचन को लिखने के लिए प्रेरित हुए। पवित्रशास्त्र में कहीं भी इस सम्बन्ध में पवित्र आत्मा का कार्य परिभाषित नहीं किया गया है, परन्तु बाइबल स्पष्ट है कि पवित्रशास्त्र मानवीय पहल से नहीं रचा गया है। सारांश में, प्रेरणा-का-सिद्धान्त *(the*

doctrine of inspiration) उस बात से सम्बन्धित है जिसमें परमेश्वर ने पवित्रशास्त्र के रचे जाने का पर्यवेक्षण *(superintended)* किया।

कुछ लोगों ने शास्त्रसम्मत *(orthodox)* मसीहियों पर यह आरोप लगाया है कि वे प्रेरणा के विषय में यन्त्रवत् *(mechanical)* विचार की शिक्षा देते हैं, जिसको कभी-कभी "श्रुतिलेख सिद्धान्त" *(dictation theory)* कहा जाता है, जिसमें विचार यह है कि पवित्रशास्त्र के लेखकों ने केवल परमेश्वर द्वारा श्रुतिलेख प्राप्त किया, जैसे एक सचिव किसी पत्र में प्रत्येक बोले गए शब्द को सुनकर लिखता है। ऐतिहासिक रूप से कलीसिया ने प्रेरणा के विषय में इस सरलीकृत *(simplistic)* विचार से अपने आप को परे रखा है, यद्यपि ऐसे समय भी हुए हैं जब कलीसिया में कुछ लोगों ने ऐसा दर्शाया कि मानो यह विचार सत्य था। उदाहरण के लिए, जॉन कैल्विन ने कहा कि, कुछ अर्थों में, नबियों और प्रेरितों ने परमेश्वर के *अमैन्यूएन्सिस (सचिव)* के रूप में कार्य किया। जहाँ तक वे परमेश्वर के शब्दों को संचार करने के लिए अभिकर्ता थे, वे *अमैन्यूएन्सिस (amanuenses)* थे, परन्तु यह प्रेरणा की विधि को नहीं समझाता है।

हम नहीं जानते कि परमेश्वर ने कैसे पवित्रशास्त्र के लिखे जाने के कार्य का पर्यवेक्षण किया है, किन्तु आज कलीसिया के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि पवित्रशास्त्र में जो हमारे पास है, यद्यपि यह मानवीय लेखकों के विभिन्न व्यक्तित्वों, शब्दावलियों और चिन्ताओं को प्रतिबिम्बित करता है, यह फिर भी परमेश्वर की देखरेख में लिखा गया था, तथा लेखक स्वयं अपनी सामर्थ्य में होकर नहीं लिख रहे थे। यदि वे स्वयं की सामर्थ्य में लिख रहे होते, तो हम बहुत सारी त्रुटियों को पाने की अपेक्षा करते।

प्रत्येक अन्तिम शब्द

इसके अतिरिक्त, कलीसिया ने ऐतिहासिक रूप से विश्वास किया है कि बाइबल की प्रेरणा शाब्दिक *(verbal)* थी; दूसरे शब्दों में, प्रेरणा केवल मानव लेखकों द्वारा संचार की गई जानकारी की व्यापक रूपरेखा तक ही सीमित नहीं है, परन्तु स्वयं पवित्रशास्त्र के प्रत्येक शब्द तक है। यह उन कारणों में से एक है कि बाइबल की मूल पाण्डुलिपियों को सावधानीपूर्वक पुनर्निर्माण करने के लिए तथा प्राचीन इब्रानी और यूनानी शब्दों के अर्थों को ध्यान से अध्ययन करने के लिए कलीसिया उत्सुक रही है। प्रत्येक शब्द ईश्वरीय अधिकार को वहन किये हुए है।

जब यीशु ने जंगल में अपनी परीक्षा के समय शैतान से बात की, तो उन्होंने पवित्रशास्त्र में उद्धरणों पर वाद-विवाद किया। यीशु नियमित रीति से शैतान या फरीसियों के विरुद्ध अपना पक्ष एक-एक शब्द के अर्थ के आधार पर रखता था। उसने यह भी कहा कि व्यवस्था में से एक मात्रा या बिन्दु भी नहीं टलेगा, जब तक कि सब कुछ पूरा न हो जाए (मत्ती 5:18)। उसके कहने का अर्थ था

कि परमेश्वर की व्यवस्था में एक भी अतिरिक्त शब्द या कोई भी शब्द अनदेखा किये जाने के लिए उपलब्ध नहीं है। प्रत्येक शब्द मूल लेखक के आदेशात्मक अधिकार के महत्व को वहन करता है।

हमारे समय में, बाइबल के विरुद्ध भारी आलोचना के साथ, प्रेरणा की अवधारणा की अधीनता से बाहर निकलने के प्रयास हुए हैं। जर्मन विद्वान रूडॉल्फ बुल्टमान *(Rudolf Bultmann)* (1884-1976) ने पवित्रशास्त्र के ईश्वरीय उद्गम के विचार को सम्पूर्णता से नकारा था। यद्यपि नवशास्त्रसम्मत *(neoorthodox)* ईश्वरविज्ञानी कलीसिया में बाइबल का प्रचार पुनः स्थापित करने, और कलीसिया में बाइबल को एक ऊँचा स्थान दिए जाने के लिए इच्छुक हैं जो कि उन्नीसवीं शताब्दी के उदारवाद *(liberalism)* से कम हुआ था, परन्तु वे भी शाब्दिक प्रेरणा *(verbal inspiration)* और प्रकथनीय *(propositional)* प्रकाशन को नकारते हैं। उदाहरण के लिए, कार्ल बार्थ *(Karl Barth)* (1886-1968), ने कहा कि परमेश्वर अपने आप को घटनाओं के माध्यम से प्रकट करता है, प्रकथनों *(propositions)* में नहीं। परन्तु, बाइबल केवल घटनाओं के वृतान्त का लेखा-जोखा ही नहीं है जिनमें हमको बताया गया है कि क्या घटित हुआ और फिर उसके अर्थ का अर्थानुवाद *(interpret)* करने के लिए हमें अपने हाल पर छोड़ दिया गया है। इसके स्थान पर, बाइबल हमें घटनाओं का विवरण भी देती है, और फिर उन घटनाओं के अर्थ का आधिकारिक, प्रेरितीय, और नबूवतीय अर्थानुवाद भी देती है।

उदाहरण के लिए, क्रूस पर यीशु की मृत्यु को हमारे लिए अभिलिखित भी किया गया है और सुसमाचारों और पत्रियों में समझाया भी गया है। लोगों ने यीशु की मृत्यु को विभिन्न रीति से देखा। उसके बहुत से अनुयायियों में, इससे त्रासदीपूर्ण आशाभंग *(disillusionment)* उत्पन्न हुई; किन्तु पुन्तियुस पिलातुस और काइफा के लिए तो यह एक राजनीतिक लाभ की बात थी। प्रेरित पौलुस, जब क्रूस के अर्थ को समझाता है, तो वह इसको वैश्विक छुटकारे के कार्य के रूप में, और परमेश्वर के न्याय को सन्तुष्ट करने के लिए एक प्रायश्चित्त के रूप में प्रस्तुत करता है, एक ऐसा सत्य जो केवल घटना को ऐसे ही देखने से तुरन्त स्पष्ट नहीं है।

नवशास्त्रसम्मत ईश्वरविज्ञानी यह भी कहते हैं कि बाइबल प्रकाशन नहीं है किन्तु प्रकाशन का एक *ज़्यूगनिस (Zeugnis)* या "साक्षी" है, जो बाइबल के अधिकार के स्तर को अत्यन्त घटा देता है। वे दावा करते हैं कि पवित्रशास्त्र का कुछ ऐतिहासिक महत्व तो है और वह सत्य की साक्षी भी देता है, किन्तु यह स्वयं प्रकाशन नहीं है। इसके विपरीत, शास्त्रसम्मत मसीहियत दावा करती है कि पवित्रशास्त्र न केवल सत्य की साक्षी देता है, किन्तु यह सत्य *है*। वह ईश्वरीय प्रकाशन का वास्तविक मूर्तरूप है। यह केवल स्वयं से परे ही इंगित नहीं करता है; यह हमें परमेश्वर के सत्य वचन से कम कुछ भी नहीं प्रदान करता है।

अध्याय 6

अचूकता और त्रुटिहीनता

Infallibility and Inerrancy

पवित्रशास्त्र के स्वभाव के विषय में कोई भी चर्चा जिसमें प्रेरणा का विषय सम्मिलित है उसको अचूकता *(infallibility)* और त्रुटिहीनता *(inerrancy)* के विषयों का सामना करना पड़ता ही है। सम्पूर्ण कलीसियाई इतिहास में, परम्परागत विचार यह रहा है कि बाइबल अचूक *(infallible)* और त्रुटिहीन *(inerrant)* है। परन्तु तथा-कथित उच्चतर आलोचना *(higher criticism)* के उदय के साथ, मुख्यतः उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में न केवल पवित्रशास्त्र की प्रेरणा को व्यापक आक्रमण का सामना करना पड़ा, किन्तु विशेषकर अचूकता और त्रुटिहीनता की अवधारणाओं की भी कठोरता से आलोचना की गई है।

कुछ आलोचक कहते हैं कि त्रुटिहीनता-का-सिद्धान्त सत्रहवीं शताब्दी में प्रोटेस्टेन्ट लोगों की रचना थी, जिसको कभी-कभी "प्रोटेस्टेन्ट विद्यानुरागवाद *(scholasticism)* का युग" कहा जाता है जो कि धर्मनिरपेक्ष दर्शनशास्त्र के युग के समकालीन था जिसे "तर्कबुद्धि का युग" *(the age of reason)* कहते हैं। ये आलोचक दावा करते हैं कि त्रुटिहीनता एक तर्कसंगत रचना थी, जो बाइबल के लेखकों के लिए और सोलहवीं शताब्दी के आधिकारिक धर्मसुधारकों के लिए भी पराई बात थी। तथापि, धर्मसुधारकों ने उद्घोषणा की थी कि पवित्रशास्त्र में कोई त्रुटि नहीं है, यही आरम्भिक कलीसियाई महापिताओं ने भी कहा था जिसमें टर्टूलियन *(Tertullian)*, आइरेनियुस *(Irenaeus)* और विशेष कर ऑगस्टीन सम्मिलित हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात है ईश्वरीय उद्गम के लिए स्वयं बाइबल का दावा। कलीसिया के लिए यह महत्वपूर्ण है कि बाइबल का दावा है कि वह ईश्वरीय प्रेरणा से लिखी गई है।

शब्दों को परिभाषित करना

कलीसिया ने ऐतिहासिक रीति से देखा है कि इतिहास के सभी लिखित साहित्य में, केवल बाइबल, विशिष्ट रूप से अचूक है। *अचूक* शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है "वह जो

विफल नहीं हो सकता"; इसका अर्थ है कोई वस्तु जिसमें भूल करने की क्षमता नहीं है। एक भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण से, *अचूक* शब्द *त्रुटिहीन* शब्द से उच्च है। उदाहरण के लिए, कोई विद्यार्थी बीस प्रश्नों की परीक्षा में, बीस सही उत्तर लिख सकता है जिससे उसकी परीक्षा त्रुटिहीन पाई जाएगी। परन्तु इस सीमित क्षेत्र में विद्यार्थी की त्रुटिहीनता उसे अचूक नहीं बनाती है, तत्पश्चात् जिसकी पुष्टि अन्य परीक्षाएँ करेंगी।

प्रेरणा के विषय से सम्बन्धित अधिकतर विवाद *अचूकता* और *त्रुटिहीनता* शब्दों के विषय में कुछ भ्रम के कारण होता है, विशेषकर कि वे किस व्यापकता तक लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, निम्न दो वाक्यों में भिन्नता पर ध्यान दें:

क. विश्वास और व्यावहारिक जीवन के लिए बाइबल एकमात्र अचूक नियम है।
ख. बाइबल केवल तब ही अचूक है जब वह विश्वास और व्यावहारिक जीवन के विषय में बात करती है।

दोनों वाक्य सुनने में एक जैसे हैं किन्तु वे मौलिक रीति से भिन्न हैं। प्रथम वाक्य में, *एकमात्र* शब्द आधिकारिक क्षमता के साथ एकमात्र अचूक स्रोत के रूप में पवित्रशास्त्र को पृथक करता है। दूसरे शब्दों में, पवित्रशास्त्र हमारे विश्वास का नियम है, जिसका सम्बन्ध उन सब से है जो हम विश्वास करते हैं, और यह हमारे व्यावहारिक जीवन का नियम है, जिसका सम्बन्ध उन सब से है जो हम करते हैं।

द्वितीय वाक्य में ये शब्द अपना अभिविन्यास *(orientation)* परिवर्तित करते हैं। यहाँ *केवल* शब्द स्वयं बाइबल के एक भाग को यह कहते हुए सीमित करता है, कि यह केवल तब ही अचूक है जब यह विश्वास और व्यावहारिक जीवन के विषय में बात करती है। यह ऐसा विचार है जिसे "सीमित त्रुटिहीनता" कहा जाता है, और पवित्रशास्त्र को समझने का यह ढंग आज हमारे समय में प्रचलित है। *विश्वास* और *व्यावहारिक जीवन,* ये शब्द सम्पूर्ण मसीही जीवन पर लागू होते हैं, परन्तु दूसरे वाक्य में, "विश्वास और व्यावहारिक जीवन" को पवित्रशास्त्र की शिक्षा के एक भाग तक सीमित कर दिया जाता है, इसमें उन बातों को छोड़ दिया जाता है जो बाइबल इतिहास, विज्ञान, और सांस्कृतिक बातों के विषय में कहती है। दूसरे शब्दों में, बाइबल केवल तब ही आधिकारिक है जब वह धार्मिक विश्वास की बात करती है; शेष अन्य बातों पर उसकी शिक्षा को चूक करने वाला माना जाता है।

ख्रीष्ट का अधिकार

अन्तिम विश्लेषण में, बाइबल के अधिकार का प्रश्न ख्रीष्ट के अधिकार के प्रश्न पर निर्भर है। 1970 के दशक में, लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ ने पवित्रशास्त्र के अधिकार के विषय पर एक सम्मेलन

को प्रायोजित किया।* संसार भर से विद्वान त्रुटिहीनता के प्रश्न पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए, और बिना किसी साँठ-गाँठ के, प्रत्येक विद्वान ने इस विषय को ख्रीष्ट-केन्द्रित दृष्टिकोण से देखा: पवित्रशास्त्र के विषय में यीशु का विचार क्या था? इन विद्वानों की इच्छा बाइबल के विषय में उसी दृष्टिकोण को मानने की थी जो स्वयं यीशु द्वारा सिखाए गए पवित्रशास्त्र के दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करती थी।

बाइबल के विषय में यीशु के दृष्टिकोण को जानने का एकमात्र उपाय है बाइबल को पढ़ना, जो कि एक ऐसा तथ्य है जो वृत्ताकार तर्क *(circular argument)* की ओर ले जाता है: यीशु ने बाइबल में त्रुटिहीनता की शिक्षा दी, तौभी हम केवल बाइबल के द्वारा ही जानते हैं कि यीशु ने क्या कहा था। तथापि, आलोचकों के बीच में भी इस बात को लेकर व्यापक सहमति है कि ऐतिहासिक प्रामाणिकता के सम्बन्ध में पवित्रशास्त्र के सबसे कम विवादित खण्ड वे हैं जिनमें पवित्रशास्त्र के विषय में यीशु के कथन सम्मिलित हैं। बाइबल के विषय में यीशु के दृष्टिकोण को लेकर ईश्वरविज्ञानियों के बीच में कोई गम्भीर मतभेद नहीं है। सभी पृष्ठभूमियों के विद्वान और ईश्वरविज्ञानी, भले ही वे उदारवादी *(liberals)* हों या वे रूढ़िवादी *(conservatives)* हों, सब इस बात से सहमत हैं कि ऐतिहासिक यीशु नासरी ने पवित्रशास्त्र के विषय में उच्च और उत्कृष्ट दृष्टिकोण पर विश्वास किया और सिखाया जो कि प्रथम शताब्दी के यहूदी धर्म *(Judaism)* में सामान्य बात थी, अर्थात् बाइबल परमेश्वर द्वारा प्रेरित वचन से थोड़ा भी कम नहीं है। पवित्रशास्त्र के विषय में यीशु के दृष्टिकोण को सुसमाचारों में प्रकट किया गया है: "जब तक आकाश और पृथ्वी टल न जाएँ, व्यवस्था में से एक मात्रा या बिन्दु भी, जब तक कि सब कुछ पूरा न हो जाए, नहीं टलेगा" (मत्ती 5:18); "पवित्रशास्त्र का खण्डन नहीं किया जा सकता" (यूहन्ना 10:35); और "तेरा वचन सत्य है" (यूहन्ना 17:17)। इसके अतिरिक्त, यीशु ने बहुधा ईश्वरविज्ञानीय विवाद का समाधान करने के लिए केवल अपनी बात को इतना कहने के द्वारा पुराने नियम पर आधारित किया, कि "लिखा है।"

बहुत ही कम विद्वान होंगे, यदि कोई है भी तो, जो इस विचार से असहमत होगा कि यीशु नासरी ने वही सिखाया जिसे कलीसिया दो हज़ार वर्षों से सिखाती आई है। फिर भी, इन्हीं में से अनेक विद्वान पलटकर कहते हैं कि पवित्रशास्त्र के विषय में यीशु का दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण था। मसीही ईश्वरविज्ञानियों के द्वारा कहे ऐसे अहंकारपूर्ण कथन पर प्रत्येक व्यक्ति को आश्चर्य होना चाहिए। वे यह तर्क देते हुए दावा करते हैं कि यीशु, पवित्रशास्त्र के विषय में अपने युग के यहूदी समुदाय में प्रचलित विचार से प्रभावित था, जिसे वह अपने मानवीय स्वभाव में नहीं जानता था कि वह त्रुटिपूर्ण है। वे अपने आलोचकों को झट से बताते हैं कि कुछ बातें थीं जिन्हें मानवीय यीशु,

---

* देखें, *God's Inerrant Word: An International Symposium on the Trustworthiness of Scripture,* ed. John Warwick Montgomery (Calgary, Alberta: Canadian Institute for Law, Theology, and Public Policy, 1974).

ईश्वरीय स्वभाव में होते हुए भी नहीं जानता था। उदाहरण के लिए, जब उससे पुनः आगमन के दिन एवं घड़ी के विषय में बल देकर पूछा गया, तो यीशु ने अपने शिष्यों को बताया कि पिता को छोड़कर कोई भी उस दिन और घड़ी को नहीं जानता है (मत्ती 24:36), और ऐसा कहने के द्वारा यीशु ने स्वयं अपने ज्ञान के सीमित होने को व्यक्त किया। आलोचकगण यह दावा करते हैं कि यह घटना पवित्रशास्त्र के विषय में हमें झूठा दृष्टिकोण देने के लिए यीशु को एक अवसर प्रदान करती है।

इसके प्रतिउत्तर में, शास्त्रसम्मत विद्वान कहते हैं कि भले ही यीशु के मानवीय स्वभाव के पास सर्वज्ञान *(omniscience)* का गुण नहीं था, फिर भी हमारे उद्धारकर्ता होने के लिए उसके मानव स्वभाव का सर्वज्ञानी होना अनिवार्य नहीं था। उसका ईश्वरीय स्वभाव तो सर्वज्ञानी था, परन्तु मानवीय स्वभाव सर्वज्ञानी नहीं था। किन्तु यहाँ पर इससे भी महत्वपूर्ण बात जो है वह है ख्रीष्ट का पाप-रहित होना। उसके लिए इस त्रुटिपूर्ण शिक्षा को देना पापमय होता जो कि यह दावा कर रहा था कि वह केवल वही शिक्षा देता है जो उसे पिता से प्राप्त होती है। पवित्रशास्त्र में शिक्षा देने के विषय में एक नीति है कि बहुत लोगों को शिक्षक नहीं बनना चाहिए क्योंकि वे कठोरतम दण्ड के भागी होंगे (याकूब 3:1)। एक शिक्षक होने के नाते मेरा नैतिक उत्तरदायित्व है कि मैं अपने छात्रों से झूठ न बोलूँ। यदि मेरे छात्र मुझसे कोई प्रश्न पूछते हैं जिसका उत्तर मैं नहीं जानता हूँ, तो मेरा उत्तरदायित्व बनता है कि उन्हें बताऊँ कि मैं इसका उत्तर नहीं जानता। यदि मेरे विचार उस विषय में अनिश्चित हैं, तो मुझे उन्हें बताना चाहिए कि मैं उस उत्तर के विषय में अनिश्चित हूँ। ऐसी सावधानी आवश्यक है क्योंकि उन लोगों की सोच को प्रभावित करने के लिए शिक्षक के पास सामर्थ्य है जो उसके चरणों में अध्ययन करते हैं।

सम्पूर्ण इतिहास में यीशु नासरी की तुलना में किसी भी शिक्षक का इतना अधिक प्रभाव और अधिकार नहीं रहा है। यदि उसने लोगों को बताया कि मूसा ने उसके विषय में लिखा था, तथा अब्राहम उसके दिन को देखकर आनन्दित हुआ, तथा वचन का खण्डन नहीं किया जा सकता है, और यह भी कि पवित्रशास्त्र सत्य है, परन्तु वह स्वयं ही इन बातों के विषय में त्रुटि कर रहा था, तो वह इस बात के लिए दोषी है; वह स्वयं अपनी निश्चयता पर एक सीमा लगाने के लिए उत्तरदायी था जहाँ पर वह सीमा वास्तव में थी।

यदि बाइबल के अधिकार जैसे महत्वपूर्ण प्रकरण के विषय में अपनी शिक्षा में यीशु त्रुटि कर रहा था, तो मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि कोई भी व्यक्ति उसकी किसी भी बात को गम्भीरता से लेगा जो उसने सिखायीं थीं। यीशु ने कहा, "जब मैंने तुम से पृथ्वी की बातें कहीं तो तुम विश्वास नहीं करते, यदि मैं तुम को स्वर्ग की बातें बताऊँ तो कैसे विश्वास करोगे?" (यूहन्ना 3:12), किन्तु अब ईश्वरविज्ञानियों की ऐसी पीढ़ी है जो यह कहते हैं कि यद्यपि यीशु स्वर्ग की बातों के विषय में त्रुटिहीन था, परन्तु वह पृथ्वी की बातों के विषय में त्रुटिपूर्ण था।

फिर भी, क्योंकि बाइबल हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त विश्वसनीय ऐतिहासिक

जानकारी देती है कि यीशु एक नबी था, और क्योंकि यीशु स्वयं हमें बताता है कि इस जानकारी का स्रोत पूर्ण रीति से विश्वसनीय है, इसलिए हम एक वृत्ताकार तर्क *(circular argument)* में नहीं किन्तु एक प्रगतिशील तर्क में वृद्धि कर रहे हैं। हमने इतिहास के विषय में प्रश्न पूछने के साथ आरम्भ किया था, फिर वहाँ से आलोचना तक बढ़े हैं, और फिर ऐतिहासिक विश्वसनीयता, और फिर यीशु की शिक्षा के ऐतिहासिक ज्ञान, और अन्ततः यीशु की शिक्षा तक प्रगति की है, जो हमें बताता है कि यह स्रोत न केवल थोड़ा बहुत विश्वसनीय है, किन्तु पूर्णतः विश्वसनीय है क्योंकि यह परमेश्वर के वचन से थोड़ा भी कम नहीं है।

जब हम कहते हैं कि बाइबल विश्वास और व्यावहारिक जीवन के लिए एकमात्र नियम है, तो यह इसलिए है क्योंकि हम विश्वास करते हैं कि यह नियम उसी प्रभु द्वारा सौंपा गया है, जिसका यह नियम है। इसलिए, हम कहते हैं कि बाइबल अचूक और त्रुटिहीन है। जिन दो शब्दों के विषय में हमने इस अध्याय में विचार किया है, जो कि *त्रुटिहीनता* और *अचूकता* है, *त्रुटिहीनता* लघुतर शब्द है; वह स्वाभाविक रीति से अचूकता के विचार से प्रवाहित होता है—यदि किसी वस्तु में त्रुटि की क्षमता ही नहीं है, तो वह त्रुटि कर ही नहीं सकती है। आलोचना के परीक्षण में सफल होने के लिए, बाइबल को केवल अपने ही दावों के साथ समनुरूप होना है, और यदि हम *सत्य* को वैसे परिभाषित करें जैसे नया नियम करता है, तो फिर किसी के पास बाइबल की त्रुटिहीनता पर विवाद करने के लिए कोई वैध कारण नहीं है। यदि परमेश्वर का वचन असफल नहीं हो सकता है, और यदि उसमें त्रुटि करने की क्षमता नहीं है, तो वह न ही असफल होता है और न ही त्रुटि करता है।

अध्याय 7

ग्रन्थसंग्रहण

Canonicity

बाइबल शब्द यूनानी भाषा के *बिबलोस* शब्द से आता है, जिसका अर्थ "पुस्तक" है। यद्यपि बाइबल एक ही खण्ड में बन्धी हुई है, यह एक पुस्तक नहीं है वरन् छियासठ अलग-अलग पुस्तकों का संग्रह है। यह पुस्तकों का एक पुस्तकालय है। जबकि इसमें इतनी सारी पुस्तकें हैं जो एक साथ मिलकर पवित्रशास्त्र का निर्माण करती हैं, तो हम कैसे जानते हैं कि पुस्तकों के इस संग्रह या पुस्तकालय में उचित पुस्तकों को सम्मिलित किया गया है? यह प्रश्न *ग्रन्थसंग्रहण (canonicity)* के विषय के अन्तर्गत आता है।

हमें *कैनन (canon)* शब्द (हिन्दी में ग्रन्थसंग्रह) एक अन्य यूनानी शब्द से प्राप्त होता है, *कॉनोन,* जिसका अर्थ "मापक छड़ी" या "मानदण्ड" है। बाइबल को "पवित्रशास्त्र का ग्रन्थसंग्रहण" *(the canon of Scripture)* कहने का अर्थ है कि उसकी छियासठ पुस्तकें एक साथ मिलकर कलीसिया के लिए उच्चतम मापक छड़ी या अधिकार का कार्य करती हैं। बाइबल को प्रायः ऐसे वर्णन किया गया है *नॉर्मा नॉर्मान्स एट सिने नॉर्माटिवा (norma normans et sine normativa)*। इस कथन में तीन बार *नॉर्म (norm)* शब्द के विभिन्न रूप आते हैं। *नॉर्मा नॉर्मान्स* का अर्थ है "मानकों का मानक," और *सीने नॉर्माटिवा* का अर्थ है "बिना मानक के।" बाइबल मानक या सब मानदण्डों का मानदण्ड है, और यह किसी अन्य मानदण्ड के द्वारा नहीं मापा जा सकता है।

कैनन (ग्रन्थसंग्रह) का विस्तार

हमने पवित्रशास्त्र के स्वभाव का परीक्षण करते हुए प्रेरणा, अचूकता और त्रुटिहीनता के विषयों को देखा है। इस अध्याय में, हम पवित्रशास्त्र के स्वभाव के विषय में नहीं किन्तु उसकी परिसीमा के विषय में विचार करे रहे हैं; अर्थात् पवित्रशास्त्र का ग्रन्थसंग्रह कितनी दूर तक विस्तृत होता है?

ग्रन्थसंग्रह के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। अनेक आलोचक वाद-विवाद करते हैं कि बाइबल में अनेक पुस्तकों को सम्मिलित किया जा सकता था, परन्तु उन पुस्तकों की बड़ी संख्या के कारण—उनका दावा है कि वे दो हज़ार से अधिक थीं—उनको ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः कुछ पुस्तकें जिनको कि सम्मिलित किया जाना चाहिए था किन्तु वे नहीं हुईं, जबकि अन्य पुस्तकें जो सम्मिलित होने के योग्य नहीं थीं वे ग्रन्थसंग्रह में सम्मिलित हो गईं। तथापि, सत्य तो यह है कि अधिकाँश पुस्तकें जो ग्रन्थसंग्रह में सम्मिलित होने के लिए विचाराधीन थीं, आरम्भिक कलीसिया द्वारा तत्परता और सरलता से तिरस्कृत कर दी गईं क्योंकि वे एकदम स्पष्ट रीति से छलपूर्ण थीं।

दूसरी शताब्दी में गूढ़ज्ञानवादी *(Gnostic)* विधर्मियों *(heretics)* ने प्रेरितीय अधिकार का दावा करते हुए, अपनी पुस्तकों को लिखा तथा उन्हें दूर-दूर तक पहुँचा दिया। किन्तु ग्रन्थसंग्रह में सम्मिलित करने के लिए इन पुस्तकों पर कभी भी गम्भीरता से विचार नहीं किया गया, इसलिए यह कहना दिशा भ्रमित करने वाली बात है कि दो हज़ार से अधिक सम्भावित पुस्तकें थी। यदि हम कलीसिया द्वारा चयन करने की ऐतिहासिक प्रक्रिया पर ध्यान दें, ऐसी प्रक्रिया जो बड़ी सावधानी तथा ध्यानपूर्वक जाँच पड़ताल द्वारा संचालित की गई थी, तो हम पाते हैं कि केवल तीन हटाए गए लेखों को नए नियम में सम्मिलित करने के लिए गम्भीरता से विचार किया गया था: डिडाखे *(Didache),* हेरमास का चरवाहा *(The Shepherd of Hermas),* और रोम के क्लेमेन्ट की पहली पत्री *(First Letter of Clement of Rome)।* ये लेख पहली शताब्दी के अन्त से या फिर दूसरी शताब्दी के आरम्भ से हैं, और यदि उनको कोई पढ़ता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके लेखक जानते थे कि उनके कार्य प्रेरितों-से-कम-अधिकार वाले *(subapostolic)* और प्रेरितों-के-उपरान्त *(postapostolic)* लिखे जा रहे थे। इस प्रकार उन्होंने अपने आप को प्रेरितों और उनके लेखों के अधिकार के अधीन समर्पित किया।

ये हटाए गए लेख कलीसिया के लिए महत्वपूर्ण और लाभदायक हैं, और वे ऐसे सम्पूर्ण कलीसियाई इतिहास में रहे हैं, परन्तु इस बात को लेकर कभी संघर्ष नहीं रहा है कि इनको ग्रन्थसंग्रह *(canon)* में सम्मिलित करना चाहिए या नहीं। आरम्भिक शताब्दियों में ग्रन्थसंग्रह को लेकर अधिकतर विवाद हटाई गई पुस्तकों से सम्बन्धित नहीं था परन्तु उस विषय पर था कि वास्तव में कौन सी पुस्तकें ग्रन्थसंग्रह में सम्मिलित हैं। कुछ समय तक इस बात पर विवाद चलता रहा कि क्या इब्रानियों, 2 पतरस, 2 और 3 यूहन्ना, यहूदा और प्रकाशितवाक्य की पुस्तकों को बाइबल में सम्मिलित करना चाहिए या नहीं।

ग्रन्थसंग्रह की स्थापना

कुछ अन्य लोग ग्रन्थसंग्रह के अधिकार के प्रति आपत्ति जताते हैं क्योंकि यह ख्रीष्ट के जीवन और मृत्यु के बहुत समय के पश्चात् तक, अर्थात् चौथी शताब्दी तक स्थापित नहीं हुआ था। ग्रन्थसंग्रह का स्थापित किया जाना एक प्रक्रिया थी जिसने कुछ समय का अन्तराल लिया; किन्तु, इसका अर्थ

यह नहीं है कि चौथी शताब्दी के अन्त तक कलीसिया के पास नया नियम नहीं था। कलीसिया के एकदम आरम्भ से ही, नए नियम की आधारभूत पुस्तकें, जिनको हम आज पढ़ते और मानते हैं, उपयोग में थीं, और वे अपने प्रेरितीय अधिकार के कारण एक ग्रन्थसंग्रह के रूप में कार्यान्वित थीं।

जिस प्रकरण ने ग्रन्थसंग्रह की स्थापना को प्रेरित किया, वह था मार्सियन *(Marcion)* नामक एक विधर्मी का प्रकट होना, जिसने स्वयं अपने ग्रन्थसंग्रह को प्रेषित किया था। गूढ़ज्ञानवाद *(Gnosticism)* के प्रभाव के कारण, मार्सियन यह विश्वास करता था कि पुराने नियम में प्रदर्शित परमेश्वर, संसार का सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर नहीं है वरन् वह तो "डेमिअर्ज" *(demiurge)* नामक एक छोटा देवता था जो दुर्व्यवहारी था, किन्तु ख्रीष्ट तो सच्चे परमेश्वर को प्रकट करने के लिए और हमें इस कठोर-स्वभाव के देवता से बचाने के लिए आया था। इसके परिणामस्वरूप, मार्सियन ने नए नियम से उन सब बातों को छाँट दिया जो ख्रीष्ट के साथ सकारात्मक रीति से यहोवा, अर्थात् पुराने नियम के परमेश्वर को जोड़ सकती थी। मत्ती का सुसमाचार तथा अन्य सुसमाचारों में से बहुत सी सामग्री को हटा दिया गया था, साथ ही ऐसा कोई भी सन्दर्भ जिसमें ख्रीष्ट ने परमेश्वर को पिता करके उल्लेखित किया हो। मार्सियन ने पौलुस के कुछ लेखों को भी निकाल दिया था। इसके परिणामस्वरूप अन्ततः उसने नये नियम का एक छोटा, संक्षिप्त तथा सम्पादित संस्करण प्रस्तुत किया। इस विधर्मता ने कलीसिया को बाइबल की वास्तविक पुस्तकों की आधिकारिक तथा औपचारिक सूची प्रस्तुत करने के लिए उत्साहित किया।

ग्रन्थसंग्रहण के चिन्ह

ग्रन्थसंग्रहणीय प्रमाणिकता को निर्धारित करने हेतु, कलीसिया ने तीन आयामों के परीक्षण को लागू किया। कुछ लोग इस तथ्य से परेशान होते हैं कि चयन की एक प्रक्रिया थी, किन्तु इस प्रक्रिया में दिखाई गई सावधानी से हमें आश्वस्त होना चाहिए।

किसी पुस्तक के अधिकार की पुष्टि करने के लिए जिस प्रथम चिन्ह या परीक्षण का उपयोग किया गया था, वह था उसका प्रेरितीय उद्गम *(Apostolic origin)* होना, इस मापदण्ड के दो आयाम थे। प्रेरितीय उद्गम का होने के लिए, किसी लेख को या तो किसी प्रेरित द्वारा या किसी प्रेरित के प्रत्यक्ष एवं समीपस्थ *(immediate)* अनुमोदन *(sanction)* के अधीन लिखा गया होना चाहिए। उदाहरण के लिए, रोमियों की पुस्तक के प्रति किसी को सन्देह नहीं था क्योंकि सब ने यह माना था कि यह प्रेरित पौलुस द्वारा लिखी गई थी और इसलिए इसमें प्रेरितीय अधिकार निहित था। उसी रीति से, न तो मत्ती के सुसमाचार और न ही यूहन्ना के सुसमाचार पर प्रश्न उठाया गया क्योंकि वे यीशु के प्रेरितों द्वारा लिखे गए थे। लूका रचित सुसमाचार पर प्रश्न नहीं उठाया गया क्योंकि लूका पौलुस का साथी था और उसके साथ सुसमाचार प्रचार हेतु यात्राओं में गया था। उसी प्रकार, मरकुस को प्रेरित पतरस के प्रवक्ता के रूप में देखा गया, तो पतरस का अधिकार मरकुस

के सुसमाचार के पीछे था। आरम्भ से ही, चारों सुसमाचारों के विषय में और पौलुस के आधारभूत लेखों को लेकर प्रेरितीय अधिकार और बाइबलीय ग्रन्थसंग्रहण के विषय में कोई सन्देह नहीं था।

ग्रन्थसंग्रह में स्वीकृति के लिए दूसरा चिन्ह था आरम्भिक कलीसिया द्वारा ग्रहण किया जाना। इफिसियों की पत्री ऐसा उदाहरण है जो इस श्रेणी में सही बैठती है। यह माना जाता है कि पौलुस ने इस पत्री के लिए चाहा था कि यह न केवल इफिसियों की कलीसिया के लिए किन्तु बड़ी मात्रा में अन्य श्रोताओं तक पहुँचेगी। इसको एक परिपत्र *(circular letter)* के रूप में लिखा गया था, जिसकी रचना इफिसुस के आसपास के क्षेत्र की सब कलीसियाओं में प्रसारित करने के लिए की गई थी। यह न केवल इफिसियों की पत्री के लिए, वरन् पौलुस की अन्य पत्रियों के विषय में भी सत्य था। सुसमाचार के लेख भी पहली शताब्दी की कलीसियाओं में व्यापक रीति से प्रसारित हुए। कलीसिया में ऐतिहासिक छानबीन की प्रक्रिया में जब यह विचार किया जा रहा था कि ग्रन्थसंग्रह में किसे सम्मिलित करना चाहिए, तो इस बात पर ध्यान दिया गया कि किस रीति से आरम्भ ही से उक्त लेख को आधिकारिक रीति से स्वीकारा गया और उद्धरित किया गया था। क्लेमेन्ट की पहली पत्री में जिसे ग्रन्थसंग्रहणीय रूप में नहीं पहचाना गया था, क्लेमेन्ट कुरिन्थियों को लिखी गई पौलुस की पत्री को उद्धरित करता है, तथा इसके द्वारा यह दर्शाता है कि 1 कुरिन्थियों को आरम्भिक मसीही लोगों द्वारा आधिकारपूर्ण ग्रहण किया गया था। स्वयं बाइबल में ही प्रेरित पतरस, पौलुस की पत्रियों का ऐसे वर्णन करता है जैसे कि वे पवित्रशास्त्र की श्रेणी में सम्मिलित हैं (2 पतरस 3:16)।

ग्रन्थसंग्रहण का जो तीसरा चिन्ह था वह अधिकाँश विवादों का कारण था। वे पुस्तकें जो प्रेरितीय समझी गईं या किसी प्रेरित के द्वारा अनुमोदित की गईं थीं तथा आरम्भिक कलीसिया के द्वारा ग्रहण भी की गईं, वे तो नए नियम का आधारभूत भाग बन गईं और बिना किसी वास्तविक वाद विवाद के ग्रन्थसंग्रह में स्वीकृत हुईं, किन्तु कुछ पुस्तकें एक अन्य श्रेणी में थीं जिनके विषय में कुछ विवाद हुआ था। उनमें से एक विवादित विषय था, प्रमुख पुस्तकों के साथ इन पुस्तकों के सिद्धान्त एवं शिक्षण की संगतता *(compatibility)।* यही वह बात थी जिसने इब्रानियों की पत्री के विषय में कुछ प्रश्नों को उत्पन्न किया था। इस पत्री के एक भाग, अर्थात् इब्रानियों 6 का अर्थानुवाद प्रायः ऐसे किया गया है कि मानो जैसे यह संकेत कर रहा हो कि ख्रीष्ट द्वारा छुड़ाए गए लोग अपने उद्धार को खो सकते हैं, और यह एक ऐसी शिक्षा प्रतीत होती है जो कि इस विषय पर शेष बाइबल की शिक्षा से मेल नहीं खाती है। परन्तु उस अध्याय का अर्थानुवाद इस प्रकार से किया जा सकता है कि वह शेष पवित्रशास्त्र से मेल खाए। जिस बात ने विवाद को अन्ततः इब्रानियों के पक्ष में कर दिया वह यह तर्क था कि इसका लेखक पौलुस था। आरम्भिक शताब्दियों में कलीसिया यह विश्वास करती थी कि पौलुस इब्रानियों का लेखक था, और इस बात ने इस पत्री को ग्रन्थसंग्रह में

स्थान दिलाया था। विडम्बना कि बात यह है कि आज थोड़े ही विद्वान हैं जो यह विश्वास करते हैं कि पौलुस ने इसे लिखा था, परन्तु उससे भी थोड़े विद्वान हैं जो ग्रन्थसंग्रह में उसके स्थान को नकारेंगे।

ग्रन्थसंग्रह का विषय-क्षेत्र

सोलहवीं शताब्दी में रोमन कैथोलक और प्रोटेस्टेन्ट के बीच में पुराने नियम के शास्त्रों के विषय-क्षेत्र और विस्तार को लेकर एक विवाद उठा, विशेषकर अपोक्रिफा *(Apocrypha)* को लेकर, अर्थात् ऐसी पुस्तकों का समूह जिन्हें पुराने नियम और नए नियम के बीच वाले समयकाल में लिखा गया था। रोमन कैथोलिक कलीसिया ने अपोक्रिफा को अपनाया; धर्मसुधार की अधिकतर कलीसियाओं ने ऐसा नहीं किया। यह विवाद इस बात पर केन्द्रित था कि पहली शताब्दी की कलीसिया तथा स्वयं यीशु ने किन पुस्तकों को ग्रन्थसंग्रह के भाग के रूप में माना था। पलस्तीन *(Palestine)* भू-खण्ड के सब प्रमाण संकेत करते हैं कि पलस्तीनी-यहूदी ग्रन्थसंग्रह *(Jewish Palestinian canon)* में अपोक्रिफा को सम्मिलित नहीं किया गया था, जबकि सिकन्दरिया *(Alexandria)* में कईयों ने इसे सम्मिलित किया था जो कि यूनानीवादी *(Hellenistic)* यहूदियों का सांस्कृतिक केन्द्र था। परन्तु नवीन अध्ययन सुझाते हैं कि सिकन्दरिया के ग्रन्थसंग्रह में भी अपोक्रिफा को केवल द्वितीय स्तर का ही पहचाना गया था, न कि बाइबलीय अधिकार के पूर्ण स्तर पर। इसलिए यह प्रश्न बना हुआ है कि कौन सही था—रोमन कैथोलिक कलीसिया या प्रोटेस्टेन्ट कलीसिया? दूसरे शब्दों में, हम किस अधिकार से यह निर्धारित करते हैं कि ग्रन्थसंग्रहण क्या है?

प्रोटेस्टेन्ट मसीहियों के अनुसार, बाइबल में पाई जानी वाली प्रत्येक पुस्तक एक अचूक पुस्तक है, किन्तु वह प्रक्रिया अचूक नहीं थी जिसके द्वारा कलीसिया ने निर्णय लिया कि किस पुस्तक को सम्मिलित किया जाना चाहिए। हम विश्वास करते हैं कि ग्रन्थसंग्रह निर्धारित करने की प्रक्रिया में कलीसिया को परमेश्वर की दया के द्वारा ईश्वरीय-प्रावधान में होकर मार्गदर्शन दिया गया था और इसके परिणामस्वरूप उसने सही निर्णय लिया, इसी कारण वे सभी पुस्तकें बाइबल में हैं जिनको बाइबल में होना चाहिए। परन्तु, हम यह नहीं विश्वास करते हैं कि न उस समय और न अब, कलीसिया अपने आप में अचूक थी। इसके विपरीत, रोमन कैथोलिक शिक्षा कहती है कि हमारे पास सही पुस्तकें इसलिए हैं क्योंकि कलीसिया अचूक है और जो कुछ भी कलीसिया निर्णय करती है वह अचूक निर्णय होता है। रोमन कैथोलिक समझ में ग्रन्थसंग्रह का निर्माण कलीसिया के अधिकार पर टिका है, जबकि प्रोटेस्टेन्ट समझ में यह परमेश्वर के ईश्वरीय-प्रावधान पर टिका है।

मैं आपको ग्रन्थसंग्रह के विकास का और अधिक अध्ययन करने के लिए उत्साहित करूँगा। अब निष्कर्ष में मुझे इस बात पर बल देने दीजिए कि यद्यपि एक ऐतिहासिक जाँच-पड़ताल की गई थी, मेरा विश्वास है कि कलीसिया ने ठीक वही किया जो परमेश्वर चाहता था कि वह करे, और हमें केवल पूर्ण रीति से आश्वस्त होना चाहिए कि पवित्रशास्त्र के ग्रन्थसंग्रह में सटीक पुस्तकों को सम्मिलित किया गया था।

अध्याय 8

पवित्रशास्त्र और अधिकार

Scripture and Authority

कुछ वर्ष पूर्व, मेरी भेंट एक पुराने मित्र से हुई। हमने महाविद्यालय में एक साथ अध्ययन किया था, और उन वर्षों के अन्तराल में वह और मैं प्रत्येक रात्रि को बाइबल अध्ययन और प्रार्थना करने के लिए मिलते थे। महाविद्यालय के उपरान्त एक दूसरे से हमारा सम्पर्क टूट गया, इसलिए मैं उसे देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ। हमारी बातचीत के मध्य, उसने मुझे बताया कि महाविद्यालय के दिनों के पश्चात्, पवित्रशास्त्र के विषय में उसका विचार परिवर्तित हो गया था; वह अब बाइबल की प्रेरणा पर विश्वास नहीं करता है। इसके विपरीत, उसने कहा कि वह अब यह विश्वास करता है कि आत्मिक अधिकार कलीसिया के पास है।

ऐतिहासिक वाद-विवाद

अन्तिम विश्लेषण में, प्रश्न यह है कि क्या कलीसिया के लिए निर्णायक निर्विवादित अधिकार पवित्रशास्त्र में पाए गए प्रेरितों के वचनों में पाया जाता है, या उन शिक्षकों के समूह में जो वर्तमान में परमेश्वर के झुण्ड की देखरेख करने वालों के रूप में सेवा कर रहे हैं? यह वह विषय था जिस पर सोलहवीं शताब्दी में विवाद हुआ था, जिस पर उस समय धर्मसुधारकों ने यह निर्धारित किया कि केवल पवित्रशास्त्र ही परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक, आधिकारपूर्ण प्रकाशन है; कलीसिया के पास पवित्रशास्त्र के तुल्य कोई अधिकार नहीं है। परन्तु जब धर्मसुधार का प्रत्युत्तर देने के लिए रोमन कैथोलिक कलीसिया सोलहवीं शताब्दी के मध्य में ट्रेन्ट की महासभा *(Council of Trent)* में एकत्रित हुई, तो उस महासभा के चौथे सत्र ने कलीसिया के अधिकार और पवित्रशास्त्र के अधिकार के सम्बन्ध को सम्बोधित किया। उस सत्र में, कलीसिया ने बाइबल की प्रेरणा और अधिकार पर भरोसे का अँगीकार किया और साथ में यह भी दावा किया कि परमेश्वर कलीसिया की परम्पराओं के द्वारा अपने आप को प्रकट करता है।

हम परमेश्वर के सत्य को बाइबल के अतिरिक्त अन्य स्थानों में पा सकते हैं। हम इसे ईश्वरविज्ञान की खरी पुस्तकों में पा सकते हैं, जब तक कि वे खरी हैं, किन्तु वे उस विशेष प्रकाशन का मूल स्रोत नहीं हैं। परन्तु, रोमन कैथोलिक कलीसिया "दोहरे-स्रोत सिद्धान्त" *(dual-source theory)* को मानती है, जिसमें विशेष प्रकाशन के दो स्रोत हैं, उनमें से एक है पवित्रशास्त्र तथा दूसरा कलीसिया की परम्परा है। इस सिद्धान्त का प्रभाव यह हुआ कि जब अधिकार की बात आती है तो कलीसिया को बाइबल के साथ ही एक समान स्तर पर रखा जाता है।

जब यूरोप महाद्वीप पर युद्ध छिड़ गया तो ट्रेन्ट की महासभा का चौथा सत्र एकाएक स्थगित किया गया, इसलिए महासभा में वास्तव में क्या हुआ उस विषय पर कुछ अभिलेख अस्पष्ट हैं। चौथे सत्र के मूल प्रारूप में, यह अध्यादेश पढ़ा गया कि "अनेक सत्य . . . *आँशिक रूप से* [*पार्टिम-partim*] पवित्रशास्त्र में और *आँशिक रूप से* [*पार्टिम-partim*] अलिखित परम्पराओं में पाए जाते हैं।" किन्तु महासभा में विचार-विमर्श में एक निर्णायक क्षण पर, दो पादरी *(priests)* "*पार्टिम . . . पार्टिम*" कथन के विरोध में उठ खड़े हुए। उन्होंने इस आधार पर विरोध किया कि यह दृष्टिकोण पवित्रशास्त्र की अद्वितीयता *(uniqueness)* और पर्याप्तता *(sufficiency)* को नष्ट कर देगा। उस घटना के उपरान्त हमें केवल इतना ज्ञात है कि "आँशिक रूप से . . . आँशिक रूप से" शब्दों को खण्ड से हटाया गया और उनके स्थान पर "और" *(एट-et)* शब्द को जोड़ा गया। क्या इसका अर्थ यह था कि महासभा ने विरोध का प्रतिउत्तर देते हुए सम्भवतः पवित्रशास्त्र और परम्परा के बीच के सम्बन्ध को जानबूझ कर अस्पष्ट छोड़ा? क्या यह परिवर्तन शैलीगत *(stylistic)* था, अर्थात् कि महासभा ने अभी भी प्रकाशन के दो भिन्न स्रोतों को बनाए रखा था? केवल ट्रेन्ट की महासभा के अभिलेखों से हम इन प्रश्नों के उत्तर को नहीं जानते हैं, किन्तु कलीसिया के आगामी अध्यादेशों *(decrees)* और निर्णयों से हम जानते हैं, तथा हाल ही में पोप द्वारा उद्घोषित *हुमानी जेनेरिस (Humani Generis)* (1950) अभिलेख में पोप पायस XII *(Pope Pius XII)* ने बिना किसी अस्पष्टता के साथ कहा कि कलीसिया विशेष प्रकाशन के दो भिन्न स्रोतों को स्वीकारती है।

इस प्रकार से, रोमन कैथोलिक कलीसिया अपने सिद्धान्त *(doctrine)* के लिए कलीसिया की परम्परा तथा बाइबल दोनों से गुहार लगाती है, और यह कलीसिया-एकतावर्धक *(ecumenical)* वार्तालाप को अत्यन्त कठिन बनाती है। जब किसी विशेष सिद्धान्त की समीक्षा की जाती है, तो प्रोटेस्टेन्ट अपनी स्थिति को कड़ाई से बाइबल के आधार पर स्थापित करना चाहते हैं, जबकि रोम तो कलीसियाई महासभा के निर्णयों तथा पोप की उद्घोषणाओं को सम्मिलित करना चाहता है। ऐसा हम विभिन्न विषयों में देखते हैं जैसे कि मरियम का निष्कलंक गर्भाधान *(immaculate*

conception)। यद्यपि ऐसा कोई सिद्धान्त पवित्रशास्त्रों में कहीं नहीं पाया जाता है, फिर भी रोमन कैथोलिक इस सिद्धान्त को परम्परा के आधार पर स्थापित करते हैं।

सोला स्क्रिप्टुरा (sola Scriptura) को मानने वालों के प्रतिउत्तर में, रोमन कैथोलिक कलीसिया यह तर्क देती है कि क्योंकि कलीसिया के निर्णय के द्वारा कुछ पुस्तकों को औपचारिक रीति से ग्रन्थसंग्रह में जोड़ा गया था, इसलिए बाइबल का अधिकार कलीसिया के अधिकार के अधीन है और एक अत्यधिक वास्तविक अर्थ में बाइबल अपने स्थायी अधिकार को कलीसिया के उच्चतम अधिकार से प्राप्त करती है। प्रोटेस्टेन्ट इस बात को बाइबलीय, ईश्वरविज्ञानीय और ऐतिहासिक कारणों से तिरस्कारते हैं। धर्मसुधारकों ने बाध्यकारी अधिकार *(binding authority)* को पवित्रशास्त्र तक ही इसलिए सीमित रखा क्योंकि वे आश्वस्त थे कि पवित्रशास्त्र परमेश्वर का वचन है और केवल परमेश्वर ही विवेक को बाध्य कर सकता है तथा परम अधिकार रखता है।

रोमन कैथोलिक कलीसिया यह दावा अवश्य करती है कि केवल परमेश्वर ही परम अधिकारी है, किन्तु वह यह तर्क देती है कि परमेश्वर ने उस अधिकार को कलीसिया को प्रदत्त किया है, वे मानते हैं कि वह तब हुआ जब यीशु ने पतरस से कहा, "तू पतरस है, और इसी चट्टान पर मैं अपनी कलीसिया बनाऊँगा, और अधोलोक के फाटक उस पर प्रबल न होंगे" (मत्ती 16:18)। पतरस और प्रेरितों का अधिकार उनके उत्तराधिकारियों को प्राप्त हुआ, जिसे "प्रेरितीय उत्तराधिकार" कहा जाता है। इस विश्वास का रोमन कैथोलिक सूत्रीकरण यह दावा करता है कि रोम का बिशप अर्थात् पोप, पतरस के स्थान पर उसके उत्तराधिकारी के रूप में बैठता है और इसलिए वह पृथ्वी पर ख्रीष्ट के प्रतिनिधि के रूप में पतरस के अधिकार का उपयोग करता है।

क्या बाइबल स्पष्ट रीति से प्रेरितीय उत्तराधिकार की पुष्टि करती है या नहीं, यह तो विवादित विषय है, और इस बात पर विवाद बना हुआ है कि जब कैसरिया फिलिप्पी में यीशु ने कहा कि वह चट्टान पर अपनी कलीसिया का निर्माण करेगा, तो उसके कथन का सटीक तात्पर्य क्या था। हम जानते हैं कि एक नियुक्तिकरण की प्रक्रिया थी। ख्रीष्ट तो नियुक्त किया गया *उत्कृष्ट* प्रेरित है, और यह बात तब दिखाई देती है जब उसने कहा, "मैंने अपने आप कुछ नहीं कहा, परन्तु पिता जिसने मुझे भेजा है उसी ने आज्ञा दी है कि क्या कहूँ और क्या बोलूँ" (यूहन्ना 12:49)। ख्रीष्ट ने दृढ़तापूर्वक कहा कि वह परमेश्वर के अधिकार से बोलता था, इसलिए जब कलीसिया ख्रीष्ट को प्रभु के रूप में स्वीकार करती है, तो वह स्वीकार कर रही है कि कलीसिया के शिरोमणि होने के कारण ख्रीष्ट के पास अधिकार है और इसलिए वह कलीसिया के सब अन्य सदस्यों से श्रेष्ठ है।

पवित्रशास्त्र के ग्रन्थसंग्रह को अन्तिम रूप देने की प्रक्रिया में कलीसिया ने एक लातीनी शब्द

का उपयोग किया, *रेसिपीमस (recipemus),* जिसका अर्थ है "हम प्राप्त करते हैं।" यह इंगित करता है कि कलीसिया इतनी अभिमानी नहीं थी कि यह दृढ़तापूर्वक कहे कि वह ग्रन्थसंग्रह का निर्माण कर रही थी या फिर ग्रन्थसंग्रह ने अपना अधिकार कलीसिया से प्राप्त किया। इसके स्थान पर कलीसिया ने पहचाना कि ग्रन्थसंग्रह की पुस्तकों के पास प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर बाध्यकारी अधिकार है। यदि आज परमेश्वर मेरे सामने उपस्थित होता है और मैं उससे परमेश्वर के रूप में अपनी पहचान को सत्यापित करने के लिए कहता और यदि वह ऐसा इस रीति से करता कि मैं उसके अधिकार के सामने झुकने के लिए विवश हो जाता, तो मेरे द्वारा उसके अधिकार को मानना उसको ऐसा अधिकार नहीं प्रदान करता जो उसके पास पहले से नहीं था। मैं केवल उस अधिकार को पहचान रहा होऊँगा जो पहले से ही है और इसलिए उसके सामने झुक रहा होऊँगा। जब कलीसिया पवित्रशास्त्र के ग्रन्थसंग्रह को औपचारिक रूप से पहचानने की प्रक्रिया में सम्मिलित हुई तो आरम्भिक शताब्दियों के समय में उसने ठीक ऐसा ही किया।

कलीसिया सर्वदा से बाइबल के अधिकार के अधीन है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कलीसिया के पास कोई भी अधिकार नहीं है। राज्य सरकार और माता-पिता के पास अधिकार है, परन्तु वे अधिकार परमेश्वर द्वारा सौंपे गए हैं। उनके पास स्वयं परमेश्वर के वचन के तुल्य परम अधिकार नहीं है। इसलिए कोई भी अधिकार जो कलीसिया के पास है वह अधिकार पवित्रशास्त्र के अधिकार के अधीन है।

पवित्रशास्त्र की विषय-वस्तु

हमने विधिवत् ईश्वरविज्ञान के अपने अध्ययन के इस भाग को अत्यन्त शीघ्रता से देखा है। हमने प्रकाशन के सिद्धान्त से आरम्भ किया और पिछले कुछ अध्यायों में हमने पवित्रशास्त्र की अवधारणा को देखा है। अभी तक, हम अमूर्त *(abstract)* बातों पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं—पवित्रशास्त्र का स्वभाव, पवित्रशास्त्र का उद्गम, पवित्रशास्त्र का अधिकार, बाइबलीय अधिकार और कलीसियाई अधिकार का सम्बन्ध, ग्रन्थसंग्रह का विषय-क्षेत्र, इत्यादि। किन्तु यदि हमारे पास बाइबल के स्वभाव की एक सटीक अवधारणा है, तथा हम ग्रन्थसंग्रह के अधिकार और विषय-क्षेत्र के विषय में अपने विश्वास में शास्त्रसम्मत हैं, परन्तु पवित्रशास्त्र की विषय-वस्तु को अच्छे से नहीं जानते हैं, तो हमें क्या लाभ प्राप्त होगा? पवित्रशास्त्र हमें केवल अमूर्त सिद्धान्त के रूप में नहीं दिया गया है; यह हमारे पास परमेश्वर के ईश्वरीय वचन के रूप में आता है, जिसकी रचना आत्मिक निर्माण, ताड़ना, सुधार और शिक्षा के लिए है, जिससे कि हम परमेश्वर के पुरुषों और महिलाओं के रूप में सम्पूर्णता से तत्पर हो सकें।

हमारे समय में संकट केवल इस विषय पर नहीं है कि क्या बाइबल अचूक, त्रुटिहीन या प्रेरित

है; संकट तो बाइबल की विषय-वस्तु को लेकर है। हम उन अकादमिक विषयों को—पवित्रशास्त्र का लेखनकाल, संस्कृति, और भाषा—देखने में इतना समय बिताते हैं जिनको हम "प्रोलेगोमेना" (*prolegomena*) या प्रस्तावना कहते हैं कि पास्टर लोग पवित्रशास्त्र की विषय-वस्तु को जाने बिना ही धर्मविद्यालय *(seminary)* से उत्तीर्ण होकर निकल सकते हैं।

क्या आप जानते हैं कि बाइबल में क्या है? विधिवत् ईश्वरविज्ञान के विषय में यह पुस्तक इस अर्थ में महत्वाकाँक्षी है कि यह अनेक विषयों से व्यवहार करती है, किन्तु विधिवत् ईश्वरविज्ञान का अध्ययन करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है कि परमेश्वर के लोग पवित्रशास्त्र की विषय-वस्तु को जानें। यद्यपि, भले ही हम पवित्रशास्त्र की विषय-वस्तु को सीखते हों और खरी शिक्षा को मानते हों, फिर भी प्रश्न यह है कि हम बाइबल के उत्तरदायी अर्थानुवादक *(interpreter)* कैसे बनें। हम अचूक नहीं हैं, और कुछ बिन्दुओं पर हम पवित्रशास्त्र को विकृत कर सकते हैं। इसलिए हमें बाइबल के अर्थानुवाद के आधारभूत सिद्धान्तों के विषय में कुछ सीखने की आवश्यकता है।*

यह अध्याय हमारे अध्ययन के भाग 1 का समापन करता है। हमने प्रकाशन और बाइबल को देखा है, जो हमें भाग 2 के लिए तैयार करता है, जहाँ हम परमेश्वर के चरित्र का अध्ययन आरम्भ करेंगे।

---

* R.C. Sproul, *Knowing Scripture,* rev. ed. (Downers Grove, Ill.: InterVarsity, 2009), साधारण विश्वासी को बताती है कि बाइबल को कैसे समझें, जिससे कि लोग परमेश्वर के वचन को न त्रुटिपूर्ण रीति से न समझें, न उसकी त्रुटिपूर्ण अर्थानुवाद करें, और न उसे तोड़ें-मरोड़ें।

भाग दो

ईश्वरविज्ञान विशिष्ट

Theology Proper

अध्याय 9

परमेश्वर का ज्ञान

Knowledge of God

परमेश्वर ने स्पष्ट रीति से अपने अस्तित्व को पृथ्वी के प्रत्येक प्राणी पर प्रकट किया है; सभी लोग जानते हैं कि वह अस्तित्व में है, भले ही वे इसे स्वीकार करें या न करें। तौभी, हमें परमेश्वर के अस्तित्व के विषय में ज्ञान से आगे बढ़ने और इस बात को गहराई से समझने की आवश्यकता है कि वह कौन है—उसका चरित्र और स्वभाव—क्योंकि परमेश्वर के विषय में हमारी समझ की तुलना में ईश्वरविज्ञान का कोई भी आयाम अन्य सब बातों को उतना व्यापक रूप से परिभाषित नहीं करता है। वास्तव में, जब हम परमेश्वर के चरित्र को समझते हैं, तभी हम अन्य सभी सिद्धान्तों को उचित रीति से समझ सकते हैं।

अबोध्य परमेश्वर

ऐतिहासिक रूप से, परमेश्वर की अबोध्यता *(incomprehensibility)* का अध्ययन विधिवत् ईश्वरविज्ञानियों के लिए प्रथम कार्य है। पहली दृष्टि में, ऐसा कार्य विरोधाभासी प्रतीत होता है; कोई ऐसे विषय का अध्ययन कैसे कर सकता है जो अबोध्य है? परन्तु यह कार्य तब समझ में आता है जब हमें ज्ञात होता है कि ईश्वरविज्ञानी *अबोध्य* शब्द का उपयोग प्रतिदिन की भाषा से अधिक सकरे और सटीक रीति से करते हैं। ईश्वरविज्ञानीय रीति से बात करें, तो *अबोध्य* का अर्थ यह नहीं है कि हम परमेश्वर के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं कर सकते हैं, वरन् यह है कि परमेश्वर के विषय में हमारा ज्ञान सदैव सीमित रहेगा। हमारे पास परमेश्वर के विषय में समझपूर्ण तथा अर्थपूर्ण ज्ञान हो सकता है किन्तु हम कभी भी, यहाँ तक कि स्वर्ग में भी उसके विषय में सर्वांगीण *(exhaustive)* रूप से ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकते हैं; हम में क्षमता नहीं है कि हम पूर्णतः उसको समझें।

इसका एक कारण जॉन कैल्विन द्वारा इस वाक्याँश में व्यक्त किया गया था *फिनिटम नॉन कैपैक्स इन्फिनिटम (finitum non capax infinitum)*, जिसका अर्थ है "सीमित, असीमित को समझ नहीं सकता है।" इस वाक्याँश की व्याख्या दो भिन्न रीतियों से की जा सकती है, क्योंकि *कैपैक्स (capax)* शब्द का अनुवाद "समाना" या "थामना" के रूप में किया जा सकता है। एक ढाई-सौ मिलीलीटर के ग्लास के लिए असम्भव है कि वह पानी की अनन्त मात्रा को अपने में समाये क्योंकि इसकी क्षमता सीमित है; सीमित असीमित को समा नहीं सकता है। किन्तु जब कैल्विन के वाक्याँश का अनुवाद *कैपैक्स* के दूसरे अर्थ के साथ किया जाता है, "थामना," तो यह दिखाता है कि परमेश्वर को उसकी समग्रता *(totality)* में थामा नहीं जा सकता है। हमारे मस्तिष्क सीमित हैं, उनमें परमेश्वर को थामने या समझने की क्षमता का अभाव है। उसके मार्ग हमारे मार्ग नहीं हैं। उसके विचार हमारे विचार नहीं हैं। उसको परिपूर्णता से समझना हमारी क्षमता से परे है।

प्रकट किया गया परमेश्वर

क्योंकि सीमित असीमित को समझ नहीं सकता है, तो हम सीमित मनुष्य होने के कारण, कैसे परमेश्वर के विषय में कुछ भी सीख सकते हैं या उसके विषय में कोई भी महत्वपूर्ण अथवा सार्थक ज्ञान रख सकते हैं? कैल्विन ने कहा कि परमेश्वर अपनी अनुग्रहकारिता और दया में होकर हमारे लाभ के लिए हमारे स्तर पर आकर हमसे बात करने की कृपा करता है। दूसरे शब्दों में, वह हमें हमारे ही स्तर पर आकर और हमें हमारी भाषा में ही सम्बोधित करता है, जैसे कि कोई माता-पिता एक शिशु से बात करते समय लाड़-प्यार में पुचकारते हैं। यद्यपि हम इसे "बच्चों की बोली" कहते हैं; परन्तु फिर भी कुछ सार्थक और समझे जाने योग्य बातों का संचार होता है।

मानवीकरण (Anthropomorphism)

हमें यह विचार बाइबल की मानवरूपी भाषा में मिलता है। मानवरूपी *(अंग्रेज़ी में Anthropomorphic-एन्थ्रोपोमॉर्फिक)* यूनानी शब्द *ऐन्थ्रोपोस* से आता है, जिसका अर्थ "मनुष्य," "मानव जाति" या "मानव," है, और *मोरफॉलजी (morphology)* अर्थात् आकृतिविज्ञान, जो रूपों और आकारों के अध्ययन के लिए शब्द है। इसलिए, हम सरलता से देख सकते हैं कि *एन्थ्रोपोमॉर्फिक* का सरल अर्थ है "मानव रूप में।" जब हम पवित्रशास्त्र में पढ़ते हैं कि स्वर्ग परमेश्वर का सिंहासन है और पृथ्वी उसके चरणों की चौकी है (यशायाह 66:1), तो हम स्वर्ग में विराजमान एक विशाल ईश्वर की कल्पना करते हैं जो पृथ्वी पर अपने पैर रखे हुए है, किन्तु हम वास्तव में ऐसा नहीं सोचते हैं कि परमेश्वर ऐसा ही करता है। इसी प्रकार से, हम पढ़ते हैं कि परमेश्वर हज़ारों पहाड़ियों पर के पशुओं का स्वामी है (भजन 50:10), किन्तु हम इससे यह नहीं समझते हैं कि वह एक महान् पशु-पालक है जो कभी-कभार नीचे आकर शैतान के साथ मुठभेड़ करता रहता

है। इसके विपरीत, यह चित्र हमें यह बताता है कि परमेश्वर एक ऐसे मानवीय पशु-पालक के समान सामर्थी तथा आत्मनिर्भर है, जो कि पशुओं के विशाल झुण्डों का स्वामी है।

पवित्रशास्त्र हमें बताता है कि परमेश्वर एक मनुष्य नहीं है—वह आत्मा है (यूहन्ना 4:24) और इसलिए वह शारीरिक नहीं है—फिर भी उसे प्रायः शारीरिक गुणों के साथ वर्णित किया जाता है। उसकी आँखे, उसका सिर, उसकी सामर्थी दाहिनी भुजा, उसके पैर और उसके मुँह का उल्लेख किया गया है। पवित्रशास्त्र न केवल परमेश्वर के शारीरिक गुणों की किन्तु उसके भावनात्मक गुणों की भी बात करता है। हम कुछ स्थानों में पढ़ते हैं कि परमेश्वर खेदित होता है, किन्तु बाइबल के अन्य स्थान में हमें बताया गया है कि परमेश्वर अपना मन नहीं बदलता है। बाइबल की कुछ घटनाओं में परमेश्वर को मानवीय शब्दों में इसलिए वर्णित किया गया है, क्योंकि यही एकमात्र उपाय है जिसके द्वारा मनुष्य परमेश्वर के विषय में बोल पाता है।

हमें यह समझने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए कि बाइबल की मानवरूपी भाषा क्या व्यक्त करती है। एक ओर तो, बाइबल उन बातों की पुष्टि करती है जो ये रूप परमेश्वर के विषय में बताते हैं; दूसरी ओर, शिक्षात्मक *(didactic)* रूप से, यह हमें चेतावनी देती है कि परमेश्वर कोई मनुष्य नहीं है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अमूर्त, तकनीकी या ईश्वरविज्ञानीय भाषा मानवरूपी भाषा से उत्तम है, और इसलिए इसके विपरीत यह कहना कि "परमेश्वर हजारों पहाड़ियों पर पशुओं का स्वामी है," हमारे लिए यह कहना अच्छा है कि "परमेश्वर सर्वशक्तिमान है।" हमारे लिए *सर्व* या *सब* शब्द को समझने का केवल एक ही उपाय है और वह है हमारी मानवीय क्षमता जिसके द्वारा हम *सब* शब्द के अर्थ को समझते हैं। इसी रीति से, हम सामर्थ्य के विषय में वैसे नहीं सोचते हैं जैसे परमेश्वर सामर्थ्य के विषय में सोचता है। सामर्थ्य के विषय में उसकी समझ असीमित है, जबकि इसके विषय में हमारी समझ सीमित है।

इन सभी कारणों से परमेश्वर हमसे अपनी भाषा में बात नहीं करता है; वह हमसे हमारी भाषा में बात करता है, और हम उसको इसीलिए समझ पाते हैं क्योंकि वह हमसे केवल उसी भाषा में बात करता है जिसे हम समझ सकते हैं। दूसरे शब्दों में बाइबल की *सब* भाषा मानवरूपी है और परमेश्वर के विषय में *सब* भाषा मानवरूपी है, क्योंकि हमारे पास उपयोग करने के लिए केवल मानवरूपी भाषा ही है, और ऐसा इसलिए है क्योंकि हम मनुष्य हैं।

परमेश्वर का वर्णन

असीमित *(infinite)* परमेश्वर और सीमित *(finite)* मनुष्यों के बीच की खाई द्वारा बाँधी गई सीमाओं के कारण, कलीसिया को इस बात में सावधान रहना पड़ा है कि वह कैसे परमेश्वर का वर्णन करने का प्रयास करती है।

परमेश्वर का वर्णन करने के सबसे सामान्य उपायों में से एक को *वाया नेगेशनिस (via*

negationis) कहा जाता है। *वाया* एक "सड़क" या "उपाय" है। *नेगेशनिस* शब्द का साधारण अर्थ है "नकारना," जो परमेश्वर के विषय में बात करने की एक प्राथमिक रीति है। दूसरे शब्दों में, हम परमेश्वर का वर्णन यह कहने के द्वारा करते हैं, जो वह नहीं है। उदाहरण के लिए, हमने देखा है कि परमेश्वर असीमित है, जिसका अर्थ है "सीमित नहीं।" उसी राति से मनुष्य समय के साथ परिवर्तित होते हैं। वे उत्परिवर्तित *(mutate)* होते हैं, इसीलिए उन्हें "परिवर्तनीय" *(mutable)* कहा जाता है। परन्तु, परमेश्वर बदलता नहीं है, इसलिए वह अपरिवर्तनीय है, जिसका अर्थ है "परिवर्तित न होने वाला।" *असीम (infinite)* और *अपरिवर्तनीय (immutable)* दोनों शब्द, जो वह नहीं है उसके द्वारा परमेश्वर का वर्णन करते हैं।

विधिवत् ईश्वरविज्ञानी परमेश्वर के विषय में दो अन्य रीतियों से बात करते हैं। एक को *वाया एमिनेनशिये (via eminentiae)*, "श्रेष्ठता की रीति" कहा जाता है, जिसमें हम ज्ञात मानव अवधारणाओं या सन्दर्भों को चरम ऊँचाई तक ले जाते हैं, जैसे कि *सर्वशक्तिमान* और *सर्वज्ञान* जैसे शब्द। यहाँ पर, "शक्ति" और "ज्ञान" के लिए शब्दों को चरम स्थिति तक अर्थात् *सर्व* तक ले जाया गया और परमेश्वर के लिए लागू किया गया है। वह सर्व-शक्तिशाली और सर्व-ज्ञानी है, जबकि हम केवल आँशिक रूप से शक्तिशाली और ज्ञानी हैं।

तीसरा मार्ग है *वाया अफर्मेशनिस (via affirmationis)*, या "अभिपुष्टिकरण की रीति," जिसमें हम परमेश्वर के चरित्र के विषय में विशेष कथन कहते हैं, जैसे कि "परमेश्वर एक है," "परमेश्वर पवित्र है," और "परमेश्वर सम्प्रभु है।" हम सकारात्मक रूप से परमेश्वर के लिए कुछ विशेषताओं को दर्शाते हैं और अभिपुष्टि करते हैं कि वे उसके विषय में सत्य हैं।

वाणी के तीन प्रकार

परमेश्वर की अबोध्यता पर विचार करते हुए, मानवीय वाणी के उन तीन स्पष्ट प्रकारों पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है जिनको कलीसिया ने व्यक्त किया है: एकार्थक *(univocal)*, द्वयार्थक *(equivocal)*, और सादृश्यमूलक *(analogical)*।

एकार्थक वाणी उस वर्णनात्मक शब्द के उपयोग को इंगित करती है, जिसे जब दो भिन्न वस्तुओं पर लागू करते हैं, फिर भी यह एक ही अर्थ प्रस्तुत करती है। उदाहरण के लिए, एक कुत्ते को "अच्छा" और एक बिल्ली को "अच्छी" कहने का तात्पर्य यह है कि वे दोनों आज्ञाकारी हैं।

द्वयार्थक वाणी उस प्रकार के शब्द के उपयोग को सन्दर्भित करता है जो दो भिन्न वस्तुओं के विषय में उपयोग किए जाने पर अपने अर्थ में मौलिक रूप से परिवर्तित हो जाती है। यदि आप एक नाटकीय काव्य प्रस्तुतीकरण को सुनने के लिए गए, किन्तु आप उस प्रदर्शन से निराश हुए, तो आप कह सकते हैं कि, "यह एक निर्जीव प्रस्तुतीकरण था।" निश्चित रूप से आपका अर्थ यह नहीं होगा कि वह कवि जीवित नहीं था; किन्तु आप का तात्पर्य होगा कि कुछ घटी थी। उसमें न तो प्राण था और न भावनाएँ थी। जैसे किसी मरे हुए व्यक्ति में कुछ घटी होती है—अर्थात् जीवन

की—वैसे ही काव्य प्रस्तुतीकरण में कुछ घटी थी। आप *निर्जीव* शब्द को एक रूपक अलंकार के रूप में उपयोग कर रहे हैं, और ऐसा करते समय आप उस शब्द के अर्थ से अत्यधिक दूर जा रहे हैं जब इसे जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में उपयोग किया जाता है।

एकार्थक वाणी और द्वयार्थक वाणी के बीच में सादृश्यमूलक वाणी है। कोई भी सादृश्यानुमान *(analogy)* दो वस्तुओं के बीच में पाई गई समानता पर आधारित एक चित्रण होता है। तो इसलिए जिन वस्तुओं का वर्णन किया जा रहा है उनमें उपस्थित भिन्नता के अनुसार अर्थ में समान अनुपात में ही भिन्नता आती है। उदाहरण के लिए, एक आदमी और एक कुत्ता, दोनों भले हो सकते हैं, परन्तु उन दोनों की भलाई ठीक एक समान नहीं है। उसी प्रकार, जब हम कहते हैं कि परमेश्वर भला है, तो हमारा अर्थ है कि उसकी भलाई हमारी भलाई के जैसे या समान है, परन्तु पूर्णतः एक समान नहीं है वरन् इतनी समानता है कि हम भलाई के विषय में एक-दूसरे से सार्थक रूप से बात कर सकते हैं।

जो मूल सिद्धान्त है वह यह है कि भले ही हम परमेश्वर को सर्वांगीण रूप से और व्यापक *(comprehensively)* रूप से नहीं जानते हैं, हमारे पास उसके विषय में वार्तालाप करने के लिए अर्थपूर्ण साधन हैं। परमेश्वर ने हमें हमारे शब्दों में सम्बोधित किया है, और क्योंकि उसने हमें अपने स्वरूप में बनाया है, इसलिए हमारे पास एक सादृश्यानुमान है जो हमारे लिए उसके साथ बातचीत करने का मार्ग खोलता है।

अध्याय 10

सारतत्त्व में एक

One In Essence

जब हम प्राचीन संस्कृतियों का अध्ययन करते हैं, तो हम इस बात को अनदेखा नहीं कर सकते हैं कि उनमें बहुईश्वरवाद *(polytheism)* की एक उच्च विकसित प्रणाली थी। उदाहरण के लिए, हम यूनानी लोगों के विषय में विचार करते हैं जिनके पास देवताओं का एक समूह था, तथा रोमी लोगों के विषय में, जिनके पास मनुष्यों की चिन्ताओं और प्रयासों के हर क्षेत्र के लिए उपयुक्त देवी-देवता थे। उस प्राचीन भूमध्य सागर के संसार के बीच में, एक संस्कृति—यहूदियों की—एकेश्वरवाद *(monotheism)* के लिए अपनी विशिष्ट विकसित समर्पण के कारण अनोखी है।

कुछ आलोचनात्मक विद्वान तर्क देते हैं कि पुराने नियम में प्रतिबिम्बित यहूदी धर्म वास्तव में एकेश्वरवादी नहीं था, किन्तु बहुईश्वरवाद के रूपों का एक जटिल सम्मिश्रण था। ये आलोचक निश्चयता से कहते हैं कि आज हमारे पास जो शास्त्र हैं, उन पर बाद के सम्पादकों द्वारा कार्य किया गया था, जिन्होंने कुलपिताओं के विषय में बाइबल के विवरण पर अपने आधुनिक एकेश्वरवादी दृष्टिकोण को थोपा है। इन आलोचनात्मक विचारों के होते हुए भी, पवित्रशास्त्र के पहले पृष्ठ से ही हमें एक सुस्पष्ट घोषणा मिलती है कि यहोवा परमेश्वर के शासन और अधिकार की कोई सीमा नहीं है। वह स्वर्ग और पृथ्वी का परमेश्वर है, जो सभी वस्तुओं की सृष्टि करता है तथा उन पर शासन करता है।

एकता और अद्वितीयता

पुराने नियम के इस्राएली समाज में परमेश्वर की अद्वितीयता *(uniqueness)* पर अत्यधिक बल दिया गया था। उदाहरण के लिए, हम व्यवस्थाविवरण की पुस्तक में *शेमा (Shema)* के विषय में

विचार कर सकते हैं। *शेमा* को इस्राएली लोग आराधना के समय में दोहराते थे और यह लोगों की चेतना में गहराई से बसा हुआ था: "हे इस्राएल सुन! यहोवा हमारा परमेश्वर है, यहोवा एक ही है। तू अपने परमेश्वर यहोवा से अपने सारे मन, अपने सारे प्राण, तथा अपनी सारी शक्ति से प्रेम कर" (व्यवस्थाविवरण 6:4–5)। ये शब्द प्रमुख आज्ञा में भी पाए जाते हैं (मत्ती 22:37)। *शेमा* को घोषित करने के पश्चात्, मूसा जोड़ता है:

> आज मैं जिन वचनों की आज्ञा तुझे दे रहा हूँ वे तेरे मन में बनी रहें। और तू उनको यत्नपूर्वक अपने बाल-बच्चों को सिखाना, तथा अपने घर में बैठे, मार्ग पर चलते, और लेटते तथा उठते समय उनकी चर्चा किया करना। तू उनको अपने हाथ पर चिन्ह-स्वरूप बाँधना, तथा वे तेरी आँखों के बीच टीके का काम दें। तू उनको अपने घर के चौखटों और अपने फाटकों पर लिखना। (व्यवस्थाविवरण 6:6-9)

परमेश्वर के स्वभाव के विषय में यह घोषणा—उसकी एकता तथा अद्वितीयता—लोगों के धार्मिक जीवन के लिए इतनी केन्द्रीय थी कि बच्चों को प्रतिदिन इस बात के लिए निर्देश दिया जाना था। लोगों को इसे अपनी कलाई पर, अपने माथे पर और अपनी चौखट पर लगाना था; दूसरे शब्दों में, उनको हर समय इसके विषय में सोचना और बात करना था। इस्राएली माता-पिताओं को यह सुनिश्चित करना था कि उनके बच्चे परमेश्वर की अद्वितीयता को समझें जिससे कि यह सत्य उस समुदाय की प्रत्येक पीढ़ी में व्याप्त हो सके। जैसा कि पुराना नियम प्रकट करता है, उनके आसपास के देशों के झूठे धर्मों में बहुईश्वरवाद आकर्षक था। इस्राएल के लिए सबसे बड़ा जोखिम वह भ्रष्टता थी जो झूठे ईश्वरों के पीछे चलने से आती थी। इस्राएल को यह स्मरण रखने की आवश्यकता थी कि उसके परमेश्वर को छोड़कर कोई अन्य परमेश्वर नहीं था।

परमेश्वर की अद्वितीयता को दस आज्ञाओं की पहली आज्ञा में भी प्रदर्शित किया गया है: "तू मुझे छोड़ दूसरों को ईश्वर करके न मानना" (निर्गमन 20:3)। इस आज्ञा का अर्थ यह नहीं है कि परमेश्वर के लोग अन्य देवताओं को भी रख सकते हैं, जब तक कि वे यहोवा को पहले स्थान पर रखते। "मेरे सामने" का अर्थ है "मेरी उपस्थिति में," और यहोवा की उपस्थिति पूरी सृष्टि में फैली हुई है। इसलिए जब परमेश्वर ने कहा, "तू मेरे सामने दूसरों को ईश्वर करके न मानना," तो वह कह रहा था कि कोई अन्य देवता नहीं हैं क्योंकि परमेश्वर के रूप में केवल वही शासन करता है।

त्रिएकता

पुराना नियम एकेश्वरवाद पर बल देता है, किन्तु हम एक त्रिएक *(triune)* परमेश्वर पर अपने विश्वास का अँगीकार करते हैं। त्रिएकता *(Trinity)* का सिद्धान्त, जो मसीहियत के सबसे रहस्यमय सिद्धान्तों में से एक है, सम्पूर्ण कलीसियाई इतिहास में अत्यधिक विवाद का कारण रहा है। कुछ विवाद तो त्रिएकता को तीन भिन्न ईश्वरों के रूप में—पिता, पुत्र, और पवित्र आत्मा—समझने की त्रुटि के कारण हैं। इस विचार को "त्रिदेववाद" *(tritheism)* कहा जाता है, जो बहुईश्वरवाद का एक रूप है।

मसीही कलीसिया त्रिएकता की अभिपुष्टि कैसे कर सकती है, कि परमेश्वर पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा है? त्रिएकता का सिद्धान्त स्वयं नए नियम के द्वारा ही स्थापित किया गया है। नया नियम पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के सन्दर्भ में ही परमेश्वर के विषय में बात करता है। यूहन्ना के सुसमाचार के आरम्भिक अध्याय की तुलना में कोई और स्थल इस अवधारणा को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं करता है, उस पुस्तक की प्रस्तावना त्रिएकता पर कलीसिया के विश्वास की स्वीकारोक्ति के लिए मंच को तैयार करती है:

> आदि में वचन था, और वचन परमेश्वर के साथ था, और वचन परमेश्वर था। यही आदि में परमेश्वर के साथ था। सब कुछ उसके द्वारा उत्पन्न हुआ, और जो कुछ उत्पन्न हुआ है, उसमें से कुछ भी उसके बिना उत्पन्न न हुआ। उसमें जीवन था, और वह जीवन मनुष्यों की ज्योति था। और ज्योति अंधकार में चमकती है, पर अंधकार ने उसे ग्रहण नहीं किया। (यूहन्ना 1:1-5)

हम यूनानी शब्द *लोगोस* का अनुवाद "वचन" के रूप में करते हैं। जो वास्तविक यूनानी खण्ड है वह इस प्रकार से है: "आदि में *लोगोस* था, और *लोगोस* परमेश्वर के साथ था, और *लोगोस* परमेश्वर था।" यूहन्ना परमेश्वर और *लोगोस* के बीच में अन्तर करता है। वचन और परमेश्वर एक साथ हैं किन्तु भिन्न हैं—"वचन परमेश्वर के साथ था।"

ये शब्द *के साथ (with)* महत्वहीन प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु यूनानी भाषा में न्यूनतम तीन शब्द हैं जिनका अनुवाद *के साथ* के रूप में किया जा सकता है। एक यूनानी शब्द *सुन (sun)* है, जो अंग्रेज़ी उपसर्ग *सिन (syn)* के रूप में दिखता है। हम उस उपसर्ग को अंग्रेज़ी के *सिन्क्रोनाइज़ (synchronize)* शब्द में पाते हैं, जिसका अर्थ है "एक ही समय में घटित होना"; हम एक ही समय में मिलने के लिए अपनी घड़ियों को सिन्क्रोनाइज़ करते हैं। यूनानी शब्द *मेटा (meta)* का अनुवाद भी "के साथ" के रूप में किया जाता है। अंग्रेज़ी के *मेटाफिज़िक्स (metaphysics)* शब्द में, *मेटा* का उपयोग साथ होने के अर्थ में किया जाता है। "के साथ" के लिए यूनानियों द्वारा

उपयोग किया जाने वाला एक तीसरा शब्द है *प्रॉस (pros)*, जो एक और यूनानी शब्द का आधार बनता है, *प्रॉसोपोन (prosōpon)*, जिसका अर्थ है "चेहरा।" *के साथ* शब्दांश का यह उपयोग आमने-सामने के सम्बन्ध को बताता है, जो कि ऐसी सबसे घनिष्ठतम रीति है जिसमें लोग एक साथ हो सकते हैं। यही वह शब्द है जिसका उपयोग यूहन्ना तब करता है जब वह लिखता है, "आदि में वचन था, और वचन परमेश्वर *के साथ* था।" प्रॉस *(pros)* का उपयोग करने के द्वारा, यूहन्ना संकेत दे रहा है कि लोगोस परमेश्वर के साथ सबसे निकटतम सम्भावित सम्बन्ध में था।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि *लोगोस* परमेश्वर के साथ आरम्भ से एक घनिष्ठतम सम्बन्ध में था, परन्तु अगला वाक्याँश इस बात को भ्रमित करता हुआ प्रतीत होता है: "और वचन *[लोगोस]* परमेश्वर था।" यहाँ यूहन्ना यूनानी क्रिया "होने" *(to be)* के एक सामान्य रूप का उपयोग करता है, एक जोड़ने वाली क्रिया *(linking verb)*, जो संयोजक *(copulative)* के रूप में उपयोग की गई है। इसका अर्थ यह है कि विधेय *(predicate)* में जिस बात की पुष्टि की जाती है, वही बात कर्ता *(subject)* में पाई जाती है, जिससे कि वे परस्पर बदले जा सकते हैं: "वचन परमेश्वर था और परमेश्वर वचन था।" यह वचन के लिए ईश्वरत्व का एक बहुत ही स्पष्ट आरोपण *(ascription)* है। वचन को परमेश्वर से अलग दिखाया गया है, किन्तु वचन को परमेश्वर के साथ पहचाना भी गया है।

कलीसिया ने त्रिएकता के सिद्धान्त को न केवल नए नियम के इस खण्ड से, किन्तु कई अन्य खण्डों से भी विकसित किया था। नए नियम में यीशु के लिए उपयोग किए जाने वाले सभी वर्णनात्मक शब्दों में से, *लोगोस* शब्द कलीसियाई इतिहास के पहले तीन सौ वर्षों के ईश्वरविज्ञानियों की सोच पर हावी रहा, क्योंकि यह ख्रीष्ट के स्वभाव के एक अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र को प्रदान करता है।

यूहन्ना हमें ऊपरी कक्ष में थोमा की प्रतिक्रिया को भी देता है। थोमा ख्रीष्ट के पुनरुत्थान के विषय में उन बातों पर सन्देह कर रहा था जो उसने स्त्रियों से और अपने मित्रों से सुनी थी, और उसने कहा, "जब तक मैं उसके हाथों में कीलों के चिन्ह न देख लूँ और कीलों के छेद में अपनी उँगली न डालूँ और उसके पंजर में अपने हाथ न डालूँ, तब तक मैं विश्वास न करूँगा" (यूहन्ना 20:25)। जब ख्रीष्ट ने प्रकट होकर अपने घायल हाथों को थोमा को दिखाया और थोमा को अपने घायल पंजर में हाथ डालने के लिए आमन्त्रित किया, तो थोमा ने कहा, "हे मेरे प्रभु, हे मेरे परमेश्वर!" (पद 28)।

नए नियम के लेखक, विशेष रूप से यहूदी लेखक न केवल पुराने नियम की पहली आज्ञा के विषय में, किन्तु दूसरी आज्ञा के विषय में भी पूर्णतः जागरूक थे, अर्थात् मूर्ति न गढ़ने की आज्ञा। मूर्तिपूजा—प्राणी पूजा—के सभी रूपों के विरुद्ध निषेध पुराने नियम में गहराई से निहित है।

उसके कारण, नए नियम के लेखक जानते थे कि ख्रीष्ट की आराधना केवल तभी की जा सकती है यदि वह ईश्वरीय है, और यह तथ्य कि यीशु ने थोमा की आराधना को स्वीकार किया महत्वपूर्ण है।

जब यीशु ने सब्त के दिन चंगा किया और पाप क्षमा किया, तो कुछ शास्त्रियों ने आपत्ति की और कहा, "परमेश्वर के अतिरिक्त और कौन पाप क्षमा कर सकता है?" (मरकुस 2:7)। हर एक यहूदी समझता था कि सब्त का प्रभु तो परमेश्वर था, जिसने सब्त की स्थापना की थी, इसलिए जब यीशु ने समझाया कि उसने उस व्यक्ति को चंगा किया है "कि तुम जानो कि मनुष्य के पुत्र को इस पृथ्वी पर पाप क्षमा करने का अधिकार है," तो वह अपने ईश्वरत्व की घोषणा कर रहा था (पद 10)। बहुतों ने क्रोध में प्रतिक्रिया की क्योंकि यीशु वह अधिकार रखने का दावा कर रहा था जो केवल परमेश्वर का है।

जब यूहन्ना लिखता है, "यही आदि में परमेश्वर के साथ था। सब कुछ उसके द्वारा उत्पन्न हुआ, और जो कुछ उत्पन्न हुआ है, उसमें से कुछ भी उसके बिना उत्पन्न न हुआ," तो *लोगोस* की पहचान सृष्टिकर्ता के साथ की जाती है। यूहन्ना यह भी कहता है, "उसमें जीवन था।" यह कहना कि जीवन *लोगोस* में है, कि *लोगोस* जीवन का स्रोत है, स्पष्ट रूप से "वचन" नामक जन को ईश्वर के रूप में दिखाता है।

इसी प्रकार से, नया नियम पवित्र आत्मा को भी ईश्वरीय रूप में दिखाता है। ऐसा प्रायः आत्मा के विषय में उन गुणों का वर्णन करके किया जाता है जो केवल परमेश्वर ही के गुण हैं, जैसे कि पवित्र (मत्ती 12:32), सनातन (इब्रानियों 9:14), सर्वशक्तिमान (रोमियों 15:18-19), और सर्वज्ञान (यूहन्ना 14:26)। पवित्र आत्मा के ईश्वरत्व को भी तब प्रदर्शित किया जाता है जब उसे पिता और पुत्र के साथ समान स्तर पर रखा जाता है, जैसा कि मत्ती 28:18-20 में बपतिस्मा के सम्बन्ध में या 2 कुरिन्थियों 13:14 में पौलुस के आशीष वचन के सम्बन्ध में है।

अध्याय 11

व्यक्ति में तीन

Three In Person

कुछ समय पहले, दर्शनशास्त्र के एक प्रोफेसर ने मेरे साथ अपना विचार साझा किया कि त्रिएकता का सिद्धान्त एक विरोधाभास *(contradiction)* है और कि बुद्धिमान लोग विरोधाभासी बातों को स्वीकार नहीं करते हैं। मैं उससे सहमत था कि बुद्धिमान लोगों को विरोधाभासी बातों को स्वीकार नहीं करना चाहिए। किन्तु मुझे आश्चर्य हुआ कि उसने त्रिएकता के सिद्धान्त को विरोधाभास की श्रेणी में वर्गीकृत किया, क्योंकि एक दार्शनिक के रूप में उसे तर्क की शिक्षा में प्रशिक्षित किया गया था और इसलिए वह विरोधाभास और असत्याभास *(paradox)* के बीच के अन्तर को जानता था।

असत्याभास

त्रिएकता का सिद्धान्त असत्याभास है, किन्तु यह किसी भी रीति से विरोधाभासी नहीं है। ग़ैर-विरोधाभास का नियम *(The law of non-contradiction)* कहता है कि कोई भी बात एक ही समय में और एक ही सम्बन्ध में वह नहीं हो सकती है, जो वह है और जो वह नहीं है। उदाहरण के लिए, मैं एक ही समय में एक पिता और एक पुत्र हो सकता हूँ, किन्तु एक ही सम्बन्ध में नहीं अर्थात् एक ही जन का पिता और पुत्र नहीं हो सकता हूँ। ऐतिहासिक सिद्धान्त यह है कि परमेश्वर सारतत्त्व *(essence)* में एक है और व्यक्ति में तीन है; वह एक रीति से एक है और दूसरी रीति से तीन है। ग़ैर-विरोधाभास के नियम का उल्लंघन करने के लिए, किसी व्यक्ति को कहना होगा कि परमेश्वर सारतत्त्व में एक है और ठीक उसी समय सारतत्त्व में तीन है, या कि परमेश्वर व्यक्ति में एक है और ठीक उसी समय व्यक्ति में तीन है। इसलिए, जब हम तर्कसंगत विचार की औपचारिक श्रेणियों को निष्पक्ष रीति से देखते हैं तो हम पाते हैं, कि त्रिएकता का सिद्धान्त विरोधाभासी नहीं है।

पवित्रशास्त्र की इस स्पष्ट शिक्षा के प्रति विश्वासयोग्य पाए जाने के लिए कलीसिया ने पहली

चार शताब्दियों में गहन संघर्ष किया कि परमेश्वर एक है और यह भी कि पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा सभी ईश्वर हैं। इस प्रतीत होने वाली विरोधाभासी बात का समाधान करने का कार्य सरल नहीं था। पहली दृष्टि में, ऐसा प्रतीत होता है कि मसीही समुदाय तीन ईश्वरों में विश्वास का अँगीकार कर रहा था, जो कि पुराने नियम में गहराई से बसे हुए एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का उल्लंघन है।

किन्तु जैसा कि मैंने ऊपर कहा, त्रिएकता की अवधारणा असत्याभासी *(paradoxical)* है किन्तु विरोधाभासी *(contradictory)* नहीं है। अंग्रेज़ी का शब्द *पैराडॉक्स (paradox)* एक यूनानी उपसर्ग और एक यूनानी मूल शब्द पर आधारित है। उपसर्ग *पैरा (para)* का अर्थ है "के साथ।" जब हम अंग्रेज़ी में पैराचर्च *(parachurch)* सेवाएँ, पैरामेडिक *(paramedic)* या पैरालीगल *(paralegal)* की बात करते हैं, तो हम ऐसे संगठन और लोगों के विषय में सोच रहे हैं जो दूसरों के साथ कार्य करते हैं। इसी प्रकार से, पैराबल *(parable)* भी अर्थात् दृष्टान्त एक ऐसी बात होती थी जिसे यीशु किसी बिन्दु को चित्रित करने के लिए अपनी शिक्षा के साथ दिया करता था। *पैराडॉक्स* शब्द का मूल शब्द यूनानी शब्द *डोकेओ (dokeō)* से आता है, जिसका अर्थ है "प्रतीत होना," "सोचना," या "प्रकट होना।" इसलिए *पैराडॉक्स* अर्थात् असत्याभास शब्द किसी ऐसी बात के लिए उपयोग किया जाता है, जिसे जब किसी दूसरी बात के साथ रखा जाता है तो वह तब तक विरोधाभासी प्रतीत होता है जब तक कि निकटता से की गई जाँच प्रकट नहीं करती है कि ऐसी बात नहीं है।

त्रिएकता के लिए मसीही सूत्र—परमेश्वर तीन व्यक्तियों में एक सारतत्त्व में है—विरोधाभासी प्रतीत हो सकता है क्योंकि हम एक ही प्राणी को एक ही व्यक्ति के रूप में देखने के अभ्यस्त हैं। हम कल्पना नहीं कर सकते हैं कि एक प्राणी को तीन व्यक्तियों में कैसे समाहित किया जा सकता है और तब भी वह केवल एक ही प्राणी है। इस दृष्टि से देखा जाए तो, इस सूत्रीकरण में त्रिएकता का सिद्धान्त रहस्यपूर्ण है; हमारा सर चकराता है जब हम एक ऐसे प्राणी के विषय में सोचते हैं जो अपने सारतत्त्व में पूर्ण रीति से एक है किन्तु व्यक्ति में तीन है।

सारतत्त्व और व्यक्ति

जब मेरी पत्नी और मैं हॉलैंड में रह रहे थे, तो हमें पता चला कि लोग अपने घरों को *स्टॉफ़्यूइगर (stofzuiger)* से साफ करते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है "वस्तु *(stuff)* चूसने वाला।" वे एक अधिक जटिल तत्त्वमीमांसिक *(metaphysical)* शब्द का उपयोग कर सकते थे, किन्तु *वस्तु* शब्द बहुत कुछ स्पष्ट कर देता है।

वह क्या वस्तु है जो एक मनुष्य को एक मृग से, या एक मृग को एक अंगूर से, या एक अंगूर को परमेश्वर से भेद करती है? यह उस वस्तु का सारतत्त्व है, उसका *ऊसियॉस (ousios)*, एक यूनानी शब्द जिसका अर्थ है "प्राणी" *(being)* या "सत्त्व" *(substance)* है। परमेश्वरत्व का वस्तु, उसका सारतत्त्व—*ऊसियॉस*—वह है जो कि परमेश्वर स्वयं में है। जब कलीसिया ने घोषणा

किया कि परमेश्वर सारतत्त्व में एक है, तो वह यह कह रही थी कि परमेश्वर आँशिक रूप से एक स्थान में और आँशिक रूप से दूसरे स्थान में नहीं है। परमेश्वर केवल एक ही प्राणी है।

परमेश्वर कैसे एक प्राणी है किन्तु व्यक्ति में तीन है, इसको समझाने में समस्या का एक कारण यह है कि यह सूत्र लातीनी शब्द *परसॉना (persona)* से लिया गया है, जिससे अंग्रेज़ी शब्द "परसन" *(person)* आता है। लातीनी भाषा में उसका प्राथमिक कार्य एक वैधानिक शब्द के रूप में या नाटकीय कलाओं में उपयोग किया जाने वाला शब्द था। उच्च स्तर के प्रशिक्षित अभिनेताओं के लिए एक नाटक में एक से अधिक भूमिका निभाना एक प्रचलित चलन था, और अभिनेता मुखौटों के पीछे से बोलकर अपनी विभिन्न भूमिकाओं में भिन्नता को दिखाते थे, जिसके लिए लातीनी शब्द *परसॉना* था। इसलिए जब टर्टुलियन ने पहली बार परमेश्वर के विषय में एक प्राणी, तथा तीन *परसॉने (personae)* के रूप में बात किया, तो वे कह रहे थे कि परमेश्वर एक साथ तीन भूमिकाओं या व्यक्तित्वों *(personalities)* के रूप में विद्यमान है—पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा। किन्तु, उस सूत्र में "व्यक्ति" *(person)* का विचार, हमारी अंग्रेज़ी भाषा में व्यक्तित्व *(personality)* की अवधारणा से ठीक से मेल नहीं खाता है, जिसमें एक व्यक्ति का अर्थ एक भिन्न प्राणी *(being)* का होना होता है।

निर्वाह और अस्तित्व

त्रिएकता के व्यक्तियों के मध्य भेद करने के लिए, अन्य शब्दों का उपयोग किया गया है। एक है *निर्वाह (subsistence)*। अंग्रेज़ी में हम इस शब्द से परिचित है क्योंकि यह प्रायः उन लोगों का वर्णन करने के लिए उपयोग किया जाता है जो साधारण अर्थव्यवस्था के स्तर के नीचे जीते हैं। परमेश्वरत्व *(Godhead)* में निर्वाह एक वास्तविक भिन्नता है, परन्तु इस अर्थ में सारतात्विक *(essential)* भिन्नता नहीं है कि उक्त प्राणी *(being)* में भिन्नता है। त्रिएकता में प्रत्येक व्यक्ति ईश्वरत्व की उपस्थिति *(presence)* के *अन्तर्गत* या निर्वाह *(subsists)* में या अस्तित्व *(exists)* में है। एक प्राणी होने के अन्तर्गत, निर्वाह एक भिन्नता है, न कि एक पृथक प्राणी या सारतत्त्व। परमेश्वरत्व के सभी व्यक्तियों में ईश्वरत्व के सभी गुण पाए जाते हैं।

त्रिएकता के व्यक्तियों के बीच अन्तर को समझने के लिए एक और महत्वपूर्ण शब्द *अस्तित्व (existence)* है। अंग्रेज़ी का शब्द *एग्ज़िस्ट (exist)* लातीनी शब्द *एक्सिस्टेरे (existere)* से शाब्दिक रीति से व्युत्पन्न है, जो *एक्स (ex)* (बाहर) और *स्टेरे (stere)* (खड़ा होना) से बना है। दार्शनिक दृष्टिकोण से, प्लेटो *(Plato)* के समय से पहले से ही, *अस्तित्व* की अवधारणा विशुद्ध प्राणी को सन्दर्भित करता है जो अस्तित्व में बने रहने की अपनी क्षमता के लिए किसी और बात पर निर्भर नहीं है। वह सनातन है। उसके भीतर ही प्राणी होने की सामर्थ्य है। यह किसी भी रीति से जन्तु जैसा नहीं है। जन्तु के अस्तित्व की विशेषता *प्राणी* होने से नहीं है किन्तु *बनने (becoming)*

से सम्बन्धित है, क्योंकि सब जीव-जन्तुओं का मुख्य चरित्र लक्षण है कि वे परिवर्तित होते हैं। आप जो कुछ भी आज हैं, कल इससे थोड़े से भिन्न होंगे, और कल जो आप थे, उससे आज भिन्न हैं।

परमेश्वर का अस्तित्व वैसा नहीं है जैसा मनुष्यों का है, क्योंकि यह उसको एक सृजा गया प्राणी बना देगा, अर्थात् उसका अस्तित्व निर्भर और व्युत्पन्न होगा। इसके विपरीत, हम कहते हैं कि परमेश्वर *है*। परमेश्वर प्राणी है, वह बन नहीं रहा है न ही परिवर्तित हो रहा है। वह अनन्त काल से एक जैसा बना रहता है, इसलिए हम कहते हैं कि वह एक प्राणी है। ईश्वरविज्ञानी त्रिएकता के लिए तीन *अस्तित्वों (existences)* की नहीं, किन्तु तीन *निर्वाहों (subsistences)* की बात करते हैं, अर्थात् , परमेश्वर के एक अव्युत्पन्न प्राणी के भीतर, एक निचले स्तर पर, हमें इन निर्वाहों में भिन्नता करनी चाहिए, जिसे बाइबल पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा कहती है। उस एक सनातन प्राणी के भीतर तीन अस्तित्व नहीं, वरन् तीन निर्वाह हैं।

तीन व्यक्तिओं में भेद करना हमारे लिए आवश्यक है क्योंकि बाइबल इन में भेद करती है। यह एक वास्तविक भिन्नता है, किन्तु एक सारतात्विक भिन्नता नहीं है, और "सारतात्विक न होने" से मेरा अर्थ महत्वहीन नहीं है। मेरा अर्थ है कि यद्यपि परमेश्वरत्व के भीतर वास्तविक भिन्नताएँ हैं, ये स्वयं ईश्वरत्व के सारतत्त्व के भीतर नहीं हैं। एक प्राणी, तीन व्यक्ति—पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा।

अध्याय 12

असंचारीय गुण

Incommunicable Attributes

जब मैं एक चेक से रोकड़ निकालने के लिए बैंक जाता हूँ, तो बैंक कर्मचारी मुझ से किसी प्रकार के पहचान-पत्र का अनुरोध करता है। मैं प्रायः अपना बटुआ खोलता हूँ और फ्लोरिडा प्रदेश का अपना वाहन चालक अनुज्ञापत्र दिखाता हूँ। अनुज्ञापत्र के एक ओर मेरी आँख और बालों का रंग और मेरी आयु का वर्णन है। ये गुण मेरी कुछ मानवीय विशेषताओं को परिभाषित करते हैं।

परमेश्वर के सिद्धान्त के अध्ययन में, परमेश्वर के गुणों की समझ विकसित करना एक प्राथमिक विषय है। हम परमेश्वर के विशिष्ट गुणों को देखना चाहते हैं, जैसे उसकी पवित्रता, उसकी अपरिवर्तनीयता *(immutability)*, और उसकी असीमता *(infinity)*, जिससे कि हम सुसंगत *(coherent)* रीति से समझ सकें कि वह कौन है।

एक अन्तर

आरम्भ में, हमें परमेश्वर के *संचारीय (communicable)* गुण और उसके *असंचारीय (incommunicable)* गुणों के बीच अन्तर करना चाहिए। एक संचारीय गुण ऐसा गुण है जो एक जन से दूसरे जन तक संचारित हो सकता है। उदाहरण के लिए, अटलान्टा का रोग नियन्त्रण एवं रोकथाम केन्द्र संक्रामक रोगों का अध्ययन करता है। ऐसे रोगों को संचारी रोग भी कहा जाता है क्योंकि वे सरलता से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैल जाते हैं। इसी रीति से, परमेश्वर के संचारीय गुण वे हैं जिन्हें उसके प्राणियों में स्थानान्तरित किया जा सकता है।

इसके विपरीत, एक असंचारीय गुण वह है जिसे स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता है। इसलिए परमेश्वर के असंचारीय गुण, मनुष्य के गुण नहीं हो सकते हैं। यहाँ तक कि परमेश्वर भी अपने अस्तित्व के कुछ गुणों को उन प्राणियों को नहीं दे सकता है जिनको उसने बनाया है।

कभी-कभी ईश्वरविज्ञानियों से पूछा जाता है कि क्या परमेश्वर के लिए दूसरा ईश्वर बनाना सम्भव है और इसका उत्तर है, नहीं। यदि परमेश्वर एक और ईश्वर बनाता, तो परिणाम स्वरूप वह एक सृजा गया जीव-जन्तु होगा, जिसमें परिभाषा के अनुसार, उन आवश्यक गुणों का अभाव होगा जो परमेश्वर का वर्णन करते हैं, जैसे कि स्वतन्त्रता *(independence)*, अनन्तता *(eternality)*, और अपरिवर्तनीयता।

जब हम परमेश्वर के संचारीय और असंचारीय गुणों के बीच अन्तर की जाँच करते हैं, तो यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि परमेश्वर एक सरल *(simple)* प्राणी *(being)* है; दूसरे शब्दों में, वह भागों से नहीं बना है। हमारे पास शरीर के पृथक अंग हैं—पैर की उंगलियाँ, आंतें, फेफड़े, इत्यादि। परमेश्वर इस अर्थ में एक सरल प्राणी है कि वह जटिल *(complex)* नहीं है। ईश्वरविज्ञानीय रीति से कहा जाए तो, परमेश्वर के गुण ही परमेश्वर है (अर्थात् परमेश्वर को उसके गुणों से अलग नहीं किया जा सकता है)।

परमेश्वर की सरलता का अर्थ यह भी है कि उसके गुण एक दूसरे को परिभाषित करते हैं। उदाहरण के लिए, हम कहते हैं कि परमेश्वर पवित्र, न्यायी, अपरिवर्तनीय और सर्वशक्तिमान है, किन्तु उसकी सर्वशक्ति सदैव एक पवित्र सर्वशक्ति, एक न्यायी सर्वशक्ति, और एक अपरिवर्तनीय सर्वशक्ति है। वे सभी चरित्र के गुण जिन्हें हम परमेश्वर में पहचान सकते हैं उसकी सर्वशक्ति को भी परिभाषित करते हैं। उसी रीति से, परमेश्वर की अनन्तता एक सर्वशक्तिमान अनन्तता है, और उसकी पवित्रता एक सर्वशक्तिमान पवित्रता है। वह एक भाग पवित्र, दूसरा भाग सर्वशक्तिमान, और अन्य भाग अपरिवर्तनीय नहीं है। वह पूर्ण रीति से पवित्र है, पूर्ण रीति से सर्वशक्तिमान है, और पूर्ण रीति से अपरिवर्तनीय है।

परमेश्वर के संचारीय और असंचारीय गुणों के बीच का अन्तर महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें परमेश्वर और किसी भी जन्तु के बीच के अन्तर को स्पष्टता से समझने में सहायता करता है। किसी भी जन्तु के पास कभी भी सर्वशक्तिमान परमेश्वर की एक असंचारीय विशेषता नहीं हो सकती है।

स्वयंभूति *(Aseity)*

परमेश्वर और अन्य प्राणियों के बीच निर्णायक अन्तर इस तथ्य में निहित है कि जन्तु तो उत्पन्न, प्रतिबन्धित और आश्रित हैं। किन्तु परमेश्वर आश्रित नहीं है। उसके पास स्वयं में (प्राणी) होने और स्वयं से (प्राणी) होने की सामर्थ्य है; वह इसे किसी और वस्तु से व्युत्पन्न *(derive)* नहीं करता है। परमेश्वर के इस गुण को स्वयंभूति *(असेयटी-aseity)* कहा जाता है, जो कि लातीनी शब्द *अ सेय (a sei)* से आता है, जिसका अर्थ है “स्वयं से” *(from oneself)*।

पवित्रशास्त्र हमें बताता है कि परमेश्वर में “हम जीवित रहते, चलते-फिरते और अस्तित्व रखते हैं” (प्रेरितों के काम 17:28), परन्तु हमें कहीं यह नहीं बताया गया है कि परमेश्वर का अस्तित्व मनुष्य में है। उसे जीवित रहने या होने के लिए कभी भी हमारी आवश्यकता नहीं रही

है, और फिर भी यदि उसके अस्तित्व *(being)* का सामर्थ्य हमारे अस्तित्व *(existence)* को न सम्भाले, तो हम एक पल के लिए भी जीवित नहीं रह सकते। परमेश्वर ने हमें बनाया है, जिसका अर्थ है कि हमारी पहली श्वास के आरम्भ से हम अपने स्वयं के अस्तित्व के लिए उसी पर निर्भर हैं। परमेश्वर जो बनाता है, वह उसे सम्भालता और बनाए भी रखता है, इसलिए हम अपने अस्तित्व में बने रहने के लिए परमेश्वर पर उतने ही निर्भर हैं जितना कि हम अपने मूल अस्तित्व *(original existence)* के लिए थे। यह परमेश्वर और हमारे बीच का सर्वोच्च अन्तर है; परमेश्वर की स्वयं के बाहर किसी भी प्रकार की निर्भरता नहीं है।

जॉन स्टुअर्ट मिल *(John Stuart Mill)* ने एक निबन्ध में परमेश्वर के अस्तित्व के लिए पारम्परिक विश्व-कारण-युक्ति *(cosmological argument)* का खण्डन किया, जिसके अनुसार प्रत्येक प्रभाव का एक कारण होना चाहिए, और परमेश्वर स्वयं परम कारण है। मिल ने कहा कि यदि हर बात का एक कारण होना अनिवार्य है, तो परमेश्वर का भी एक कारण होना चाहिए, इसलिए तर्क को अन्त तक ले जाने के लिए, हम परमेश्वर के साथ नहीं रुक सकते किन्तु हमें पूछना होगा कि परमेश्वर किसके कारण उत्पन्न हुआ। मिल के निबन्ध को पढ़ने तक बर्ट्रेंड रसल *(Bertrand Russell)* विश्व-कारण-युक्ति को मानते थे। मिल ने जो तर्क प्रस्तुत किया वह रसल के लिए बहुत निर्णायक था, और उन्होंने इसे अपनी पुस्तक *व्हाय आय एम् नॉट ए क्रिस्चियन (Why I Am Not a Christian)* में इसका उपयोग किया।*

किन्तु, मिल भूल में थे। उनकी अन्तर्दृष्टि कार्य-कारण-सिद्धान्त *(law of causality)* की एक झूठी समझ पर आधारित थी। यह सिद्धान्त इस बात की पुष्टि करता है कि हर *प्रभाव* का एक कारण होना चाहिए, न कि, प्रत्येक वस्तु जो अस्तित्व में है उसका अवश्य ही एक कारण होना चाहिए। केवल किसी प्रभाव को ही किसी कारण की आवश्यकता है, और किसी भी प्रभाव को अपने स्वभावानुसार कारण की आवश्यकता होती है क्योंकि अन्ततः प्रभाव है ही वही वस्तु—एक ऐसी वस्तु जो किसी दूसरी वस्तु के कारण अस्तित्व में है। परन्तु क्या परमेश्वर को किसी कारण की आवश्यकता है? नहीं उसको किसी कारण की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसके पास स्वयं में और स्वयं से अस्तित्व है; वह सनातन और स्व-अस्तित्वान है।

> एक जिज्ञासू लड़का अपने मित्र के साथ जंगल में टहलने गया और उसने पूछा, "वह पेड़ कहाँ से आया?"
>
> उसके मित्र ने उत्तर दिया, "परमेश्वर ने उस पेड़ को बनाया।"
>
> "ओह! अच्छा, वे फूल कहाँ से आए?"
>
> "परमेश्वर ने उन फूलों को बनाया।"
>
> "अच्छा, तुम कहाँ से आए?"

---

* देखें Bertrand Russell, *Why I Am Not a Christian and Other Essays on Religion and Related Subjects,* 39th ed. (New York: Touchstone, 1967)

"परमेश्वर ने मुझे बनाया।"
"ठीक है, परमेश्वर कहाँ से आया?"
मित्र ने कहा, "परमेश्वर ने स्वयं को बनाया।"

मित्र बुद्धिमान होने का प्रयास कर रहा था, परन्तु वह पूरी रीति से भूल में था, क्योंकि परमेश्वर भी स्वयं को नहीं बना सकता है। स्वयं के द्वारा सृजे जाने के लिए परमेश्वर को, इससे पूर्व कि वह अस्तित्व में हो, उसे अस्तित्व में होना पड़ेगा, जो कि असम्भव है। परमेश्वर स्व-सृजित *(self-created)* नहीं है; वह स्व-अस्तित्ववान *(self-existent)* है।

परमेश्वर की स्वयंभूति वह बात है जो कि सर्वोच्च प्राणी की सर्वोच्चता को परिभाषित करती है। मनुष्य दुर्बल होते हैं। यदि हम बिना पानी के कुछ दिन या ऑक्सीजन के बिना कुछ मिनटों के लिए रहते हैं, तो हम मर जाते हैं। इसी रीति से, मानव जीवन सभी प्रकार की बीमारियों से सरलता से प्रभावित हो जाता है, जो इसे नष्ट कर सकते हैं। किन्तु परमेश्वर मर *नहीं सकता* है। परमेश्वर अपने अस्तित्व के लिए किसी भी वस्तु पर निर्भर नहीं है। उसके पास स्वयं में और स्वयं से होने की वह सामर्थ्य है, जो मनुष्य में नहीं है। हमारी इच्छा है कि हमारे पास स्वयं को सर्वदा के लिए जीवित रखने की शक्ति होती, किन्तु वह हमारे पास नहीं है। हम निर्भर प्राणी हैं। परमेश्वर और केवल परमेश्वर ही के पास स्वयंभूति है।

तर्कबुद्धि बलपूर्वक एक ऐसे प्राणी की माँग करता है, जिसके पास स्वयंभूति है; इसके पृथक, इस संसार में कुछ भी अस्तित्व में नहीं हो सकता है। कभी भी ऐसा समय नहीं हो सकता है जब कुछ भी अस्तित्व में नहीं था, क्योंकि यदि कभी ऐसा समय था भी, तो अब भी, कुछ भी अस्तित्व में नहीं हो सकता है। जो लोग सिखाते हैं कि विश्व सत्रह अरब साल पहले अस्तित्व में आया था, वे स्व-निर्माण *(self-creation)* के सन्दर्भ में सोचते हैं, जो कि निरर्थकता है, क्योंकि कुछ भी स्वयं की सृष्टि नहीं कर सकता है। यह तथ्य कि अब कुछ है, इसका यह अर्थ है कि सर्वदा से प्राणी रहा है।

घास की एक पत्ती परमेश्वर की स्वयंभूति के विषय में ऊँचे स्वर से बोलती है। स्वयंभूति स्वयं घास में नहीं है। स्वयंभूति एक असंचारीय गुण है। परमेश्वर अपनी सनातनता को किसी प्राणी को नहीं दे सकता है, क्योंकि किसी भी वस्तु जिसका समय में आरम्भ होता है, वह परिभाषा के अनुसार, सनातन नहीं है। हमें भविष्य में अनन्त जीवन दिया जा सकता है, किन्तु हम इसे भूत काल में जाकर नहीं प्राप्त सकते हैं। क्योंकि हम सनातन प्राणी नहीं हैं।

सनातनता, अपने आप में एक असंचारीय गुण है। परमेश्वर की अपरिवर्तनीयता उसकी स्वयंभूति के साथ जुड़ी हुई है क्योंकि परमेश्वर सनातन काल से वह है जो वह है। उसका प्राणी *(अस्तित्व)* परिवर्तन या बदलाव के लिए असमर्थ है। हम सृजे जन्तु के रूप में, परिवर्तनशील और सीमित हैं। परमेश्वर दूसरा असीमित प्राणी नहीं बना सकता क्योंकि केवल एक ही असीमित प्राणी हो सकता है।

स्तुति के योग्य

परमेश्वर के असंचारीय गुण उस रीति की ओर संकेत करते हैं जिसमें परमेश्वर हमसे भिन्न है और उस रीति की ओर जिसमें वह हम से पारलौकिक है। उसके असंचारीय गुण प्रकट करते हैं कि हमें क्यों उसको महिमा, आदर और प्रशंसा देनी चाहिए। विडम्बना तो यह है कि हम ऐसे लोगों की खड़े होकर सराहना करते हैं जो एक पल के लिए तो उत्कृष्टता प्राप्त करते हैं और फिर कभी हम उनके विषय में नहीं सुनते हैं। परन्तु दुःख की बात तो यह है कि जिसके पास सनातन से स्वयं में और स्वयं से अस्तित्व में होने की सामर्थ्य है, जिस पर हम में से प्रत्येक पूर्ण रीति से निर्भर हैं और जिसके प्रति हम अपनी प्रत्येक श्वास के लिए अनन्तकाल की कृतज्ञता के ऋणी हैं, उसको अपनी सृष्टि से वह आदर और महिमा नहीं प्राप्त होती है जिसके वह अति योग्य है। वह जो सर्वोच्च है, वह उन लोगों की आज्ञाकारिता और आराधना के योग्य है जिन्हें उसने बनाया है।

अध्याय 13

संचारीय गुण

Communicable Attributes

परमेश्वर के असंचारीय गुणों में, जो सृजे गए प्राणियों के साथ साझा नहीं किए गए हैं, उसकी असीमितता, सनातनता, सर्वोपस्थिति और सर्वज्ञान सम्मिलित हैं। किन्तु, अन्य गुण भी हैं, जो सृजे गए प्राणियों में प्रतिबिम्बित किए जा सकते हैं, जैसा कि प्रेरित पौलुस स्पष्ट कर देता है: "इसलिए प्रिय बालकों के सदृश परमेश्वर का अनुकरण करने वाले बनो, और प्रेम में चलो जैसे ख्रीष्ट ने भी हम से प्रेम किया और सुखदायक सुगन्धित भेंट बनकर हमारे लिए अपने आपको परमेश्वर के सम्मुख बलिदान कर दिया" (इफिसियों 5:1-2)।

पौलुस विश्वासियों को परमेश्वर का अनुकरण करने के लिए बुलाता है। हम परमेश्वर का अनुकरण तभी कर सकते हैं जब परमेश्वर के विषय में कुछ ऐसी बातें हों, जिनको प्रतिबिम्बित करने की क्षमता हम में हो। इफिसियों का यह खण्ड मानकर चलता है कि परमेश्वर के पास कुछ ऐसे गुण हैं जो संचारीय हैं; अर्थात् ऐसे गुण जिनको रखने और प्रकट करने के लिए हम में क्षमता है।

पवित्रता

पवित्रशास्त्र कहता है कि परमेश्वर पवित्र है। यह शब्द *पवित्र*, जैसा कि बाइबल में परमेश्वर का वर्णन करने के लिए इसका उपयोग किया गया है, उसके स्वभाव और चरित्र दोनों को सन्दर्भित करता है। मुख्य रूप से, परमेश्वर की पवित्रता उसकी महानता और उसकी पारलौकिकता *(transcendence)* से, अर्थात् इस तथ्य से सम्बन्धित है कि वह विश्व में किसी भी वस्तु से ऊपर और परे है। इस सम्बन्ध में, परमेश्वर की पवित्रता असंचारीय है। वह ही अपने अस्तित्व में सब सृजी गयी वस्तुओं से पारलौकिक है। दूसरा, यह शब्द *पवित्र*, जो परमेश्वर पर लागू होता है तो उसकी शुद्धता, उसकी परम नैतिक *(absolute moral)* और सदाचारी उत्कृष्टता को सन्दर्भित करता है। यही परमेश्वर के मन में है जब वह अपने प्राणियों को पवित्रता की आज्ञा देता है: "तुम पवित्र बनो, क्योंकि मैं पवित्र हूँ" (लैव्यव्यवस्था 11:44; 1 पतरस 1:16)।

जब हमें ख्रीष्ट में प्रत्यारोपित किया जाता है, तो हम पवित्र आत्मा द्वारा भीतर से नए बनाए जाते हैं। त्रिएकता के तीसरे व्यक्ति को "पवित्र" इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि त्रिएकता के उद्धार के कार्य में उसका प्राथमिक कार्य ख्रीष्ट के कार्य को हम पर लागू करना है। वही है जो हमें पुनरुज्जीवित *(regenerates)* करता है और वही हमारे पवित्रीकरण *(sanctification)* के लिए कार्य भी करता है। पवित्र आत्मा हम में और हमारे माध्यम से हमें ख्रीष्ट के स्वरूप के अनुरूप लाने के लिए कार्य करता है, जिससे कि हम पवित्रता के लिए उस आज्ञा को पूरा कर सकें जिसे परमेश्वर ने हमें दिया है।

यद्यपि हम अपनी पतित अवस्था में किसी भी रीति से पवित्र नहीं हैं; किन्तु फिर भी पवित्र आत्मा की सेवा के माध्यम से, हमें पवित्र बनाया जा रहा है और हम अपनी महिमान्वीकरण *(glorification)* की दृष्टि उठाते हैं, जब हम पूर्ण रीति से पवित्र होंगे, तथा सभी पापों से शुद्ध हो जाएँगे। उस अर्थानुसार हम परमेश्वर के अनुकरण करने वाले हैं। परन्तु, हम अपनी महिमान्वित *(glorified)* स्थिति में भी, सृजे गए प्राणी होंगे; हम ईश्वरीय प्राणी नहीं होंगे।

प्रेम

जब पौलुस परमेश्वर का अनुकरण करने के लिए हमारे उत्तरदायित्व की बात करता है, तो वह बताता है कि हमें प्रेम प्रकट करने के लिए बुलाया गया है (इफिसियों 5:2)। पवित्रशास्त्र हमें बताता है कि परमेश्वर प्रेम है (1 यूहन्ना 4:8, 16)। परमेश्वर का प्रेम उसके चरित्र का वर्णन करता है; यह उसके नैतिक गुणों में से एक है, और इसलिए यह एक ऐसा गुण है जो केवल परमेश्वर का ही नहीं है, किन्तु उसके प्राणियों को भी संचारित किया गया है। परमेश्वर प्रेम है और प्रेम परमेश्वर से है और वे सभी लोग, जो उस *अगापे (agapē)* के अर्थ में प्रेम करते हैं जिसके विषय में पवित्रशास्त्र बोलता है, परमेश्वर से जन्मे हैं। उसका प्रेम एक ऐसा गुण है जिसका अनुकरण किया जा सकता है, और हमें ठीक ऐसा ही करने के लिए बुलाया गया है।

भलाई

परमेश्वर की भलाई एक और नैतिक गुण है जिसका अनुकरण करने के लिए हमें बुलाया जाता है, यद्यपि पवित्रशास्त्र इस सम्बन्ध में हमारी क्षमता का एक खेदपूर्ण विवरण देता है। एक धनी युवा अधिकारी ने यीशु से पूछा, "हे उत्तम गुरु, तू भला है। अनन्त जीवन का अधिकारी होने के लिए मैं क्या करूँ?" यीशु ने उस से कहा, "तू मुझे उत्तम क्यों कहता है? परमेश्वर के अतिरिक्त कोई उत्तम नहीं" (मरकुस 10:17-18)। यीशु यहाँ अपने परमेश्वरत्व को नकार नहीं रहा था, परन्तु केवल परमेश्वर की परम भलाई का दावा कर रहा था। एक अन्य स्थान में, प्रेरित पौलुस, भजनकार को उद्धृत करते हुए कहता है, "कोई भी धर्मी नहीं, एक भी नहीं" (रोमियों 3:10)। हम अपनी पतित स्थिति में, परमेश्वर के चरित्र के इस आयाम का अनुकरण या उसको प्रतिबिम्बित नहीं करते हैं।

किन्तु फिर भी विश्वासियों को भले कार्यों के जीवन के लिए बुलाया जाता है, इसलिए पवित्र आत्मा की सहायता से हम भलाई में बढ़ सकते हैं और परमेश्वर के स्वभाव के इस आयाम को प्रतिबिम्बित कर सकते हैं।

न्याय और धार्मिकता

परमेश्वर के अन्य संचारीय गुण भी हैं जिनका हमें अनुकरण करना है। उनमें से एक है न्याय। जब बाइबल की श्रेणियों में न्याय की बात की जाती है, तो यह कभी भी एक अमूर्त अवधारणा के रूप में नहीं होती है जो कि परमेश्वर से ऊपर और बाहर विद्यमान है, और जिसके अनुरूप होने के लिए परमेश्वर बाध्य है। इसके विपरीत, पवित्रशास्त्र में, न्याय की अवधारणा धार्मिकता के विचार से जुड़ी हुई है, और यह परमेश्वर के आन्तरिक चरित्र पर आधारित है। परमेश्वर के न्यायी होने के तथ्य का अर्थ है कि वह सदैव धार्मिकता के अनुसार कार्य करता है।

ईश्वरविज्ञानी परमेश्वर की आन्तरिक धार्मिकता या न्याय और परमेश्वर की बाहरी धार्मिकता या न्याय के बीच अन्तर करते हैं। जब परमेश्वर कार्य करता है, तो वह सदैव वही करता है जो सही है। दूसरे शब्दों में, वह सदैव वही करता है जो न्यायसंगतता के अनुरूप होता है। बाइबल में, न्याय को दया और अनुग्रह से अलग दिखाया गया है। मैं अपने छात्रों से कहता था कि कभी भी परमेश्वर से न्याय की माँग न करें, क्योंकि हो सकता है कि उनको वह मिल जाए। यदि परमेश्वर के द्वारा हमसे उसके न्याय के अनुसार व्यवहार किया जाता, तो हम सभी नष्ट हो जाएँगे। इसीलिए, जब हम परमेश्वर के सामने खड़े होते हैं, तो हम निवेदन करते हैं कि वह अपनी दया और अनुग्रह के अनुसार हमारे साथ व्यवहार करे।

न्याय परमेश्वर की धार्मिकता को परिभाषित करता है; वह कभी भी लोगों को उनके किए गए अपराधों की तुलना में अधिक गम्भीर रूप से दण्डित नहीं करता है, और वह उन लोगों को पुरस्कृत करने में कभी भी विफल नहीं होता है जो पुरस्कार के योग्य हैं। वह सर्वदा न्यायसंगत रीति से कार्य करता है; परमेश्वर कभी ऐसा कुछ नहीं करता जो अन्यायपूर्ण *(unjust)* हो।

दो सार्वभौमिक *(universal)* श्रेणियाँ हैं: न्याय और ग़ैर-न्याय *(nonjustice)*। न्याय के घेरे के बाहर सब कुछ ग़ैर-न्याय की श्रेणी में है, परन्तु ग़ैर-न्याय भी विभिन्न प्रकार के हैं। परमेश्वर की दया न्याय के घेरे के बाहर है और एक प्रकार का ग़ैर-न्याय है। ग़ैर-न्याय की श्रेणी में अन्याय *(injustice)* भी है। अन्याय बुराई है; अन्याय का कोई भी कार्य धार्मिकता के सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है। यदि परमेश्वर कुछ अनुचित *(unfair)* करता, तो वह अन्यायपूर्ण *(unjustly)* व्यवहार कर रहा होता। अब्राहम इस असम्भावना को जानता था जब उसने परमेश्वर

से कहा, "क्या समस्त पृथ्वी का न्यायी उचित न्याय न करे?" (उत्पत्ति 18:25)। क्योंकि परमेश्वर एक न्यायपूर्ण न्यायी है, उसके सभी निर्णय धार्मिकता के अनुसार हैं, जिससे कि वह कभी भी अन्यायपूर्ण रीति से कार्य नहीं करता है; वह कभी अन्याय नहीं करता है।

तौभी, जब लोग परमेश्वर की दया और अनुग्रह के विषय में एक साथ विचार करते हैं, तो वे भ्रमित हो जाते हैं, क्योंकि अनुग्रह तो न्याय नहीं है। अनुग्रह और दया, न्याय की श्रेणी से बाहर तो अवश्य हैं, किन्तु वे अन्याय की श्रेणी के भीतर नहीं आते हैं। परमेश्वर के दयालु होने में कुछ भी अनुचित नहीं है; उसके अनुग्रहकारी होने में कुछ भी बुराई नहीं है। वास्तव में, एक अर्थ में, हमें इसको और स्पष्ट करना होगा। यद्यपि न्याय और दया एक ही बात नहीं है, परन्तु न्याय तो धार्मिकता से जुड़ा हुआ है, और कई बार धार्मिकता में दया और अनुग्रह पाए जा सकते हैं। उनके बीच हमें अन्तर करने की आवश्यकता का कारण यह है कि धार्मिकता के लिए न्याय आवश्यक है, किन्तु दया और अनुग्रह तो ऐसे कार्य हैं जिन्हें परमेश्वर स्वतन्त्र रूप से करता है। परमेश्वर के लिए कभी भी दयालु या अनुग्रहकारी होना अनिवार्य नहीं है। जिस क्षण हम सोचते हैं कि परमेश्वर हमें अनुग्रह या दया देने के लिए बाध्य है, तो उसी क्षण हम अनुग्रह या दया के विषय में नहीं सोच रहे हैं। हमारा मन प्रायः वहाँ गड़बड़ी करता है जिससे कि हम दया और अनुग्रह को न्याय के साथ भ्रमित कर देते हैं। न्याय की माँग की जा सकती है, परन्तु दया और अनुग्रह सदैव स्वैच्छिक होते हैं।

परमेश्वर की बाहरी धार्मिकता या न्याय और उसकी भीतरी धार्मिकता या न्याय के सन्दर्भ में, परमेश्वर सर्वदा वही करता है जो उचित है। उसके कार्य, उसके बाहरी व्यवहार, सर्वदा उसके आन्तरिक चरित्र के अनुरूप होते हैं। यीशु ने इस बात को सरलता से रखा जब उसने अपने शिष्यों से कहा कि एक निकम्मा पेड़ अच्छा फल नहीं दे सकता; बुरे फल निकम्मे पेड़ से आते हैं, और अच्छे फल एक अच्छे पेड़ से आते हैं (मत्ती 7:17–18)। ऐसे ही, परमेश्वर सदैव अपने चरित्र के अनुसार कार्य करता है, और उसका चरित्र पूरी रीति से धर्मी है। इसलिए, जो कुछ वह करता है वह धर्मी है। उसकी आन्तरिक धार्मिकता और उसकी बाहरी धार्मिकता के बीच में अर्थात् इस बात में एक भिन्नता है कि वह कौन है और वह क्या करता है, यद्यपि वे दोनों जुड़े हुए हैं।

यह बात हमारे साथ भी सच है। हम पापी इसलिए नहीं हैं क्योंकि हम पाप करते हैं; हम पाप करते हैं क्योंकि हम पापी हैं। हमारे भीतरी चरित्र में कुछ बिगड़ा हुआ है। जब पवित्र आत्मा हमें आन्तरिक रीति से परिवर्तित करता है, तो यह परिवर्तन हमारे व्यवहार के बाहरी परिवर्तन में प्रमाणित होता है। हमें बाहरी रूप से परमेश्वर की धार्मिकता के अनुरूप बनने के लिए बुलाया जाता है क्योंकि हम परमेश्वर के स्वरूप में बनाए गए वे प्राणी हैं जिनके पास धार्मिकता की क्षमता है। हमें उस क्षमता के साथ उन कार्यों को करने के लिए जो कि उचित हैं तथा न्यायपूर्ण रीति से व्यवहार

करने के लिए बनाया गया है। मीका नबी ने लिखा, "यहोवा तुझ से इसे छोड़ और क्या चाहता है कि तू न्याय से कार्य करे, कृपा से प्रेम रखे, और अपने परमेश्वर के साथ नम्रता से चले?" (मीका 6:8)। परमेश्वर का न्याय और उसकी धार्मिकता संचारीय गुण हैं जिनका अनुकरण करने के लिए हमें बुलाया गया है।

बुद्धि

मैं परमेश्वर के एक और संचारीय गुण की बात करना चाहता हूँ—बुद्धि। परमेश्वर को न केवल बुद्धिमान के रूप में किन्तु सर्व-बुद्धिमान के रूप में देखा जाता है, और हमें बुद्धि के अनुसार कार्य करने के लिए कहा जाता है। पुराने नियम की ऐतिहासिक पुस्तकों और नबियों के बीच में साहित्य के संग्रह को बुद्धि साहित्य कहा जाता है, और इसमें अय्यूब, भजन संहिता, नीतिवचन, सभोपदेशक, और श्रेष्ठगीत पाए जाते हैं।

नीतिवचन हमें बताता है कि यहोवा का भय मानना बुद्धि का आरम्भ है (नीतिवचन 9:10)। यहूदी जन के लिए, बाइबलीय बुद्धि का सारतत्त्व ईश्वरभक्त जीवन में पाया जाता है, न कि चतुराई के ज्ञान में। वास्तव में, पुराना नियम ज्ञान और बुद्धि के बीच अन्तर करता है। हमें ज्ञान प्राप्त करने के लिए कहा गया है, परन्तु सबसे बढ़कर हमें बुद्धि प्राप्त करने के लिए कहा गया है। ज्ञान प्राप्त करने का उद्देश्य इस अर्थ में बुद्धिमान बनना है कि हम उस रीति से जीना जान जाएँ जो परमेश्वर को भाए। परमेश्वर स्वयं न तो कभी मूर्खतापूर्ण निर्णय लेता है, न मूर्खतापूर्ण रीति से व्यवहार करता है। एक ओर तो उसके चरित्र या कार्य में कोई मूर्खता नहीं है। किन्तु दूसरी ओर, हममें मूर्खता भरी पड़ी है। किन्तु उसकी बुद्धि एक संचारीय गुण है, और परमेश्वर स्वयं ही बुद्धि का मूलस्रोत और उद्गम है। यदि हमें बुद्धि की घटी हो, तो हमें परमेश्वर से प्रार्थना करने को कहा गया है, कि वह अपनी बुद्धि में, हमारी सोच को ज्योतिर्मय करे (यूहन्ना 1:5)। वह अपना वचन देता है जिससे कि हम बुद्धिमान बन सकें।

अध्याय 14

परमेश्वर की इच्छा

The Well of God

कई वर्ष पहले, लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ ने "आर.सी. से पूछिए" *(Ask R.C.)* नामक एक संक्षिप्त प्रश्न और उत्तर रेडियो कार्यक्रम को आयोजित किया और मुझ से सर्वाधिक पूछा गया प्रश्न था, "मैं अपने जीवन के लिए परमेश्वर की इच्छा को कैसे जान सकता हूँ?" जो लोग अपने मसीही विश्वास में सत्यनिष्ठ हैं और परमेश्वर के प्रति आज्ञाकारिता में जीना चाहते हैं, वे जानना चाहते हैं कि परमेश्वर क्या चाहता है कि वे करें।

जब भी हम स्वयं को अपने जीवन के लिए परमेश्वर की इच्छा को लेकर संघर्ष करते हुए पाते हैं, तो यह अच्छा है कि हम पवित्रशास्त्र से इन शब्दों के साथ आरम्भ करें: "गुप्त बातें हमारे परमेश्वर यहोवा के वश में हैं, परन्तु जो जो बातें हम पर प्रकट हुई हैं वे सदा के लिए हमारे तथा हमारे वंशजों के लिए हैं कि हम इस व्यवस्था के सब वचनों का पालन करें"(व्यवस्थाविवरण 29:29)। पवित्रशास्त्र में इस पद का स्थान महत्वपूर्ण है। व्यवस्थाविवरण की पुस्तक व्यवस्था की दूसरी पुस्तक है; इसके शीर्षक का अर्थ है "दूसरी व्यवस्था।" इसमें उस पूरी व्यवस्था का दोहराया जाना पाया जाता है जिसे मूसा ने परमेश्वर से पाकर लोगों को दी। व्यवस्था के दिए जाने के विवरण के अन्त के पास, हम इस पद को पाते हैं जो परमेश्वर की छिपी हुई इच्छा *(hidden will)* और परमेश्वर की प्रकट इच्छा *(revealed will)* के बीच की एक भिन्नता बनाता है।

गुप्त बातें और प्रकट बातें

धर्मसुधारकों ने, विशेषकर मार्टिन लूथर ने *ड्यूस अब्सकॉनडिटस (Deus absconditus)* और *ड्यूस रेवलेटस (Deus revelatus)* के बीच के अन्तर के विषय में बात की। परमेश्वर के विषय में हमारे ज्ञान की सीमाएँ हैं; जैसा कि हमने देखा है कि हमारे पास उसके विषय में व्यापक ज्ञान नहीं है। परमेश्वर ने हमें वह सब कुछ नहीं बताया है जो कि प्रत्येक सम्भावित रीति से उसके विषय में या जगत के लिए उसके उद्देश्यों के विषय में जाना जा सकता है; उसमें से बहुत कुछ प्रकट नहीं

किया गया है। परमेश्वर के इस छिपाव *(hiddenness)* को *ड्यूस अब्सकॉनडिटस* कहा जाता है, वे बातें जिनको परमेश्वर ने हमसे छिपाया है। इसी समय पर, हमें परमेश्वर की समझ को टटोलने के लिए पूरी रीति से अन्धेरे में नहीं छोड़ा गया है। ऐसा नहीं है कि परमेश्वर भाग गया है और स्वयं के विषय में कुछ भी बताने में विफल रहा है। इसके विपरीत, वह बात भी है जिसे लूथर *ड्यूस रेवलेटस* कहता था, परमेश्वर का वह भाग जिसे उसने प्रकट किया है। यह सिद्धान्त व्यवस्थाविवरण 29:29 में प्रकट किया गया है। "गुप्त बातें" उन बातों को सन्दर्भित करती हैं जिन्हें हम परमेश्वर की "छिपी हुई इच्छा" कहते हैं।

परमेश्वर की इच्छा का एक आयाम उसकी आज्ञप्तिपरक इच्छा *(decretive will)* है, जो इस तथ्य से सम्बन्धित है कि परमेश्वर अपनी सम्प्रभुता के अनुसार वह सब करता है जो वह चाहता है। कभी-कभी इसे परमेश्वर की सम्पूर्ण इच्छा *(absolute will)*, परमेश्वर की सम्प्रभु इच्छा *(sovereign will)* या परमेश्वर की प्रभावोत्पादक इच्छा *(efficacious will)* कहा जाता है। जब परमेश्वर सम्प्रभु रीति में होकर यह आज्ञप्ति *(decree)* देता है कि कोई बात होनी चाहिए, तो उसे वास्तव में होनी ही चाहिए। इसके विषय में बात करने की एक और रीति है, परमेश्वर का "निर्धारित पूर्व-संकल्प" *(determinate forecounsel)*। इसका एक उदाहरण ख्रीष्ट का क्रूसीकरण है। जब परमेश्वर ने यह आज्ञप्ति दी कि ख्रीष्ट को इतिहास में एक विशेष समय पर यरूशलेम में क्रूस पर मरना चाहिए, तो उस घटना को उस स्थान और समय पर होना ही था। यह परमेश्वर के निर्धारित संकल्प *(determinate counsel)* या इच्छा के द्वारा पूरा हुआ। यह अप्रतिरोध्य *(irresistible)* था; इसको तो होना ही *था*। इसी रीति से, जब परमेश्वर ने संसार को अस्तित्व में बुलाया, तो वह अस्तित्व में आया।

परमेश्वर की इच्छा का एक अन्य आयाम है आदेशात्मक इच्छा *(preceptive will)*। एक ओर तो परमेश्वर की आज्ञप्तिपरक इच्छा का विरोध नहीं किया जा सकता है, किन्तु दूसरी ओर न केवल हम परमेश्वर की आदेशात्मक इच्छा का विरोध कर सकते हैं, परन्तु हम हर समय इसका विरोध करते भी हैं। परमेश्वर की आदेशात्मक इच्छा परमेश्वर की व्यवस्था और उसकी आज्ञाओं का उल्लेख करती है। उदाहरण के लिए, पहली आज्ञा, "तू मुझे छोड़ दूसरों को ईश्वर करके न मानना" (निर्गमन 20:3), परमेश्वर की आदेशात्मक इच्छा में आता है।

जब लोग मुझसे पूछते हैं कि वे अपने जीवन के लिए परमेश्वर की इच्छा को कैसे जान सकते हैं, तो मैं उनसे पूछता हूँ कि वे किस इच्छा के विषय में बात कर रहे हैं—परमेश्वर की छिपी हुई, आज्ञप्तिपरक इच्छा, या आदेशात्मक इच्छा। यदि वे परमेश्वर की छिपी हुई इच्छा के विषय में बात कर रहे हैं, तो उन्हें यह समझना चाहिए कि यह छिपी हुई है। प्रश्न पूछने वाले अधिकाँश लोग इस बात से संघर्ष कर रहे हैं कि विशेष परिस्थितियों में उन्हें क्या करना चाहिए। जब मुझसे ऐसी परिस्थितियों में परमेश्वर की इच्छा के विषय में पूछा जाता है, तो मैं उत्तर देता हूँ कि मैं परमेश्वर के मन को नहीं पढ़ सकता हूँ। किन्तु मैं परमेश्वर के वचन को पढ़ सकता हूँ, जो मुझे उसकी प्रकट इच्छा *(revealed will)* देता है, और उस इच्छा को सीखना और उसके अनुरूप होना मेरे जीवन भर के लिए पर्याप्त कार्य है। मैं इस बात में तो लोगों की सहायता कर सकता हूँ, परन्तु परमेश्वर

की छिपी हुई इच्छा जानने में नहीं। जॉन कैल्विन ने कुछ ऐसा कहा कि, "जिन बातों के विषय में परमेश्वर कुछ नहीं बोलता है तो हमें भी उन बातों के विषय में नहीं बोलना चाहिए, जिससे कि हम कुछ अनुचित न बोलें।"* इसको दूसरी रीति से ऐसा कहा जा सकता है कि "परमेश्वर की छिपी हुई इच्छा को जानना हमारा उत्तरदायित्व नहीं है।" इसीलिए वह छिपी हुई इच्छा है।

यदि आप अपने जीवन के लिए परमेश्वर की इच्छा को जानना चाहते हैं तो यह एक अच्छी बात है। उसके पास आपके जीवन के लिए एक छिपी हुई योजना है जिसको जानना आपका उत्तरदायित्व नहीं है, किन्तु वह आपकी अगुवाई कर सकता है और आपका मार्गदर्शन कर सकता है। इसलिए हमारे जीवन में पवित्र आत्मा के प्रकाश, या परमेश्वर की अगुवाई की खोज करने में कुछ भी अनुचित नहीं है, और बहुधा जब लोग परमेश्वर की इच्छा के विषय में पूछते हैं, तो वे इस विषय में सोच रहे होते हैं। सत्य तो यह है कि हम प्रायः भविष्य जानने की एक भक्तिहीन इच्छा रखते हैं। हम अन्त की बात को आरम्भ से ही जानना चाहते हैं, जो वास्तव में हमारा उत्तरदायित्व नहीं है। यह तो परमेश्वर का उत्तरदायित्व है, जिसके कारण उन लोगों के प्रति वह पवित्रशास्त्र में अपनी चेतावनियों में गम्भीर है जो अवैध रीतियों से भविष्य का पता लगाने का प्रयास करते हैं जैसे कि वीजी बोर्ड *(Ouija boards*-प्रश्नफलक बोर्ड), ज्योतिषी और टैरो कार्ड (*tarot card*) के माध्यम से। वे सब मसीहियों के लिए वर्जित हैं।

परमेश्वर की इच्छा के अनुसार जीना

परमेश्वर के मार्गदर्शन के विषय में बाइबल क्या कहती है? वह कहती है कि यदि हम अपने सब कार्यों में परमेश्वर को स्मरण करते हैं, तो वह हमारे लिए सीधा मार्ग निकालेगा (नीतिवचन 3:5-6)। हम पवित्रशास्त्र के द्वारा प्रोत्साहित किए जाते हैं कि अपने जीवनों के लिए परमेश्वर की इच्छा को जानें, और हम ऐसा परमेश्वर की आज्ञप्तिपरक इच्छा *(decretive will)* पर नहीं परन्तु परमेश्वर की आदेशात्मक इच्छा *(preceptive will)* पर अपने ध्यान को केन्द्रित करके करते हैं। यदि आप अपने जीवन के लिए परमेश्वर की इच्छा को जानना चाहते हैं, तो बाइबल आपसे कहती है: "परमेश्वर की इच्छा है कि तुम पवित्र बनो" (1 थिसस्लुनीकियों 4:3)। तो जब लोग सोचते हैं कि उनको नौकरी दिल्ली में या लखनऊ में लेनी चाहिए, या उनको विवाह किरन से या सुमन से करना चाहिए, तो उनको ध्यानपूर्वक परमेश्वर की आदेशात्मक इच्छा का अध्ययन करना चाहिए। उनको परमेश्वर की व्यवस्था का अध्ययन उन सिद्धान्तों को सीखने के लिए करना चाहिए जिनके द्वारा उनको अपने जीवन को दिन-प्रतिदिन जीना है।

भजनकार लिखता है, "क्या ही धन्य है वह मनुष्य जो दुष्टों की सम्मति पर नहीं चलता, न पापियों के मार्ग में खड़ा होता है, और न ठट्ठा करने वालों की बैठक में बैठता है। परन्तु वह तो यहोवा की व्यवस्था से आनन्दित होता और उसकी व्यवस्था पर रात-दिन मनन करता रहता है।" (भजन

* जॉन कैल्विन, *रोमियों के लिए प्रेरित पौलुस के पत्र पर टीका*, अनुवाद और सम्पादन. जॉन ओवेन (ग्रैंड रैपिड्स: बेकर, 2003), 354।

1:1-2)। ईश्वरभक्त मनुष्य का आनन्द परमेश्वर की आदेशात्मक इच्छा पर है, और इस पर ध्यान केन्द्रित करने वाला व्यक्ति "उस वृक्ष के समान होगा जो जल-धाराओं के किनारे लगाया गया है, और अपनी ऋतु में फलता है" (पद 3)। परन्तु दुष्ट वैसे नहीं हैं, वे तो "भूसी के समान होते हैं जिसे पवन उड़ा ले जाता है" (पद 4)।

यदि आप जानना चाहते हैं कि आपको कौन सी नौकरी करनी है, तो आपको इन सिद्धान्तों को सीखना होगा। और जब आप ऐसा करेंगे, तो आप पाएँगे कि यह परमेश्वर की इच्छा है कि आप अपने वरदानों और योग्यताओं का एक गम्भीर विश्लेषण करें। तब आपको सोचना होगा कि क्या वह नौकरी आपके वरदानों के अनुरूप है या नहीं; यदि वह नहीं है, तो आप को उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। इस परिस्थिति में, परमेश्वर की इच्छा यह है कि आप एक दूसरी नौकरी को खोजें। परमेश्वर की इच्छा यह भी है कि आप अपनी आजीविका-अपनी बुलाहट-को नौकरी के अवसर के साथ मिलाएँ, और इसके लिए उइज़ा बोर्ड का उपयोग करने की तुलना में बहुत अधिक कार्य की आवश्यकता है। इसका अर्थ है जीवन की सभी विभिन्न बातों में परमेश्वर की व्यवस्था को लागू करना।

जब यह निर्णय लेने का समय आता है कि किससे विवाह करना है, तो आप विवाह पर परमेश्वर की आशीष के सम्बन्ध में पवित्रशास्त्र की प्रत्येक बात पर ध्यान देते हैं। ऐसा करने के पश्चात्, आप ऐसा पायेंगे कि ऐसे अनेक सम्भावित लोग हैं जो कि बाइबल की माँगों के अनुरूप हैं। तो उनमें से आप किस से विवाह करेंगे? इसका उत्तर तो सरल है: जिस किसी से भी आप विवाह करना *चाहते* हैं। जब तक आप परमेश्वर की आदेशात्मक इच्छा की सीमा के भीतर रहने का चुनाव करते हैं, आपके पास अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता है, और आपको इस बात को लेकर निद्रा खोने की आवश्यकता नहीं है कि क्या आप परमेश्वर की छिपी या आज्ञप्तिपरक इच्छा के बाहर तो नहीं हैं। प्रथम, आप परमेश्वर की आज्ञप्तिपरक इच्छा के बाहर हो ही नहीं सकते हैं। द्वितीय, आज अपने लिए परमेश्वर की छिपी हुई इच्छा को ज्ञात करने का एकमात्र उपाय है, कि कल की प्रतीक्षा करें, और कल आपको यह बात स्पष्ट कर देगा। क्योंकि जब आप पीछे मुड़कर भूतकाल को देखते हैं तब आप यह ज्ञात करते हैं कि भूतकाल में जो कुछ भी हुआ था वह परमेश्वर की छिपी हुई इच्छा के अन्तर्गत हुआ था। दूसरे शब्दों में, हम परमेश्वर की छिपी हुई इच्छा को केवल घटना के घटित होने के पश्चात् ही जानते हैं। यद्यपि हम सामान्यतः भविष्य के सम्बन्ध में परमेश्वर की इच्छा को जानना चाहते हैं, किन्तु पवित्रशास्त्र वर्तमान में हमारे जीवन के लिए परमेश्वर की इच्छा पर बल देता है, और इसका सम्बन्ध उसकी आज्ञाओं से है।

"गुप्त बातें" परमेश्वर के वश में हैं, किन्तु हमारे नहीं। "गुप्त बातों" को जानना हमारा उत्तरदायित्व नहीं है क्योंकि वे हमारे अधिकार में नहीं हैं; वे तो उसके अधिकार में हैं। परन्तु, परमेश्वर ने अपने मन की कुछ गुप्त योजनाओं को लेकर उनकी गोपनीयता को हटा दिया है, और

ऐसी बातें *अवश्य* हमारे लिए हैं। उसने आवरण को हटा दिया है। इसको हम प्रकाशन कहते हैं। प्रकाशन उन बातों का प्रकटन है जो पहले छिपी हुईं थीं।

जो ज्ञान प्रकाशन के माध्यम से हमारा है, वह तो वास्तव में परमेश्वर का ही है, और परमेश्वर ने ही उसे हमें दिया है। यही बात मूसा व्यवस्थाविवरण 29:29 में कह रहा था। गुप्त बातें परमेश्वर के वश में हैं, परन्तु जो उसने प्रकट की हैं वे हमारे लिए हैं, और न केवल हमारे परन्तु हमारे बच्चों के लिए भी हैं। परमेश्वर को भाया है कि हम पर कुछ बातों को प्रकट करे, और हमारे पास उन बातों को अपने बच्चों और दूसरों के साथ बाँटने की अवर्णनीय आशीष है। उस ज्ञान को अपने बच्चों तक पहुँचाने की प्राथमिकता व्यवस्थाविवरण में प्रमुख शिक्षाओं में से एक है। परमेश्वर की प्रकट इच्छा उसकी आदेशात्मक इच्छा में और उसके द्वारा दी गई है, और यह प्रकाशन इसलिए दिया गया है जिससे कि हम आज्ञाकारी बनें।

जैसा कि मैंने पहले कहा, कई लोग मुझसे पूछते हैं कि वे अपने जीवनों के लिए परमेश्वर की इच्छा को कैसे जान सकते हैं, परन्तु विरले ही कोई मुझसे पूछता है कि वह परमेश्वर की व्यवस्था को कैसे जान सकता है। लोग ऐसा इसलिए नहीं पूछते हैं क्योंकि वे पहले ही जानते हैं कि परमेश्वर की व्यवस्था को कैसे समझा जा सकता है—वे तो इसे बाइबल में पाते हैं। वे परमेश्वर की व्यवस्था को जानने के लिए उसका अध्ययन कर सकते हैं। इससे भी कठिन प्रश्न यह है कि हम परमेश्वर की व्यवस्था का पालन कैसे *कर* सकते हैं। कुछ ही लोग उसके विषय में चिन्तित हैं, परन्तु अधिकतर नहीं। अधिकाँश लोग जो परमेश्वर की इच्छा के ज्ञान के विषय में पूछते हैं वे तो भविष्य की जानकारी खोज रहे होते हैं, जो कि छिपी हुई है। यदि आप परमेश्वर की इच्छा को इस रीति से जानना चाहते हैं कि परमेश्वर क्या अधिकृत करता है, तथा परमेश्वर किन बातों से प्रसन्न होता है, और परमेश्वर आपको किन बातों के लिए आशीषित करेगा, तो फिर से इसका उत्तर भी उसकी आदेशात्मक इच्छा, अर्थात् व्यवस्था में पाया जाता है जो कि स्पष्ट है।

नए नियम के मसीही लोगों के लिए पुराने नियम की व्यवस्था का एक मुख्य लाभ यह है कि वह यह प्रकट करता है कि परमेश्वर का स्वभाव क्या है और उसको क्या भाता है। जब हम यह जानने का प्रयास कर रहे होते हैं कि परमेश्वर को क्या भाता है, तो हम पुराने नियम की व्यवस्था का अध्ययन कर सकते हैं और भले ही उस व्यवस्था में से कुछ बातों को नए नियम में दोहराया नहीं गया है, परन्तु परमेश्वर के स्वभाव का प्रकटीकरण वहाँ है तथा वह हमारे पाँव के लिए दीपक और हमारे मार्ग के लिए उजियाला है (भजन 119:105)। यदि हम अपने जीवनों के लिए परमेश्वर की इच्छा को जानने का प्रयास करने के लिए एक मार्ग को खोज रहे हैं तथा अन्धेरे में टटोल रहे हैं, तो फिर हमें एक दीपक की आवश्यकता होगी यह दिखाने के लिए कि हमें कहाँ जाना है, तथा हमें अपने पाँवों के लिए मार्ग दिखाने हेतु उजियाले की आवश्यकता होगी। यह परमेश्वर की आदेशात्मक इच्छा में पाया जाता है। परमेश्वर की इच्छा यह है कि हम प्रत्येक उस वचन का पालन करें जो उसके मुख से निकलता है।

अध्याय 15

ईश्वरीय-प्रावधान

Providence

अधिकाँश मसीही लोग रोमियों में पौलुस के इन शब्दों से परिचित हैं: "और हम जानते हैं कि जो लोग परमेश्वर से प्रेम रखते हैं उनके लिए वह सब बातों के द्वारा भलाई को उत्पन्न करता है, अर्थात् उन्हीं के लिए जो उसके अभिप्राय के अनुसार बुलाए गए हैं" (8:28)। प्रेरित पौलुस के विश्वास की दृढ़ता यहाँ पर स्पष्टता से उभर कर आती है जिसे उसने यहाँ पर व्यक्त किया है। वह यह नहीं कहता है, "मैं सच में आशा करता हूँ कि अन्त में सब कुछ ठीक हो जाएगा," या "मुझे विश्वास है कि सब बातें परमेश्वर की इच्छा के अनुसार अन्त में ठीक होंगी।" इसके विपरीत, वह कहता है, "और *हम जानते* हैं कि जो लोग परमेश्वर से प्रेम रखते हैं उनके लिए वह सब बातों के द्वारा भलाई को उत्पन्न करता है, अर्थात् उन्हीं के लिए जो उसके अभिप्राय के अनुसार बुलाए गए हैं।" वह उस बात के विषय में जो मसीही जीवन के लिए बहुत ही आधारभूत है ऐसे प्रेरितीय आश्वासन के साथ लिखता है कि इस पद से हम बहुत सान्त्वना पा सकते हैं।

तथापि, आज मुझे भय है कि, जिस विश्वास की दृढ़ता को पौलुस व्यक्त करता है वह हमारी कलीसियाओं और मसीही समुदायों में अनुपस्थित है। हमारी इस बात को समझने की रीति में एक बड़ा परिवर्तन हुआ है कि हमारे जीवन परमेश्वर के सम्प्रभु शासन से कैसे सम्बन्धित हैं।

मैंने एक बार अमरीकी गृह युद्ध के विषय में टेलीविजन पर एक लघुश्रृंखला देखी। उस श्रृंखला का एक सबसे झकझोर देने वाला भावुक भाग वह था जिसमें कथाकार ने उस युद्ध में दोनों ओर के सैनिकों द्वारा भेजे गए पत्रों को पढ़ा। जब-जब इन सैनिकों ने अपने प्रियजनों हेतु घर को पत्र लिखा, तो उन्होंने अपनी चिन्ताओं और अपने भय का उल्लेख किया, किन्तु फिर भी उन्होंने एक भले एवं परोपकारी परमेश्वर पर बारम्बार अपने भरोसे का भी उल्लेख किया। जब लोगों ने अमरीका देश को बसाया था, तो उन्होंने रोड आइलैंड *(Rhode Island)* प्रान्त में एक नगर का नाम "प्रोविडेंस" रखा। हमारे समाज में आज ऐसा नहीं हो सकता है। परमेश्वर द्वारा ईश्वरीय-

प्रावधान *(divine providence)* का विचार हमारे समाज से लगभग लुप्त ही हो गया है, जो कि दुःखद बात है।

परमेश्वर हमारे पक्ष में

मसीही समुदाय में सांसारिक मानसिकता ने उस विश्वदृष्टिकोण *(worldview)* के माध्यम से अतिक्रमण किया है जो यह मानता है कि सब कुछ निश्चित प्राकृतिक कारणों के अनुसार होता है, और परमेश्वर, यदि वह वास्तव में है भी, तो वह इन सब से ऊपर और परे है। वह स्वर्ग में एक दर्शक मात्र है जो नीचे देख रहा है, सम्भवतः हमें उत्साहित तो करता है परन्तु पृथ्वी पर जो कुछ भी होता है, उस पर उसका कोई तात्कालिक नियन्त्रण नहीं होता है। परन्तु ऐतिहासिक रूप से मसीही लोगों के पास एक गहन चेतना रही है कि यह संसार हमारे पिता का है और अन्तिम विश्लेषण में, मनुष्यों एवं राष्ट्रों के घटनाक्रम उसके हाथों में हैं। इसी बात को पौलुस रोमियों 8:28 में व्यक्त कर रहा है—परमेश्वरीय प्रावधान का एक निश्चित ज्ञान "और हम जानते हैं कि जो लोग परमेश्वर से प्रेम रखते हैं उनके लिए वह सब बातों के द्वारा भलाई को उत्पन्न करता है, अर्थात् उन्हीं के लिए जो उसके अभिप्राय के अनुसार बुलाए गए हैं।"

उसके तुरन्त पश्चात्, पौलुस पूर्वनिर्धारण *(predestination)* के क्रम में जाता है: "क्योंकि जिन के विषय में उसे पूर्वज्ञान था, उसने उन्हें पहिले से ठहराया भी कि वे उसके पुत्र के स्वरूप में हो जाएँ, जिससे कि वह बहुत-से भाइयों में पहिलौठा ठहरे; फिर जिन्हें उसने पहिले से ठहराया है, उन्हें बुलाया भी; और जिन्हें बुलाया, उन्हें धर्मी भी ठहराया; और जिन्हें धर्मी ठहराया, उन्हें महिमा भी दी है" (पद 29-30)। फिर पौलुस समाप्त करता है: "अब हम इन बातों के विषय में क्या कहें?" (पद 31क)। दूसरे शब्दों में, हमारी प्रतिक्रिया परमेश्वर की सम्प्रभुता के प्रति और इस तथ्य के प्रति क्या होनी चाहिए कि वह इस संसार में और हमारे जीवनों में एक ईश्वरीय उद्देश्य को पूरा कर रहा है? संसार इस सत्य का खण्डन करता है, किन्तु पौलुस इस प्रकार से उत्तर देता है:

> यदि परमेश्वर हमारे पक्ष में है, तो कौन हमारे विरुद्ध है? वह जिसने अपने पुत्र को भी नहीं छोड़ा परन्तु उसे हम सब के लिए दे दिया, तो वह उसके साथ हमें सब कुछ उदारता से क्यों न देगा? परमेश्वर के चुने हुओं पर कौन दोष लगाएगा? परमेश्वर ही है जो धर्मी ठहराता है; वह कौन है जो दोष लगाएगा? ख्रीष्ट यीशु ही है जो मरा, हाँ, वरन् वह मृतकों में से जिलाया गया, जो परमेश्वर की दाहिनी ओर है, और हमारे लिए निवेदन भी करता है। कौन हम को ख्रीष्ट के प्रेम से अलग करेगा? क्या क्लेश, या संकट, या सताव, या

अकाल, या नंगाई, या जोखिम, या तलवार? . . . परन्तु इन सब बातों में हम उसके द्वारा जिसने हम से प्रेम किया जयवन्त से भी बढ़कर हैं। (पद 31ख–37)

प्राचीन कलीसिया के सबसे पुराने कथनों में से एक कथन, परमेश्वर और उसके लोगों के बीच के सम्बन्ध के सारतत्त्व को सारांशित करता है: *डियुस प्रो नोबिस (Deus pro nobis)*। इसका अर्थ है "परमेश्वर हमारे पक्ष में।" यही ईश्वरीय-प्रावधान के सिद्धान्त का अर्थ है। इसका अर्थ है परमेश्वर अपने लोगों के पक्ष में है। "अब हम इन बातों के विषय में क्या कहें?" पौलुस पूछता है। यदि परमेश्वर हमारे पक्ष में है, तो कौन हमारे विरुद्ध हो सकता है और कौन हमें ख्रीष्ट के प्रेम से अलग कर सकता है? क्या संकट, जोखिम, तलवार, क्लेश, दुःख, बीमारी या मानव शत्रुता ऐसा कर पाएँगे? पौलुस कह रहा है कि मसीही होने के कारण भले ही हमें इस संसार में कुछ भी सहना पड़े, किसी के पास भी उस सम्बन्ध को तोड़ने की सामर्थ्य नहीं है जो हमारे और उस प्रेमी और सम्प्रभु ईश्वरीय-प्रावधान के मध्य है।

मैंने ईश्वरीय-प्रावधान के सिद्धान्त पर बहुत कुछ लिखा है परन्तु मैं उन सब बातों को एक ही अध्याय में सम्मिलित नहीं कर सकता हूँ।* यहाँ पर हमारे पास संक्षिप्त परिचय के लिए ही स्थान है। ईश्वरीय-प्रावधान के लिए अंग्रेज़ी में शब्द *प्रोविडेंस (providence)* एक उपसर्ग और एक मूल शब्द से बना है। इसका मूल शब्द लातीनी *विडेरे (videre)* से आता है, जिससे हमें अंग्रेज़ी का शब्द *वीडियो (video)* मिलता है। जूलियस सीज़र *(Julius Caesar)* का एक प्रसिद्ध कथन है, *"वेनी, विडि, विची" (veni, vidi, vici)*—"मैं आया, मैंने देखा, मैंने विजय प्राप्त की।" उस कथन में *विडी*, "मैंने देखा," *विडेरे* से आता है, जिसका अर्थ है "देखना।" यही कारण है कि हम टेलीविजन को "वीडियो" कहते हैं। लातीनी शब्द *प्रोविडियो (provideo)* जिससे हमें *प्रोविडेंस* शब्द मिलता है, उसका अर्थ है, "पहले से देखना, एक पूर्व देखना, एक दूरदृष्टि।" परन्तु ईश्वरविज्ञानी परमेश्वर के *पूर्वज्ञान (foreknowledge)* और परमेश्वर के ईश्वरीय-*प्रावधान* के बीच भेद करते हैं। भले ही प्रोविडेंस शब्द का अर्थ शब्द-व्युपत्तिशास्त्र *(etymology)* के अनुसार वही है जो पूर्वज्ञान शब्द का है, परन्तु यह अवधारणा पूर्वज्ञान के विचार से बहुत अधिक व्यापक है। वास्तव में हमारी भाषा में इस लातीनी शब्द का सबसे निकटतम शब्द *प्रबन्ध (प्रोविशन-provision)* है।

विचार कीजिए कि परिवार के मुखिया के उत्तरदायित्व के विषय में बाइबल क्या कहती है: "यदि कोई अपने लोगों की, और विशेषकर अपने परिवार की, देखभाल (प्रबन्ध) नहीं करता तो वह अपने विश्वास से मुकर गया है और एक अविश्वासी से भी निकृष्ट है" (1 तीमुथियुस 5:8)। घर के मुखिया को इस प्रकार का व्यक्ति होने के लिए उत्तरदायित्व दिया गया है जो प्रबन्ध

* ईश्वरीय-प्रावधान के सिद्धान्त के विषय में अधिक विस्तृत वर्णन के लिए देखें, R.C. Sproul, *The Invisible Hand: Do All Things Really Work for Good?* (Philipsburg, N.J.: P&R, 2003).

(provides) करता है और प्रावधान *(provision)* करता है; अर्थात् उस व्यक्ति को पहले से जानना होगा कि परिवार को जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं के लिए क्या चाहिए होगा, और फिर उसे उन आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। जब यीशु ने कहा, "अपने प्राण के लिए यह चिन्ता न करना कि हम क्या खाएँगे या क्या पीएँगे; और न ही अपनी देह के लिए कि क्या पहिनेंगे" (मत्ती 6:25), तो वह जीवन के प्रति अनुत्तरदायी दृष्टिकोण का समर्थन नहीं कर रहा था। वह चिन्ता की बात कर रहा था। हमें भयभीत नहीं होना चाहिए; हमें अपना भरोसा उस परमेश्वर पर रखना चाहिए जो हमारी आवश्यकताओं को पूरा करेगा। इसके साथ ही, परमेश्वर परिवारों के मुखियों को दूरदर्शी बनने के लिए उत्तरदायित्व देता है, अर्थात् कल के लिए सोचना और सुनिश्चित करना कि परिवार के लिए भोजन और वस्त्र हैं।

पुराने नियम में *ईश्वरीय-प्रावधान* शब्द पहली बार हमें अब्राहम द्वारा वेदी पर इसहाक के अर्पण के वृतान्त में मिलता है। परमेश्वर ने अब्राहम से उसके पुत्र इसहाक को, जिससे वह प्रेम करता था, एक पहाड़ पर ले जाने और बलिदान के रूप में चढ़ाने के लिए कहा। स्वाभाविक रूप से, परमेश्वर की आज्ञा के प्रति अब्राहम एक बड़े आन्तरिक संघर्ष से पीड़ित हुआ, और जब अब्राहम आज्ञापालन की तैयारी कर रहा था, तो इसहाक ने उससे पूछा, "देख, आग और लकड़ी तो है पर होमबलि के लिए मेमना कहाँ है?" (उत्पत्ति 22:7)। अब्राहम ने उत्तर दिया, "पुत्र, होमबलि के लिए मेमने का प्रबन्ध परमेश्वर स्वयं ही करेगा" (पद 8)। अब्राहम ने यहाँ *यहोवा यिरे* की बात की, "परमेश्वर उपाय करेगा।" यह पहली बार है जहाँ बाइबल परमेश्वर के ईश्वरीय-प्रावधान के विषय में बात करती है, जिसका लेना-देना इस बात से है कि परमेश्वर हमारी आवश्यकताओं के लिए प्रबन्ध करता है। और निश्चित रूप से, यह खण्ड उस परम ईश्वरीय-प्रावधान की ओर आगे देखता है जिसे परमेश्वर ने अपनी ईश्वरीय सम्प्रभुता के कारण किया, अर्थात् उस सर्वोच्च मेमने के द्वारा, जिसे हमारे स्थान पर बलिदान किया गया।

ईश्वरीय-प्रावधान और स्वयंभूति

ईश्वरीय-प्रावधान का सिद्धान्त कई क्षेत्रों को सम्मिलित करता है। सबसे पहले, यह सृष्टि के सम्पोषण *(sustenance)* को सम्मिलित करता है। जब हम उत्पत्ति में सृष्टि के वृतान्त को पढ़ते हैं, कि परमेश्वर ने सभी वस्तुओं को सृजा, तो इब्रानी शब्द *बारा (bara),* जिसका अनुवाद "सृष्टि की" किया गया है, उसका अर्थ यह नहीं है कि परमेश्वर ने केवल वस्तुओं को बनाकर छोड़ दिया है। इसका अर्थ है कि परमेश्वर जिस भी वस्तु को बनाता है और अस्तित्व में लाता है, वह फिर उसे सम्पोषित करता है और संरक्षित करता है। इसलिए हम न केवल अपने उद्गम के लिए परमेश्वर पर निर्भर हैं, परन्तु हम अपने प्रत्येक पल के अस्तित्व के लिए भी परमेश्वर पर निर्भर हैं।

हमने पहले के एक अध्याय में उल्लेख किया था कि परमेश्वर की स्वयंभूति उसका मुख्य असंचारीय गुण है, अर्थात् उसका आत्म-अस्तित्व। केवल परमेश्वर के पास ही स्वयं के भीतर अस्तित्व में होने की शक्ति है। जब हम परमेश्वर की स्वयंभूति के साथ-साथ उसकी सृष्टि की शक्ति के विषय में सोचते हैं तो विधिवत् ईश्वरविज्ञान उपयोग में आता है। यह तथ्य कि परमेश्वर उन वस्तुओं को सम्भालता है जिनकी वह सृष्टि करता है, यह उस सम्बन्ध को प्रकट करता है जो ईश्वरीय-प्रावधान के सिद्धान्त और स्वयंभूति के सिद्धान्त के मध्य है। उसी में हम जीवित रहते हैं, चलते-फिरते और अस्तित्व रखते हैं (प्रेरितों के काम 17:28)। हम परमेश्वर पर निर्भर हैं, जो हमें सम्भालता है और हमारा संरक्षण करता है।

हमारा समाज उस अन्यजातीय दृष्टिकोण से बहुत अधिक प्रभावित हुआ है कि प्रकृति निश्चित स्वतन्त्र नियमों के अनुसार संचालित होती है, मानो कि विश्व एक अव्यक्तिगत यन्त्र है जो किसी प्रकार संयोग से अस्तित्व में आया है। गुरुत्वाकर्षण का नियम, ऊष्मप्रवैगिकी के नियम, और अन्य शक्तियाँ हैं जो सब कुछ संचालित रखती हैं; विश्व के लिए एक आधारभूत ढाँचा है जो उसे बनाए रखता है। परन्तु, बाइबल का दृष्टिकोण है कि परमेश्वर द्वारा सृष्टि के कार्य के बिना कोई विश्व हो ही नहीं सकता था, और जब परमेश्वर ने विश्व की सृष्टि की, तो वह दूर नहीं हट गया और उसने इसे अपने आप ही संचालित होने के लिए छोड़ नहीं दिया। जिनको हम "प्रकृति के नियम" कहते हैं, वे केवल उस सामान्य माध्यम को दर्शाते हैं जिसके द्वारा परमेश्वर प्राकृतिक संसार को बनाए रखता है तथा संचालित करता है। सम्भवतः सबसे दुष्ट अवधारणा जिसने आधुनिक लोगों के मस्तिष्कों को बन्दी बना लिया है, वह तो यह विश्वास है कि विश्व संयोग से संचालित होता है। यह मूर्खता का सबसे निम्न स्तर है।

एक अन्य पुस्तक में, मैंने उस वैज्ञानिक असम्भवता के विषय में अधिक विस्तार से लिखा है जो *संयोग (chance)* को नियन्त्रण शक्ति प्रदान करती है, क्योंकि *संयोग* केवल एक शब्द है जो गणितीय सम्भावनाओं का वर्णन करता है।* संयोग कोई वस्तु नहीं है। इसके पास कोई सामर्थ्य नहीं है। यह कुछ भी नहीं कर सकता है, और इसलिए यह कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता है, तौभी कुछ लोगों ने *संयोग* शब्द को लेकर, जिसमें कोई भी सामर्थ्य नहीं है, और दुष्टतापूर्वक परमेश्वर की अवधारणा के प्रतिस्थापन के रूप में इसका उपयोग किया है। परन्तु सत्य यह है, जैसा कि बाइबल स्पष्ट करती है, कि कुछ भी संयोग से नहीं होता है और सब कुछ परमेश्वर के सम्प्रभु शासन के अधीन है, जो कि उस मसीही के लिए बहुत सान्त्वना देने वाली बात है जो इसे समझता है।

मैं कल के विषय में चिन्ता करता हूँ, और यह एक पाप है। मैं अपने स्वास्थ्य के विषय में चिन्ता

* देखें R.C. Sproul, *Not a Chance: The Myth of Chance in Modern Science and Cosmology* (Grand Rapids, Mich.: Baker, 1999).

करता हूँ, और यह भी एक पाप है। हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए, परन्तु पीड़ायुक्त बातों के विषय में और उन वस्तुओं की हानि के विषय में जिन्हें हम महत्वपूर्ण मानते हैं, चिन्ता करना स्वाभाविक है। हम अपने प्रियजनों, अपने स्वास्थ्य, अपनी सुरक्षा या अपनी सम्पत्ति को नहीं खोना चाहते हैं, परन्तु यदि हम इन्हें खोते भी हैं, तब भी परमेश्वर सब बातों में हमारी भलाई के लिए कार्य कर रहा होता है। यहाँ तक कि इस जगत में हमारी बीमारियाँ और हानियाँ परमेश्वर के ईश्वरीय-प्रावधान के अधीन आते हैं, और यह एक अच्छा ईश्वरीय-प्रावधान है।

हमें इस पर विश्वास करना कठिन लगता है क्योंकि हम अदूरदर्शी हैं। हम अभी पीड़ा और हानि का अनुभव करते हैं, और हम अन्त को आरम्भ से नहीं देखते हैं, जैसा कि परमेश्वर देखता है, किन्तु परमेश्वर हमें बताता है कि इस जगत में हमें जो कष्ट सहना पड़ता है, वह उस महिमा के साथ तुलना करने के योग्य नहीं है जो उसने अपने लोगों के लिए स्वर्ग में रखी है (रोमियों 8:18)। ईश्वरीय-प्रावधान का ज्ञान हमारे दुःखों में सान्त्वना लाता है। परमेश्वर न केवल विश्व और उसके संचालन को वरन् इतिहास को भी नियन्त्रित करता है। बाइबल हमें बताती है कि परमेश्वर साम्राज्यों को उठाता है और उन्हें नीचे गिराता है और अन्तिम विश्लेषण में जीवन में हमारी व्यक्तिगत स्थिति का सम्बन्ध उस बात से है, जिसे परमेश्वर ने अपने ईश्वरीय-प्रावधान में हमारे लिए ठहराया है। हमारे जीवन उसके हाथों में हैं, हमारी आजीविका उसके हाथों में है और इसी प्रकार से हमारी समृद्धि या हमारी दरिद्रता भी उसके हाथों में है—वह अपनी बुद्धि और भलाई में इन सभी बातों पर शासन करता है।

समवर्तियता *(Concurrence)*

सम्भवतः ईश्वरीय-प्रावधान का सबसे कठिन आयाम समवर्तियता का सिद्धान्त है, जो कि एक अर्थ में यह तथ्य है कि जो कुछ भी होता है, यहाँ तक कि *हमारे पाप भी*, परमेश्वर की इच्छा के अनुरूप हैं। जैसे ही हम ऐसा कहते हैं, तो हम परमेश्वर को बुराई का स्रोत बनाने और अपनी दुष्टता का उस पर दोष लगाने के दोषी हो सकते हैं। परमेश्वर पाप का स्रोत नहीं है, किन्तु मेरा पाप भी परमेश्वर के सम्प्रभु अधिकार के अन्तर्गत कार्यान्वित होता है।

हम इस सिद्धान्त का एक स्पष्ट उदाहरण उत्पत्ति में कुलपिता यूसुफ की कहानी में देखते हैं। एक युवा पुरुष के रूप में, उसके ईर्ष्यालु भाइयों द्वारा उसके विरुद्ध मौलिक रूप से अपराध किया गया, जिन्होंने उसे मिस्र जाने वाले व्यापारियों के एक दल को बेच दिया। यूसुफ को दास मण्डी से मोल लिया गया और फिर उस पर अपने स्वामी की पत्नी पर आक्रमण करने का झूठा आरोप लगाया गया, जिसके कारण उसे कई वर्षों तक बन्दीगृह में रखा गया। वह अन्ततः छोड़ दिया गया, और उसकी महान् योग्यताओं और उसके साथ परमेश्वर की उपस्थिति के कारण, उसे पूरे मिस्र के ऊपर प्रधानमन्त्री के स्तर तक ऊँचा किया गया।

फिर एक बड़ा अकाल पड़ा। कनान में यूसुफ के भाई, याकूब के पुत्र भूखे थे इसलिए याकूब ने अपने पुत्रों को भोजन मोल लेने का प्रयास करने के लिए भेजा। भाइयों का सामना यूसुफ से हुआ परन्तु यूसुफ ने अपनी पहचान को कुछ समय के लिए उनसे छिपाए रखा। अन्ततः सच्चाई सामने आ गई और भाइयों को पता चला कि मिस्र का प्रधानमन्त्री जिससे उन्हें सहायता प्राप्त करनी थी वह उनका भाई था जिसके साथ उन्होंने वर्षों पूर्व अन्याय किया था। वे इस बात से भयभीत थे कि यूसुफ उन से प्रतिशोध लेगा, परन्तु यूसुफ ने ऐसा नहीं किया। इसके स्थान पर उसने कहा:

> मैं तुम्हारा भाई यूसुफ हूँ जिसको तुमने मिस्र आने वालों के हाथ बेच दिया था। अब व्याकुल या अपने आप से क्रोधित मत होओ कि तुमने मुझे यहाँ आने वालों के हाथ बेच दिया। क्योंकि परमेश्वर ने प्राणों की रक्षा के लिए तुम से पहले मुझे यहाँ भेजा था। क्योंकि दो वर्ष से इस देश में अकाल है और पाँच वर्ष तक ऐसा ही रहेगा जिसमें न तो हल चलेगा और न फसल काटी जाएगी। परमेश्वर ने मुझे तुम से पहले भेजा कि पृथ्वी पर तुम्हारे वंश की रक्षा की जाए और महान् छुटकारा देकर तुम्हें जीवित रखे। इसलिए अब मुझ को यहाँ भेजने वाले तुम नहीं परन्तु परमेश्वर है और उसी ने मुझे फ़िरौन के लिए पिता के समान और उसके घर का स्वामी तथा सारे मिस्र देश का शासक ठहरा दिया है। (उत्पत्ति 45:4-8)

बाद में, याकूब की मृत्यु के पश्चात्, यूसुफ ने एक बार फिर से उनके बुरे कार्यों के पीछे ईश्वरीय मनसा पर बल देते हुए अपने भाइयों को फिर से आश्वस्त किया:

> डरो मत, क्या मैं परमेश्वर के स्थान पर हूँ? तुमने तो मेरे साथ बुराई करने की ठानी थी, परन्तु परमेश्वर ने उसी को भलाई के लिए ले लिया, जैसा कि आज के दिन हो रहा है कि बहुत से लोगों के प्राण बचें। (उत्पत्ति 50:19-20)

यह ईश्वरीय-प्रावधान का महान् रहस्य है—समवर्तियता। परमेश्वरीय प्रावधान के रहस्य में, परमेश्वर हमारे सुनियोजित निर्णयों के माध्यम से भी अपनी इच्छा को पूरी करता है। जब यूसुफ ने कहा, "तुमने तो मेरे साथ बुराई करने की ठानी थी, परन्तु परमेश्वर ने उसी को भलाई के लिए ले लिया," उसका अर्थ था कि यद्यपि उसके भाइयों ने बुराई को चाहा था, परमेश्वर का भला ईश्वरीय-प्रावधान उससे ऊपर था, और परमेश्वर उनकी बुराई के द्वारा लोगों की भलाई के लिए कार्य कर रहा था। हम इसी बात को नए नियम में यहूदा के साथ देखते हैं। यहूदा ने यीशु को बुराई के लिए

धोखा देकर पकड़वा दिया था, परन्तु परमेश्वर हमारे उद्धार को पूरा करने के लिए यहूदा के पाप का उपयोग कर रहा था।

ईश्वरीय-प्रावधान के सिद्धान्त की महान् सान्त्वना यह है कि परमेश्वर सभी बातों के ऊपर प्रभु है और वह उन्हें अपने लोगों की भलाई के लिए उत्पन्न करता है (रोमियों 8:28), और वही हमारी सान्त्वना का परम स्रोत है।

भाग तीन

नृविज्ञान और सृष्टि

Anthropology and Creation

अध्याय 16

क्रिएशियो एक्स निहिलो

Creatio Ex Nihilo

सृष्टि का सिद्धान्त वह केन्द्रीय विषय है जो मसीहियत और अन्य धर्मों को धर्मनिरपेक्षता और नास्तिकतावाद के सभी रूपों से अलग करता है। धर्मनिरपेक्षता और नास्तिकता के समर्थकों ने यहूदी-मसीही *(Judeo-Christian)* सृष्टि के सिद्धान्त पर अपना लक्ष्य साधा है, क्योंकि यदि वे ईश्वरीय सृष्टि की अवधारणा को झूठा प्रमाणित कर दें, तो मसीही विश्वदृष्टिकोण ध्वस्त हो जायेगा। यहूदी-मसीही विश्वास के लिए यह अवधारणा प्राथमिक है कि संसार एक वैश्विक दुर्घटना के माध्यम से नहीं उभरा था; किन्तु यह एक सृष्टिकर्ता के प्रत्यक्ष और अलौकिक कार्य के द्वारा उत्पन्न हुआ है।

आदि में

पवित्रशास्त्र का पहला वाक्य उस पुष्टिकरण को प्रस्तुत करता है जिस पर शेष सब कुछ स्थिर है: "आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की" (उत्पत्ति 1:1)। पवित्रशास्त्र के इस पहले वाक्य में तीन मूलभूत बिन्दुओं की पुष्टि की जाती है: (1) एक आरम्भ था; (2) एक परमेश्वर है; और, (3) एक सृष्टि है। कोई व्यक्ति यह सोच सकता है कि यदि पहले बिन्दु को दृढ़ता से स्थापित किया जाए, तो अन्य दो भी तार्किक आवश्यकता के द्वारा स्थापित हो जाएँगे। दूसरे शब्दों में, यदि वास्तव में विश्व का एक आरम्भ था, तो उस आरम्भ के लिए किसी वस्तु या किसी व्यक्ति को अवश्य ही उत्तरदायी होना चाहिए; और यदि कोई आरम्भ था, तो अवश्य ही किसी प्रकार की सृष्टि भी होनी चाहिए।

यद्यपि सब लोग नहीं, परन्तु अधिकाँश लोग जो धर्मनिरपेक्षता को अपनाते हैं, वे मानते हैं कि विश्व का एक समय में आरम्भ हुआ था। उदाहरण के लिए, महाविस्फोट सिद्धान्त *(big bang*

theory) के समर्थक कहते हैं, कि पन्द्रह से अट्ठारह अरब वर्ष पहले, एक विशाल विस्फोट के परिणामस्वरूप विश्व का आरम्भ हुआ था। किन्तु, यदि विश्व विस्फोट के द्वारा अस्तित्व में आया, तो वह किस में से विस्फोटित हुआ? क्या यह ग़ैर-अस्तित्व से विस्फोटित हुआ? यह तो एक निरर्थक विचार है। यह विडम्बना है कि अधिकाँश धर्मनिरपेक्षतावादी मानते हैं कि विश्व का एक आरम्भ था किन्तु वे फिर भी सृष्टि के विचार को और परमेश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं।

लगभग सभी सहमत हैं कि विश्व जैसी कोई वस्तु है। कुछ लोग तर्क दे सकते हैं कि विश्व या बाहरी वास्तविकता—यहाँ तक कि हमारी आत्म-चेतना भी—एक भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, परन्तु केवल सबसे उद्दण्ड अहंमात्रवादी *(solipsist)* ही तर्क देने का प्रयास करता है कि कुछ भी अस्तित्व में नहीं है। किन्तु यह तर्क करने के लिए, कि कुछ भी अस्तित्व में नहीं है, उस व्यक्ति को तो अस्तित्व में होना पड़ेगा। इस सत्य के कारण कि कुछ अस्तित्व में है और एक विश्व विद्यमान है, ऐतिहासिक रूप से दार्शनिकों और ईश्वरविज्ञानियों ने पूछा है कि, "कुछ नहीं होने के स्थान पर कुछ क्यों है?" यह सम्भवतः सभी दर्शन के प्रश्नों में से सबसे प्राचीन है। जिन लोगों ने इसका उत्तर देने का प्रयास किया है, उन्होंने समझा है कि जब हम इसका सामना अपने जीवन में करते हैं, तो वास्तविकता को समझाने के लिए केवल तीन आधारभूत विकल्प हैं।

एक्स निहिलो निहिल फिट (Ex Nihilo Nihil Fit)

पहला विकल्प है कि विश्व स्व-अस्तित्वान और सनातन है। हम पहले ही देख चुके हैं कि बहुसंख्यक धर्मनिरपेक्षवादियों का मानना है कि विश्व का आरम्भ हुआ था और यह सनातन नहीं है। और भूतकाल में तथा आज भी ऐसे लोग हैं जिन्होंने यह तर्क दिया है जो कि दूसरा विकल्प है कि भौतिक संसार *(material world)* स्व-अस्तित्व में है और सनातन है। इन विकल्पों में एक महत्वपूर्ण सामान्य बात है कि: दोनों ही यह तर्क देते हैं कि कुछ तो है जो स्व-अस्तित्व में है और सनातन है।

तीसरा विकल्प है कि विश्व की स्व-सृष्टि *(self-created)* हुई थी। इस विकल्प को मानने वाले विश्वास करते हैं कि विश्व अचानक एवं प्रभावशाली रूप से और अपनी स्वयं की शक्ति से अस्तित्व में आया, यद्यपि इस दृष्टिकोण के प्रस्तावक स्व-सृष्टि की भाषा का उपयोग नहीं करते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि यह अवधारणा एक तार्किक निरर्थकता है। किसी वस्तु द्वारा स्वयं की सृष्टि करने के लिए, उसको स्वयं का सृष्टिकर्ता होना चाहिए, जिसका अर्थ है कि उसको स्वयं की सृष्टि से पहले ही अस्तित्व में होना होगा, जिसका अर्थ है कि एक ही समय में और एक ही सम्बन्ध में उसको अस्तित्व में होना और अस्तित्व में नहीं भी होना होगा। यह तर्कशास्त्र के सबसे आधारभूत सिद्धान्त

का उल्लंघन करता है—ग़ैर-अन्तर्विरोध का नियम *(the law of noncontradiction)*। इसलिए, स्व-सृष्टि की अवधारणा प्रकट रूप से निरर्थक, विरोधाभासी और तर्कहीन है। इस प्रकार के दृष्टिकोण को मानना खोटा ईश्वरविज्ञान है तथा उतना ही खोटा दर्शनशास्त्र और विज्ञान भी है, क्योंकि दर्शनशास्त्र और विज्ञान दोनों ही तर्कबुद्धि के दृढ़ नियमों पर टिके हुए हैं।

अठारहवीं शताब्दी के ज्ञानोदय *(Enlightenment)* के मुख्य आयामों में से एक पूर्वधारणा यह थी कि "परमेश्वर की परिकल्पना-*the God hypothesis*" बाहरी विश्व की उपस्थिति को समझाने के लिए एक अनावश्यक साधन बन गई थी। उस समय तक तो, कलीसिया ने दर्शन के क्षेत्र में सम्मान प्राप्त किया था। पूरे मध्य युग में, दार्शनिक लोग एक सनातन प्रथम कारण *(eternal first cause)* की तर्कसंगत आवश्यकता को रोकने में सक्षम नहीं हुए थे, परन्तु ज्ञानोदय के समय तक, विज्ञान यहाँ तक उन्नत हो गया था कि किसी पारलौकिक, स्व-अस्तित्व रखने वाले, सनातन प्रथम कारण या परमेश्वर के लिए गुहार लगाए बिना ही, विश्व की उपस्थिति की व्याख्या करने के लिए एक अन्य विकल्प का उपयोग किया जा सकता था।

वह सिद्धान्त स्वतः उत्पत्ति *(spontaneous generation)* का था—जिसका विचार था कि संसार अपने आप ही अस्तित्व में आया था। किन्तु, इसमें और स्व-सृष्टि की स्व-विरोधाभासी भाषा में कोई अन्तर नहीं है, इसलिए जब वैज्ञानिक जगत में स्वतः उत्पत्ति निर्थकता बन कर रह गई, तो अन्य अवधारणाएँ उभर कर आईं। एक भौतिक विज्ञान के नोबेल पुरस्कार–विजेता द्वारा एक निबन्ध में यह माना गया कि यद्यपि स्वतः उत्पत्ति एक दार्शनिक असम्भावना है, किन्तु यह बात क्रमिक स्वतः उत्पत्ति *(gradual spontaneous generation)* पर नहीं लागू होती है। उसने यह कहा कि पर्याप्त समय मिलने पर, शून्यता *(nothingness)* कैसे भी करके कुछ को अस्तित्व में लाने के लिए शक्ति उत्पन्न कर सकता है।

प्रायः *स्व-सृष्टि* के स्थान पर उपयोग किया जाने वाला शब्द है *संयोग सृष्टि (chance creation)*, और यहाँ पर एक और तर्कदोष *(logical fallacy)* कार्यान्वित किया जाता है—अनेकार्थक दोष *(fallacy of equivocation)*। अनेकार्थक दोष तब होता है जब, कभी-कभी बहुत सूक्ष्म रूप से किसी तर्क में प्रमुख शब्द अपने अर्थ को बदल देते हैं। यह *संयोग* शब्द के साथ हुआ है। वैज्ञानिक जाँच में *संयोग* शब्द उपयोगी है, क्योंकि यह गणितीय सम्भावनाओं का वर्णन करता है। यदि किसी बन्द कमरे में पचास हज़ार मक्खियाँ हैं, तो किसी भी निश्चित समय में उस कमरे के किसी भी वर्ग इंच में मक्खियों की एक निश्चित संख्या के होने की सम्भावना दिखाने के लिए सांख्यिकीय सम्भावना का उपयोग किया जा सकता है। तो वैज्ञानिक रूप से बातों का पूर्वानुमान लगाने के प्रयास में, सम्भावित भागफलों के जटिल समीकरणों को हल करना एक महत्वपूर्ण और वैध व्यवसाय है।

परन्तु, गणितीय सम्भावनाओं का वर्णन करने के लिए *संयोग* शब्द का उपयोग करना तो एक बात है और वास्तविक रचनात्मक शक्ति वाली किसी वस्तु को सन्दर्भित करने के लिए इस शब्द के उपयोग को परिवर्तित करना पूर्ण रीति से भिन्न बात है। संसार में किसी भी वस्तु पर संयोग द्वारा किसी भी प्रकार का कोई प्रभाव होने के लिए उसको एक ऐसी वस्तु होना पड़ेगा जिसके पास शक्ति है, परन्तु संयोग तो कोई वस्तु *(thing)* है ही नहीं। संयोग केवल एक बौद्धिक अवधारणा है जो गणितीय सम्भावनाओं का वर्णन करती है। क्योंकि इसका कोई अस्तित्व नहीं है, इसलिए इसके पास कोई शक्ति भी नहीं है। इसलिए, यह कहना कि विश्व संयोग से अस्तित्व में आया—कि संयोग ने विश्व को अस्तित्व में लाने के लिए कुछ शक्ति का प्रयोग किया—केवल हमें स्व-सृष्टि के विचार में वापस ले जाता है, क्योंकि संयोग तो कुछ है भी नहीं।

यदि हम इस अवधारणा को पूरी रीति से समाप्त कर दें, और तर्कबुद्धि यह माँग भी करती है कि हम ऐसा करें, तो हमारे पास पहले दो विकल्पों में से एक बचता है: कि विश्व स्व-अस्तित्व में है और सनातन है अथवा यह भौतिक संसार स्व-अस्तित्व में है और सनातन है। ये दोनों ही विकल्प, जैसा कि हमने उल्लेख किया है इस बात पर सहमत हैं कि यदि कुछ भी अभी अस्तित्व में है, तो किसी को कहीं पर स्व-अस्तित्व में होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता, तो वर्तमान में कुछ भी अस्तित्व में नहीं हो सकता था। विज्ञान का एक परम नियम है *एक्स निहिलो निहिल फिट*, जिसका अर्थ है "कुछ नहीं से, कुछ नहीं आता है।" यदि हमारे पास कुछ नहीं है, तो हमारे पास सर्वदा यह ही रहेगा, क्योंकि कुछ-नहीं *(nothing)* कुछ को उत्पन्न नहीं कर सकता है। यदि कभी ऐसा समय था जब सम्पूर्णता से कुछ भी नहीं था, तो हम पूरी रीति से निश्चित हो सकते हैं कि आज इस क्षण में, अभी भी सम्पूर्णता से कुछ भी नहीं होता। किसी वस्तु को स्व-अस्तित्व में होना चाहिए; किसी भी वस्तु के अस्तित्व में होने के लिए, किसी वस्तु के पास अपने भीतर अस्तित्व की शक्ति होनी चाहिए।

ये दोनों विकल्प कई समस्याओं को खड़ा करते हैं। जैसा कि हमने उल्लेख किया है, लगभग सभी इस बात से सहमत हैं कि विश्व सनातनकाल से अस्तित्व में नहीं है, इसलिए पहला विकल्प सम्भव नहीं है। इसी रीति से क्योंकि भौतिक जगत में वस्तुतः वह सब जिसे हम जाँचते हैं उसमें अनिश्चयता *(contingency)* और उत्परिवर्तन *(mutation)* पाया जाता है, दार्शनिकगण इस बात पर बल देने में अनिच्छुक हैं कि विश्व का यह आयाम स्व-अस्तित्व और सनातन है, क्योंकि जो स्व-अस्तित्व में है और सनातन है उसका उत्परिवर्तन या परिवर्तन नहीं होता है। इसलिए यह तर्क दिया जाता है कि कहीं न कहीं विश्व की गहराई में एक धड़कता हुआ केन्द्र या ऊर्जा का भण्डार छिपा हुआ है, जो स्व-अस्तित्व में है और सनातन है, और विश्व में शेष सब कुछ अपने उद्गम के लिए उस वस्तु पर निर्भर है। इस बिन्दु पर भौतिकतावादी *(materialists)* तर्क करते हैं कि

भौतिक विश्व की व्याख्या करने के लिए एक पारलौकिक परमेश्वर की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अस्तित्व का सनातन से धड़कने वाला केन्द्र, विश्व के भीतर पाया जा सकता है न कि विश्व के कहीं बाहर परलोक में।

एक्स निहिलो

यह वह बिन्दु है जहाँ एक भाषाई त्रुटि की गई है। जब बाइबल पारलौकिक के रूप में परमेश्वर के विषय में बात करती है, तो वह परमेश्वर के स्थान का वर्णन नहीं कर रही है। वह यह नहीं कह रही है कि परमेश्वर "ऊपर" या "वहाँ" कहीं पर रहता है। जब हम यह कहते हैं कि परमेश्वर विश्व से ऊपर और परे है, तो हम कह रहे हैं कि वह अपने अस्तित्व में विश्व से ऊपर और परे है। वह सत्तामूलक *(ontologically)* रीति से पारलौकिक है। कोई भी वस्तु जिसमें अपने भीतर अस्तित्व में होने की शक्ति है और जो स्व-अस्तित्व में है उसे उन सभी वस्तुओं से भिन्न होना चाहिए जो व्युत्पन्न होती हैं और निर्भर हैं। इसलिए यदि विश्व के केन्द्र में कुछ स्व-अस्तित्व में है, तो वह अपने स्वभाव ही से शेष सब से पारलौकिक है। हमें इस बात की चिन्ता नहीं है कि परमेश्वर कहाँ रहता है। हम उसके स्वभाव, उसके सनातन होने और विश्व में शेष सब वस्तुओं की उस पर निर्भरता के विषय में चिन्तित हैं।

सृष्टि का परम्परागत मसीही दृष्टिकोण यह है कि परमेश्वर ने जगत को *एक्स निहिलो (Ex Nihilo)* सृजा, "कुछ नहीं में से," जो कि परम नियम *एक्स निहिलो निहिल फिट*, "कुछ नहीं से, कुछ नहीं आता है" से विपरीत प्रतीत होता है। लोगों ने *एक्स निहिलो* सृष्टि के विरुद्ध तर्क उन्हीं तर्कों के आधार पर दिया है। यद्यपि, जब मसीही ईश्वरविज्ञानी कहते हैं कि परमेश्वर ने संसार की सृष्टि *एक्स निहिलो* की है, तो यह इस बात के कहने जैसा नहीं है कि एक समय कुछ नहीं था और फिर उस कुछ नहीं में से, कुछ उत्पन्न हो गया। मसीही दृष्टिकोण यह है कि, "आदि में परमेश्वर था . . .।" तथा परमेश्वर "कुछ-नहीं" नहीं है। परमेश्वर तो कुछ है। परमेश्वर अपने अस्तित्व में स्व-अस्तित्व में है और सनातन है, और कुछ नहीं से वस्तुओं का सृजन करने के लिए उसी के पास क्षमता है। परमेश्वर संसारों को अस्तित्व में बुला सकता है। अपने सम्पूर्ण अर्थ में यही रचनात्मकता की शक्ति है, और यह केवल परमेश्वर के पास है। वह अकेले ही पदार्थ बनाने की क्षमता रखता है, न केवल कुछ पूर्वनिर्मित सामग्री से इसको फिर से आकार देता है।

एक कलाकार संगमरमर का एक वर्गाकार टुकड़ा ले सकता है और उसे एक सुन्दर प्रतिमा का रूप दे सकता है या एक सादा चित्रफलक ले सकता है और एक सुन्दर रूप में रंगो को व्यवस्थित करने के द्वारा उसे बदल सकता है, परन्तु परमेश्वर ने विश्व को ऐसे नहीं बनाया। परमेश्वर ने संसार

को अस्तित्व में बुलाया, और उसकी सृष्टि इस अर्थ में पूर्ण थी कि उसने केवल पहले से उपस्थित वस्तुओं को फिर से आकार नहीं दिया है। पवित्रशास्त्र हमें केवल संक्षिप्त विवरण देता है कि उसने यह कैसे किया। हम उसमें "ईश्वरीय आज्ञार्थक" *(divine imperative)* या "ईश्वरीय आदेश" *(divine fiat),* को पाते हैं जिससे परमेश्वर ने अपनी आज्ञा की शक्ति और अधिकार के द्वारा सृष्टि की। परमेश्वर ने कहा, ". . . हो," और हो गया। यह है ईश्वरीय आज्ञार्थक। कोई भी वस्तु उस परमेश्वर की आज्ञा का प्रतिरोध नहीं कर सकती, जो संसार और उसमें की प्रत्येक वस्तु को अस्तित्व में लाई है।

अध्याय 17

स्वर्गदूत एवं दुष्टात्माएँ

Angels and Demons

एक बार मैंने एक महाविद्यालय के छात्रों से जिन्हें मैं सिखा रहा था यह पूछा कि क्या वे मानते हैं कि शैतान है। केवल कुछ ही छात्रों ने कहा कि वे ऐसा मानते हैं। यद्यपि, जब मैंने उनसे पूछा कि क्या वे परमेश्वर में विश्वास करते हैं, तो लगभग सभी ने कहा कि वे ऐसा करते हैं। मैं इस प्रतिक्रिया से आश्चर्यचकित था इसलिए मैंने फिर से पूछा, "क्या आप परमेश्वर की यह परिभाषा स्वीकार करेंगे कि वह एक ऐसा अलौकिक *(supernatural)* प्राणी *(being)* है जिसके पास लोगों को अच्छाई के लिए प्रभावित करने की क्षमता है?" उन्होंने कहा, हाँ।

फिर मैंने पूछा, "क्या आप शैतान की यह परिभाषा स्वीकार करेंगे कि वह एक ऐसा अलौकिक प्राणी है जिसके पास लोगों को बुराई के लिए प्रभावित करने की क्षमता है?" एक समान परिभाषा के होने के पश्चात् भी, केवल कुछ ही लोगों ने इसका सकारात्मक प्रतिउत्तर दिया।

शैतान के विषय में ऐसी क्या बात है कि विश्व में बुराई की व्यापक उपस्थिति के पश्चात् भी वह इतना अकल्पनीय प्रतीत होता है? जब मैंने उस प्रश्न के विषय में छात्रों से और पूछताछ की, तो मैंने देखना आरम्भ किया कि वे शैतान को भूत, चुड़ैलों और रात में कोलाहल करने वाले प्राणियों के रूप में देखते थे। एक छात्र ने कहा, "मैं किसी हास्यास्पद दिखने वाले प्राणी पर विश्वास नहीं करता हूँ जिसके सींग, फटे खुर और पूँछ हैं, जो एक लाल सूट में घूमता है और लोगों से बुरे काम करवाता है।"

शैतान का यह चित्र मध्य युग में उत्पन्न हुआ, जब कलीसिया शैतान की वास्तविकता के प्रति बहुत सचेत थी। तब लोग शैतान की बुरी लालसाओं का प्रतिरोध करने के लिए विभिन्न रीतियाँ को ढूँढ़ने के लिए अत्यन्त चिन्तित रहते थे। ईश्वरविज्ञानीगण यह सिखा रहे थे कि पतन से पूर्व शैतान एक अच्छा स्वर्गदूत हुआ करता था, और क्योंकि उसका विशिष्ट पाप घमण्ड था, लोग उसका प्रतिरोध उसका उपहास करने के द्वारा कर सकते थे। परिणामस्वरूप, लोगों ने शैतान के घमण्ड पर

आक्रमण करने के लिए उसके ऊटपटांग चित्रणों का आविष्कार किया जिससे कि वह उनसे दूर हो जाए। उन दिनों में कोई भी वास्तव में यह विश्वास नहीं करता था कि शैतान एक त्रिशूलनुमा नुकीले डंडे को लिए हुए था और उसके सींग और खुर फटे हुए थे, परन्तु आगे की पीढ़ियों को यह विश्वास हो गया कि मध्य युग के लोग वास्तव में इस प्रकार के प्राणी पर विश्वास करते थे।

यदि हमें अपने ईश्वरविज्ञान में बाइबलीय होना है और यदि हमें भरोसा है कि बाइबल केवल पौराणिक कथाओं की स्रोत-पुस्तक नहीं है किन्तु परमेश्वर के सचेत, प्रकट सत्य का प्रतिनिधित्व करती है, तो हमें इस बात को गम्भीरता से लेना होगा कि पवित्रशास्त्र स्वर्गदूतों और दुष्टात्माओं के विषय में क्या कहता है।

स्वर्गदूतगण एवं ख्रीष्ट

नए नियम में "स्वर्गदूत" के लिए *ऐंगेलोस (angelos)* शब्द, *हमार्टिया (hamartia)* से अधिक बार आता है, जो कि नए नियम में "पाप" के लिए शब्द है, और *अगापे (agapē)* से भी अधिक बार आता है, जो "प्रेम" के लिए शब्द है। इसलिए क्योंकि बाइबल स्वर्गदूतों के लिए इतना स्थान समर्पित करती है, तो हमारे लिए भी उचित है कि हम उन्हें गम्भीरता से लें।

प्रारम्भिक कलीसिया में स्वर्गदूतों के स्वभाव और कार्य के विषय में चिन्ता एक तात्कालिक महत्व की बात हो गयी थी क्योंकि एक विधर्मता *(heresy)* ने यह दावा किया गया था कि यीशु तो एक स्वर्गदूत था। कुछ अन्य लोगों ने कहा कि यीशु एक अलौकिक प्राणी था—यद्यपि एक मनुष्य से तो अधिक परन्तु परमेश्वर से कम। इब्रानियों का लेखक ऐसी धारणा को चुनौती देता है:

> प्राचीनकाल में परमेश्वर ने नबियों के द्वारा पूर्वजों से बार बार तथा अनेक प्रकार से बातें करके, इन अन्तिम दिनों में हमसे अपने पुत्र के द्वारा बातें की हैं, जिसे उसने सब वस्तुओं का उत्तराधिकारी ठहराया और जिसके द्वारा उसने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना भी की। वह उसकी महिमा का प्रकाश और उसके तत्त्व का प्रतिरूप है, तथा अपने सामर्थ्य के वचन के द्वारा सब वस्तुओं को सम्भालता है। वह पापों को धोकर ऊँचे पर महामहिमन् की दाहिनी ओर बैठ गया। और स्वर्गदूतों से उतना ही उत्तम ठहरा जितना उसने उनसे श्रेष्ठ नाम प्राप्त किया।
>
> क्योंकि उसने स्वर्गदूतों में से कब किसी से यह कहा, "तू मेरा पुत्र है, आज मैंने तुझे उत्पन्न किया है?" और फिर यह, "मैं उसका पिता होऊँगा, और वह मेरा पुत्र होगा"?

> और जब वह पहिलौठे को जगत में फिर लाता है तो कहता है, "परमेश्वर के सब स्वर्गदूत उसे दण्डवत् करें।" (इब्रानियों 1:1-6)

इब्रानियों का लेखक कह रहा है कि परमेश्वर स्वर्गदूतों को भी आज्ञा देता है कि ख्रीष्ट की आराधना करें। वह एक और भेद दर्शाता है:

> परन्तु स्वर्गदूतों में से उसने कब किसी से यह कहा, "जब तक कि मैं तेरे शत्रुओं को तेरे चरणों की चौकी न बना दूँ, तू मेरे दाहिने बैठ?" क्या वे सब, उद्धार पाने वालों की सेवा करने के लिए भेजी गई आत्माएँ नहीं? (पद 13-14)

स्वर्गदूतों के कार्य

यहाँ हमें स्वर्गदूतों के स्वभाव और उनके कार्यभार के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। वे सृजे गए प्राणी हैं और वे सेवकाई करने वाली आत्माएँ हैं। उनके पास स्वाभाविक देह तो नहीं हैं, या न्यूनतम यह कहें कि उनका सत्त्व *(substance)* मानव देह से अधिक अलौकिक है। जब बाइबल "आत्मा" शब्द का उपयोग करती है, तो इसका अर्थ अनिवार्यतः वह नहीं है जो पूरी रीति से अभौतिक है। यह शब्द धुएँ और हवा जैसी वस्तुओं के लिए प्रयोग किया जाता है, जिनमें भौतिक कण होते हैं, परन्तु उनका घनत्व इतना कम है कि उन्हें उचित रीति से "आत्मा" कहा जाता है। तथापि, स्वर्गदूत सृजित प्राणी हैं। स्वर्गदूत और दुष्टात्माएँ दोनों ही सृजित प्राणी हैं। वे परमेश्वर के साथ एक स्तर पर नहीं हैं।

स्वर्गदूतों का पहला कार्य है सेवकाई करना। पवित्रशास्त्र हमें उन भिन्न रीतियों को दिखाता है जिनमें स्वर्गदूत सेवक के रूप में कार्य करते हैं। सर्वप्रथम, कुछ स्वर्गदूत परमेश्वर की तत्काल उपस्थिति में विशेष रूप से सेवकाई करने के लिए सृजे गए हैं। हम इसका एक उदाहरण यशायाह की नबूवत में पाते हैं:

> जिस वर्ष उज्जियाह राजा की मृत्यु हुई, मैंने प्रभु को ऊँचे और भव्य सिंहासन पर विराजमान देखा। उसके वस्त्र के घेरे से मन्दिर भरा हुआ था। उस से ऊपर साराप थे, जिनके छः छः पँख थे; दो से वे अपने अपने मुँह को ढाँपे हुए थे और दो से अपने अपने पैरों को ढाँपे हुए थे और दो से उड़ रहे थे। वे एक दूसरे से पुकार पुकार कर कह रहे थे, "सेनाओं का यहोवा, पवित्र, पवित्र, पवित्र है! सम्पूर्ण पृथ्वी उसके तेज से भरपूर है।" (यशायाह 6:1-3)

स्वर्गदूतों के अनेक कार्यों में से एक है स्वर्ग के राजभवन में सहभागी होना। स्वर्गीय सेना में स्वर्गदूत और प्रधान स्वर्गदूत सम्मिलित हैं, जो स्वर्गदूतों के संसार के भीतर एक अधिकार के क्रम

को अर्थात् एक पदानुक्रम को इंगित करता है। सराप परमेश्वर की तत्काल उपस्थिति में सेवकाई करते हैं और इसलिए प्रतिदिन उसकी उपस्थिति निहारने में सक्षम हैं।

स्वर्गदूतों की सेवकाई का एक और कार्य है दूतों के रूप में सेवा करना। वास्तव में, यूनानी शब्द *ऐंगलोस* का अर्थ "सन्देशवाहक" होता है। जिब्राईल स्वर्गदूत को यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के जन्म की घोषणा करने के लिए और फिर मरियम के पास यीशु के जन्म की घोषणा करने के लिए भेजा गया था। स्वर्गदूतों ने बैतलहम के बाहर मैदान में घोषणा की, "आकाश में परमेश्वर की महिमा और पृथ्वी पर मनुष्यों में शान्ति हो जिनसे वह प्रसन्न है!" (लूका 2:14)।

इसके अतिरिक्त, स्वर्गदूतों ने यीशु की सेवा तब की जब उसने जंगल में शैतान द्वारा चालीस दिनों तक परीक्षा का सामना किया। शैतान द्वारा यीशु के लिए लायी गयीं परीक्षाओं में से एक परीक्षा यह थी कि उसे मन्दिर के शिखर से कूदना था, क्योंकि उससे यह प्रतिज्ञा की गई थी कि स्वर्गदूत उसे उठा लेंगे (मत्ती 4:6)। शैतान ने यीशु को उस स्वर्गदूतीय देखभाल के विषय में चुनौती दी जिसकी उससे प्रतिज्ञा की गई थी, परन्तु यीशु ने उस परीक्षा का उत्तर नहीं दिया। हमें बताया जाता है कि यीशु द्वारा सफलतापूर्वक शैतान की परीक्षा को विफल करने के तुरन्त पश्चात् अनेक स्वर्गदूत प्रकट हुए और उसकी सेवा करने लगे (पद 11)।

जब यीशु को पकड़ा गया, उसने यह दावा किया कि उसके पास स्वर्गदूतों की सेनाओं को बुलाने का अधिकार था जो आकर उसको बचा सकते थे (मत्ती 26:53), जो कि दोतान में एलीशा के साथ हुई घटना का स्मरण दिलाती है, जब आग के रथ उसके बचाव के लिए आए थे। दोतान में वे स्वर्गदूत नग्न आँखों के लिए अदृश्य थे, जिसके कारण एलीशा ने अपने दास के विषय में प्रार्थना की, "इसकी आँखें खोल दे कि वह देख सके" (2 राजा 6:17)।

अधिकाँश समय तो स्वर्गदूत अदृश्य रहते हैं, परन्तु वे दृश्य बन सकते हैं, जैसा कि उन्होंने समय-समय पर यीशु की सांसारिक सेवकाई के समयकाल में किया था। यीशु के पुनरुत्थान की उद्घोषणा स्वर्गदूतों द्वारा क़ब्र पर की गई और स्वर्ग में उसके प्रवेश की उद्घोषणा भी स्वर्गदूतों की उपस्थिति द्वारा की गई थी। इसके अतिरिक्त, हमें बताया जाता है कि जब ख्रीष्ट लौटेगा, तो वह महिमा में अपने स्वर्गदूतों के साथ आएगा (मरकुस 8:38)। इसलिए हम स्वर्गदूतों को पूरे पवित्रशास्त्र में परमेश्वर के संतों की सेवा करते हुए पाते हैं, और विशेष रूप से यीशु की।

अन्य स्थान पर हमें बताया गया है, "अतिथि-सत्कार करना न भूलो, क्योंकि इसके द्वारा कुछ लोगों ने अनजाने में ही स्वर्गदूतों का आदर सत्कार किया है" (इब्रानियों 13:2)। पुराने नियम में, स्वर्गदूत कभी-कभी पुरुषों के रूप में दिखाई देते थे और उन्हें तुरन्त स्वर्गदूतीय लोक से आगन्तुकों

के रूप में या परमेश्वर के सन्देश वाहकों के रूप में पहचाना नहीं गया था। स्वर्गदूत आज भी निरन्तर बड़ी कठिनाइयों के समय में संतों की सेवा करते हैं।

शैतान और दुष्टात्माएँ

हमें पतित स्वर्गदूतों के विषय को भी देखना चाहिए। जिस प्रकार आदम और हव्वा मूल रूप से भले और पवित्र बनाए गए थे, वैसे ही स्वर्गदूतों को भला बनाया गया था, परन्तु स्वर्गदूतों का एक समूह, लूसिफर के साथ पतित हो गया। लूसिफर उन पतित स्वर्गदूतों का सर्वोच्च प्रधान स्वर्गदूत बन गया।

यह महत्वपूर्ण है कि मसीही समझें कि शैतान परमेश्वर नहीं है। हम द्वैतवादी *(dualists)* नहीं हैं जो कि दो किन्तु समान और विपरीत शक्तियों में, एक भली और एक बुरी, एक प्रकाश और एक अन्धकार पर विश्वास करते हैं। शैतान एक सृजा हुआ प्राणी है। उसके पास परमेश्वर की शक्ति नहीं है। वह उन कार्यों को नहीं कर सकता जिन्हें केवल परमेश्वर कर सकता है, किन्तु वह मनुष्यों की तुलना में अधिक शक्तिशाली और धूर्त है। वह हमसे कहीं अधिक शक्तिशाली है, परन्तु स्वयं परमेश्वर से बहुत निर्बल है, जिसके कारण किसी भी व्यक्ति को जिसमें पवित्र आत्मा निवास करता है डरना नहीं चाहिए कि वह दुष्टात्मा से ग्रसित हो जाएगा। वह जो तुम में है, उस से जो संसार में है, कहीं बढ़कर है (1 यूहन्ना 4:4)।

हमें शैतान की धूर्त शक्ति के प्रति चिताया जाता है क्योंकि हम पतरस से कुछ भिन्न नहीं हैं, जिसने अपने अहंकार में यह मान लिया था कि वह किसी भी परीक्षा का सामना कर सकता था और फिर आगे चलकर उसने यीशु का इनकार किया। यीशु वास्तविकता को जानता है, जिसके कारण उसने पतरस से कहा, “शैतान ने तुम लोगों को गेहूँ के समान फटकने के लिए आज्ञा माँग ली है” (लूका 22:31)। पतरस की शैतान से कोई तुलना नहीं थी। फिर भी उसी समय, पवित्रशास्त्र हमें यह भी बताता है कि यदि हम शैतान का सामना करते हैं, तो वह हमसे भाग जाएगा (याकूब 4:7)।

पवित्रशास्त्र शैतान के लिए विभिन्न चित्रों का उपयोग करता है। हमें बताया गया है कि वह “एक गर्जने वाले सिंह की भाँति इस ताक में रहता है कि किसको फाड़ खाए” (1 पतरस 5:8)। अपने मस्तिष्क में, मैं दो चित्रों को देखता हूँ। पहला चित्र एक भयंकर और भयानक सिंह का है, और दूसरा चित्र है कि वही सिंह पवित्र आत्मा प्राप्त व्यक्ति द्वारा उसका विरोध करने के पश्चात् अपने पैरों के बीच अपनी दुम दबा कर किसी पथ पर भागा जा रहा है। तो इसलिए, हमें शैतान को बहुत अधिक शक्ति का श्रेय नहीं देना चाहिए, जैसे कि मानो वह स्वयं परमेश्वर है। पवित्रशास्त्र हमें यह भी बताता है कि वह परीक्षा लेने वाला, धोखेबाज और दोष लगाने वाला है। वह लोगों को पाप में लुभाने के द्वारा आनन्द लेता है, जैसा कि उसने ख्रीष्ट को जंगल की परीक्षा के समय गिराने

का प्रयास किया था। शैतान सम्भवतः लोगों की परीक्षा लेने की तुलना में कहीं अधिक उन पर पाप करने का दोष लगाता है। उसका लक्ष्य हमें पश्चात्ताप करने के विपरीत निराशा की ओर भेजना है। शैतान हम पर पाप करने का आरोप तो लगाता है परन्तु साथ ही साथ निदान को हमसे छिपा भी देता है। वह चाहता है कि हम अपने आप को नाश करें, जबकि ख्रीष्ट हमें क्षमा और छुटकारे के लिए बुलाता है।

मैं इस अध्याय का समापन एक चेतावनी के साथ करता हूँ। नए नियम के अनुसार, शैतान का चरित्र बहुरूपिया वाला है। वह भले के रूप में प्रकट होने की क्षमता रखता है। हमें उसे मात्र एक दुष्ट किन्तु हास्यास्पद जन के रूप में सोचना बन्द करना होगा, क्योंकि शैतान में ज्योतिर्मय स्वर्गदूत के रूप में प्रकट होने की क्षमता है (2 कुरिन्थियों 11:14)। वह हमारे पास एक कुरूप अवस्था में नहीं किन्तु भक्तिपूर्ण और शुद्ध रूप में, और सम्भवतः यहाँ तक कि पवित्रशास्त्र को उद्धृत करते हुए हमें परमेश्वर के वचन के विरुद्ध जाने के लिए प्रेरित करके हमें धोखा देने वाले के रूप में आयेगा।

अध्याय 18

मनुष्य की सृष्टि

The Creation of Man

पश्चिमी संस्कृति में, हमने मनुष्यों के उद्गम *(origin)* की समझ के विषय में एक मौलिक परिवर्तन को देखा है। उद्विकास *(evolution)* के विभिन्न सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है। सूक्ष्म-उद्विकास *(microevolution)* से लेकर बृहत्-उद्विकास *(macroevolution)* तक सब कुछ ने और इनके बीच की अनेक सूक्ष्मताओं ने हमारे प्रारम्भ की गरिमा के विषय में मनुष्यों के भरोसे को घटा दिया है। हम प्रायः स्वयं को "वैश्विक दुर्घटनाओं" के रूप में वर्णित होते हुए सुनते हैं, जो हमारे वर्तमान उद्विकासवादी चरण में आदियुगीन द्रव्य *(primordial soup)* से, जैसा कि एक मायने में समझा जाता है, यह आकस्मिक रूप से उभरा था। यह कहा गया है कि मनुष्य विकसित हुए बड़े कीटाणु हैं, जो एक विशाल वैश्विक यन्त्र के एक पहिए पर बैठे हैं जिसकी नियति विनाश है। ज्यां-पाल सार्त्र *(Jean-Paul Sartre)*, जो कि एक अस्तित्ववादी *(existentialist)* दार्शनिक थे, उन्होंने मनुष्य को "एक अनुपयोगी भावावेग" *(a useless passion)* के रूप में परिभाषित किया तथा मानवता के महत्व पर उनकी अन्तिम टिप्पणी केवल एक ही शब्द थी: "उबकाई" *(nausea)*।

मनुष्यों की प्रकृति, उत्पत्ति और महत्व के विषय में इस प्रकार के निराशावादी विचारों के साथ हम पर बौछार की गई है। विडम्बना यह है कि इस ही समय में हमने मानववाद *(humanism)* के सरलमति रूपों का एक पुनर्जागरण देखा है जो मानव की गरिमा का उत्सव मनाते हैं। मानववादी संसार भर में मानवाधिकारों के पक्ष की ओर से विरोध प्रदर्शन करते हैं। मनुष्यों की गरिमा के विषय में उनके सरलमति विचार अन्ततः यहूदी-मसीहियत से उधार ली गई पूँजी पर टिका हुआ है, जो मानवजाति की गरिमा को परमेश्वर के सृष्टि के कार्य के द्वारा स्थापित देखता है। मानव जीवन की पावनता अन्तर्निहित या आन्तरिक नहीं है; इसके विपरीत यह परमेश्वर द्वारा उस मूल्य के निर्धारित किए जाने से व्युत्पन्न हुई है, जिसे हम उत्पत्ति में सृष्टि के वृतान्त में देखते हैं।

इमागो डेय

सृष्टि का वृतान्त उन छः दिनों का वर्णन करता है जिनमें परमेश्वर ने विश्व के विभिन्न तत्त्वों का निर्माण किया। उस समय की समाप्ति पर, हमें बताया जाता है:

> फिर परमेश्वर ने कहा, "हम मनुष्यों को अपने स्वरूप में, अपनी समानता के अनुसार बनाएँ। और वे समुद्र की मछलियों और आकाश के पक्षियों पर तथा घरेलू पशुओं और सारी पृथ्वी और हर एक रेंगने वाले जन्तु पर जो पृथ्वी पर रेंगता है, प्रभुता करें।"
>
> और परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप में सृजा। अपने ही स्वरूप में परमेश्वर ने उसको सृजा। उसने नर और नारी करके उनकी सृष्टि की।
>
> परमेश्वर ने उन्हें आशीष दी, और उनसे कहा, "फूलो-फलो और पृथ्वी में भर जाओ और उसे अपने वश में कर लो, और समुद्र की मछलियों तथा आकाश के पक्षियों और पृथ्वी पर चलने-फिरने वाले प्रत्येक जीव-जन्तु पर अधिकार रखो।" (उत्पत्ति 1:26-28)

आज हम जिस संसार में रहते हैं, वह समुद्री कछुए के अंडे को मानव भ्रूण की तुलना में अधिक महत्व देता है। हम व्हेल को मनुष्यों की तुलना में अधिक गरिमा देते हैं, जो सृष्टि के क्रम का एक उलटाव है। परमेश्वर ने अपने स्वरूप में केवल मानव जाति को सृजा। एक अर्थ में, परमेश्वर ने पुरुष और स्त्री को अपने उप-अधिकारियों के रूप में सृजा, सम्पूर्ण सृष्टि पर अपने उप-शासकों के रूप में। यही वह प्रतिष्ठा है जिसे परमेश्वर ने मानवता को दी है। पवित्रशास्त्र का यही वह अर्थ है जब वह हमें बताता है कि नर और नारी *इमागो डेय (Imago Dei)* में रचे गए थे, या परमेश्वर के स्वरूप में बनाए गए थे।

मनुष्यों में ऐसी विशिष्ट बात क्या है जो उन्हें जन्तु जगत के अन्य सभी सदस्यों से पृथक करती है? ऐतिहासिक रूप से, परमेश्वर के स्वरूप की विशिष्ट विशेषताओं को ज्ञात करने के लिए कई प्रयास किए गए हैं। उत्पत्ति 1:26 में हम पढ़ते हैं, "फिर परमेश्वर ने कहा, 'हम मनुष्यों को अपने स्वरूप में, अपनी समानता के अनुसार बनाएँ।'" यहाँ पर दो भिन्न शब्दों का उपयोग किया गया है: *स्वरूप (image)* और *समानता (likeness)*। रोमन कैथोलिक चर्च ने कहा था कि बाइबल यहाँ मनुष्यों की एक नहीं परन्तु दो विशिष्ट विशेषताओं का वर्णन कर रही है, अर्थात् स्वरूप और समानता के बीच में एक अन्तर है। रोमन कैथोलिक ईश्वरविज्ञानी कहते हैं कि स्वरूप शब्द उन कुछ पक्षों को सन्दर्भित करता है जो हम में और परमेश्वर में एक समान हैं, जैसे तर्कसंगतता *(rationality)* और इच्छाशक्ति, और समानता उस मूल धार्मिकता *(original righteousness)* से मेल खाती है जिसे मानवीय स्वभाव में सृष्टि के समय जोड़ा गया था।

उत्पत्ति 1:26 की प्रोटेस्टेंट व्याख्या इस से बहुत अलग है। प्रोटेस्टेंट व्याख्याकार कहते हैं कि ये दो अलग-अलग शब्द एक *हेंडायाडिस-hendiadys* हैं, जो कि केवल एक व्याकरणिक संरचना होती है जिसमें दोनों शब्द एक ही बात को सन्दर्भित करते हैं। हम इस संरचना का एक और उदाहरण रोमियों 1 में पाते हैं, जहाँ हमें बताया जाता है कि परमेश्वर का प्रकोप "समस्त अभक्ति और अधार्मिकता" पर प्रकट होता है (रोमियों 1:18)। परमेश्वर का प्रकोप या तो दो अलग-अलग वस्तुओं पर निर्देशित होता है—अभक्ति और अधार्मिकता—या एक वस्तु पर जिसे दोनों शब्द वर्णित करते हैं। प्रोटेस्टेन्ट लोगों *(Protestants)* के बीच सर्वसम्मति यह है कि रोमियों 1:18 और उत्पत्ति 1:26 दोनों में एक हेंडायाडिस पाया जाता है। हम जिस भी अर्थ में परमेश्वर के स्वरूप में बनाए गए थे, उसी अर्थ में हम उसकी समानता में बनाए गए थे।

भिन्न किन्तु एक समान

तो परमेश्वर के स्वरूप में बनाए जाने का क्या अर्थ है? मध्यकालीन ईश्वरविज्ञानियों ने *एनालोगिया एन्टिस (analogia entis)* का विचार प्रस्तुत किया था, जिस पर बीसवीं शताब्दी में नवशास्त्रसम्मत ईश्वरविज्ञानियों द्वारा, विशेष कर कार्ल बार्थ *(Karl Barth)* के द्वारा बहुत प्रहार किया गया। *एनालोगिया एन्टिस* "प्राणी की समरूपता" है। यद्यपि पवित्रशास्त्र स्पष्ट करता है कि परमेश्वर की प्रकृति और किसी भी सृजित प्राणी की प्रकृति के बीच एक व्यापक अन्तर है, किन्तु कुछ रीति से हम परमेश्वर के समान हैं। हम निश्चित रूप से परमेश्वर नहीं हैं; हम सृजे गए प्राणी हैं, और उस के पास स्वयं में प्राणी होने की शक्ति है। यद्यपि, परमेश्वर को "सम्पूर्णता से परे" के रूप में सन्दर्भित करना, आज शास्त्रसम्मत ईश्वरविज्ञानियों के बीच भी लोकप्रिय हो गया है। इस अभिव्यक्ति का उपयोग परमेश्वर के प्रताप और पारलौकिकता की ओर ध्यान आकर्षित करने, और परमेश्वर को सृष्टि में किसी भी वस्तु के साथ भ्रमित किए जाने के विरुद्ध एक बाधा उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। तौभी, उस अभिव्यक्ति को शाब्दिक रीति से लेना मसीहियत के लिए घातक है। यदि परमेश्वर पूरी रीति से, पूर्णतः और हर प्रकार से अलग होता, तो सृष्टिकर्ता और सृष्टि के बीच में कोई भी सम्पर्क की बात नहीं होती; संचार के लिए कोई मार्ग भी नहीं होता। मसीही विचार के लिए यह महत्वपूर्ण है कि परमेश्वर और मनुष्य के बीच कुछ समानता है जो परमेश्वर के लिए हमसे बात करना सम्भव बनाती है। भले ही वह मानवीय भाषा में हमसे बात करता है, वह जो कहता है वह अर्थपूर्ण है क्योंकि हम उसके साथ कुछ समानता साझा करते हैं।

सम्पूर्ण इतिहास में, उस समानता का ठीक-ठीक पता लगाने के लिए प्रयास किए गए हैं। यह सबसे लोकप्रिय दृष्टिकोण रहा है कि वह स्वरूप हमारी तर्कसंगतता *(rationality)*, हमारी

इच्छाशक्ति *(volition)* और हमारे स्नेहों *(affections)* में पाया जाता है। हमें एक रीति से परमेश्वर के समान ही तर्कसंगत कहा जाता है; दूसरे शब्दों में, परमेश्वर के पास मस्तिष्क है और हमारे पास भी मस्तिष्क है। सदियों से लोगों ने यह माना कि पशु केवल मूल प्रवृत्ति *(instinct)* के अनुसार कार्य करते हैं, सचेत निर्णय से नहीं। यद्यपि, पशुओं द्वारा विभिन्न रीतियों से की गई प्रतिक्रियाओं के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो पशु भी सचेत निर्णय लेते हैं, तो इसलिए अब यह विचार अधिकाँशतः परिवर्तित हो गया है कि तर्कसंगतता मनुष्यों तक ही सीमित है और पशु मूल प्रवृत्ति द्वारा परिभाषित होते हैं। लोग अब कहते हैं कि जो बात मनुष्य को विशिष्ट बनाती है वह है हमारी उन्नत तर्क-वितर्क *(reasoning)* करने की क्षमता। परमेश्वर के पास ज्ञान है और वह जटिल तर्क-वितर्क करता है, और हमारे पास मस्तिष्क हैं और चिन्तन की शक्ति है जो कि जन्तु जगत में अद्वितीय है।

इसके अतिरिक्त, हमारे पास चुनने की क्षमता है। हम इच्छाशक्ति द्वारा चलित जीव हैं। एक नैतिक प्राणी होने के लिए, किसी व्यक्ति के पास एक मस्तिष्क और एक इच्छाशक्ति होनी चाहिए, जैसा कि परमेश्वर के पास है। हम चूहों को कठघरे में खड़ा नहीं करते हैं या अपने कुत्तों में नैतिक रूप से विकसित सदाचार की भावना की बात नहीं करते हैं, तौभी हम मनुष्यों को उन चुनावों के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं जो वे करते हैं। मनुष्य नैतिक अभिकर्ता हैं। वे इच्छाशक्ति द्वारा चलित जीव हैं। परमेश्वर ने मनुष्यों को आदेश दिया है कि वे पवित्र बनें जैसा कि वह पवित्र है और उसकी धार्मिकता को थोड़ा प्रतिबिम्बित करें, जो कि हम सम्भवतः नहीं कर पाते यदि हम तर्कसंगत, नैतिक प्राणी नहीं होते और यदि हमारे पास भावनाएँ नहीं होतीं। अतः ऐतिहासिक रूप से, कलीसिया ने इन विशेषताओं को जो परमेश्वर और मनुष्यों दोनों में पायी जाती हैं, उस स्वरूप के सारत्तत्त्व के रूप में देखा है।

बार्थ ने उस विचार को इस आधार पर चुनौती दी कि स्वरूप धारण करने वालों के रूप में हमारी सृष्टि दोनों "नर और नारी" करके हुई है। उत्पत्ति में *मनुष्य (man)* शब्द का प्रयोग साधारण रीति से किया जाता है; इसमें नर और नारी दोनों सम्मिलित हैं, जिससे कि सम्पूर्ण मानव जाति परमेश्वर के स्वरूप को धारण करने में सहभागी है। बार्थ ने तर्क दिया कि "नर और नारी" होना, मात्र प्राणी होने की एक सादृश्यता *(analogy)* नहीं है, किन्तु सम्बन्ध की एक सादृश्यता है। जिस प्रकार परमेश्वर के स्वयं के भीतर परमेश्वरत्व में पारस्परिक सम्बन्ध हैं, उसी रीति से हमारी विशिष्टता आपस में पारस्परिक सम्बन्ध बनाने की क्षमता है। यह निश्चित रूप से सच है कि हम पारस्परिक सम्बन्ध बनाने में सक्षम हैं, परन्तु ऐसा पशु भी करते हैं, और यदि केवल यही सादृश्यता का बिन्दु है, तो हम परमेश्वर के साथ सम्बन्ध बनाने में असमर्थ होते क्योंकि उसके साथ संवाद करने का कोई भी साधन नहीं होता।

संसार के सभी जन्तुओं में से, मनुष्य को एक अनोखा उत्तरदायित्व दिया गया है, और उस

उत्तरदायित्व के साथ एक अनुरूप क्षमता है। मानव जाति की अद्वितीयता का ही एक भाग है वह कार्य जिसे हमने परमेश्वर से शेष सृष्टि के सम्मुख उसका प्रतिनिधि बनने के लिए प्राप्त किया है, अर्थात् परमेश्वर के चरित्र को दर्शाने के लिए। यह तब स्पष्ट हो जाता है जब हम दूसरे आदम, स्वयं ख्रीष्ट के नए नियम के चित्र से उत्पत्ति की ओर मुड़ते हैं, जिसमें हम परमेश्वर के स्वरूप में बनाए जाने के अर्थ की सिद्ध परिपूर्णता को देखते हैं। इब्रानियों का लेखक हमें बताता है कि ख्रीष्ट "उसकी महिमा का प्रकाश और उसके तत्त्व का प्रतिरूप" है (इब्रानियों 1:3)। ख्रीष्ट की सिद्ध आज्ञाकारिता में, हम परमेश्वर की पवित्रता और धार्मिकता को प्रतिबिम्बित करने के लिए मानव उत्तरदायित्व की पूर्ति को देखते हैं। मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि जो हम स्वरूप में पाते हैं, वह है परमेश्वर के चरित्र को प्रतिबिम्बित करने की एक अद्वितीय क्षमता जिससे कि शेष संसार मनुष्य को देखकर यह कह सके कि, "इससे हमें यह पता चलता है कि परमेश्वर किस प्रकार का है?"

दुर्भाग्यवश जब संसार हमें देखता है, तो वह यह नहीं देखता है कि परमेश्वर किस प्रकार का है, और इस कारण से परमेश्वर के छुटकारे की प्रतीक्षा करते हुए "सम्पूर्ण सृष्टि मिलकर प्रसव-पीड़ा से अब तक कराहती और पीड़ा में पड़ी तड़पती है" (रोमियों 8:22)। पतन के द्वारा मनुष्य में परमेश्वर का स्वरूप इतना बिगड़ गया है कि इसके कारण यह प्रश्न बना रहता है कि: क्या पतन के द्वारा मनुष्य में परमेश्वर का स्वरूप नाश कर दिया गया था कि अब हम परमेश्वर के स्वरूप धारक नहीं हैं? शास्त्रसम्मत मसीहियत बल देती है कि भले ही परमेश्वर का स्वरूप धुँधला हो गया है, परन्तु यह नष्ट नहीं हुआ है। यहाँ तक कि पापी मनुष्य भी परमेश्वर के स्वरूप में बनाए गए प्राणी हैं, यह एक ऐसा तथ्य जिसके कारण परमेश्वर के स्वरूप के संकीर्ण *(narrow)* या औपचारिक *(formal)* अर्थ में और परमेश्वर के स्वरूप के विस्तृत *(broader)* या भौतिक *(material)* अर्थ में भिन्नता करने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। यद्यपि हम पतित हैं, हम विचार कर सकते हैं। हमारे मस्तिष्क पाप से संक्रमित हो गए हैं, किन्तु हमारे पास अभी भी मस्तिष्क है, और हम अभी भी तर्क-वितर्क कर सकते हैं। हम भ्रांतिपूर्वक तर्क-वितर्क करते हैं, परन्तु हमारे पास क्षमता है। हमारे पास एक इच्छाशक्ति है, और हमारे पास चुनाव करने की क्षमता है।* इसी रीति से हमारे पास स्नेह भी हैं। इसलिए परमेश्वर का स्वरूप मनुष्य में बना हुआ है।

* अधिक गहराई से समझने के लिए कि हम परमेश्वर को कैसे प्रतिबिम्बित करते हैं, आर.सी. स्प्रोल की अध्ययन पुस्तिका पढ़ें *A Shattered Image: Facing Our Human Condition* (Sanford, Fla,: Ligonier Ministries, 1992).

अध्याय 19

पाप का स्वभाव

The Nature of Sin

जब परमेश्वर ने सृष्टि में अपने कार्य के प्रत्येक चरण को पूरा किया, तो उसने उस पर दृष्टि डाली और उसे अच्छा घोषित किया। परन्तु आज, हम उस अच्छाई को नहीं देखते हैं। जगत का अस्तित्व एक पतित स्थिति में है, और हम इसे पतित लोगों के रूप में देखते हैं। हमारे जगत में बहुत कुछ भयंकर रीति से बिगड़ा हुआ है और हमारे सामने आने वाली कई समस्याएँ मानव जाति के पतन का एक सीधा परिणाम हैं।

अलगाव

वह वैश्विक उथल-पुथल जो आदम और हव्वा के पाप के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई, उसको *अलगाव (alienation)* या *सम्बन्ध-विच्छेदन (estrangement)* के रूप में सारांशित किया जा सकता है। बाइबल के अनुसार उद्धार की समझ के लिए दोनों शब्द महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि पवित्रशास्त्र में उद्धार को *मेल-मिलाप* की भाषा में व्यक्त किया गया है। मेल-मिलाप तब ही आवश्यक होता है जब सम्बन्ध-विच्छेदन या अलगाव हुआ हो। पुराने नियम के कई प्रारम्भिक अध्याय इस अलगाव की ऐतिहासिक जड़ों का वर्णन करते हैं।

सबसे पहले, हमें दिखाया गया है कि पतन के पश्चात् मनुष्य और प्रकृति *(nature)* के बीच में अलगाव है। पाप केवल एक मानवीय समस्या नहीं है; इसने पूरे विश्व में उथल-पुथल मचा दी है: "हम जानते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि मिलकर प्रसव-पीड़ा से अभी तक कराहती और तड़पती है। और न केवल यह, परन्तु स्वयं हम भी जिनके पास आत्मा का प्रथम फल है, अपने आप में कराहते हैं और अपने लेपालक पुत्र होने और देह के छुटकारे की बड़ी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं" (रोमियों 8:22–23)। परमेश्वर ने आदम और हव्वा को सृष्टि पर प्रभुता दी, इसलिए जब उनका

पतन हुआ, तो उनकी भ्रष्टता ने उन सब को प्रभावित किया जो उनके अधिकार-क्षेत्र में थे। पतन के पश्चात् जब परमेश्वर ने अपना श्राप आदम और हव्वा पर डाला, तो उस श्राप ने भूमि को भी प्रभावित किया; पृथ्वी पतित मानव जाति के हाथों के लिए प्रतिरोधी बन गई।

दूसरा, मनुष्य और परमेश्वर के बीच अलगाव है। पतन के परिणामस्वरूप, हम स्वभाव ही से परमेश्वर के साथ शत्रुता की स्थिति में हैं। हम लोगों को यह कहते सुनते हैं कि परमेश्वर सभी से अप्रतिबन्धित *(unconditionally)* रीति से प्रेम करता है, किन्तु इस प्रकार की सोच इस सम्बन्ध-विच्छेदन की वास्तविकता को अनदेखा करती है। वास्तव में, पवित्रशास्त्र का अधिकाँश भाग हम पर उन उपायों को प्रकट करने के लिए समर्पित है जिन्हें परमेश्वर ने इस समस्या का समाधान करने के लिए आरम्भ किया है। उद्धार का लक्ष्य सम्बन्ध-विच्छेदित पक्षों में मेल-मिलाप कराना है। यदि उन पक्षों में मेल-मिलाप नहीं कराया जाता है, तो वे विरक्त (सम्बन्ध-विच्छेदित) बने रहते हैं।

तीसरा, मनुष्य का मनुष्य से अलगाव है। मनुष्यों के मध्य अत्यधिक हिंसा होती है, न केवल व्यक्तिगत स्तर पर टूटे सम्बन्धों के मध्य में वरन् बड़े स्तर पर राष्ट्रों का अन्य राष्ट्रों के विरुद्ध खड़े होने में भी। जब हम पाप करते हैं, तो हम न केवल परमेश्वर की अवज्ञा और उसका अपमान करते हैं, किन्तु हम हत्या, चोरी, व्यभिचार, निन्दा, घृणा और ईर्ष्या के द्वारा एक दूसरे का भी उल्लंघन करते हैं। पाप का पूरा विस्तार उस रीति का वर्णन करता है जिसमें हम अन्य मनुष्यों को घायल करते हैं और बदले में उनके द्वारा घायल किए जाते हैं।

अन्ततः, हम मनुष्य का स्वयं से ही अलगाव देखते हैं। आजकल लोग आत्मसम्मान *(self-esteem)* और मानवीय गरिमा पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि अनेक विद्यालय, बच्चों के दुर्व्यवहार के पश्चात् भी शारीरिक दण्डात्मक उपायों को प्रतिबन्धित करते हैं जिससे कि उनके कोमल अहंकार को ठेस पहुँचाने से बचा जा सके। यह बात एक चरम स्थिति पर पहुँच चुकी है। आत्मसम्मान आन्दोलन के पीछे एक अनुभूति है कि मनुष्यों को आत्मसम्मान के साथ एक समस्या है। उसका कारण है पाप। पतन के समय, हम न केवल परमेश्वर और अन्य लोगों से किन्तु स्वयं से भी अलग हो गए हैं। हमारे लिए लोगों को यह कहते हुए सुनना असामान्य नहीं है कि, "मैं अपने आप से घृणा करता हूँ।" उस मनोभाव के नीचे यह तथ्य है कि हम उस दुष्टता को जो पूरी मानव जाति में वास करती है सम्पूर्णता से नकार नहीं सकते हैं।

कार्ल मार्क्स का मानना था कि श्रम से अलगाव ही मानव जाति की सब समस्याओं में एक सबसे बड़ी समस्या थी। जबकि मार्क्स कई विषयों में त्रुटिपूर्ण थे, परन्तु यहाँ वे एक रीति से ठीक ही कह रहे थे, क्योंकि किसी न किसी प्रकार की पीड़ा और संघर्ष हर व्यवसाय के साथ लगी रहती है। हम उसकी जड़ों को अदन की वाटिका में पाते हैं, जहाँ परमेश्वर का श्राप मनुष्य के कार्य पर आया था। हम जानते हैं कि श्रम अपने आप में एक श्राप नहीं था, क्योंकि मनुष्य को पतन से पहले कार्य में लगाया गया था। इसके अतिरिक्त, परमेश्वर भी कार्य करता है, और अपने श्रम में वह

परिपूर्णता और धन्यता पाता है, जो कि हमारे लिए मूल उद्देश्य था। तौभी पतन के कारण, पाप कार्यस्थल पर क्रियाशील है।

पाप क्या है?

पौलुस ने रोमियों में लिखा, "सब ने पाप किया है और परमेश्वर की महिमा से रहित हैं" (3:23)। जिस यूनानी शब्द को "पाप" के रूप में अनुवादित किया गया है वह *हमार्टिया (hamartia)* है। व्युत्पत्तिशास्त्र *(etymologically)* के अनुसार, यह शब्द धनुर्विद्या के क्षेत्र से आता है, विशेषकर जब एक धनुर्धारी अपने लक्ष्य के केन्द्र से चूक जाता था। किन्तु, बाइबल का अर्थ इससे अधिक गहराई में जाता है, क्योंकि "लक्ष्य के केन्द्र से चूक जाने" का अर्थ सम्भवतः हो सकता है कि वह त्रुटि तो केवल छोटी है। सच्चाई यह है कि धार्मिकता का स्तर या लक्ष्य का केन्द्र तो परमेश्वर की व्यवस्था है, और हम इसके आसपास भी नहीं हैं। परमेश्वर की धार्मिकता के स्तर तक पहुँचने में हमारी पूर्ण विफलता ही पाप की परिभाषा है।

वेस्टमिंस्टर की छोटी प्रश्नोत्तरी *(Westminster Shorter Catechism)* पाप को "परमेश्वर की व्यवस्था के प्रति किसी भी प्रकार से अनुरूपता में अभाव, या उल्लंघन" के रूप में परिभाषित करती है (प्रश्न और उत्तर 14)। एक ओर अनुरूपता *(conformity)* का अभाव है और दूसरी ओर उल्लंघन है। *घटी (want)* शब्द एक नकारात्मक अभिव्यक्ति है, जबकि *उल्लंघन (transgression)* एक सक्रिय या सकारात्मक अभिव्यक्ति है। जब मैंने नीदरलैंड्स में एक विद्यालय में पढाई की, तो मैंने ध्यान दिया कि डच *(Dutch)* समाज बहुत सारे नियमों द्वारा शासित था जो कि जीवन के हर पक्ष को परिभाषित करते थे। मुझे एक बहुधा व्यक्त किये जाने वाला कथन स्मरण आता है: "आपने नियम की सीमा पार कर दी है। उल्लंघन का यही स्वभाव है। यह एक रेखा को पार करना या एक सीमा के पार पाँव को रखना है जिसे व्यवस्था द्वारा परिभाषित किया गया है। यह उल्लंघन का सकारात्मक आयाम है। इसके विपरीत, अनुरूपता में घटी नियम की माँगों के अनुसार अभाव या विफलता की ओर ध्यान आकर्षित कराती है।

कुछ इसी प्रकार से, ईश्वरविज्ञानी 'कृत्य पाप' *(sins of commission)* और 'अकृत पाप' *(sins of omission)* के बीच अन्तर करते हैं। हम किसी कृत्य पाप के दोषी तब होते हैं जब हम कुछ ऐसा करते हैं जिसको करने की हमें अनुमति नहीं है, और हम अकृत पाप तब करते हैं जब कुछ ऐसा करने में हम विफल होते हैं जिसे करने के लिए हम उत्तरदायी हैं। उस सम्बन्ध में, पाप में नकारात्मक और सकारात्मक दोनों पक्ष हैं। उन पक्षों को स्वयं बुराई की प्रवृत्ति *(nature of evil)* पर ऐतिहासिक ईश्वरविज्ञानिक और दार्शनिक अटकलों से जोड़ा जा सकता है। यह कहा गया है कि बुराई की उत्पत्ति यहूदी-मसीही धर्म का बड़ा खोट है क्योंकि यह कुछ विशेष रूप से कठिन प्रश्नों को उत्पन्न करता है: एक परमेश्वर जो पूरी रीति से धर्मी और भला है, एक ऐसे संसार को अस्तित्व

में कैसे ला सकता है जो अब पतित है? क्या परमेश्वर पाप का कारण है? वहाँ से, कई लोग सोचते हैं कि क्या परमेश्वर के साथ ही कुछ गड़बड़ तो नहीं है, क्योंकि स्पष्ट रूप से इस संसार के साथ तो कुछ गड़बड़ है जिसे उसने बनाया है।

प्रिवेशियो एवं नेगेशियो

दार्शनिकों और ईश्वरविज्ञानियों ने बुराई की प्रवृत्ति को परिभाषित करने के लिए दो लातीनी शब्दों का उपयोग किया है: *प्रिवेशियो*, जिसमें से हमें अपना अंग्रेज़ी शब्द *प्रिवेशन (अभाव)*, और *नेगेशियो*, जिससे हमें *नेगेशन (निषेध)* शब्द मिलता है। इन शब्दों के माध्यम से, पाप को मुख्य रूप से नकारात्मक श्रेणियों में परिभाषित किया गया है।

एक अभाव (प्रिवेशन) किसी वस्तु की घटी है। हमारी वर्तमान पतित स्थिति में, हम पवित्रता और धार्मिकता से वंचित हैं। हम एक भ्रष्ट स्थिति में उस मूल धार्मिकता के बिना जन्म लेते हैं जो आदम और हव्वा के पास थी।

इसी रीति से, बुराई भलाई का निषेध है। बाइबल बुराई और पाप के विषय में *भक्तिहीनता* और *अधार्मिकता* जैसे शब्दों का उपयोग करते हुए बात करती है, जिससे कि पाप को उस सकारात्मक मानदण्ड के विरुद्ध परिभाषित किया जाता है जिसके द्वारा इसे मापा जाता है। हम भक्तिहीनता को तब तक नहीं समझ सकते हैं जब तक हमारे पास भक्ति की समझ न हो। हम अधार्मिकता को तब तक नहीं समझ सकते हैं जब तक हमारे पास धार्मिकता की स्पष्ट समझ नहीं है। पहले *ख्रीष्ट* शब्द के अर्थ को समझे बिना *ख्रीष्ट-विरोधी* शब्द अर्थहीन है। तो एक रीति से देखा जाए तो अपनी परिभाषा अनुसार बुराई तो भलाई के पूर्व-अस्तित्व पर निर्भर है। बुराई एक जोंक की नाईं है, एक परजीवी जो अपने जीवन के लिए अपने परपोषी पर निर्भर होता है। इसलिए हम पहले भलाई के अस्तित्व की पुष्टि किए बिना बुराई की समस्या के विषय में बात नहीं कर सकते हैं।

हमें कभी भी यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि पाप एक भ्रम है। पाप वास्तविक है। पाप रहस्यमय है, परन्तु उस बुराई की एक वास्तविकता है जिसमें हम सहभागी होते हैं। यह हम पर केवल बाहर से बलपूर्वक प्रवेश नहीं करता है। यह ऐसी बात है जिसके साथ हम अपने हृदयों और प्राणों में गहराई से, अन्तरंग रूप से *(intimately)*, और व्यक्तिगत रूप से सम्मिलित हैं।

अध्याय 20

मूल पाप

Original Sin

जब ईश्वरविज्ञानी मानव जाति के पतन और पाप के स्वभाव और उद्गम के विषय में बात करते हैं, तो उन्हें तुरन्त हम मनुष्यों पर पाप के विस्तार और उसके प्रभाव के विषय में चिन्तन करने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह हमें मूल पाप के सिद्धान्त *(the doctrine of original sin)* की ओर ले जाता है।

मूल पाप की अवधारणा के विषय में एक सामान्य भ्रान्ति यह है कि यह आदम और हव्वा द्वारा किए गए प्रथम पाप को सन्दर्भित करता है। किन्तु, मूल पाप प्रथम पाप को नहीं, परन्तु इसके परिणामों को सन्दर्भित करता है। मूल पाप हमारी पतित, पापपूर्ण स्थिति को वर्णित करता है, जिसमें से वास्तविक पाप उत्पन्न होते हैं। पवित्रशास्त्र हमें यह नहीं बताता है कि हम इसलिए पापी हैं क्योंकि हम पाप करते हैं; वरन्, वह पुष्टि करता है कि हम पाप करते हैं क्योंकि हम पापी हैं। हमारे पास एक पतित, भ्रष्ट स्वभाव है, जिसमें से वे वास्तविक पाप निकलकर आते हैं जिन्हें हम करते हैं। तो मूल पाप, मानव जाति की पतित स्थिति का वर्णन करता है।

पवित्रशास्त्र स्पष्ट है कि हमारे चरित्र के साथ कुछ अन्तर्निहित रीति से गड़बड़ है, और प्रतिदिन का अनुभव उसको प्रकट करता है। जॉनथन एडवर्ड्स ने अपने लेख में मूल पाप के विषय में टिप्पणी करते हुए कहा है कि चाहे बाइबल न भी बताती कि हमारी नैतिक प्रवृत्ति के साथ कोई समस्या है, तौभी हमें तर्कसंगत अवलोकन के आधार पर इसकी पुष्टि करनी ही पड़ती। हम संसार में बुराई की व्याप्त उपस्थिति से बच नहीं सकते। पाप की विश्वव्यापकता *(universality)* चिल्लाकर एक स्पष्टीकरण की माँग करती है। ग़ैरविश्वासियों के बीच भी, एक मौन स्वीकृति है कि कोई भी सिद्ध नहीं है।

यदि हम स्वभाव से भले या नैतिक रूप से भी तटस्थ *(neutral)* होते, तो हम यह अपेक्षा करते कि कुछ प्रतिशत लोग अपनी स्वाभाविक भलाई या अपनी तटस्थता को बनाए रखेंगे और

पाप में गिरे बिना जीवित रहेंगे। कुछ लोग कहते हैं कि यदि वह वातावरण पापमय नहीं होता जिसमें हम रहते हैं, तो हम वास्तव में भलाई या तटस्थता को बनाए रख सकते थे, किन्तु समाज मनुष्यों से बना है और यह तथ्य उस तर्क को नकारता है। हम पतित हैं, और इसलिए समाज पतित है। हम शत्रु से मिल चुके हैं, और वह हम ही हैं। पवित्रशास्त्र हमें सिखाता है कि मूल पाप स्वयं ही एक धर्मी परमेश्वर का उन प्राणियों पर एक न्याय है, जिन्हें उसने भला होने के लिए सृजा था। आदम और हव्वा को उनके पाप के लिए दण्ड के रूप में, परमेश्वर ने उन्हें उनकी सभी सन्तानों के साथ, उनकी दुष्ट प्रवृत्तियों को सौंप दिया।

नैतिक अक्षमता

जब ऑगस्टीन ने मनुष्यों की पापमयता का विश्लेषण किया, तो उसने कहा कि जब आदम और हव्वा को पहले सृजा गया था, तो परमेश्वर ने उन्हें *पॉस्से पेक्कारे (posse peccare)* बनाया, जिसका सरल अर्थ है कि उनमें पाप करने की क्षमता थी। *पेक्कारे* का अर्थ है "पाप करना।" किसी शुद्ध वस्तु को अंग्रेज़ी में कहा जाता है "इम्पेक्कबल" *(impeccable)* और किसी साधारण पाप को कभी-कभी "पेक्काडिल्लो" *(peccadillo)* कहा जाता है। ये दोनों शब्द लातीनी *पेक्कारे* से आते हैं। ऑगस्टीन ने कहा कि आदम और हव्वा को पापी के रूप में सृजा नहीं गया था, परन्तु उनके पास पाप करने की शक्ति थी। हम जानते हैं कि यह सच था क्योंकि उन्होंने पाप *किया।* उन्होंने कोई असम्भव कार्य नहीं किया था; उन्होंने वही किया जिसे करने की उनके पास स्पष्ट रूप से शक्ति थी। तथापि, ऑगस्टीन ने कहा, आदम और हव्वा *पॉस्से नॉन पेक्कारे (posse non peccare)* भी सृजे गए थे, जिसका अर्थ है कि उनमें क्षमता थी कि वे पाप *न* करें। परमेश्वर ने उन्हें निषिद्ध वृक्ष से फल न खाने की आज्ञा दी, और उनमें परमेश्वर की आज्ञा मानने की नैतिक क्षमता थी। इसलिए उनके पास दोनों पाप करने और पाप न करने की क्षमता थी।

ऑगस्टीन ने समझाया कि पतन के समय, मानव जाति ने *पॉस्से नॉन पेक्कारे* (सम्भव है कि पाप को *न* करें) को खो दिया, और हमारी स्थिति *नॉन पॉस्से नॉन पेक्कारे (non posse non peccare)* (नहीं सम्भव है कि पाप को *न* करें) हो गई, जिसका अर्थ है कि अब हमारे पास पाप न करने की क्षमता नहीं है। दूसरे शब्दों में, पाप की शक्ति नश्वर लोगों के हृदयों और प्राणों में इतनी गहराई से निहित है कि हमारे लिए पाप न करना असम्भव है। हम स्वभाव से इतने पापी हैं कि हम किसी ऐसे व्यक्ति से कभी नहीं मिलेंगे जो पाप नहीं करता है। यीशु ख्रीष्ट ही एकमात्र वह व्यक्ति था जिसने एक पाप रहित जीवन जिया। हमारी पाप न करने की अक्षमता को "मानव जाति की नैतिक अक्षमता" *(moral inability of human beings)* कहा जाता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हम ऐसा कुछ भी नहीं कर सकते हैं जो बाहरी रीति से परमेश्वर की व्यवस्था के अनुरूप हो। हम संयोगवश व्यवस्था का पालन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक ऐसे व्यक्ति के विषय में सोचिए, जिसको अपनी गाड़ी पचपन मील प्रति घण्टे की गति से चलाने

में आनन्द मिलता है। उसकी गाड़ी उस गति पर अच्छा प्रदर्शन करती है और वह सुरक्षित और सुखद अनुभव करता है, भले ही राजमार्ग पर अन्य लोग पैंसठ या सत्तर मील प्रति घण्टे की गति से चलाते हुए उससे आगे निकलते हों। एक दिन एक पुलिसकर्मी उसे रोकता है और सुरक्षित चालक होने के लिए उसकी प्रशंसा करता है। उस व्यक्ति को उसकी आज्ञाकारिता के लिए एक पुरस्कार मिलता है। वह पुलिसकर्मी अपने मार्ग पर चला जाता है और वह व्यक्ति वापस राजमार्ग पर लौटता है। अन्ततः वह एक विद्यालय के निकट जाता है जहाँ पर गति सीमा पन्द्रह मील प्रति घण्टा है, किन्तु वह अपनी गाड़ी पचपन मील प्रति घण्टे की गति से चलाता रहता है क्योंकि उसे उस गति पर चलाना भाता है। उसकी इच्छा तो कभी भी नियम का पालन करने की नहीं रही थी। यह तथ्य कि उसने राजमार्ग पर ऐसा किया था केवल एक संयोगवश परिस्थिति थी। इसको ईश्वरविज्ञानी "नागरिक सद्गुण" *(civic virtue)* कहते हैं।

कभी-कभी हम परमेश्वर की व्यवस्था का पालन करते हैं क्योंकि यह हमारे व्यक्तिगत सर्वोत्तम हितों की सेवा करता है। हो सकता है कि हम चोरी न करें क्योंकि हमने पाया है कि अपराध से लाभ नहीं होता है। हो सकता है कि हम नेक काम लोगों की वाहवाही के लिए करें, क्योंकि हम किसी पद के उम्मीदवार हैं या किसी अन्य प्रेरणा के कारण हम ऐसा करते हैं, किन्तु पतित मनुष्य में परमेश्वर के लिए एक निर्मल प्रेम के द्वारा व्यवस्था का पालन करने की प्रेरणा का अभाव है। यीशु ने कहा, "तू प्रभु अपने परमेश्वर से अपने सारे हृदय और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि से प्रेम कर। यही बड़ी और प्रमुख आज्ञा है। और इसी के समान दूसरी यह है: तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम कर।"(मत्ती 22:37-39)। मार्टिन लूथर ने कहा कि महान् आज्ञा का उल्लंघन ही महान् अपराध है, परन्तु हम उन श्रेणियों में नहीं सोचते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने सारे हृदय, प्राण और बुद्धि से परमेश्वर को सिद्ध रीति से प्रेम नहीं करता है।

यही कारण है कि हम ईश्वरविज्ञानीय त्रुटियाँ करते हैं। हम अपने कुअर्थानुवादों *(misinterpretations)* का श्रेय बाइबल को यह दावा करते हुए ही दे देते हैं कि यह समझने के लिए बहुत कठिन है या यह अस्पष्ट है। किन्तु परमेश्वर भ्रम का स्रोत नहीं है। परमेश्वर ने वास्तव में स्वयं को स्पष्ट रूप से प्रकट किया है, परन्तु हम पवित्र लेख के पास ऐसे पूर्वाग्रहों *(biases)* के साथ आते हैं जो परमेश्वर के वचन के प्रकाश में हस्तक्षेप करते हैं। पवित्रशास्त्र में ऐसी कई बातें सिखाई गई हैं जिन्हें हम सुनना ही नहीं चाहते हैं, इसलिए हम उस न्याय से बचने के लिए बाइबल को विकृत करने के मार्ग खोजते हैं जो हमारे विवेक को कायल करती है।

कभी-कभी पवित्रशास्त्र का अर्थानुवाद *(interpret)* करने के प्रयास में हम एक तथाकथित अबोध भूल करते हैं। यह तब हो सकता है जब हम एक दोषयुक्त अनुवाद का उपयोग करते हैं या जब हमने यूनानी या इब्रानी व्याकरण की संरचना में पर्याप्त रूप से महारथ प्राप्त नहीं की होती है। किन्तु यदि हम परमेश्वर से अपने सारे हृदय, प्राण और बुद्धि से प्रेम करते होते, तो क्या उसके वचन

के विषय में हमारे महारथ भिन्न नहीं होते? हम अत्यधिक समय ऐसी बातों से अपने मनों को भरने में व्यतीत करते हैं जो उसके वचन के ज्ञान से अलग हैं। हम आलसी हैं; हम उसकी सच्चाई की खोज में परिश्रमी नहीं हैं। इस प्रकार की बातें हमारे द्वारा बनाई गई विकृतियों में योगदान करती हैं।

परमेश्वर का स्तर

यीशु ने कहा, "परमेश्वर के अतिरिक्त कोई उत्तम नहीं है" (मरकुस 10:18), और पौलुस ने कहा, "कोई धर्मी नहीं, एक भी नहीं" (रोमियों 3:10)। ये कथन चरम प्रतीत होते हैं क्योंकि हम लोगों को भले कार्य करते हुए देखते हैं। जैसा कि मैंने ऊपर उल्लेख किया था कि ईश्वरविज्ञानी ऐसे भले कार्यों को नागरिक सद्गुण कहते हैं। माताएँ अपने बच्चों के लिए त्याग करती हैं और लोग अनजान व्यक्तियों के बटुओं को उसमें मिले पैसों को अपने पास रखे बिना लौटाते हैं। किन्तु किसी कार्य के लिए सच में उत्तम होने के लिए, और वास्तव में परमेश्वर के स्तर के चिन्ह तक पहुँचने के लिए, उसे बाहरी रूप से उसके अनुरूप होना चाहिए जिसकी माँग व्यवस्था करती है और उसे परमेश्वर के लिए प्रेम से भी प्रेरित होना चाहिए। यहाँ तक कि छुटकारा पाए हुए लोग भी परमेश्वर के प्रति सिद्धता-से-अपर्याप्त-आज्ञाकारिता अर्पित करते हैं, यह स्थिति तो उन लोगों में और अधिक बिगड़ी हुई है जो उससे दूर या अलग हैं।

जब ईश्वरविज्ञानी नैतिक अक्षमता *(moral inability)* या मूल पाप *(original sin)* के विषय में बात करते हैं, तो उनके मन में *नॉन पॉस्से नॉन पेक्कारे* (नहीं सम्भव है कि पाप को *न* करें) की स्थिति है। हम उस भलाई को करने के लिए नैतिक रूप से सक्षम नहीं है जिसकी माँग परमेश्वर करता है। जब यीशु ने मनुष्य की स्थिति का वर्णन किया, तो उसने कहा, "कोई मेरे पास नहीं आ सकता है, जब तक कि पिता की ओर से उसे न दिया गया हो" (यूहन्ना 6:65)। यीशु ने एक विश्वव्यापी नकारात्मकता के साथ आरम्भ किया जो मानव क्षमता का वर्णन करता है। वह यह नहीं कह रहा था कि किसी को भी उसके पास आने की *अनुमति* नहीं दी जाती है; वह कह रहा था कि कोई भी उसके पास तब तक आ नहीं *सकता* है, या आने की क्षमता नहीं रखता है जब तक कि परमेश्वर कुछ कार्य न करे। इससे ठीक पहले ही यीशु ने कहा, "आत्मा ही है जो जीवन देता है, शरीर से कुछ लाभ नहीं"(पद 63)। नए नियम में, *शरीर (flesh)* सामान्य रीति से हमारी पतित स्थिति को सन्दर्भित करता है, अर्थात् पाप की बँधुवाई को। एक और वाक्याँश जिसे बाइबल उपयोग करती है वह है "पाप के अधीन"। हम पाप के ऊपर स्वामी नहीं हैं, परन्तु पाप हमारा स्वामी है। बाइबल हमें बताती है कि हमारे हृदयों की इच्छाएँ निरन्तर बुरी ही होती हैं (उत्पत्ति 6:5)।

इसलिए ख्रीष्ट को अपनाने के लिए, परमेश्वर के पास आने के लिए और परमेश्वर के कार्यों को करने के लिए, यह आवश्यक है कि हम किसी रीति से मूल पाप के बन्दीगृह से मुक्त किए जाएँ। यह हमारे लिए पवित्र आत्मा के सम्प्रभु, अलौकिक कार्य के द्वारा किया जाता है। इसलिए यीशु ने कहा है कि किसी व्यक्ति को परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करना तो दूर की बात है, उसको देखने के लिए भी उसे अवश्य ही नया जन्म लेना होगा (यूहन्ना 3:3)। जो शरीर से जन्म लेता है वह शरीर

है, और अपने शरीर में हम कुछ नहीं कर सकते हैं। हमारे पतन के कारण, हम एक नैतिक रूप से शक्तिहीन स्थिति में हैं।

मनुष्यों की नैतिक अक्षमता की इस धारणा को ऑगस्टीनवादी दृष्टिकोण कहा जाता है, और मसीही इतिहास में हर कोई इससे सहमत नहीं हुआ है। आज कलीसिया में कई लोग यह दावा करते हैं कि यद्यपि हम पतित हैं, तौभी हमारे पास धार्मिकता का एक अल्पाँश हमारे प्राणों में बचा हुआ है जिसके द्वारा हम परमेश्वर के साथ अपने मेल-मिलाप की ओर पहला कदम बढ़ा सकते हैं। इसके विपरीत, ऑगस्टीनवादी दृष्टिकोण कहता है कि हम इतने भ्रष्ट हैं कि मृतक हो गए हैं—न केवल अस्वस्थ वरन् *मृतक।* हम पाप की ऐसी बँधुवाई में हैं कि परमेश्वर के उस छुटकारे के अनुग्रह के बिना, जो हमारे उद्धार की प्रक्रिया को आरम्भ करता है, हम कुछ नहीं कर सकते हैं।

ऑगस्टीनवादी परम्परा, जिसका मैं पालन करता हूँ, वह यह कहती है कि पतन सम्पूर्ण व्यक्ति के—मन, हृदय और शरीर में फैला हुआ है। हमारे शरीर हमारा साथ छोड़ देते हैं, हमारी आँखों की ज्योति घट जाती है, हमारे बाल सफेद हो जाते हैं, और हमारी शक्ति घट जाती है। हम रोगी हो जाते हैं, और अन्ततः हम मर जाते हैं। बाइबल कहती है कि यह सब हमारे शरीर पर पाप के प्रभाव का परिणाम है, परन्तु पाप की शक्ति हमारे हृदय, हमारी इच्छा-शक्ति और हमारे मस्तिष्क पर भी प्रभाव डालती है। हम सोच सकते हैं, परन्तु हमारी सोच विकृत है; हम तार्किक त्रुटियाँ करते हैं और पूर्वाग्रह को हमारे निर्णय को प्रभावित करने देते हैं। हमारे पास इच्छाशक्ति है; हमने चुनाव करने की क्षमता नहीं खोई है, क्योंकि हम अभी भी ऐसे प्राणी हैं जो परमेश्वर के स्वरूप में सृजे गए हैं। पतन में, हमने परमेश्वर के स्वरूप को सीमित अर्थ में खोया है। हमने सिद्ध रीति से धर्मी होने की क्षमता खो दी। तौभी हम अभी भी विस्तृत अर्थ में परमेश्वर के स्वरूप में हैं; दूसरे शब्दों में, हम अभी भी मानव हैं। हम चाहे जितने भ्रष्ट हों, पतन के द्वारा हमारी मानवता मिटाई नहीं गई है।

किन्तु, पतन से हमारी मानवता की शक्ति मूल रूप से प्रभावित हुई थी, और यह हमें एक ऐसी स्थिति में छोड़ देती है जिसके विषय में पौलुस रोमियों में कहता है: “कोई धर्मी नहीं, एक भी नहीं; कोई समझदार नहीं; कोई भी नहीं जो परमेश्वर को खोजता है। सब भटक गए हैं, वे सब ही निकम्मे बन गए हैं; कोई भलाई करने वाला नहीं, एक भी नहीं”(रोमियों 3:10-12)।

जब कलीसियाएँ “खोजियों” *(seekers)* तक पहुँचने का प्रयास करती हैं, तो मैं नहीं जानता कि उनके मन में कौन हैं, क्योंकि बाइबल कहती है कि कोई भी व्यक्ति स्वाभाविक अवस्था में परमेश्वर को नहीं खोजता है। यदि मैंने यह बात सार्वजनिक रूप से धर्मनिरपेक्ष क्षेत्र में आज कही होती, तो मुझ पर तिरस्कार के साथ हँसा जाता, परन्तु यह तो परमेश्वर का मूल्याँकन है क्योंकि वह अपनी भलाई और धार्मिकता के स्तर के अनुसार हमारा न्याय करता है।

अध्याय 21

पाप का प्रसारण

Transmission of Sin

यदि पाप मूलतः हमारे स्वभाव में इस रीति से पाया जाता है कि पाप के अतिरिक्त हम कुछ नहीं कर सकते हैं, तो फिर पाप करने के कारण परमेश्वर हमारा न्याय कैसे कर सकता है? मूल पाप के सिद्धान्त के प्रकाश में तो यह एक वैध तथा स्वतः स्पष्ट प्रश्न है, इसलिए हमें यह सोचने की आवश्यकता है कि कैसे हमारा पापी स्वभाव आदम से उसके वंशजों तक हस्तान्तरित किया गया। बाइबल बहुतायत से स्पष्ट करती है कि इन बातों के मध्य में एक सम्बन्ध है:

> अतः जिस प्रकार एक मनुष्य के द्वारा पाप ने जगत में प्रवेश किया, तथा पाप के द्वारा मृत्यु आई, उसी प्रकार मृत्यु सब मनुष्यों में फैल गई, क्योंकि सब ने पाप किया—क्योंकि व्यवस्था के दिए जाने तक पाप जगत में तो था, पर जहाँ व्यवस्था नहीं वहाँ पाप की गणना नहीं होती। तथापि मृत्यु ने आदम से लेकर मूसा तक शासन किया, उन पर भी जिन्होंने आदम के अपराध के समान पाप नहीं किया था; आदम उसका प्रतीक था जो आने वाला था।
>
> परन्तु वरदान अपराध के समान नहीं है। क्योंकि जब एक मनुष्य के अपराध के कारण अनेक मर गए, तब उस से कहीं अधिक परमेश्वर का अनुग्रह, तथा एक मनुष्य के, अर्थात् यीशु ख्रीष्ट के, अनुग्रह का दान बहुतों को प्रचुरता से मिला। यह दान उसके समान नहीं जो एक मनुष्य के पाप करने के द्वारा आया, क्योंकि एक ओर तो एक ही अपराध के कारण न्याय आरम्भ हुआ जिसका प्रतिफल दण्ड हुआ; परन्तु दूसरी ओर अनेक अपराधों के कारण ऐसा वरदान उत्पन्न हुआ जिसका प्रतिफल धार्मिकता हुआ।

> जब एक ही मनुष्य के अपराध के कारण, मृत्यु ने उस एक ही के द्वारा शासन किया, इस से बढ़कर वे जो अनुग्रह और धार्मिकता के दान को प्रचुरता से पाते हैं, उस एक ही यीशु ख्रीष्ट के द्वारा जीवन में राज्य करेंगे।
>
> अतः जिस प्रकार एक ही अपराध का प्रतिफल सब मनुष्यों के लिए दण्ड की आज्ञा हुआ, उसी प्रकार धार्मिकता के एक ही कार्य का प्रतिफल सब मनुष्यों के लिए धर्मी ठहराया जाना हुआ। (रोमियों 5:12-18)

प्रेरित पौलुस यहाँ दूसरे आदम, अर्थात् ख्रीष्ट और पहले आदम के बीच एक तुलना स्थापित कर रहा है, परन्तु वह यह भी दिखा रहा है कि उनके बीच में एक प्रकार का समानान्तर सम्बन्ध था। एक मनुष्य—ख्रीष्ट—की धार्मिकता के माध्यम से हमें छुटकारा मिलता है, वैसे ही जैसे दूसरे मनुष्य—आदम—की अधार्मिकता के माध्यम से हमें विनाश और मृत्यु के घाट उतार दिया गया था। ख्रीष्ट से हम पर धार्मिकता के प्रतिनिधिक *(vicarious)* स्थानान्तरण के विषय में हम नहीं कुड़कुड़ाते हैं; यह आदम से हम पर अधार्मिकता का स्थानान्तरण है जो हमें बहुत सारी समस्याएँ देता है। यह स्थानान्तरण कैसे होता है इस विषय में विभिन्न परिकल्पनाएँ हैं।

एक मिथक?

उदारवादी ईश्वरविज्ञानियों में लोकप्रिय दृष्टिकोण यह है कि आदम और हव्वा की कहानी एक मिथक है। वे कहते हैं कि कोई ऐतिहासिक आदम नहीं था और कोई ऐतिहासिक पतन नहीं हुआ था। वरन्, उत्पत्ति 3 केवल एक दृष्टान्त है जो इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि प्रत्येक मनुष्य भला और धर्मी जन्म लेता है, परन्तु फिर प्रलोभन और व्यक्तिगत पतन का अनुभव करता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में वह दोहराता है जिसे आदम और हव्वा ने किया था और उसे पवित्रशास्त्र नैतिक कथा के रूप में बताता है।

निश्चित रूप से इस दृष्टिकोण के साथ कई समस्याएँ हैं। पहला, यह पवित्रशास्त्र की शिक्षा को स्पष्ट रूप से नकारता है। इसके अतिरिक्त पौलुस रोमियों 5 में तर्क दे रहा है कि व्यवस्था मूसा के पहले आरम्भ ही से जगत में रही है, जिसका प्रमाण इस तथ्य में है कि पाप जगत में था। पाप ने आदम से लेकर मूसा तक शासन किया। पौलुस यह बात कहता है कि व्यवस्था से पृथक कोई पाप नहीं हो सकता है और यदि कोई पाप नहीं है, तो पाप के लिए कोई न्यायसंगत दण्ड नहीं हो सकता है। पौलुस कहता है कि आदम से मूसा तक मृत्यु ने शासन किया। सीनै पर्वत से पहले भी लोग मरे थे जिनमें शिशु भी सम्मिलित थे। यदि उदारवादियों के सुझाव के अनुसार यह सच है कि आदम

और हव्वा वास्तविक लोग नहीं थे वरन् वे एक मिथक के चरित्र थे, तो उन्हें शिशुओं की मृत्यु को समझाना होगा। शिशुगण क्यों मरते हैं? वे यह स्पष्टीकरण देते हैं कि वास्तव में पाप और मृत्यु के बीच में कोई सम्बन्ध ही नहीं है। किन्तु यह तर्क पवित्रशास्त्र की शिक्षा के सीधे-सीधे विपरीत है।

यथार्थवाद

जो लोग बाइबल के प्रकाशन *(revelation)* को गम्भीरता से लेते हैं और एक ऐतिहासिक पतन को स्वीकार करते हैं, उनमें अभी भी गम्भीर वाद विवाद है कि मूल पाप का प्रसार कैसे होता है। आदम से अन्य मनुष्यों में अपराध के स्थानांतरण के विषय में दो सर्वाधिक प्रचलित दृष्टिकोण पाए जाते हैं, यथार्थवाद का मत और संघवाद *(federalism)* का मत।

यथार्थवाद के मत का एक अल्प परिष्कृत *(sophisticated)* रूप और एक अधिक परिष्कृत, दार्शनिक रूप है। यथार्थवादी तर्क देते हैं कि परमेश्वर पापी स्वभाव के साथ जन्मे पापियों को न्यायसंगत रीति से तब ही दण्डित कर सकता है जब स्वयं पापी स्वभाव ही हमारे द्वारा किए गए किसी कार्य के कारण उचित दण्ड है। दूसरे शब्दों में, आदम ने पाप किया और परमेश्वर ने उसके वास्तविक पाप के कारण दण्ड के रूप में उसे एक पापी स्वभाव सौंप दिया। परमेश्वर द्वारा लोगों को उस कार्य के लिए छोड़ दिया जाना जिसे वे करना चाहते हैं, एक न्यायसंगत दण्ड है। तौभी यह तो एक बात है कि *आदम* को उसके पाप के परिणाम के कारण उसके पापी स्वभाव में छोड़ देना और ये कुछ और ही बात है कि *आदम की सन्तानों* को आदम के कार्य के कारण एक पापी स्वभाव में छोड़ देना।

हम यहेजकेल में पढ़ते हैं, “खट्टे अँगूर तो खाए बापदादों ने, पर दाँत खट्टे हुए सन्तानों के” (यहेजकेल 18:2), और यहेजकेल के सन्देशों में से एक सन्देश है कि परमेश्वर किसी व्यक्ति को ऐसे पाप के लिए दण्डित नहीं करेगा जो कोई और करता है। तो यदि यह सिद्धान्त सत्य है, तब यह वंशानुक्रम से प्राप्त हुए हमारे पतित स्वभाव पर कैसे लागू होता है? यथार्थवादी कहते हैं कि परमेश्वर हमें पतित स्वभाव देने में तभी धर्मी होता यदि हमारा पतन वहाँ वाटिका में आदम के साथ वास्तव में हुआ होता। यथार्थवादी मत यह सिखाता है कि एक अर्थ में हम वहाँ *थे*, यही कारण है कि आँशिक रूप से इस आन्दोलन को “यथार्थवाद” कहा जाता है। यद्यपि, इस बात को सच होने के लिए, हमारे प्राणों को—जो हमारे शरीर के साथ जुड़े हुए हैं (सम्भवतः हमारी माताओं के गर्भ में गर्भाधान के समय से)—अवश्य ही वाटिका में उपस्थित रहे होंगे, जिससे कि हमने आदम और हव्वा के पतन में भाग लिया।

इस कथन का समर्थन करने के लिए प्रयोग किया जाने वाला बाइबल का तर्क, अब्राहम के साथ मलिकिसिदक की भेंट से लिया गया है जो कि पुराने नियम (उत्पत्ति 14; भजन 110) में

वर्णित है और इसे इब्रानियों (अध्याय 7) में दोहराया गया है। नया नियम यीशु को न केवल हमारे उद्धारकर्ता के रूप में किन्तु हमारे राजा और हमारे याजक के रूप में भी घोषित करता है। यीशु को राजा होने के लिए यहूदा के गोत्र से आना था क्योंकि दाऊद के राज्य की प्रतिज्ञा उसी गोत्र के वंशज के लिए की गई है। नया नियम जो यीशु के वंश को स्थापित करता है, यह दिखाता है कि यीशु वास्तव में यहूदा के गोत्र से आया था इसलिए वह इस्राएल का राजा बनने के योग्य है। किन्तु, क्योंकि वह यहूदा के गोत्र से था इसलिए वह लेवी के गोत्र से भी नहीं हो सकता था। लेवीय या हारूनीय याजकपन (हारून के नाम से, जो प्रथम महायाजक था) पुरानी वाचा में लेवी के गोत्र के सदस्यों तक सीमित था। इसलिए जब नया नियम यह घोषित करता है कि यीशु हमारा श्रेष्ठ महायाजक है, तो उसके लेखकों को उसकी पारिवारिक वंशावली की समस्या का सामना करना पड़ा।

इब्रानियों का लेखक पुराने नियम के कई उद्धरणों के माध्यम से उत्तर देता है, विशेष रूप से मसीहियाई भजनों *(messianic psalms)* से, जिसमें परमेश्वर ने घोषणा की थी कि वह सर्वदा के लिए एक राजा और एक याजक को खड़ा करने जा रहा था। इब्रानियों तर्क करती है कि पुराने नियम में लेवी याजकपन से अलग एक और याजकपन उल्लेखित है, और यह रहस्यमय पात्र मलिकिसिदक की सेवकाई के उस गूढ़ सन्दर्भ में पाया जाता है जिसके नाम का अर्थ है "धार्मिकता का राजा" (इब्रानियों 7:2)। इब्रानियों का लेखक यह भी कहता है कि मलिकिसिदक का कोई माता या पिता नहीं था (पद 3)। उसके अभिभावकीय अभाव के वर्णन का सरल अर्थ यह हो सकता है कि उसकी पृष्ठभूमि का कोई वंशावलीय अभिलेख नहीं था अथवा जैसा कि कुछ टीकाकारों का मानना है कि इसका अर्थ यह हो सकता है कि वह सामान्य मानव वंश का नहीं था किन्तु सम्भवतः ख्रीष्ट का एक देहधारणपूर्व प्रकटन था। यह एक बहुत लोकप्रिय परिकल्पना है।

मलिकिसिदक और अब्राहम के बीच भेंट में, दो बातें हुईं। अब्राहम ने मलिकिसिदक को दशमांश दिया और मलिकिसिदक ने अब्राहम को आशीष दी। यहूदी विधि के अनुसार, इब्रानियों का लेखक कहता है कि बड़ा छोटे को आशीष देता है (पद 7)। क्योंकि अब्राहम ने मलिकिसिदक को दशमांश दिया और मलिकिसिदक ने अब्राहम को आशीष दी, तो यह स्पष्ट है कि मलिकिसिदक अब्राहम से श्रेष्ठ था। फलतः, इब्रानी वंशावली में अब्राहम के स्थान ने उसे अपने पुत्र इसहाक से बड़ा बना दिया, और इसहाक तो अपने पुत्र याकूब से बड़ा था, और याकूब अपने पुत्रों से बड़ा था, जिसमें

लेवी भी सम्मिलित था। इसलिए यदि अब्राहम लेवी से बड़ा था, और यदि मलिकिसिदक अब्राहम से बड़ा था, तो निश्चय ही मलिकिसिदक लेवी से भी बड़ा था। इसलिए, यदि यीशु मलिकिसिदक की रीति के अनुसार एक याजक है, तो उसका याजक होना लेवी याजकपन से हीन नहीं है, वरन् उससे श्रेष्ठ है। इब्रानियों का लेखक इसी रीति से तर्क करता है:

> परन्तु इसने जो उनकी वंशावली में से भी न था, अब्राहम से दसवाँ अंश लिया और उसे आशीष दी जिसे प्रतिज्ञाएँ मिली थीं। इसमें सन्देह नहीं कि छोटा बड़े से आशीर्वाद पाता है। फिर एक दशा में तो नश्वर मनुष्य दसवाँ अंश पाते हैं, परन्तु दूसरे में वही पाता है जिसके लिए साक्षी दी जाती है कि वह जीवित है। तो क्या कह सकते हैं कि दसवाँ अंश लेने वाले लेवी ने भी अब्राहम के द्वारा दसवाँ अंश दिया, क्योंकि उस समय वह अपने पिता अब्राहम की देह में ही था जब मलिकिसिदक ने उस से भेंट की। (इब्रानियों 7:6-10)

यथार्थवादियों का एक मत कहता है कि इस खण्ड को केवल ऐसे समझा जा सकता है कि वह यह सिखा रहा है कि जब अब्राहम ने दशमांश दिया था तो लेवी वास्तव में वहाँ था, और यह मानव प्राण के पूर्वअस्तित्व को प्रमाणित करता है। यह तो अविश्वसनीय बात प्रतीत हो रही है। यहाँ तक कि खण्ड भी थोड़ा झिझकते हुए यह छूट प्रदान करता है कि—"तो क्या कह सकते हैं।" हम एक आनुवांशिक दृष्टिकोण से कह सकते हैं कि हमारे परपोते-परपोतियाँ पहले से ही हमारे शरीर में विद्यमान हैं, किन्तु हमारा अर्थ यह नहीं है कि वे वास्तविक बच्चे हम में विद्यमान हैं।

यथार्थवाद का अधिक परिष्कृत मत एक आक्षरिक पूर्वअस्तित्व पर निर्भर नहीं करता है। यह एक दार्शनिक प्रकार का यथार्थवाद है, जैसा कि हम प्लेटो, ऑगस्टीन और जॉनाथन एडवर्ड्स में पाते हैं। यह मत मानता है कि परमेश्वर के मन में हमारे जन्म से पहले हमारा अस्तित्व है क्योंकि सनातन काल से परमेश्वर हम में से प्रत्येक के विषय में सिद्ध विचार रखता आया है। वह हमें सनातन काल पूर्व से जानता आया है और लोगों के विषय में परमेश्वर के विचार वास्तविक विचार हैं जो उस पूरी वास्तविकता को सम्मिलित करते हैं जो कि हम हैं। यह शिक्षा अपने साथ कई दार्शनिक मान्यताओं को लेकर चलती है, परन्तु यह एक ऐसा विकल्प है जिसे कलीसियाई इतिहास में कई लोगों ने अपनाया है, और यह विचार मुझे रोचक लगता है।

संघवाद *(Federalism)*

दूसरा दृष्टिकोण संघवाद है, जो आदम के प्रतिनिधित्व करने वाली भूमिका पर बल देता है। उस वाटिका में आदम ने मानव जाति के संघीय प्रमुख के नाते हमारे लिए एक प्रतिस्थापन्न *(substitute)*

के रूप में कार्य किया, जैसे संघीय गणतन्त्र में अधिकारी लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उसी प्रकार से, यीशु ने परमेश्वर के लोगों के साथ सामूहिक एकजुटता *(solidarity)* को व्यक्त किया। उसने हमारा प्रतिनिधित्व किया। क्रूस पर अपने कार्य में, वह हमारा प्रतिनिधिक *(vicarious)* प्रतिस्थापन्न है, जो हमारे स्थान पर खड़ा हुआ और परमेश्वर हमें इसलिए धर्मी गिनता है क्योंकि उसने हमारे दोष को ख्रीष्ट पर और ख्रीष्ट की धार्मिकता को हम पर स्थानान्तरित कर दिया।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, हमारा उद्धार एक प्रकार के प्रतिनिधित्व की वैधता पर निर्भर करता है। यदि हम सैद्धान्तिक रूप से परमेश्वर के सामने प्रतिनिधित्व पर आपत्ति जताते हैं, तो हम अपना उद्धार खो देते हैं क्योंकि हमें केवल अन्य के प्रतिनिधित्व के कार्य के माध्यम ही से बचाया जा सकता है।

आदम, जिसके नाम का अर्थ "मानव जाति" है, वह मानव जाति के संघीय प्रमुख के रूप में कार्य कर रहा था, जो स्वयं का और बाद में जन्मे सभी लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहा था और इसलिए जब उसका पतन हुआ तो उसके साथ उन सब का भी पतन हुआ जिनका उसने प्रतिनिधित्व किया था। उसने जो किया उसके लिए हमें उत्तरदायी ठहराया जा सकता है क्योंकि उसने हमारा प्रतिनिधित्व किया। यह दावा प्रायः लोगों को कुड़कुड़ाने के लिए उकसाता है कि उन्होंने आदम को अपने प्रतिनिधि के रूप में नहीं चुना था।

अमेरिकी क्रान्ति के समय, उपनिवेशवादियों *(Colonists)* ने इंग्लैण्ड की संसद में प्रतिनिधियों की माँग करी। उन्होंने पुकारा, "प्रतिनिधित्व के बिना कोई कराधान नहीं!" उन्होंने अपने स्वयं के प्रतिनिधियों को चुनने के अधिकार की माँग की जो कि आज तक संयुक्त राज्य अमेरिका में एक पावन अधिकार है। हम यह सुनिश्चित करने का अधिकार चाहते हैं कि हमारा सही प्रतिनिधित्व हो रहा है। हम अपने लिए प्रतिनिधियों को नियुक्त करने के लिए किसी और पर भरोसा नहीं करना चाहते हैं।

तौभी आदम के प्रकरण में तो परमेश्वर ने हमारे प्रतिनिधि का चयन किया और सम्पूर्ण मानव इतिहास में, क्रूस को छोड़कर, यही एकमात्र समय था जब हमारा सिद्ध रीति से प्रतिनिधित्व किया गया था। ऐसा इसलिए है क्योंकि परमेश्वर द्वारा प्रतिनिधि का चुनाव सिद्ध रीति से एक पवित्र व्यक्ति द्वारा धर्मी चुनाव था और यह उसके सिद्ध ज्ञान के आधार पर किया गया था। वह हमें पहले से ही जानता था और वह हमारे प्रतिनिधि को जानता था। इसलिए हम परमेश्वर से यह नहीं कह सकते हैं कि आदम ने हमारा प्रतिनिधित्व त्रुटीपूर्ण रीति से किया, जो कि ऐसी आधारभूत धारणा है जिसे हम तब बनाते हैं जब हम दोष के स्थानांतरण से बचने का प्रयास करते हैं। हम सोचते हैं कि यदि हम वाटिका में होते तो हम आदम से अलग कार्य करते। परन्तु आदम ने दोषरहित रीति से हमारा प्रतिनिधित्व किया क्योंकि वह परमेश्वर का चुना हुआ प्रतिनिधि था।

हम किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा किए गए कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराए जा सकते हैं यदि उसने हमारे स्थान पर उन कार्यों को किया था। यदि मैं किसी को मारने के लिए एक आदमी को पैसे दूँ

और मैं सुनिश्चित करता हूँ कि वह हत्या तब करे जब मैं शहर से बाहर हूँ, तो मुझे हत्या के लिए प्रत्यक्ष रीति से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, भले ही मैंने बन्दूक नहीं चलायी थी। यद्यपि, यह उदाहरण विफल हो जाता है क्योंकि हमने आदम को नहीं चुना था। बात यह है कि आदम को एक सर्वज्ञानी, धर्मी परमेश्वर द्वारा सिद्ध रीति से चुना गया था और परमेश्वर के न्याय के अनुसार, आदम ने हमारे लिए हमारा कार्य किया। यही कारण है कि एक व्यक्ति का पाप हमारा विनाश लेकर आया और इससे बचने की हमारी एकमात्र आशा दूसरे प्रतिनिधि की धार्मिकता है।

अध्याय 22

वाचाएँ

The Covenants

इब्रानियों की पुस्तक में ख्रीष्ट की श्रेष्ठता, विशेष रूप से हमारे उत्तम महायाजक के रूप में उसकी भूमिका एक प्रमुख विषय है। जब लेखक इस सम्बन्ध में यीशु की महानता के विषय में बात करता है, तो वह उस वाचा के बीच तुलना करता है जिसे परमेश्वर ने मूसा के माध्यम से अपने लोगों के साथ बाँधी थी और वह नई वाचा जिसकी उसके पुत्र, यीशु ख्रीष्ट के माध्यम से मध्यस्थता की गई थी:

> क्योंकि प्रत्येक महायाजक भेंट और बलिदान दोनों को ही चढ़ाने के लिए नियुक्त किया जाता है, अतः यह आवश्यक है कि चढ़ाने के लिए इस महायाजक के पास भी कुछ हो। यदि वह पृथ्वी पर होता तो कदापि याजक न होता, क्योंकि व्यवस्था के अनुसार भेंट चढ़ाने वाले यहाँ हैं। वे केवल स्वर्गीय वस्तुओं के प्रतिरूप और छाया की सेवा उसी प्रकार किया करते हैं, जिस प्रकार मूसा को, जब वह तम्बू खड़ा करने पर था, परमेश्वर की ओर से चेतावनी मिली थी, "देख, जो नमूना तुझे पर्वत पर दिखाया गया था, उसी के अनुसार सब कुछ बनाना।" पर अब यीशु को और भी श्रेष्ठ सेवकाई प्राप्त हुई है, क्योंकि वह उस उत्तम वाचा का जो और भी उत्तम प्रतिज्ञाओं के आधार पर बान्धी गई है, मध्यस्थ ठहरा। (इब्रानियों 8:3-6)।

लेखक फिर आगे समझाता है कि नई वाचा पुरानी वाचा से कैसे उत्तम है और कैसे पुरानी वाचा को अप्रयुक्त *(obsolete)* बनाती है। इब्रानियों में नई वाचा को न केवल इसलिए उत्तम दिखाया गया है क्योंकि हमारे पास मूसा से उत्तम मध्यस्थ है वरन् इसलिए भी कि हमारे पास एक उत्तम प्रतिज्ञा है। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि यह वाचा के स्वभाव के विषय में कुछ ज्ञान को प्रकट करता है।

पवित्रशास्त्र में छुटकारे की योजना के प्रकटन के लिए मूल संरचना या रूपरेखा को वाचा के माध्यम से व्यक्त किया गया है। मूल रूप से, वाचा एक प्रतिज्ञा के आधार पर दो या दो से अधिक समूहों के बीच एक समझौता है। बाइबल के इतिहास में कई वाचाएँ हैं। एक वह वाचा है जिसे परमेश्वर ने आदम और हव्वा के साथ बाँधा—आदमीय *(Adamic)* वाचा। एक वह वाचा है जिसे परमेश्वर ने नूह के साथ बाँधा—नूहाई *(Noahic)* वाचा; परमेश्वर ने अपने मेघधनुष को आकाश में उस वाचा के चिन्ह के रूप में स्थापित किया। आगे चलकर, परमेश्वर ने अब्राहम के साथ एक वाचा बाँधा—अब्राहमीय *(Abrahamic)* वाचा—जिसको उसके वंशज इसहाक और याकूब के साथ नवीनीकृत किया गया था। जब हम पुरानी वाचा के विषय में सोचते हैं, तो हमारे मन में वह वाचा है जिसे परमेश्वर ने मूसा के द्वारा सीने पर्वत पर इस्राएल के साथ बान्धी थी—मूसाई वाचा या सीनाई वाचा।

हम जीवन के लगभग हर क्षेत्र में वाचा की प्रतिज्ञाएँ करते हैं। जब हम एक आजीविका के सम्बन्ध में प्रवेश करते हैं, तो नियोक्ता और कर्मचारी दोनों कुछ प्रतिज्ञाएँ करते हैं। इसके अतिरिक्त, विवाह की संरचना वाचा की अवधारणा पर आधारित है। विवाह में, दो लोगों द्वारा प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं और परमेश्वर की उपस्थिति में पवित्र प्रतिज्ञाओं के साथ उनकी पुष्टि की जाती है। यहाँ तक कि हमारी राष्ट्रीय सरकार भी शासकों और शासित लोगों के मध्य वाचा या समझौते पर आधारित है। हर वाचा में प्रतिज्ञाएँ सम्मिलित होती हैं। प्राचीन संसार में, वाचाओं में प्रतिज्ञाओं के अतिरिक्त अनुबन्ध या नियम थे; अर्थात् कुछ निर्धारित अनुबन्धों की पूर्ति के आधार पर प्रतिज्ञाएँ की जाती थीं।

वाचा की अवधारणा बाइबलीय मसीहियत की हमारी समझ के लिए महत्वपूर्ण है। अन्तिम विश्लेषण में, हमारा मसीही जीवन एक प्रतिज्ञा पर भरोसे या विश्वास पर निर्भर है—परमेश्वर की यह प्रतिज्ञा कि वह ख्रीष्ट के व्यक्ति तथा कार्य के द्वारा हमें छुटकारा प्रदान करेगा। बहुत ही वास्तविक अर्थों में, वाचा के सन्दर्भ में, परमेश्वर ने हमें अपना वचन दिया है। यूहन्ना अपने सुसमाचार में ख्रीष्ट का परिचय वचन के देहधारण के रूप में करता है। परमेश्वर ने केवल अपने प्रतिज्ञा के वचन को बोला ही नहीं; उस प्रतिज्ञा ने तो वचन में देहधारण किया, जो कि ख्रीष्ट है। इस कारण से वाचा की संरचना को इससे अधिक महत्व दे पाना असम्भव है।

वाचायी संरचना *(Covenantal Framework)*

ईश्वरविज्ञानी सामान्य रीति से पवित्रशास्त्र में तीन प्रमुख वाचाओं की बात करते हैं: छुटकारे की वाचा, कार्यों की वाचा और अनुग्रह की वाचा।

यद्यपि आज हम छुटकारे की वाचा के विषय में कलीसिया में बहुत कम सुनते हैं, फिर भी मैं इसे विधिवत् ईश्वरविज्ञान के सबसे रोमांचकारी पक्षों में से एक मानता हूँ। परमेश्वर ने छुटकारे की वाचा को मनुष्यों के साथ नहीं बान्धी थी; वरन् उसने तो इसे स्वयं के साथ बान्धी थी। यह एक वाचायी समझौता है जो कि परमेश्वर के तीन व्यक्तियों के बीच अनन्त काल में हुआ था। छुटकारे के घटनाक्रम में, हम पिता, पुत्र और आत्मा की गतिविधि को देखते हैं और सृष्टि भी स्वयं त्रिएकता का कार्य थी। परमेश्वर पिता ने संसार को अस्तित्व में आने का आदेश दिया, किन्तु जब वह अन्धकार में से सुव्यवस्था को लाया, तो यह इसलिए था क्योंकि परमेश्वर का आत्मा पानी पर मण्डरा रहा था और वस्तुओं को अस्तित्व में ला रहा था (उत्पत्ति 1: 2)। नये नियम के अनेक स्थलों में ख्रीष्ट को उस अभिकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसके माध्यम से पिता ने सभी वस्तुओं को सृजा था। उदाहरण के लिए, "सब कुछ उसके द्वारा उत्पन्न हुआ, और जो कुछ उत्पन्न हुआ है, उसमें से कुछ भी उसके बिना उत्पन्न न हुआ" (यूहन्ना 1:3)। सृष्टि में पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा सम्मिलित थे।

ईश्वरविज्ञानी परमेश्वरत्व *(Godhead)* के सदस्यों के बीच एक कार्यात्मक *(functional)* अन्तर बनाते हैं। पिता ने उद्धार की योजना को *प्रारम्भ* किया; इसका अर्थ है कि पिता चुनाव की सनातन आज्ञप्तियों *(decrees)* के पीछे है, और उसने हमारे छुटकारे को पूरा करने के लिए पुत्र को संसार में भेजा। पुत्र ने हमारे लिए छुटकारे को *सम्पन्न* किया। अन्त में, हमारे व्यक्तिगत जीवन में छुटकारा पवित्र आत्मा के द्वारा *लागू* किया जाता है। ख्रीष्ट का कार्य हमें छुड़ाए हुए लोग कैसे बनाता है? आत्मा हमें पुनरुज्जीवित *(regenerates)* करता है; अर्थात् हमें आत्मिक जीवन प्रदान करते हुए और हमारे हृदयों में विश्वास उत्पन्न करते हुए वह हमें सजीव करता है। आत्मा हमें पवित्र भी करता है और वह हमें स्वर्ग में महिमान्वित करेगा। यह छुटकारे का कार्य है और इसमें त्रिएकता के सभी तीन सदस्यों का सहमति से कार्य करना सम्मिलित है।

वर्षों पूर्व, जर्मनी के उन ईश्वरविज्ञानियों के मध्य एक विवाद उत्पन्न हुआ था जिनकी पूर्वधारणा थी कि पिता और पुत्र के बीच में एक संघर्ष है। यह माना जा रहा था कि अपने सांसारिक सेवाकाल में ख्रीष्ट ने पिता को मानव जाति के प्रति अपने क्रोध को रोकने के लिए मनाया था। निस्सन्देह, यह बाइबल की समझ से एक गम्भीर विचलन *(departure)* था। छुटकारे की वाचा बताती है कि पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा मानव उद्धार के विषय में पूर्ण रीति से सहमत थे। पुत्र इस संसार में अनिच्छा से नहीं आया। वरन् पिता की योजना को पूरा करने और देहधारी होने में पुत्र को प्रसन्नता थी। अपने प्रायश्चित्त की पूर्व सन्ध्या पर गतसमनी की वाटिका में वह प्रार्थना कर रहा था और अपनी पीड़ा में लहू की बूँदों का पसीना बहा रहा था। उसने कहा, "हे पिता, यदि तू चाहे तो इस

प्याले को मुझसे हटा ले; तौभी मेरी इच्छा नहीं, पर तेरी इच्छा पूरी हो"(लूका 22:42)। वास्तव में, वह कह रहा था, "यदि कोई अन्य मार्ग है तो मैं उसे लेना चाहूँगा, किन्तु पिता जी आपकी जो भी इच्छा है, मैं आपसे सहमत हूँ।"

कार्यों की वाचा और अनुग्रह की वाचा

कार्यों की वाचा और अनुग्रह की वाचा के बीच में प्राथमिक भिन्नता यह है कि कार्यों की वाचा पतन से पहले परमेश्वर और आदम और हव्वा के सम्बन्ध से जुड़ी हुई है, जबकि अनुग्रह की वाचा पतन के पश्चात् परमेश्वर और आदम की संतानों के सम्बन्ध से जुड़ी हुई है। कार्यों की वाचा उस परिवीक्षाधीन *(probationary)* स्थिति को सन्दर्भित करती है जिसमें आदम और हव्वा की सृष्टि की गई। परमेश्वर ने उन्हें अनन्त जीवन की प्रतिज्ञा के साथ कुछ आज्ञाएँ दी थीं, जिसे अदन की वाटिका में जीवन के वृक्ष द्वारा चित्रित किया गया था। प्राथमिक अनुबन्ध *(stipulation)* यह था कि उनको भले और बुरे के ज्ञान के वृक्ष से नहीं खाना था। कार्यों की वाचा में मानव जाति की नियति का निर्णय कार्य प्रदर्शन के आधार पर किया गया था, विशिष्ट रीति से आदम और हव्वा की आज्ञाकारिता के आधार पर। यदि वे आज्ञाकारी बने रहते, तो वे अनन्त आशीष की स्थिति में प्रवेश करते। किन्तु, यदि वे उस नियम का पालन करने में विफल होते, तो वे अपनी सब सन्तानों के साथ मर जाते। आदम और हव्वा उस परीक्षा में बुरी रीति से विफल हुए। उन्होंने वाचा का उल्लंघन किया, और इसके परिणामस्वरूप संसार विनाश में डूब गया।

हम छुटकारे को आदम और हव्वा द्वारा खोई गई स्वर्ग जैसी स्थिति की पुनः प्राप्ति के रूप में देखते हैं, परन्तु यह एक त्रुटिपूर्ण समझ है। छुटकारा केवल पतन से पूर्व आदम और हव्वा की स्थिति की पुनः प्राप्ति नहीं है किन्तु उस स्थिति से पदोन्नति है जिसे वे तब प्राप्त कर पाते यदि वे वाचा के अनुबन्धों को मानने में सफल रहे होते।

एक और त्रुटिपूर्ण समझ दो वाचाओं को दिए गए नामों से आती है। क्योंकि पहली को "कार्यों की वाचा" *(the covenant of works)* कहा जाता है और दूसरे को "अनुग्रह की वाचा," *(the covenant of grace)* इसलिए हम बहुधा सोचते हैं कि पहली वाचा में अनुग्रह नहीं था। जबकि, परमेश्वर द्वारा सृष्टि के साथ किसी भी वाचा में प्रवेश करना तथा किसी भी अनुबन्धों के आधार पर हमें प्रतिज्ञा देना ही स्वयं में अनुग्रहपूर्ण कार्य है। परमेश्वर के लिए अपनी सृष्टि से कुछ भी प्रतिज्ञा करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।

कार्यों की वाचा के तोड़े जाने के पश्चात्, परमेश्वर ने मनुष्य के छुटकारे के लिए एक नया

अवसर प्रदान किया। उसने आदम और हव्वा की पतित स्थिति के होने पर भी उन्हें जीवित छोड़ा और उन्हें छुड़ाया और उसने ऐसा एक नई प्रतिज्ञा के आधार पर किया—ख्रीष्ट के कार्य के द्वारा छुटकारे की प्रतिज्ञा। पवित्रशास्त्र हमें बताता है कि हम अनुग्रह के द्वारा बचाए जाते हैं, और अनुग्रह ख्रीष्ट के व्यक्ति और कार्य के द्वारा आता है। ख्रीष्ट ने हमारा समर्थक बनने के द्वारा हमें बचाया है। वह हमारा प्रतिस्थापन्न बन गया। इसीलिए नया नियम उसे "दूसरा आदम" के रूप में सन्दर्भित करता है। वह संसार में आया और उसने अपने आप को आरम्भिक कार्यों की वाचा के अनुबन्धों के अधीन रखा। नए आदम के रूप में, वह मानो सृष्टि के समय की अदन की वाटिका में आदम और हव्वा जैसी आरम्भिक स्थिति में गया, जिसको जंगल के घटनाक्रम में दर्शाया गया था जब यीशु ने चालीस दिनों के लिए शैतान के द्वारा परीक्षा का अनुभव किया।

अपने पूरे सांसारिक जीवन में यीशु ने परीक्षा का सामना किया जिसके कारण ईश्वरविज्ञानी बल देते हैं कि हम न केवल ख्रीष्ट की मृत्यु के द्वारा परन्तु उसके जीवन के द्वारा भी बचाए जाते हैं। अपने सिद्ध आज्ञाकारिता के जीवन में ख्रीष्ट ने उन सभी अनुबन्धों को पूरा किया जो आरम्भिक कार्यों की वाचा में निर्धारित किए गए थे, जिसके कारण अन्तिम विश्लेषण में हम कार्यों के द्वारा बचाए जाते हैं। यह सत्य केवल विश्वास के द्वारा धर्मीकरण *(justification by faith alone)* को नहीं नकारता है; वरन् यह इसकी पुष्टि करता है। धर्मी ठहराया जाना या धर्मीकरण केवल ख्रीष्ट पर विश्वास के द्वारा होता है क्योंकि केवल ख्रीष्ट ने कार्यों की वाचा को पूरा किया है। हम अभी भी कार्यों के द्वारा ही बचाए जाते हैं, किन्तु *हमारे* कार्यों के द्वारा नहीं। हम ख्रीष्ट के कार्यों के द्वारा बचाए जाते हैं। एक बार पुनः ध्यान दें, अनुग्रह की वाचा, कार्यों की वाचा को निष्प्रभावी नहीं करती है; इसके विपरीत, यह कार्यों की वाचा की माँगों को पूरा करती है।

कुछ लोग सोचते हैं कि पुराना नियम परमेश्वर के न्याय और प्रकोप के विषय में है जबकि नया नियम उसकी दया, अनुग्रह, और प्रेम के विषय में है। किन्तु पवित्रशास्त्र में परमेश्वर के प्रकोप और न्याय का सबसे स्पष्ट उदाहरण पुराने नियम में नहीं किन्तु नए नियम में पाया जाता है। यह तो क्रूस पर पाया जाता है। यहाँ परमेश्वर का प्रकोप ख्रीष्ट पर उण्डेला गया था और परमेश्वर का न्याय उस कार्य में सम्पूर्णता से और पूरी रीति से सन्तुष्ट किया गया था। तौभी यही कार्य पवित्रशास्त्र में परमेश्वर के अनुग्रह का भी सबसे स्पष्ट उदाहरण है क्योंकि परमेश्वर के क्रोध को किसी और ने ले लिया। यह हमारे उस प्रतिस्थापन्न *(substitute)* के द्वारा ग्रहण किया गया, जिसने उन लोगों के लिए जो उस पर भरोसा करते हैं, अपने आप को पहली वाचा के सभी माँगों के अधीन करा और उसके सभी दायित्वों को पूरा किया। कार्यों की वाचा और अनुग्रह की वाचा एक साथ में अनादिकाल से परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं को पूरा करती हैं।

भाग चार

ख्रीष्टविज्ञान

Christology

अध्याय 23

बाइबल का ख्रीष्ट

The Christ of the Bible

विधिवत् ईश्वरविज्ञान का यह भाग, ख्रीष्टविज्ञान *(Christology)*, सम्भवतः सबसे चुनौतीपूर्ण है, तौभी यह हमारे अध्ययन का एक अति फलदायक भाग है। यहाँ हम स्वयं ख्रीष्ट के व्यक्ति और कार्य पर ध्यान देते हैं। यह महत्वपूर्ण बात है कि हमारे विश्वास को "ख्रीष्टीयता" (मसीहियत) कहा जाता है क्योंकि हमारा ध्यान उचित रीति से उस पर केन्द्रित है जिसने हमें छुड़ाया है। ख्रीष्ट के व्यक्ति *(person)* के विषय में कोई भी अध्ययन केवल इसकी सतह को ही छू सकता है, क्योंकि पवित्रशास्त्र में यीशु का चित्र इतना गहरा है कि इसे सुविस्तृत रूप से जानना मनुष्य की क्षमता से परे है।

> जो सिंहासन पर बैठा था उसके दाहिने हाथ में मैंने एक पुस्तक देखी जो भीतर-बाहर लिखी हुई थी तथा सात मुहर लगाकर बन्द की गई थी। फिर मैंने एक बलवान स्वर्गदूत को देखा जो ऊँची आवाज़ से प्रचार कर रहा था, "इस पुस्तक को खोलने और उसकी मुहरों को तोड़ने के योग्य कौन है?" पर स्वर्ग में या पृथ्वी पर या पृथ्वी के नीचे उस पुस्तक को खोलने और पढ़ने के योग्य कोई न मिला। (प्रकाशितवाक्य 5:1-3)

यूहन्ना के स्वर्ग के दर्शन में, निर्णय को घोषित किया जाने वाला है और तभी एक ऊँचा स्वर कहता है, "इस पुस्तक को खोलने और उसकी मुहरों को तोड़ने के योग्य कौन है?" यूहन्ना प्रत्याशा से भर कर यह देखते हुए प्रतीक्षा करता है कि कौन आगे आएगा, जिसे पुस्तक को खोलने के लिए योग्य घोषित किया गया है। वह आगे कहता है:

> इस पर मैं फूट-फूटकर रोने लगा, क्योंकि उस पुस्तक को खोलने या पढ़ने के योग्य कोई न मिला। तब उन प्राचीनों में से एक ने मुझ से कहा, "मत रो! देख, यहूदा के कुल का

> वह सिंह जो दाऊद का मूल है, विजयी हुआ है, कि इस पुस्तक को और उसकी सात मुहरों को खोले।"
>
> और मैंने सिंहासन और उन प्राचीनों के बीच में, चारों प्राणियों सहित, मानो एक बलि किया हुआ मेमना खड़ा देखा। उसके सात सींग और सात नेत्र थे। ये परमेश्वर की सात आत्माएँ हैं जो समस्त पृथ्वी पर भेजी गईं थीं। उसने आकर उसके दाहिने हाथ से जो सिंहासन पर बैठा था, वह पुस्तक ले ली। (पद 4-7)

तब चार जीवित प्राणी और चौबीस प्राचीन मेमने के सामने गिर पड़ते हैं और उसका स्तुतिगान करते हैं। तब हम स्वर्गदूतों की स्तुति को सुनते हैं:

> "वध किया हुआ मेमना सामर्थ्य, धन, बुद्धि, शक्ति, आदर, महिमा और धन्यवाद के योग्य है!" (पद 12)

हम इन घटनाओं के क्रम के माध्यम से यूहन्ना की परिवर्तित होती हुई मनोदशा को देख सकते हैं। वह उत्सुक है कि कोई आने वाला है और पुस्तक को खोलने वाला है, परन्तु फिर वह निराशा में डूब जाता है क्योंकि उस पुस्तक को खोलने के योग्य कोई नहीं मिलता है। तब स्वर्गदूत यूहन्ना से कहता है कि मत रो क्योंकि एक योग्य जन मिल गया है, यहूदा का सिंह। वह अपेक्षा करता है कि एक शक्तिशाली पशु दहाड़ता हुआ पुस्तक को फाड़ खोलने के लिए आएगा, परन्तु इसके विपरीत वह एक वध किया हुआ मेमना देखता है। यह चित्रण ख्रीष्ट के अपमान और उसके ऊँचे पर उठाए जाने के बीच में, उसके दुःख उठाने और उसकी विजय के बीच में एक गहरे अन्तर का सुस्पष्ट उदाहरण है। यह उसके चरित्र और योग्यता की जटिलता की ओर संकेत भी करता है।

सुसमाचारों में यीशु

परमेश्वर ने संसार को चार सुसमाचार देना क्यों उपयुक्त समझा? यीशु की एक ही आधिकारिक जीवनी क्यों नहीं? परमेश्वर को अपने स्वयं के कारणों से भाया कि वह हमें यीशु की जीवनी के आधार पर चार रूपचित्र *(portrait)* दे, सभी जो उसके व्यक्ति और उसके कार्य को थोड़े भिन्न दृष्टिकोण से देखते हैं। मत्ती के सुसमाचार में, हमें एक यहूदी दृष्टिकोण दिया गया है; इसमें पुराने नियम की अनेक नबूवतों की पूर्ति के रूप में यीशु पर बल दिया गया है। मत्ती स्पष्ट रूप से दिखाता है कि यीशु वह मसीहा है जिसकी प्रतिज्ञा शताब्दियों पूर्व की गई थी। मरकुस का सुसमाचार

संक्षिप्त है और उसकी लेखनी का ढंग लगभग आकस्मिक है; मरकुस यीशु के जीवन को पलस्तीन के भूदृश्य पर आश्चर्यकर्मों की बहुतायत में प्रस्तुत करता है। और फिर चिकित्सक लूका के द्वारा भी एक रूपचित्र प्रदान किया गया है, जो कि ग़ैरयहूदी समुदाय से था और प्रेरित पौलुस की ग़ैरयहूदी जातियों के मध्य में मिशनरी यात्राओं के लिए उसका साथी था। लूका दिखाता है कि यीशु केवल यहूदी लोगों को बचाने के लिए ही नहीं परन्तु प्रत्येक जाति, भाषा और गोत्र के पुरुषों और महिलाओं के लिए भी आया था। लूका दृष्टान्तों के माध्यम से यीशु की शिक्षा में कई अन्तर्दृष्टियों को भी प्रदान करता है और यीशु की बुद्धि को लूका में प्रदर्शित किया गया है। यूहन्ना के सुसमाचार का लगभग दो-तिहाई भाग यीशु के जीवन के अन्तिम सप्ताह के प्रति समर्पित है। यूहन्ना यह दर्शाते हुए ख्रीष्ट का एक अत्यधिक ईश्वरविज्ञानीय रूपचित्र प्रदान करता है कि यीशु सत्य का देहधारण है, जगत की ज्योति है और एकमात्र वह ही है जिस में बहुतायत का जीवन है।

सुसमाचार के वृतान्तों में, हम यह भी देखते हैं कि विभिन्न प्रकार के लोगों ने ख्रीष्ट के प्रति कैसे प्रतिउत्तर दिया। हम चरवाहों की प्रतिक्रिया को देखते हैं, जो नवजात शिशु यीशु के विषय में घोषणा को सुनकर बैतलहम के बाहरी मैदानों से आए थे (लूका 2:8–20)। हम वृद्ध शमौन की प्रतिक्रिया को देखते हैं, जो मन्दिर में तब आया था जब यीशु को अर्पण के लिए प्रस्तुत किया गया था। उस अवसर पर शमौन ने कहा,"हे स्वामी, अब तू अपने वचन के अनुसार, अपने दास को शान्ति से विदा होने दे; क्योंकि मेरी आँखों ने तेरे उद्धार को देख लिया है, जिसे तू ने सब जातियों के समक्ष तैयार किया है" (पद 29–31)। हम देखते हैं कि यीशु एक छोटे बालक के रूप में मन्दिर में विद्वानों को विस्मित कर देता है (पद 41–52)। हमें यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के द्वारा उसकी सार्वजनिक सेवा से परिचित कराया जाता है, जिसने उसे यरदन नदी की ओर आते देखा और परमेश्वर का मेमना *(Agnus Dei-ऐगनस डेई)* गीत गाया: "देखो, परमेश्वर का मेमना जो जगत का पाप उठा ले जाता है!" (यूहन्ना 1:29)। हम यीशु को नीकुदेमुस की आँखों से देखते हैं, जो रात में उससे यह कहते हुए पूछताछ करने आया था, "हे रब्बी, हम जानते हैं कि तू परमेश्वर की ओर से आया हुआ गुरु है, क्योंकि इन चिन्हों को जो तू दिखाता है कोई और नहीं दिखा सकता जब तक कि परमेश्वर उसके साथ न हो" (यूहन्ना 3:2)। हम रब्बी यीशु को देखते हैं, जिसने न केवल जब वह बालक था तब अन्य रब्बियों को विस्मित किया परन्तु आगे चल वयस्कता में अपने समय के महानतम शिक्षकों की बुद्धि और अतर्दृष्टि से कहीं आगे बढ़ गया। हम यीशु को सामरिया

के सूखार में याकूब के प्राचीन कुएँ पर समाज से एक बहिष्कृत स्त्री से बात करते हुए देखते हैं, जिसके कारण उसने कहा, "महोदय, मुझे लगता है कि तू नबी है" (यूहन्ना 4:19)। जैसे जैसे वार्तालाप आगे प्रगति करता है, यीशु स्वयं को स्त्री पर प्रकट करता है और वह समझ पाती है कि वह प्रतिज्ञा किए हुए और लम्बे समय से प्रतीक्षित मसीहा से बात कर रही है। हम उसे पिलातुस के राजभवन में देखते हैं, जहाँ पिलातुस घोषणा करता है कि, "मैं इस मनुष्य में कोई दोष नहीं पाता" (लूका 23:4)। तत्पश्चात्, हम पिलातुस द्वारा भीड़ से कहे गये उन शब्दों को सुनते हैं जिन्हें मसीही इतिहास में अविस्मरणीय बना दिया गया है: "देखो, यह मनुष्य!" (यूहन्ना 19:5)। हम क्रूस के निकट खड़े सूबेदार द्वारा यीशु के रूपचित्र को देखते हैं जिसने क्रूसीकरण को देखने के पश्चात् कहा, "सचमुच, यह परमेश्वर का पुत्र था!" (मत्ती 27:54)। हम यह सन्देह करने वाले थोमा में देखते हैं जिसने जब जीवित ख्रीष्ट को देखा, तो उसने पुकार कर कहा, "हे मेरे प्रभु, हे मेरे परमेश्वर!" (यूहन्ना 20:28)।

संक्षेप में, हम एक ऐसे जन के रूपचित्र को पाते हैं जिसके समान मानवीय इतिहास में कोई और नहीं है। सुसमाचारों में हम यीशु के जिस वृत्तान्त को देखते हैं, वह पूर्ण रूप से एक शुद्ध मनुष्य का है, एक पापरहित मनुष्य जो अपने दोष लगाने वालों से कह सकता था, "तुम में से कौन मुझे पापी ठहराता है?" (यूहन्ना 8:46)। यीशु का यह रूपचित्र अचम्भित करता है।

हमारे पास यीशु की पहचान के विषय में स्वयं उसकी साक्षी भी है: "मैंने अपने आप से कुछ नहीं कहा, परन्तु पिता जिसने मुझे भेजा है उसी ने आज्ञा दी है—कि क्या कहूँ और क्या बोलूँ" (यूहन्ना 12:49)। यद्यपि यीशु ने मसीहा के विषय में भ्रान्तिपूर्ण धारणाओं के कारण कुछ समय के लिए अपनी वास्तविक पहचान को छिपाने की इच्छा तो रखी, परन्तु तौभी उसने कुछ साहसी और असाधारण दावे किए, जैसे कि यूहन्ना के सुसमाचार में "मैं हूँ" की घोषणाएँ: "जीवन की रोटी मैं हूँ। तुम्हारे पूर्वजों ने जंगल में मन्ना खाया, और वे तो मर गए। यह वही रोटी है जो स्वर्ग से उतरती है कि जो कोई उसमें से खाए वह न मरे" (यूहन्ना 6:48-50)। कुछ लोग उन शब्दों से इतने क्रुद्ध हुए कि वे उसके साथ फिर नहीं चले।

उसने कहा, "मैं दाखलता हूँ; तुम डालियाँ हो। जो मुझ में बना रहता है और मैं उसमें, वह बहुत फल फलता है, क्योंकि मुझ से अलग हो कर तुम कुछ भी नहीं कर सकते" (यूहन्ना 15:5)। उसने यह भी कहा, "द्वार मैं हूँ" (यूहन्ना10:9), अर्थात्, उद्धार का मार्ग। स्वयं को उन दिनों के झूठे नबियों के विपरीत दिखाते हुए, जो कि बुरे चरवाहे थे तथा भेड़ों की देखभाल और पालन-पोषण की तुलना में स्वयं के वेतन के लिए अधिक चिन्तित थे, यीशु ने कहा, "अच्छा चरवाहा मैं हूँ। मैं अपनी भेड़ों को जानता हूँ और मेरी भेड़ें मुझे जानती हैं" (यूहन्ना 10:14)। उसने यह भी कहा, "मार्ग, सत्य और जीवन मैं ही हूँ" (यूहन्ना 14:6)।

इससे भी अधिक प्रभावशाली टिप्पणी यह थी: "तुम्हारा पिता अब्राहम मेरा दिन देखने की

आशा से आनन्दित हुआ। उसने देखा भी और मग्न हुआ.... मैं तुमसे सच सच कहता हूँ, इस से पहिले कि अब्राहम उत्पन्न हुआ, मैं हूँ" (यूहन्ना 8:56, 58)। उसने यह नहीं कहा,"अब्राहम से पहले, मैं था।" उसने कहा, "मैं हूँ*।*" ये "मैं हूँ" कथन दो यूनानी शब्दों से आते हैं: *एगो -ego (मैं)* और *ऐमी -eimi (मैं हूँ)।* यूनानी में, इन में से कोई भी शब्द अपने आप में यह कहने के लिए पर्याप्त है, "मैं हूँ," तौभी यीशु ने केवल यह नहीं कहा कि, "*एगो* मार्ग, सत्य और जीवन," या "*एमी* द्वार।" इसके स्थान पर, उसने दोनों शब्दों का उपयोग किया—"*एगो ऐमी*"—जिसने उसकी मुख्य बात पर दृढ़तापूर्वक बल डाला: "मैं हूँ।" इस बात का महत्व पहली शताब्दी के समुदाय से छिपा नहीं रहा: यूनानी-भाषी यहूदियों ने परमेश्वर के परमपावन नाम को "यहोवा" के रूप में लिखा, जिसका अनुवाद है, "मैं हूँ सो हूँ"—अतः जब यीशु ने स्वयं के विषय ऐसी भाषा का उपयोग किया, तो वह स्पष्ट रूप से अपनी पहचान को परमेश्वर के परमपावन नाम से जोड़ रहा था।

जब उसने "मनुष्य का पुत्र" उपाधि का उपयोग उस जन का उल्लेख करते हुए किया, जो आकाश के बादलों के साथ आते हुए अनादिकाल के प्राचीन की उपस्थिति में आता है (दानिय्येल 7:13), तो उसने परमेश्वर की नाईं अधिकार रखने का दावा किया। उस शब्दावली का उपयोग करते हुए, यीशु ने कहा, "मनुष्य का पुत्र सब्त का भी स्वामी है" (मरकुस 2:28)। परमेश्वर ने सब्त को स्थापित किया और वह इसका नियमन भी करता है, इसलिए ख्रीष्ट का यह कहना कि वह सब्त का स्वामी है अर्थात् वह स्वयं की पहचान ईश्वरत्व के साथ कर रहा था। एक अन्य अवसर पर, उसने एक मनुष्य को चंगा किया जिससे कि धार्मिक अधिकारीगण यह जानने पाएँ कि "मनुष्य के पुत्र को पृथ्वी पर पाप क्षमा करने का अधिकार है" (मत्ती 9:6; मरकुस 2:10; लूका 5:24)। एक बार पुनः यीशु के शत्रु इस बात से अत्यन्त क्रोधित थे कि यीशु, "अपने आप को परमेश्वर के तुल्य ठहरा रहा था" (यूहन्ना 5:18)।

यीशु के विषय में प्रेरितीय साक्षी

सुसमाचारों में जो रूपचित्र हम पाते हैं उनके अतिरिक्त हमारे पास प्रेरितीय साक्षी है। प्रेरित पौलुस हमारे लिए ख्रीष्ट की सेवा को उद्धारकर्ता के रूप में प्रकट करता है। वह प्रायश्चित्त को समझाता है, और यह भी कि किस रीति से ख्रीष्ट ने हमारे लिए मध्यस्थ के रूप में छुटकारे को पूरा किया। ख्रीष्ट का रूपचित्र पतरस और यूहन्ना की पत्रियों में और इब्रानियों की पत्री में भी भरा हुआ है, जहाँ ख्रीष्ट को, "परमेश्वर की महिमा का प्रकाश और उसके तत्त्व का प्रतिरूप" (इब्रानियों 1:3), इसके साथ-साथ स्वर्गदूतों, मूसा, और पुराने नियम के हारूनीय याजकों से श्रेष्ठ दिखाया गया है। मत्ती से प्रकाशितवाक्य तक, नए नियम का केन्द्रीय और प्रधान विचार तो ख्रीष्ट ही है।

पुराने नियम में यीशु

हम पाते हैं कि यीशु पुराने नियम का भी मुख्य विषय है। मिलापवाला तम्बू, जिसका विस्तार से वर्णन किया गया है, स्वयं यीशु के विषय में प्रतीकों से भरा हुआ है। अपने व्यक्ति और कार्य में वह पुराने नियम का मिलापवाला तम्बू है। पुराने नियम के सभी बलिदान प्रणाली के विवरण यीशु की सेवा में परिपूर्ण होते हैं, और नबियों की पुस्तकें उस आने वाले एक जन के उल्लेखों से भरी हुईं हैं। यीशु के विषय में सीखने के लिए हम केवल नए नियम में ही नहीं जाते हैं; उसकी उद्घोषणा सम्पूर्ण पुराने नियम में भी की जाती है। उत्पत्ति से प्रकाशितवाक्य तक, हम यीशु की कहानी को पाते हैं, जो ख्रीष्ट है।

हम यीशु के इस महिमामयी रूपचित्र में सिद्ध मनुष्य को देखते हैं, परन्तु केवल सिद्ध मनुष्य को ही नहीं—हम उसको देखते हैं जो कि निश्चित ही परमेश्वर हमारे साथ है, देहधारी परमेश्वर, और यीशु के इस अनोखे और अगाध चित्र के कारण कलीसिया को आरम्भिक शताब्दियों में अपने ईश्वरविज्ञानीय सूत्रीकरणों को अभिव्यक्त करने में, यीशु के मनुष्यत्व और ख्रीष्ट के ईश्वरत्व दोनों के प्रति विश्वासयोग्य बनने में कठिनाई का सामना करना पड़ा। यह कठिनाई नीकिया की महासभा *(Council of Nicea)* में और उसके पश्चात् चाल्सीदोन की महासभा *(Council of Chalcedon)* में प्रकट हुई।

अध्याय 24

एक व्यक्ति, दो स्वभाव

One Person, Two Natures

हम एक ऐसे समय में रहते हैं जब ख्रीष्ट का व्यक्ति *(the person of Christ)* ईश्वरविज्ञानियों के बीच में बड़े विवाद का विषय है। किन्तु, यह एक नई समस्या नहीं है। चौथी शताब्दी में, एरियन *(Arian)* विवाद के कारण नीकिया महासभा का गठन हुआ (325 ई.)। एक अन्य विवाद के कारण चाल्सीदोन की वैश्विक कलीसियाई महासभा *(Council of Chalcedon)* हुई (451 ई.)। उन्नीसवीं शताब्दी ने उदारवाद के आगमन को देखा और बीसवीं शताब्दी में एक समूह था जिसे जीज़स सेमिनार कहा जाता था, इन दोनों ने बाइबल की सत्यता का सम्मान न करते हुए ख्रीष्ट को परिभाषित करने का प्रयास किया। कलीसिया को ख्रीष्ट के व्यक्ति के विषय में अपनी समझ को बारम्बार परिभाषित करना पड़ा है।

दो विधर्मताएँ *(Two Heresies)*

पाँचवीं शताब्दी ने मसीही शास्त्रसम्मतता *(orthodoxy)* पर द्विपक्षीय आक्रमण देखा। पहला, मॉनोफिसाइट *(Monophysite)* विधर्मता थी, जो यूतुखुस *(Eutyches)* नामक एक व्यक्ति द्वारा लायी गई थी। इस पक्ष का नाम *मोनो (mono)* उपसर्ग *(prefix)* से, जिसका अर्थ है "एक," और *फिसिस (physis)* शब्द से आता है, जिसका अर्थ *नेचर (nature)* अर्थात् "स्वभाव" है। मॉनोफिसाइटवादी विश्वास करते थे कि ख्रीष्ट का केवल एक स्वभाव है; उन्होंने यह नकारा कि वह दो स्वभावों के साथ एक ही व्यक्ति है, एक ईश्वरीय और एक मानवीय। यूतुखुस के पहले भी, कुछ अन्य लोगों ने तर्क दिया था कि ख्रीष्ट का केवल एक ही स्वभाव है। उनमें से, कुछ ने कहा कि ख्रीष्ट तो मात्र मानव था, ईश्वरत्व के बिना। कुछ अन्य समूहों ने जैसे कि डोसेटिस्टवादियों *(Docetists)* ने तर्क दिया कि वह बिना किसी मानवता के पूर्ण रूप से ईश्वर था। यूतुखुस ने इस विचार को प्रस्तुत किया कि ख्रीष्ट के पास एक *थिऐनथ्रोपिक (theanthropic)* स्वभाव था। यह शब्दावली यूनानी भाषा के निम्न शब्दों से आती है: *थिओस (theos)* शब्द जिसका अर्थ है "ईश्वर," और *ऐनथ्रोपोस*

(anthrōpos), जिसका अर्थ है "मानव"। यूतुखुस ने कहा कि ख्रीष्ट का स्वभाव न तो वास्तव में ईश्वरीय और न ही वास्तव में मानवीय था; इसके विपरीत, वह ईश्वरीय और मानवीय स्वभाव का मिश्रण था।

पाँचवीं शताब्दी की दूसरी प्रमुख विधर्मता नेस्टोरियनवाद *(Nestorianism)* थी। नेस्टोरियस *(Nestorius)* ने तर्क दिया कि क्योंकि ख्रीष्ट के पास दो भिन्न स्वभाव हैं, एक ईश्वरीय और दूसरा मानवीय, इसलिए अवश्य है कि उसके पास दो भिन्न व्यक्तित्व *(personalities)* होंगे। यदि दो स्वभाव हैं, तो दो व्यक्ति अवश्य ही होंगे।

तो ख्रीष्ट के सिद्धान्त *(the doctrine of Christ)* पर दोनों ओर से आक्रमण हुआ: एक पक्ष ने ख्रीष्ट के दोहरे स्वभाव को नकारा अर्थात् ईश्वरीय और मानवीय स्वभाव के भ्रमित मिश्रण के द्वारा उसे केवल एक ही स्वभाव में घटा दिया, और दूसरे ने दो स्वभावों की पुष्टि तो की परन्तु उसने उन स्वभावों की एकता को नकार दिया।

चाल्सीदोन की महासभा

इन जुड़वा विधर्मताओं ने **चाल्सीदोन** की महासभा को प्रेरित किया, और उस महासभा से ख्रीष्ट के दोहरे स्वभाव का पारम्परिक सूत्रीकरण आया: कि ख्रीष्ट एक व्यक्ति है जिसमें दो स्वभाव हैं—*वेरा होमो वेरा डेउस (vera homo vera Deus)*। *वेरा* शब्द लातीनी शब्द *वेरिटास-veritas* से आता है जिसका अर्थ "सत्य" है। यहाँ पर विचार है कि ख्रीष्ट वेरा होमो, वेरा डेउस है, "वास्तव में मनुष्य और वास्तव में परमेश्वर।" ख्रीष्ट के पास एक वास्तविक मानवीय स्वभाव है *और* एक वास्तविक ईश्वरीय स्वभाव भी है। ये दो स्वभाव सिद्ध रीति से एक व्यक्ति में संयुक्त हैं।

उस अभिपुष्टिकरण के साथ, चाल्सीदोन की महासभा ने चार बातों के खण्डन को प्रस्तुत किया।* जैसा कि मैंने पहले बताया कि अपने सम्पूर्ण इतिहास में कलीसिया ने कुछ अवधारणाओं को नकारने के द्वारा उनका वर्णन करने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए, एक रीति से हम परमेश्वर को उन बातों के द्वारा परिभाषित कर सकते हैं जो वह *नहीं* है। वह असीमित *(infinite)* है, का अर्थ है कि वह सीमित *नहीं* है। वह अपरिवर्तनीय *(immutable)* है, का अर्थ है कि वह परिवर्तनशील *नहीं* है। इसी रीति से चाल्सीदोन विश्वास वचन के निर्माताओं ने चार बातों का खण्डन करते हुए यह अँगीकार किया कि ख्रीष्ट वास्तव में मनुष्य है और वास्तव में परमेश्वर है, और ये दो स्वभाव सिद्धता से *बिना* किसी मिलावट *(mixture)*, भ्रम *(confusion)*, अलगाव *(separation)* या विभाजन *(division)* के संयुक्त हैं।

इनमें से पहली दो नकारी गयी बातें, जो मॉनोफिसाइटवादी विधर्मता से सम्बन्धित हैं, वे बताती हैं कि दोनों स्वभाव, ईश्वरीय और मानवीय, एक साथ ऐसे मिश्रित नहीं हैं जिससे कि एक मानव स्वभाव को दिव्यता प्रदान की गई हो या एक दिव्य स्वभाव को मानवीय बनाया गया हो। मानवीय स्वभाव मानवता की सामान्य सीमाओं के अधीन सदैव मानव होता है, और ईश्वरीय

* चाल्सीदोन के विश्वास वचन को परिशिष्ट में सम्मिलित किया गया है।

स्वभाव सभी ईश्वरीय गुणों को बनाए रखते हुए सदैव ईश्वरीय होता है। उदाहरण के लिए, देहधारण में ईश्वरीय मस्तिष्क ने अपने सर्वज्ञान *(omniscience)* को खोया नहीं था; ईश्वरीय मस्तिष्क सब कुछ जानता था, यद्यपि मानवीय मस्तिष्क सब कुछ नहीं जानता था।

सुई जेनेरिस (अद्वितीय)

यीशु के कुछ शब्दों पर विचार करते हुए कलीसिया को एक व्यक्ति में दो स्वभाव के विचार के निहितार्थों के साथ संघर्ष करना पड़ा है। एक बार, चेलों ने यीशु से पूछा, "तेरे आने का तथा इस युग के अन्त का क्या चिन्ह होगा?" यीशु ने उत्तर दिया, "उस दिन या उस घड़ी के विषय में कोई नहीं जानता, न तो स्वर्गदूत और न ही पुत्र परन्तु केवल पिता" (मत्ती 24:3, 36)। दूसरे शब्दों में, यीशु ने अपने चेलों से कहा कि वह नहीं जानता था कि युग का अन्त कब आएगा। क्या यह संकेत मानवीय स्वभाव की ओर था या ईश्वरीय स्वभाव की ओर?

जब हम यीशु के जीवन को उस प्रकार से देखते हैं जैसे उसे पवित्रशास्त्र के पन्नों पर प्रदर्शित किया गया है, तो उसके कुछ कार्यों को उसके मानव स्वभाव के अन्तर्गत आवंटित करना सरल है। जब यीशु ने गतसमनी के बगीचे में अपने क्रूसीकरण से पूर्व की रात में पसीना बहाया, तो क्या वह एक ईश्वरीय प्रकटीकरण था? क्या पसीना बहाना कोई ऐसा कार्य है जिसकी हम परमेश्वर से अपेक्षा करेंगे? नहीं, परमेश्वर का पसीना नहीं बहता है। इसी रीति से, उसे भूख नहीं लगती है, लहू नहीं बहता है, और न ही वह रोता है। सबसे महत्वपूर्ण, ईश्वरीय स्वभाव क्रूस पर मरा नहीं; यदि ईश्वरीय स्वभाव क्रूस पर मरा होता, तो विश्व का अस्तित्व ही समाप्त हो गया होता। इन सभी घटनाओं ने यीशु की मानवता का प्रमाण दिया था।

इसी रीति से, जब यीशु ने कहा कि वह युग के अन्त का समय नहीं जानता था, तो यह स्पष्ट रूप से उसकी मानवता के विषय में कथन था। कुछ लोग आपत्ति जताते हैं कि यदि परमेश्वर सब कुछ जानता है, और यदि ख्रीष्ट में ईश्वरीय स्वभाव तथा मानवीय स्वभाव की सिद्ध संयुक्तता है, तो ऐसा कैसे हो सकता है कि कुछ बातें यीशु नहीं जानता था? यह बात तो इस प्रश्न को करने के समान है कि यीशु कैसे अपने ईश्वरीय स्वभाव में भूख का अनुभव कर सकता था, जिसे बाइबल स्पष्ट रूप से कहती है कि उसने ऐसा अनुभव किया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि ईश्वरीय स्वभाव और मानवीय स्वभाव के मध्य अन्तर करना महत्वपूर्ण है जिससे कि हम उनमें भ्रम न करें या उन्हें आपस में इस रीति से न मिला दें कि दोनों की वास्तविकता अस्पष्ट हो जाए।

यह तथ्य कि यीशु युग के अन्त के दिन या घड़ी के विषय में नहीं जानता था इस बात की ओर संकेत नहीं करता है कि उसके ईश्वरीय स्वभाव और मानवीय स्वभाव में अलगाव है। कोई अलगाव

(separation) नहीं है, परन्तु एक अन्तर *(distinction)* है। उसका मानवीय मस्तिष्क सदैव उसके ईश्वरीय मस्तिष्क के साथ एकता में है, और नए नियम में हम बहुधा यीशु को अलौकिक ज्ञान प्रदर्शित करते हुए देखते हैं। वह ऐसी बातों को प्रकट करता है जिन्हें किसी भी मनुष्य के लिए जानना सम्भव नहीं था। उसे यह जानकारी कहाँ से मिली? यह उसे उससे मिली जो सर्वज्ञानी है। तौभी ईश्वरीय स्वभाव का मानवीय स्वभाव के साथ ज्ञान का संचार करना तो एक बात है; परन्तु ईश्वरीय स्वभाव द्वारा मानवीय स्वभाव को निगल लेना और ख्रीष्ट के मानवीय मस्तिष्क को ईश्वरीय बनाना तो दूसरी बात है। यदि देखा जाए तो, मानवीय मस्तिष्क के पास ईश्वरीय मस्तिष्क तक पहुँच थी, परन्तु वे एक ही वस्तु नहीं थे इसलिए उसकी स्वयं की साक्षी के अनुसार कुछ बातें अवश्य थीं जिन्हें यीशु अपने मानवीय स्वभाव के अनुसार नहीं जानता था।

इस बात ने तेरहवीं शताब्दी के प्रतिभाशाली ईश्वरविज्ञानी थॉमस अक्वाइनस को भी व्याकुल कर दिया था, जिसने “समायोजन सिद्धान्त” *(accommodation theory)* का सूत्रीकरण किया था। अक्वाइनस ने कहा कि यीशु को दिन और घड़ी अवश्य ही ज्ञात होगा क्योंकि वह देहधारी परमेश्वर है। उसके दोनों स्वभावों की सिद्ध एकता के होने के नाते, यह कैसे सम्भव है कि ईश्वरीय मस्तिष्क कुछ ऐसा जान सकता था जिसे मानवीय मस्तिष्क नहीं जानता था? अक्वाइनस ने कहा ऐसा नहीं हो सकता है, तो इसलिए यीशु को पता होगा और उसने चेलों को न बताने का निर्णय लिया होगा क्योंकि उनके प्रश्न का उत्तर उनको समझने के लिए बहुत रहस्यात्मक या ईश्वरविज्ञानीय रीति से कठिन था। यद्यपि हम थॉमस को उचित सम्मान देना चाहते हैं, किन्तु यदि यीशु ने अपने चेलों से कहा कि वह नहीं जानता है जबकि वह वास्तव में जानता था, तो वह झूठ बोल रहा था और एक भी झूठ उसे हमारा उद्धारकर्ता होने के लिए अयोग्य ठहरा देता है। जो कुछ भी यीशु ने मानवीय रूप से बोलते हुए, अपने ज्ञान की सीमाओं के विषय में कहा था उसे हमें गम्भीरता से लेना ही होगा।

अतः, चाल्सीदोन के विश्वास वचन में पहली दो नकारी गई बातें—*बिना मिश्रण* और *बिना भ्रम* के—मॉनोफसाइटवादी विधर्मता को सम्बोधित करने के लिए बनाईं गई थीं। अन्य दो बातें जिन्हें नकारा गया—*बिना अलगाव* और *बिना विभाजन* के—नेस्टोरियनवाद विधर्मता का सामना करने के लिए इस बात की अभिपुष्टि करते हुए बनाईं गई थीं, कि यीशु में दो स्वभावों की उपस्थिति का अर्थ यह नहीं था कि वह एक व्यक्ति नहीं था।

चारों बातें जिन्हें नकारा गया है वह हमारे लिए ऐसी सीमाएँ निर्धारित करती हैं जिनमें हम देहधारण के रहस्य को समझने का प्रयास करते हैं। मैं *रहस्य* शब्द पर बल देता हूँ क्योंकि कलीसिया के द्वारा प्रदान किए गए सूत्रीकरणों के पश्चात् भी, किसी ने भी कभी भी इस बात की गहराई को नहीं भेदा है कि कैसे ख्रीष्ट वास्तव में परमेश्वर और वास्तव में मनुष्य हो सकता है। हमारे पास जो व्यक्ति है वह *सुई जेनेरिस* अर्थात् अद्वितीय और अनोखा है: वह अपने आप में एक पृथक श्रेणी में है। पूरे मानव इतिहास में एक ही व्यक्ति है जो देहधारी परमेश्वर हुआ है, और देहधारण का रहस्य हमारी सम्पूर्ण समझ से परे है।

मानवीय और ईश्वरीय

चाल्सीदोन का दोहरा महत्व है। पहला, यह अभिपुष्टि जिसे प्रत्येक मसीही को करना होगा कि—ख्रीष्ट वास्तव में मानव और वास्तव में ईश्वर है। दूसरा, जब कलीसिया उसके स्वभाव की एकता को समझाने का प्रयत्न करती है, तो वह नकारी गयी बातों की ओर मुड़ती है, और फलस्वरूप उन सीमाओं को स्थापित करती है जिनके पार हम बढ़ने का साहस नहीं करते हैं। उन सीमाओं की दूसरी ओर केवल किसी न किसी प्रकार की विधर्मता ही है। सेमिनरी के मेरे प्राध्यापकों में से एक ने अपने विद्यार्थियों से कहा, "यदि आप मानवीय स्वभाव और ईश्वरीय स्वभाव के मिलन के विषय में वस्तुतः सोचने का प्रयास करते हैं, और यदि आप चाल्सीदोन द्वारा स्थापित नकारी गयी श्रेणियों के पार जाते हैं, तो फिर आपको अपनी विधर्मता का चुनाव करना होगा।" चाल्सीदोन का विश्वास वचन हमें सीमित करता है जिससे कि हम दो स्वभावों के विषय में चाहे जैसे भी सोचें, हमें उन्हें एक मिलावट किया हुआ सम्मिश्रण या एक दूसरे से नितान्त पृथकता के रूप में नहीं सोचना चाहिए। वे संयुक्त हैं, तौभी भिन्न हैं।

इस विश्वास वचन के एक महत्वपूर्ण वाक्याँश की इतिहास में बुरी रीति से उपेक्षा की गई है: "प्रत्येक स्वभाव अपने गुणों को बनाए रखता है।" ख्रीष्ट ने अपने ईश्वरीय गुणों में से किसी को भी अलग नहीं रख छोड़ा। ख्रीष्ट का ईश्वरीय स्वभाव अनन्त, असीमित, अपरिवर्तनीय, सर्वज्ञानी और सर्वशक्तिशाली है। मानवीय स्वभाव भी मानवता के गुणों को बनाए रखता है; वह सीमित है तथा समय और स्थान से बाधित है। जब हम ख्रीष्ट के व्यक्ति पर अपने अध्ययन में आगे बढ़ते हैं तो चाल्सीदोन का सूत्र हमें कुछ दिशा प्रदान करता है।

अध्याय 25

ख्रीष्ट के नाम

The Names of Christ

बाइबल की एक रोचक बात यह है कि वह प्रायः नामों और उपाधियों को महत्व प्रदान करती है। परमेश्वर पिता के नाम और उपाधि अनेक हैं, और वे उसके चरित्र के विषय में कुछ प्रकट करते हैं। यही बात यीशु के लिए भी सत्य है।

मैं एक धर्मविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में एक विद्वान द्वारा दिए गए सम्बोधन को स्मरण करता हूँ। उपस्थित लोग एक विद्वत्तापूर्ण भाषण की अपेक्षा कर रहे थे, परन्तु वक्ता ने सबको आश्चर्यचकित कर दिया केवल यीशु के नामों और उपाधियों को सुनाने के द्वारा जो कि बाइबल में पायी जाती हैं: "प्रभु," "परमेश्वर का पुत्र," "मनुष्य का पुत्र," "दाऊद का पुत्र," "इम्मानुएल," "वचन," आदि। उसे सारे नामों और उपाधियों को समझाने में पैंतालीस मिनट लगे। उनमें से प्रत्येक नाम और उपाधि हम पर ख्रीष्ट के चरित्र या कार्य के विषय में कुछ प्रकट करते हैं। इस अध्याय में, मैं नए नियम में यीशु को दी गईं तीन सबसे प्रमुख उपाधियों को देखना चाहता हूँ।

ख्रीष्ट

हम उसे यीशु ख्रीष्ट के रूप में सबसे अच्छी रीति से जानते हैं, परन्तु वास्तव में उसका नाम वह नहीं है। उसका नाम है यीशु, यूसुफ-का-पुत्र यीशु, या नासरत का यीशु। किन्तु, "ख्रीष्ट" एक उपाधि है। यह पवित्रशास्त्र में यीशु पर किसी भी अन्य उपाधि से अधिक बार लागू की जाती है। कभी-कभी बाइबल क्रम को उल्टा कर देती है और "ख्रीष्ट यीशु" के विषय में बात करती है। *ख्रीष्ट* शब्द यूनानी शब्द *ख्रिस्टोस* से आता है, जो कि पुराने नियम में *मसीहा (Messiah)* शब्द का अनुवाद है और इसका अर्थ है "अभिषिक्त जन।"

जब यीशु ने अपना पहला अभिलेखित उपदेश आराधनालय में दिया, तो उसने यशायाह नबी

की पुस्तक से पढ़ा: "प्रभु का आत्मा मुझ पर है, क्योंकि उसने कंगालों को सुसमाचार सुनाने के लिए मेरा अभिषेक किया है। उसने मुझे भेजा है कि मैं बन्दियों को छुटकारे का और अन्धों को दृष्टि पाने का सन्देश दूँ और दलितों को छुड़ाऊँ, और प्रभु के अनुग्रह के समय की उद्घोषणा करूँ" (लूका 4:18-19)। उस खण्ड को पढ़ने के पश्चात्, यीशु ने सुनने वालों से कहा, "आज यह लेख तुम्हारे सुनते हुए पूरा हुआ" (पद 21)। वह तो वहाँ पर मसीहा के विषय में यशायाह के शब्दों से स्वयं की पहचान करा रहा था।

यह मसीहा की अवधारणा तो अत्यन्त जटिल है, परन्तु प्रगतिशील बाइबलीय प्रकाशन *(Progressive Biblical Revelation)* में वह जो आएगा और अपने लोगों, अर्थात् इस्राएल को छुड़ाएगा, उस मसीहा के कार्य, चरित्र और स्वभाव के विषय में अनेक आपस में गुथी हुई लड़ियाँ पाई जाती हैं। एक प्रकार से, ख्रीष्ट को मसीहा होने के लिए, उसे चरवाहा, राजा, मेमना और दुःख उठाने वाला दास बनना था, जिन सब की यशायाह में भविष्यवाणी की गई थी। विभिन्न लड़ियाँ एक अद्भुत रीति से एक साथ जुड़ जाती हैं। वास्तव में, बाइबल की ईश्वरीय प्रेरणा के असाधारण प्रमाणों में से एक यह है कि पुराने नियम में निर्धारित की गई मसीहाई अपेक्षाओं की सभी लड़ियाँ किस रीति से एक साथ आती हैं और एक व्यक्ति में अप्रत्याशित रीति से परिपूर्ण होती हैं। प्रकाशितवाक्य 5 में यूहन्ना के दर्शन में, उसकी अगुवाई एक सिंह की (पद 5) अपेक्षा करने के लिए की जाती है परन्तु उसने एक मेमने (पद 6) को देखा। यीशु ने दोनों को परिपूर्ण किया। वह यहूदा का सिंह है, इस्राएल का नया राजा, और वह मेमना भी है, जिसका वध उसके लोगों के स्थान पर किया गया था।

प्रभु

नए नियम में यीशु के लिए दूसरी सर्वाधिक उपयोग की जाने वाली उपाधि "प्रभु" है। इस उपाधि ने मसीही समाज के सबसे पहले विश्वास वचन का गठन किया: *इएयूस हो कुरियोस-Iēsous ho kyrios,* "यीशु प्रभु है।" यह अँगीकार उस संघर्ष के केन्द्र में था जिसे आरम्भिक कलीसिया ने रोमी अधिकारियों के साथ अनुभव किया। रोमी नागरिकों के लिए अनिवार्य था कि वे सार्वजनिक रूप से इन शब्दों को बोलें *कैसर कुरियोस-Kaiser kyrios,* "कैसर प्रभु है।" आरम्भिक मसीही लोग पूर्णतः उस उत्तरदायित्व के लिए समर्पित थे जिसे उन्होंने ख्रीष्ट और प्रेरितों से प्राप्त किया था कि वे सरकार के प्रति आज्ञाकारी हों; वे अपने करों का भुगतान करने और राज्य के नियमों का पालन करने में सावधानी बरतते थे। परन्तु एक बात जो वे नहीं करते थे वह था कैसर को वह आदर देना जो कि *प्रभु* शब्द के साथ जुड़ा हुआ था।

नए नियम में *प्रभु* शब्द का उपयोग सदैव राजसी रीति से नहीं किया जाता है। वास्तव में, यूनानी शब्द *कुरियोस* के तीन भिन्न अर्थ हैं।

पहला, *कुरियोस* शब्द एक साधारण, विनम्र सम्बोधन के रूप में अंग्रेज़ी शब्द *सर* (श्रीमान) के नाईं कार्य करता था। जब हम नए नियम को पढ़ते हैं और लोगों को पहली बार यीशु से मिलकर और उसे "प्रभु" के रूप में सम्बोधित करते हुए देखते हैं, तो हमें तुरन्त यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि उनमें ख्रीष्ट के प्रताप की सम्पूर्ण माप की एक गहरी समझ थी। हो सकता है कि वे केवल एक विनम्र रीति से उसका सम्बोधन कर रहे थे। निसन्देह, *सर* (श्रीमान) शब्द का अंग्रेज़ी भाषा में भी एक अधिक ऊँचा अर्थ हो सकता है, जैसे कि इंग्लैण्ड में जब किसी व्यक्ति को नाइट *(सामन्त)* की पदवी दी जाती है, तो उदाहरण के लिए वह सर विन्स्टन चर्चिल *(Sir Winston Churchill)* या सर लॉरेंस ओलिवियर *(Sir Laurence Olivier)* हो जाता है।

नए नियम में *कुरियोस* शब्द का एक और रीति से उपयोग किया गया है और वह है किसी दास के स्वामी के विशेष सन्दर्भ में, अर्थात् एक धनी व्यक्ति जिसके पास बन्धुवा मजदूरों को मोल लेने के लिए पर्याप्त धन था। एक दास या बन्धुवा एक *डूलोस-doulos* था और कोई भी तब तक एक डूलोस नहीं हो सकता था जब तक कि उसका कोई *कुरियोस-kyrios* अर्थात् एक स्वामी न हो। इस प्रकार, *प्रभु* शब्द का उपयोग ऐसे व्यक्ति का उल्लेख करने के लिए किया जाता था जो दासों का स्वामी था। प्रेरित पौलुस ने इस उपाधि का बहुधा इसी रीति से उपयोग किया था, उसने प्रायः स्वयं को यीशु ख्रीष्ट के *डूलोस* के रूप में वर्णित करते हुए विश्वासियों को निर्देश दिया कि वे अपने विषय में इस बात के प्रकाश में सोचें कि: "तुम मूल्य देकर खरीदे गए हो" (1 कुरिन्थियों 6:20; 7:23)। जब हम अँगीकार करते हैं कि यीशु प्रभु है, तो हम समझते हैं कि ख्रीष्ट ने हमें प्रायश्चित्त *(atonement)* के द्वारा मोल लिया है और इसलिए वह हमारा स्वामी है। हम उसकी सम्पत्ति हैं।

नए नियम में *कुरियोस* शब्द का तीसरा और उच्चतम उपयोग साम्राज्य *(imperial)* सम्बन्धी उपयोग है, जिसे कैसर स्वयं के लिए हड़पना चाहता था, फलस्वरूप जिसने मसीहियों के लिए अत्यधिक समस्या को उत्पन्न किया था। निस्सन्देह, कोई भी इस उपाधि को एक झूठी रीति से अभिव्यक्त कर सकता है, अर्थात् राजसी उपयोग का ढोंग करते हुए जिसके कारण यीशु ने कहा, "ये लोग होठों से तो मेरा आदर करते हैं, परन्तु इनका हृदय मुझ से दूर है" (मत्ती 15:8)। यद्यपि, नया नियम हमें बताता है कि, "पवित्र आत्मा के बिना कोई यह नहीं कह सकता है कि यीशु प्रभु है" (1 कुरिन्थियों 12:3)। यह उस बात का खण्डन करते हुए प्रतीत होती है जो यीशु ने पहाड़ी उपदेश के अन्त में कही थी:

> प्रत्येक जो मुझ से, "हे प्रभु!, हे प्रभु! कहता है," स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न करेगा, परन्तु जो मेरे स्वर्गीय पिता की इच्छा पर चलता है, वही प्रवेश करेगा। उस दिन बहुत से लोग मुझ से कहेंगे "हे प्रभु, हे प्रभु, क्या हमने तेरे नाम से नबूवत नहीं की और तेरे नाम से

> दुष्ट आत्माओं को नहीं निकाला और तेरे नाम से बहुत से आश्चर्यकर्म नहीं किए?" तब मैं उनसे स्पष्ट कहूँगा, "मैंने तुम को कभी नहीं जाना; हे कुकर्मियों, मुझ से दूर हटो।" (मत्ती 7:21-23)

तो पवित्रशास्त्र यह क्यों कहता है कि बिना पवित्र आत्मा के द्वारा कोई भी व्यक्ति यीशु को "प्रभु" नहीं कह सकता है? कुछ कहते हैं कि यह कथन लुप्तपद *(elliptical)* है; दूसरे शब्दों में, जो बात विलुप्त *(omitted)* की गयी है और जिसे जोड़ना *(inserted)* चाहिए था, वह यह है कि कोई भी व्यक्ति *सत्यनिष्ठा के साथ* यीशु को "प्रभु" नहीं कह सकता जब तक कि उसे पवित्र आत्मा द्वारा ऐसा करने की क्षमता न दी गई हो। अन्य लोगों का मानना है कि इसका सन्दर्भ सताव के विषय में हो सकता है जिसे कुछ लोगों ने ख्रीष्ट के प्रभुत्व पर अपने विश्वास को सार्वजनिक रूप से अँगीकार करने के कारण अनुभव किया था।

चाहे जैसी भी स्थिति हो, "प्रभु" उपाधि का वास्तविक महत्व इसमें पाया जाता है जैसा कि वह पुराने नियम से अनुवादित होता है। जिस प्रकार नए नियम में ख्रीष्ट की कई उपाधियाँ हैं, वैसे ही पुराने नियम में परमेश्वर की भी कई उपाधियाँ हैं। पुराने नियम में उसका नाम *यहोवा (Yahweh)* है, जिसका अंग्रेज़ी में अनुवाद "लॉर्ड-*LORD*" के रूप में किया गया है और सामान्य रीति से बड़े अक्षरों के द्वारा दिखाया जाता है— "*LORD।*" जब हम अंग्रेज़ी में "प्रभु-Lord" शब्द को छोटे अक्षरों में देखते हैं, तो वह एक अलग इब्रानी शब्द *एडोनाय (Adonai)* का अनुवाद कर रहा है, जो कि पुराने नियम में इब्रानी लोगों द्वारा परमेश्वर के लिए उपयोग की जाने वाली सर्वोच्च उपाधि थी। *एडोनाय* शब्द का सम्बन्ध सम्पूर्ण सृष्टि पर परमेश्वर की पूर्ण सम्प्रभुता से है। इन दो शब्दों का एक उदाहरण भजन 8 में पाया जा सकता है: "हे यहोवा-*O LORD* [*यहोवा*], हमारे प्रभु-*Lord* [*एडोनाय*], समस्त पृथ्वी पर तेरा नाम क्या ही प्रतापमय है! तू ने अपना वैभव स्वर्गों से भी ऊपर प्रदर्शित किया है" (भजन 8:1)। नए नियम में हम पौलुस के भजन को पढ़ते हैं:

> अपने में वही स्वभाव रखो जो ख्रीष्ट यीशु में था, जिसने परमेश्वर के स्वरूप में होते हुए भी परमेश्वर के समान होने को अपने अधिकार में रखने की वस्तु न समझा। उसने अपने आप को ऐसा शून्य कर दिया कि दास का स्वरूप धारण कर मनुष्य की समानता में हो गया। इस प्रकार मनुष्य के रूप में प्रकट होकर स्वयं को दीन किया और यहाँ तक आज्ञाकारी रहा कि मृत्यु वरन् क्रूस की मृत्यु भी सह ली। इस कारण परमेश्वर ने उसको अति महान् भी किया और उसको वह नाम प्रदान किया जो सब नामों में श्रेष्ठ है, कि यीशु के नाम पर प्रत्येक घुटना टिके, चाहे वह स्वर्ग में हो या पृथ्वी पर या पृथ्वी के नीचे, और परमेश्वर पिता की महिमा के लिए प्रत्येक जीभ अँगीकार करे कि यीशु ख्रीष्ट ही प्रभु है। (फिलिप्पियों 2:5-11)

वह नाम जो सब नामों में श्रेष्ठ है, वास्तव में वह उपाधि है जिसे परमेश्वर यीशु को देता है, वह उपाधि जो प्रत्येक उपाधियों से श्रेष्ठ है—*प्रभु।* वह प्रभु है, *कुरियोस (Kyrios);* वह परमेश्वर पिता की महिमा के लिए *एडोनाय* है।*

मनुष्य का पुत्र

नए नियम में यीशु के लिए तीसरी सर्वाधिक उपयोग की जाने वाली उपाधि है "मनुष्य का पुत्र।" यद्यपि सम्पूर्ण नए नियम में यह उपयोग की बारम्बारता में तीसरे स्थान पर है, परन्तु यह सबसे प्राथमिक उपाधि है जिसका यीशु ने स्वयं के लिए अत्यधिक उपयोग किया है। यह महत्वपूर्ण बात है। नए नियम में अस्सी से अधिक बार इस उपाधि का उपयोग किया गया है, और केवल तीन घटनाओं को छोड़कर शेष सभी उपयोग स्वयं यीशु द्वारा ही किये गए हैं। यह तथ्य उच्चतर आलोचकों *(higher critics)* का खण्डन करता है जो कहते हैं कि नए नियम में यीशु का अधिकाँश चित्रण उसके साथियों के द्वारा बनाया गया था। यदि यीशु के साथियों ने ऐसा किया होता, तो हम उनसे अपेक्षा करते कि वे यीशु को अपने प्रिय पदनाम देते न कि यीशु स्वयं को देता। अपने आप को इतनी बार "मनुष्य का पुत्र" कहने के द्वारा यीशु कह रहा था कि "यह है वह रीति जिससे मैं स्वयं की पहचान करता हूँ।"

कुछ लोग इस पदनाम में यीशु की नम्रता की अभिव्यक्ति को देखते हैं, पर यह सटीक नहीं है। स्वर्ग के भीतरी कक्षों वाले दानिय्येल के दर्शन में परमेश्वर न्याय के सिंहासन पर अनादिकाल के प्राचीन के रूप में प्रकट होता है, और वह अपनी उपस्थिति में ऐसे जन का स्वागत करता है जो "मनुष्य के पुत्र" के समान है, जो उसके पास महिमा के बादलों पर आता है और उसे संसार का न्याय करने का (दानिय्येल 7:13-14) अधिकार दिया जाता है। नए नियम में इस उपाधि के उपयोग में मनुष्य का पुत्र एक स्वर्गीय व्यक्ति है जो पृथ्वी पर उतरता है, और वह परमेश्वर के अधिकार से कुछ भी कम का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। वह संसार पर न्याय लाने के लिए आता है क्योंकि वह ईश्वरीय आगमन को अर्थात् प्रभु के दिन को मूर्त रूप देता है। इसलिए यह नए नियम में यीशु को अद्वितीय रूप से दी गई एक महान् उपाधि है। जब आप पवित्रशास्त्र को पढ़ते हैं और इस उपाधि को देखते हैं तो उसके सन्दर्भ को देखिए और आप यह देखना आरम्भ करेंगे कि यह यीशु के लिए एक गौरवशाली तथा ऊँचा पदनाम है।

नए नियम में यीशु को दिए गए प्रत्येक नाम और उपाधि का महत्व है। प्रत्येक हमें उसके विषय में कुछ न कुछ प्रकट करता है कि वह कौन है और उसने क्या किया है।

---

* नए नियम में यीशु के चित्र की एक अधिक पूर्ण व्याख्या के लिए देखें, R.C. Sproul, *The Majesty of Christ*, audio teaching series (Sanford, Fla.: Ligonier Ministries, 1985, 1991).

अध्याय 26

ख्रीष्ट की अवस्थाएँ

The States of Christ

पूरी बाइबल में, ख्रीष्ट को विभिन्न अवस्थाओं में देखा जाता है; अर्थात् उन विभिन्न भूमिकाओं में जिनको उसने विभिन्न समयों में निभाया है। किन्तु ख्रीष्ट की अवस्थाओं की चर्चा का आरम्भ बैतलहम में उसके जन्म से नहीं होता है; इसके विपरीत, हमें उसके देहधारणपूर्व की अवस्था से आरम्भ करना चाहिए। यूहन्ना लिखता है:

> आदि में वचन था, और वचन परमेश्वर के साथ था, और वचन परमेश्वर था. . . . और वचन, जो अनुग्रह और सच्चाई से परिपूर्ण था, देहधारी हुआ, और हमारे बीच में निवास किया, और हमने उसकी ऐसी महिमा देखी जैसी पिता के एकलौते की महिमा। (यूहन्ना 1:1,14)

यहाँ पर यह अभिपुष्टि की जा रही थी कि यह ख्रीष्ट जो पृथ्वी एवं समय में इतिहास के धरातल पर प्रकट हुआ, वह अपने गर्भधारण और जन्म से पहले ही अस्तित्व में था, तथा उसका ईश्वरीय स्वभाव पिता के साथ शाश्वत है। यीशु में हमारे पास न केवल एक बालक का जन्म है किन्तु परमेश्वर का देहधारण है, जो त्रिएकता का दूसरा व्यक्ति है।

पृथ्वी पर अपनी सेवा काल में अनेक अवसरों पर, यीशु ने अपनी पिछली अवस्था का सन्दर्भ दिया। उदाहरण के लिए:

> मैं तुमसे सच सच कहता हूँ, इससे पहिले कि अब्राहम उत्पन्न हुआ, मैं हूँ। (यूहन्ना 8:58)

> हे पिता, अब तू अपने साथ मेरी महिमा उस महिमा से कर जो जगत की उत्पत्ति से पहिले, तेरे साथ मेरी थी। (यूहन्ना 17:5)

बैतलहम में अपने जन्म से पूर्व यीशु देहधारी नहीं हुआ था। इसलिए अनेक लोग आश्चर्य करते हैं कि क्या ख्रीष्ट पुराने नियम में पाया जाता है। कुछ लोग यहोवा के सेनाध्यक्ष की ओर देखते हैं जिसका सामना यहोशू ने अपने सैन्य अभियान के समय किया था (यहोशू 5:13-15) या मलिकिसिदक के रहस्यमयी चरित्र की ओर जिसे अब्राहम ने दशवांश दिया था और जिससे उसने आशीष प्राप्त की थी (उत्पत्ति 14:18-20) और फिर अनुमान लगाते हैं कि ये रहस्यमयी चरित्र वास्तव में छद्मवेश में ख्रीष्ट ही था। किन्तु भले ही वे ऐसे थे भी, वे पूर्व-देहधारण *(prior incarnations)* नहीं थे। जो लोग मानते हैं कि ये पुराने नियम के चरित्र पूर्व-देहधारी ख्रीष्ट थे, उन प्रकटन को "ख्रीष्टदर्शन" *(Christophanies)* कहते हैं। जिस रीति से "ईश्वरदर्शन" *(Theophany)* अदृश्य परमेश्वर का एक दृश्य प्रकटीकरण है; उसी रीति से त्रिएकता के दूसरे व्यक्ति का उसके जन्म से पहले का प्रकटीकरण ख्रीष्टदर्शन होता है।

देहधारी यीशु

हम यीशु के देहधारणपूर्व स्थिति से पृथ्वी पर उसके जीवन की अवस्था की ओर बढ़ते हैं। प्रेरितों का विश्वास वचन *(Apostles' Creed)* ख्रीष्ट के पृथ्वी पर के जीवन पर प्रकाश डालता है:

> वह पवित्र आत्मा द्वारा गर्भ में आया, कुँवारी मरियम से जन्मा, पुन्तियुस पिलातुस के अधीन दुःख उठाया, क्रूसित हुआ, मारा गया, और गाड़ा गया; और अधोलोक में गया। तीसरे दिन वह जी उठा; वह स्वर्ग पर चढ़ गया, वह पिता की दाहिने हाथ पर विराजमान है, जहाँ से वह जीवितों और मृतकों का न्याय करने के लिए आएगा।

प्रेरितों के विश्वास वचन में यीशु का जन्म, यीशु की मृत्यु, यीशु का पुनरुत्थान, यीशु का स्वर्गारोहण, यीशु का विराजमान होना और यीशु के आगमन का उल्लेख किया गया है। ये यीशु के देहधारण के समय और उसके पश्चात् के अस्तित्व के विभिन्न आयामों या अवस्थाओं का वर्णन करते हैं।

ईश्वरविज्ञानी सामान्य रीति से यीशु के जीवन के विषय में अपमान *(humiliation)* से महिमा *(exaltation)* की ओर एक क्रमानुसार प्रगति की बात करते हैं। जब उसने एक निर्धन स्त्री से जन्म लिया, तब उसकी मानवता के आवरण के पीछे उसका ईश्वरत्व छिपा हुआ था और इस प्रकार से उसने अपने अपमान की स्थिति में प्रवेश किया। उसके सम्पूर्ण जीवन में जैसे-जैसे वह क्रूस की ओर बढ़ता गया, तो इस अपमान की गहनता बढ़ती गई। लोगों ने उसका तिरस्कार

किया और उसका उपहास किया गया, उसे कोड़े मारे गए, वह पीटा गया, और अन्ततः क्रूस पर चढ़ा दिया गया। अपमान की अपनी चरम गहनता तक पहुँच जाने के पश्चात्, ऊँचे पर उठाए जाने वाले कार्य में एकाएक वृद्धि हुई, जिसमें परमेश्वर ने उसे पुनरुत्थान के द्वारा निर्दोष प्रमाणित किया और उसके स्वर्गारोहण के समय उसको महिमा से सुसज्जित किया।

मैं इस सामान्य संरचना से सहमत हूँ परन्तु यह बात ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि उसके अपमान के मध्य में भी, महिमा ने उसके सांसारिक जीवन की प्रमुख घटनाओं में भाग लिया।* उदाहरण के लिए, उसके जन्म की नम्र परिस्थितियों के पश्चात् भी वह घटना बिना महिमा के प्रकटीकरण के नहीं थी। बैतलहम के गाँव से थोड़ा सा बाहर मैदानों में परमेश्वर की महिमा चमकी और वहाँ स्वर्गदूतों की गायक-मण्डली के प्रकट होने पर (लूका 2:8-14) सबसे विशाल ध्वनि-और-प्रकाश कार्यक्रम का प्रदर्शन हुआ जिसे संसार ने कभी जाना था। ज्योतिषियों के आगमन के द्वारा भी चरनी में इस बालक को महिमा का एक अंश प्रदान किया गया क्योंकि ज्योतिषियों ने उसके लिए शोभायमान भेंटों को चढ़ाया था (मत्ती 2:1-11)।

यीशु का बपतिस्मा भी एक अपमान का कार्य था। उसने स्वेच्छा से अपने आप को एक शुद्धिकरण की विधि के अधीन किया जिसे परमेश्वर ने पापियों के लिए ठहराया था, जबकि यीशु पापी नहीं था। उसने अपने लोगों के साथ एक होने के लिए स्वयं को नम्र किया और व्यवस्था की प्रत्येक बातों को मानने के लिए उनका जो कर्तव्य था उसको उसने धारण किया। और उसी समय, उसके बपतिस्मा में स्वर्ग खुल गया और पवित्र आत्मा कबूतर की भाँति उसके ऊपर उतरा (मत्ती 3:16)।

फिर पृथ्वी पर उसकी सेवा समय के समापन के निकट, अपने चेलों को अपनी आने वाली यातना और मृत्यु के विषय में बताने के पश्चात्, हमें बताया जाता है कि:

> उनके सामने उसका रूपान्तर हुआ। और उसका मुख सूर्य के समान चमक उठा, और उसके वस्त्र प्रकाश के समान श्वेत हो गए। और देखो, मूसा और एलिय्याह उसके साथ बातें करते हुए उन्हें दिखाई दिए। पतरस ने यीशु से कहा, "हे प्रभु, हमारे लिए यहाँ रहना अच्छा है। यदि तेरी इच्छा हो तो मैं यहाँ तीन मण्डप बनाऊँ, एक तेरे लिए, एक मूसा के लिए और एलिय्याह के लिए।" वह बोल ही रहा था कि देखो, एक उज्जवल बादल ने उन्हें छा लिया। और देखो, बादल में से यह वाणी हुई: "यह मेरा प्रिय पुत्र है जिस से

---

* ख्रीष्ट के जीवन में प्रमुख क्षणों के विषय में अधिक जानने के लिए, देखें R.C. Sproul, *The Glory of Christ* (Phillipsburg, N.J.: P&R, 2003)।

> मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इसकी सुनो!" जब चेलों ने यह सुना तो वे मुँह के बल गिरे और अत्यन्त डर गए। यीशु ने पास आकर उन्हें छुआ और कहा, "उठो, डरो मत।" तब उन्होंने ऊपर दृष्टि की और यीशु को छोड़ किसी को न देखा। (मत्ती 17:2-8)

आगे चलकर यूहन्ना ने अपने सुसमाचार की प्रस्तावना में लिखा कि, "हमने उसकी ऐसी महिमा देखी" (यूहन्ना 1:14)। पतरस ने भी अपने लेखन में रूपान्तरण की बात की: "हम... उसके माहात्म्य के आँखों देखे साक्षी थे। जब उसने परमेश्वर पिता से आदर और महिमा प्राप्त की, तो उसके लिए प्रतापी महिमा की ऐसी वाणी हुई, 'यह मेरा प्रिय पुत्र है, जिस से मैं अति प्रसन्न हूँ,' और जब हम उसके साथ पवित्र पर्वत पर थे तो स्वयं हमने स्वर्ग से यही वाणी सुनी" (2 पतरस 1:16-18)। अपमान से महिमा की ओर यीशु की प्रगति के मध्य में अचानक एक हस्तक्षेप हुआ, एक संक्षिप्त हस्तक्षेप, जहाँ ख्रीष्ट की गुप्त, छुपी हुई, आच्छादित महिमा उसके घनिष्ठ मित्र पतरस, याकूब और यूहन्ना की आँखों के सामने अचानक निकलकर प्रकट हुई। वे इसे कभी नहीं भूले।

हम ऐसा सोचते हैं कि क्रूस पर कोई महिमा प्रकट नहीं हुई, जहाँ पर यीशु अपने अपमान की गहनता तक पहुँच गया। सामान्य अवधारणा तो यह है कि उसके अपमान का अन्त अथवा उसके अपमान और महिमान्वित होने के मध्य में जो रेखा है वह पुनरुत्थान में पाई गयी, परन्तु मैं नहीं सोचता हूँ कि यह सटीक है। उदाहरण के लिए, यदि हम यशायाह 53 में इस्राएल के दुःख उठाने वाले सेवक की भविष्यवाणी को देखें तो हम ध्यान देते हैं कि: "वह जीव-लोक में से काट डाला गया, क्योंकि मेरे ही लोगों के अपराधों के कारण उस पर मार पड़ी। उसकी क़ब्र दुष्ट मनुष्यों के साथ ठहराई गई, तौभी मृत्यु के समय वह धनवान का संगी हुआ, यद्यपि उसने किसी प्रकार का उपद्रव न किया था और न उसके मुँह से कोई छल की बात निकली थी" (पद 8-9)।

सामान्यतः, रोमी लोग क्रूसीकरण द्वारा पीड़ितों के शवों को यरूशलेम के बाहर कचरे में फेंक देते थे। उस कचरे के ढेर का नाम गेहन्ना था, जो आगे चलकर स्वयं नरक का रूपक बन गया। नगर के कचरे को प्रतिदिन गेहन्ना ले जाया जाता था, जहाँ इसे निरन्तर जलने वाली आग में डाल दिया जाता था। ऐसे चित्रण का उपयोग नरक का वर्णन करने के लिए किया जाता है, जहाँ आग की लपटें कभी बुझती नहीं हैं। किन्तु अरमतियाह के यूसुफ ने पिलातुस से विशेष आग्रह किया कि पुराने नियम की रीति के अनुसार यीशु को उचित रीति से गाड़ा जाए। इस प्रकार परमेश्वर का वचन पूरा हुआ। यशायाह 53 की भविष्यवाणी को पूरा करते हुए, कूड़े के ढेर में फेंके जाने के स्थान पर यीशु के शव को बहुमूल्य मसालों से अभिषिक्त किया गया और धनी व्यक्ति की क़ब्र में रखा गया।

इसलिए उसका ऊँचा उठाया जाना पुनरुत्थान के समय नहीं परन्तु उसकी मृत्यु के समय ही आरम्भ हो गया था। अपमान के आवरण को तब उठा दिया गया था जब उसकी देह की देखभाल अत्यन्त आदर भाव से की गई।

फिर महिमा का वहाँ बड़ा प्रकटीकरण हुआ जब परमेश्वर ने इस बात का संकेत करने के लिए पूरी पृथ्वी को हिला दिया और अपने पुत्र को मृतकों में से वापस लाया कि वह अपने पुत्र के कार्य से सम्पूर्ण रूप से सन्तुष्ट था। अपनी पुनरुत्थित अवस्था में यीशु क़ब्र से उसी शरीर के साथ बाहर निकला जिसे क़ब्र में रखा गया था, परन्तु वह देह परिवर्तित हो गई थी। यह देह महिमान्वित थी। पुनरुत्थित ख्रीष्ट एक महिमान्वित अवस्था में था जो कि नई शारीरिक देह का पूर्वाभास था जिनका हम अन्तिम पुनरुत्थान में आनन्द लेंगे, जैसा कि पौलुस समझाता है:

> मृतकों का जी उठना भी ऐसा ही है। नश्वर देह बोई जाती है और अविनाशी देह जिलाई जाती है, अनादर के साथ बोई जाती है और महिमा के साथ जिलाई जाती है, निर्बल दशा में बोई जाती है और सामर्थ्य में जिलाई जाती है, स्वाभाविक दशा में बोई जाती है और आत्मिक दशा में जिलाई जाती है। जबकि स्वाभाविक देह है तो आत्मिक देह भी है। इसलिए यह भी लिखा है, "पहला मनुष्य आदम, जीवित प्राणी बना," और अन्तिम आदम जीवनदायक आत्मा। (1 कुरिन्थियों 15:42-45)

इस प्रकार से हम सर्वदा के लिए प्रभु के साथ स्वर्ग में होंगे।

राजाओं का राजा

यीशु की सांसारिक सेवा का अन्तिम लक्ष्य क्रूस या पुनरुत्थान भी नहीं था। उसका अन्तिम लक्ष्य तो उसका अन्तिम आगमन और उसके राज्य की पूर्ति है। और उसका उपान्तिम लक्ष्य तो स्वर्गारोहण था, वह जो कि पहले हो चुका है।

यह पूरी बाइबल में सबसे त्रुटिपूर्ण रीति से समझी जाने वाली अवधारणाओं में से एक है। हम स्वर्गारोहण के विषय में ऐसा सोचा करते हैं कि यीशु केवल पृथ्वी से ऊपर स्वर्ग में गया। वह ऊपर जाने के अर्थ में वास्तव में आरोहित हुआ, परन्तु इसमें एक विशिष्टता थी। यीशु के स्वर्गारोहण के विषय में पौलुस ने लिखा: "अब इस कथन का कि वह ऊँचे पर चढ़ा, क्या अर्थ है? केवल यही कि वह पृथ्वी के निचले स्थानों में भी उतरा था। और वह जो उतरा था स्वयं वही है जो सब आकाशों से भी ऊपर चढ़ गया कि सब कुछ परिपूर्ण करे" (इफिसियों 4:9-10)। स्वर्गारोहण यीशु के स्वयं

के राज्याभिषेक की ओर उन्नति थी। मनुष्य के पुत्र को स्वर्ग में स्वीकार किया गया और उसको राजाओं के राजा और प्रभुओं के प्रभु के रूप में मुकुट पहनाया गया और अभी वह विश्व के सर्वोच्च राजनीतिक पद पर शासन करता है। स्वर्गारोहण के कारण ही अभी ख्रीष्ट के पास वैश्विक अधिकार का पद है। इसी कारण से प्रेरितों का विश्वास वचन कहता है, "वह स्वर्ग पर चढ़ गया, और पिता के दाहिने हाथ पर विराजमान है, जहाँ से वह जीवितों और मृतकों का न्याय करने के लिए आएगा।"

हमें यह भी कहना होगा कि वह न केवल सामर्थ्य में पिता के दाहिने हाथ पर बैठने के लिए चढ़ा, परन्तु स्वर्गीय पवित्रस्थान के केन्द्र में प्रवेश करने के लिए भी, जहाँ वह सर्वदा के लिए हमारे महान् महायाजक के रूप में कार्य करता है। पुराने नियम में महायाजक को वर्ष में केवल एक बार महा पवित्रस्थान में जाने की अनुमति दी गई थी, और जब वह मर जाता था तो कोई और महायाजक बनता और उस कर्तव्य को निभाता था। परन्तु हमारा महायाजक कभी नहीं मरता है, और वह वहाँ स्वर्गीय महा पवित्रस्थान में निरन्तर अपने लोगों के लिए मध्यस्थता कर रहा है। वह वहाँ परमेश्वर के दाहिने हाथ पर हमारे राजा के रूप में शासन करते हुए और हमारे याजक के रूप में सेवा करते हुए रहता है। हमें बताया जाता है:

> क्योंकि दाऊद तो स्वयं स्वर्ग पर नहीं चढ़ा, परन्तु वह आप ही कहता है: "प्रभु ने मेरे प्रभु से कहा, 'मेरे दाहिने बैठ जब तक कि मैं तेरे शत्रुओं को तेरे चरणों की चौकी न बना दूँ।'" इसलिए इस्राएल का सम्पूर्ण घराना निश्चय जान ले कि परमेश्वर ने उसे प्रभु और ख्रीष्ट दोनों ही ठहराया, इसी यीशु को जिसे तुमने क्रूस पर चढ़ाया। (प्रेरितों के काम 2:34-36)

और इब्रानियों का लेखक लिखता है:

> इसी प्रकार ख्रीष्ट ने भी महायाजक बनने का सम्मान स्वयं नहीं लिया, पर उसी ने दिया जिसने उस से कहा, "तू मेरा पुत्र है, आज मैंने तुझे उत्पन्न किया है"; इसी प्रकार वह एक अन्य स्थल पर भी कहता है, "तू मलिकिसिदक की रीति पर युगानुयुग याजक है।" (इब्रानियों 5:5-6)

वह सामर्थ्य और महिमा के उस स्थान से अपने राज्य को सम्पूर्ण करने के लिए महिमा में लौटेगा।

अध्याय 27

ख्रीष्ट के पद

The Offices of Christ

जिस प्रकार से मूसा पुरानी वाचा का मध्यस्थ था, ख्रीष्ट नई वाचा का मध्यस्थ है। एक मध्यस्थ एक बिचवई होता है, एक बिचौलिया होता है, जो प्रायः विवाद को सुलझाने के लिए किन्हीं दो या दो से अधिक पक्षों के बीच खड़ा होता है।

ईश्वरविज्ञानीय दृष्टिकोण से परमेश्वर और मनुष्य के बीच में एक मध्यस्थ है (1 तीमुथियुस 2:5)। परन्तु पुराने नियम में तीन प्रकार के मध्यस्थ होते थे। प्रत्येक को परमेश्वर द्वारा एक विशिष्ट कार्य के लिए चुना जाता था और फिर पवित्र आत्मा के अभिषेक के द्वारा कार्य करने के लिए सक्षम बनाया जाता था। ये मध्यस्थता के तीन पद *(office)* थे: नबी, याजक और राजा।

जब हम छुटकारे की कहानी में ख्रीष्ट द्वारा धारण किए गए पदों पर दृष्टि डालते हैं, तो हम देखते हैं कि उसके पास एक तिहरा पद है—*म्युनस ट्रिप्लेक्स (munus triplex),* क्योंकि वह पुराने नियम के इन तीनों पदों को एक ही व्यक्ति में पूरा करता है। ख्रीष्ट हमारा नबी, हमारा याजक और हमारा राजा है।

यीशु हमारा नबी

पुराने नियम में नबी अधिकाँशतः, एक प्रवक्ता या प्रकाशन का एक अभिकर्ता हुआ करता था जिसके द्वारा परमेश्वर सीधे स्वर्ग से इस्राएल की मण्डली से बात करने के स्थान पर अपने शब्दों को मनुष्यों के मुँह में डालता था। जब नबी लोगों के सामने खड़ा होता था, तो परमेश्वर उसके पीछे खड़ा होता था और यह एक ऐसी मुद्रा थी जो यह संकेत करती थी कि नबी परमेश्वर की ओर से बोल रहा है। नबियों के सन्देश प्रायः “यहोवा यों कहता है . . .” के साथ आरम्भ होते थे।

पुराने नियम में हम परमेश्वर के सच्चे नबियों और झूठे नबियों के मध्य एक विशाल संघर्ष को

देखते हैं। सच्चे नबियों से प्रायः घृणा की जाती थी। यिर्मयाह तथा दूसरों ने बहुत यातना सहन की क्योंकि लोग परमेश्वर के सच्चे वचन को नहीं सुनना चाहते थे। जब यिर्मयाह ने झूठे नबियों की लोकप्रियता के विषय में परमेश्वर से कुड़कुड़ाया तो परमेश्वर ने उससे कहा, "जो नबी स्वप्न देखता है वह स्वप्न बताए, परन्तु जिसके पास मेरा वचन है वह मेरे वचन को सच्चाई से सुनाए। यहोवा कहता है, कहाँ भूसा और कहाँ गेहूँ?" (यिर्मयाह 23:28)। परमेश्वर इन सारे शब्दों के द्वारा कह रहा था, "यिर्मयाह, झूठे नबी क्या करते हैं इसके विषय में चिन्ता करना बन्द करो। तुम्हारा कार्य है मेरा प्रवक्ता होना और जो कुछ भी मैं तुम्हें बोलने के लिए कहता हूँ, उसे बोलने में विश्वासयोग्य रहने के लिए तुम्हें बुलाया गया है।" इस प्रकार नबियों के माध्यम से परमेश्वर ने अपना वचन दिया।

नए नियम में हम देखते हैं कि ख्रीष्ट *सर्वोत्कृष्ट* नबी है। हम ख्रीष्ट के याजक और राजा के पदों पर अधिक ध्यान दिया करते हैं परन्तु नबी के रूप में उसकी भूमिका को अनदेखा करते हैं। यीशु से मिलने वाले लोगों में उसके विषय में एक प्रगतिशील समझ पाई जाती है। कुएँ के पास स्त्री ने उससे कहा, "महोदय, मुझे लगता है कि तू नबी है" (यूहन्ना 4:19)। यह एक अत्यन्त अच्छी सराहना थी परन्तु वह अभी तक अपने अँगीकार के चरमोत्कर्ष तक नहीं पहुँची थी, यह तब हुआ जब उसने उसे मसीहा के रूप में पहचाना (पद 29)। यीशु ने न केवल परमेश्वर के वचन की घोषणा की; परन्तु वह तो परमेश्वर का वचन है (यूहन्ना 1:1)। इब्रानियों का लेखक लिखता है, "प्राचीनकाल में परमेश्वर ने नबियों के द्वारा पूर्वजों से बार-बार तथा अनेक प्रकार से बातें करके, इन अन्तिम दिनों में हमसे अपने पुत्र के द्वारा बातें की हैं, जिसे उसने सब वस्तुओं का उत्तराधिकारी ठहराया और जिसके द्वारा उसने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना भी की" (1:1-2)। कहीं अन्य स्थान पर यीशु ने कहा कि, "मैंने अपने आप कुछ नहीं कहा, परन्तु पिता जिसने मुझे भेजा है उसी ने आज्ञा दी है कि क्या कहूँ और क्या बोलूँ" (यूहन्ना 12:49)। यीशु नए नियम का विश्वासयोग्य नबी है।

यीशु केवल नबूवत का कर्ता *(subject)* ही नहीं है; वह तो नबूवत की मुख्य वस्तु *(object)* है। उसने न केवल भविष्य के विषय में सिखाया है और न केवल परमेश्वर के वचन की घोषणा की; वह तो परमेश्वर का वचन है और वही पुराने नियम की सभी नबूवतों का केन्द्र बिन्दु है।

यीशु हमारा याजक

पुराने नियम के नबियों की भाँति नहीं जो परमेश्वर की ओर से बोलते समय लोगों की ओर अपना मुख करते थे, पुराने नियम के याजक परमेश्वर की ओर मुख करते थे और उनकी पीठ लोगों की

ओर फिरी होती थी। नबी की नाईं, याजक भी एक प्रवक्ता हुआ करता था परन्तु वह लोगों *से* बात करने की अपेक्षा लोगों *की ओर* से बात करता था। उसने लोगों की ओर से मध्यस्थता की और उनके लिए प्रार्थना की। इसके अतिरिक्त याजक ने लोगों के लिए परमेश्वर को बलिदान चढ़ाये। मुख्य बलिदानों को प्रायश्चित्त के दिन महायाजक द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। परन्तु इससे पहले कि महायाजक लोगों के लिए बलिदान कर सके उसे स्वयं के पाप के लिए बलिदान चढ़ाना पड़ता था। उसके निमित्त बलिदान को भी लोगों के लिए बलिदान के समान ही प्रति वर्ष दोहराया जाना होता था।

यीशु हमारा याजक है। नए नियम में सबसे अधिक उद्धृत किया गया पुराने नियम का खण्ड भजन 110 है। इसमें मसीहा के चरित्र के विषय में एक अद्भुत कथन है:

> यहोवा ने मेरे प्रभु से कहा, "मेरे दाहिने बैठ, जब तक कि मैं तेरे शत्रुओं को तेरे चरणों की चौकी न बना दूँ।"
>
> यहोवा तेरे सामर्थी राजदण्ड को सिय्योन से यह कह कर बढ़ाएगा, "अपने शत्रुओं के मध्य शासन कर।" तेरे पराक्रम के दिन तेरी प्रजा के लोग स्वेच्छाबलि बनेंगे; तेरे जवान पवित्रता से सुशोभित भोर के गर्भ से जन्मी ओस के समान तेरे पास हैं। यहोवा ने शपथ खाई है और वह उस से न बदलेगा: "तू मलिकिसिदक की रीति पर युगानुयुग याजक है।" (पद 1-4)

नए नियम में इब्रानियों का लेखक ख्रीष्ट के सिद्ध याजक होने पर अधिक ध्यान देता है। यीशु के याजकपन की उच्च प्रवृत्ति के प्रमाण का एक महत्वपूर्ण भाग यह तथ्य है कि मन्दिर में प्रवेश करने से पहले उसे स्वयं के पाप के लिए किसी भी बलिदान को नहीं चढ़ाना पड़ा था। उसके द्वारा चढ़ाया गया बलिदान सदा के लिए था और वह किसी पशु का बलिदान नहीं था। ख्रीष्ट ने स्वयं को अर्पित इसलिए किया क्योंकि "यह असम्भव है कि बैलों और बकरों का लहू पापों को दूर करे" (इब्रानियों 10:4)। वह सदा के लिए मलिकिसिदक की रीति पर याजक है, जो इस क्षण तक भी अपने मध्यस्थता के कार्य को निरन्तर कर रहा है—निरन्तर बलिदानों को अर्पण करने के द्वारा परमेश्वर के न्याय को सन्तुष्ट करने के लिए नहीं, परन्तु स्वर्गीय मन्दिर के भीतर स्वर्गीय महापवित्र स्थान में अपने लोगों के लिए मध्यस्थता करने के द्वारा। जिस प्रकार ख्रीष्ट नबूवत का विषयवस्तु और लक्ष्य दोनों ही है, वैसे ही वह याजकपन का विषयवस्तु और लक्ष्य भी है। वह अभी और सर्वदा के लिए सिद्ध याजक और सिद्ध मध्यस्थ है।

ख्रीष्ट हमारा राजा

ख्रीष्ट के तीसरे पद का संकेत भी भजन 110 में दिया गया है: "यहोवा ने मेरे प्रभु से कहा: 'मेरे दाहिने बैठ'" (पद 1)। यह राजा के पद की ओर एक उल्लेख है। कई लोगों को एक मध्यस्थ के साथ राजा के पद का मेल करने में कठिनाई होती है, परन्तु यदि हम पुराने नियम की जड़ों की ओर लौटें, तो हम इसे देखने पाएँगे। इस्राएल का राजा स्वायत्त *(autonomous)* नहीं था; उस के पास स्वयं में सम्पूर्ण अधिकार नहीं था। उसने परमेश्वर से अपना पद प्राप्त किया था। उसकी बुलाहट उप-शासक की थी जिसके द्वारा उसे स्वयं परमेश्वर के न्याय और शासन को प्रकट करना था। राजा इस अर्थ में एक मध्यस्थ था कि वह परमेश्वर की व्यवस्था के अधीन था, तौभी उसने लोगों के लिए परमेश्वर की व्यवस्था को स्थापित करने और बनाए रखने में सहायता की। दुःख की बात है कि पुराने नियम के राजाओं का इतिहास भ्रष्टाचार से और अपने उत्तरदायित्व को निभाने में विफल सम्राटों से भरा हुआ है।

हम नए नियम में नागरिक अधिकारियों के सम्बन्ध में इसी सिद्धान्त को पाते हैं। बाइबल कार्य संचालन के दो क्षेत्रों की अनुमति देती है—कलीसिया और राज्य—जिनके अलग-अलग कर्तव्य हैं, परन्तु पवित्रशास्त्र कभी भी राज्य को परमेश्वर से पृथक करने का समर्थन नहीं देता है क्योंकि सभी शासक परमेश्वर के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। उन्हें धार्मिकता को बनाए रखने और न्याय स्थापित करने के लिए ठहराया जाता है और वे परमेश्वर के प्रति उत्तरदायी हैं कि वे अपने शासन को कैसे कार्यान्वित करते हैं।

कुछ वर्ष पहले मुझे टालाहासी, फ्लोरिडा में राज्यपाल के उद्घाटन के प्रातःकालीन-भोज पर बोलने के लिए आमन्त्रित किया गया था। उस अवसर पर मैंने राज्यपाल को गम्भीरतापूर्वक स्मरण दिलाया कि राज्यपाल होने का अर्थ परमेश्वर का सेवक होना है और क्योंकि केवल परमेश्वर ही किसी को राज्यपाल बना सकता है, परमेश्वर उसे उत्तरदायी ठहराएगा कि वह कैसे शासन करता है। यह किसी भी परिस्थिति में किसी भी राष्ट्र के किसी भी शासक के लिए सत्य है। परन्तु परमेश्वर एक ऐसे संसार को देखता है जो कि भ्रष्ट राजाओं के द्वारा शासित है जो धार्मिकता और न्याय से भटक जाते हैं।

पुराने नियम में आदर्श राजा हेतु सबसे निकटतम प्रतिरूप—दाऊद—भी स्वयं भ्रष्ट था। तौभी दाऊद ने इस्राएल में राजसी स्वर्ण युग का आरम्भ किया और उसकी मृत्यु के पश्चात्, लोग दाऊदीय साम्राज्य की पुनः स्थापना को देखने के लिए लालायित थे। परमेश्वर ने आमोस नबी के माध्यम से कहा: "उस समय मैं दाऊद के गिरे हुए मण्डप को खड़ा करूँगा, मैं उसकी दीवार की दरारों को भरूँगा; मैं उसके खण्डहरों को फिर बनाऊँगा और जैसा वह प्राचीनकाल में था उसे वैसा ही बना दूँगा" (आमोस 9:11)।

पुराने नियम में लोगों में एक बार पुनः दाऊद की नाईं एक राजा को प्राप्त करने की लालसा

मसीहाई अपेक्षा के केन्द्र में थी। भजन 110 में परमेश्वर ने प्रतिज्ञा की कि उसका पुत्र वह राजा होगा तथा वह सदा और सर्वदा तक राज्य करेगा। इसलिए जब ख्रीष्ट आया तो नवजात राजा के रूप में उसकी घोषणा की गई। वास्तव में तो, उसके राजा होने के दावों के कारण ही उसे क्रूस पर चढ़ाया गया था। उसने पिलातुस से कहा: "मेरा राज्य इस संसार का नहीं। यदि मेरा राज्य इस संसार का होता तो मेरे राज-कर्मचारी युद्ध करते कि मैं यहूदियों के हाथ न सौंपा जाता। बात यह है कि मेरा राज्य इस संसार का नहीं" (यूहन्ना 18:36)। परमेश्वर, ख्रीष्ट को उसके राज्याभिषेक की ओर ले गया और उसने उसे अपने दाहिने हाथ पर सम्पूर्ण विश्व के ऊपर उस चरवाहा-राजा के रूप में, उस शासक के रूप में स्थापित किया जिसका शासनकाल अनन्तकाल तक चलेगा।

आज के राज्य और उस राज्य के बीच में जिसे हम भविष्य में जानेंगे केवल प्रत्यक्षता ही एकमात्र अन्तर है। यीशु अभी इसी समय राजा है। उसके पास विश्व के सर्वोच्च राजनीतिक अधिकारी का पद है क्योंकि उसे इस पद पर परमेश्वर द्वारा नियुक्त किया गया है, जो कि प्रेरितों के विश्वास वचन के केन्द्र में है: "[उसने] पुन्तियुस पिलातुस के अधीन दुःख उठाया, क्रूसित हुआ, मारा गया, और गाड़ा गया; . . . तीसरे दिन वह जी उठा; वह स्वर्ग पर चढ़ गया, वह पिता के दाहिने हाथ पर विराजमान है।" परमेश्वर के दाहिने हाथ में होने का अर्थ है कि किसी अधिकारपूर्ण पद पर होना जिसके द्वारा वह न केवल कलीसिया पर परन्तु संसार पर भी राज्य करता है। यही कारण है कि कलीसिया पुकारती है, "हल्लिलूयाह!" हमारा मसीहा न केवल हमारा नबी और याजक ही है, परन्तु हमारा राजा भी है।

अध्याय 28

ख्रीष्ट क्यों मरा?

Why did Christ Die?

इस अध्याय में और अगले दो अध्यायों में, हम अपने ध्यान को प्रायश्चित्त की ओर मोड़ेंगे, यद्यपि इन तीन छोटे अध्यायों के लिए यह सम्भव नहीं है कि इस महिमामय सिद्धान्त के महत्व के साथ न्याय करें (समझा पायें)।*

आरम्भिक मध्य युग में, कैन्टरबरी के ऐन्सेल्म *(Anselm of Canterbury)* ने तीन लेखों को रचा था जिनके लिए वह प्रसिद्ध हो गया। दो लेख आपत्तिखण्डनशास्त्र *(apologetics)* के क्षेत्र से सम्बन्धित थे—*मोनोलोगियोन (Monologion)* तथा *प्रोसलोगियोन (Proslogion)*—परन्तु सम्भवतः उनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक, *कुर डियुस होमो-Cur Deus Homo* ("परमेश्वर-मनुष्य क्यों?") ने प्रायश्चित्त *(atonement)* के रहस्य की जाँच-पड़ताल की। उसने नए नियम की जाँच यह देखने के लिए किया कि ख्रीष्ट को मनुष्य बनना क्यों आवश्यक था और प्रायश्चित्त के घटनाक्रम में वास्तव में क्या हुआ। ऐन्सेल्म उसके उद्देश्य और उसके महत्व के विषय में रुचि रखता था। ख्रीष्ट के क्रूस के विषय में कलीसिया की समझ को उसकी शिक्षा ने बहुत प्रभावित किया।

नया नियम प्रायश्चित्त के लिए अनेक रूपकों का उपयोग करता है और उस पर विचार करने के लिए एक से अधिक बिन्दु प्रस्तुत करता है। प्रायश्चित्त एक ऐसे चित्रपट के जैसा है जिसमें कई लड़ियाँ एक साथ बुनी गई हैं और अब हम उन लड़ियों पर मनन करेंगे।

प्रायश्चित्त को समझना

कुछ सन्दर्भों में नया नियम ख्रीष्ट के क्रूस की बात छुटकारे के कार्य के रूप में करता है। इसके सबसे आधारभूत अर्थ में छुटकारा किसी प्रकार के क्रय से सम्बन्धित है, एक आर्थिक लेन-देन जिसमें

* प्रायश्चित्त के विषय में और अधिक गहन अध्यन करने के लिए देखें, R.C. Sproul, *The Cross of Christ,* audio teaching series (Sanford, Fla: Ligonier Ministries, n.d.).

कोई वस्तु किसी से मोल ली जाती है। ख्रीष्ट स्वयं अपने लोगों के छुटकारे के बड़े मूल्य अर्थात् उसके स्वयं के लहू के विषय में बात करता है। क्रूस पर अपने दुःख भोगने के अन्त में उसने चिल्लाकर कहा "पूरा हुआ" (यूहन्ना 19:30) और जिस शब्द का अनुवाद "पूरा हुआ" किया गया है, वह एक व्यावसायिक शब्द था। इसका उपयोग तब किया जाता था जब कोई व्यक्ति ऋण का अन्तिम भुगतान करता था, ठीक वैसे ही जब हम अन्तिम प्राप्तिका पर "पूरा चुका दिया" छापते हैं।

कुछ विभिन्न प्रकार के किन्तु एक दूसरे से मिलते-जुलते तथाकथित फिरौती के मत *(ransom theories)* हैं। एक लोकप्रिय मत यह है कि ख्रीष्ट ने अपने लोगों को शैतान की बँधुवाई से छुड़ाने के लिए शैतान को फिरौती चुकाई। जिस प्रकार आज कोई व्यक्ति किसी अपहरणकर्ता को फिरौती चुकाने के लिए इच्छुक हो सकता है, वैसे ही कहा जाता है कि ख्रीष्ट ने इस संसार के उस शासक को फिरौती चुकाई, जिसने ख्रीष्ट के लोगों को बन्धक बना लिया था। किन्तु मैं सोचता हूँ कि यह मत शैतान को वास्तविकता से अधिक अधिकार प्रदान करता है। अन्य लोग बात करते हैं कि ख्रीष्ट ने परमेश्वर के प्रति ऋण को पूरा करने के लिए पिता को फिरौती चुकाई, जो मैं सोचता हूँ कि सही दृष्टिकोण है।

पुराने नियम में वधू मूल्य *(bride price)* का विचार व्यावसायिक लेन-देन की बात से निकटता से सम्बन्धित है। निर्गमन की पुस्तक विवाह करने जा रहे लोगों और अनुबन्धित दासों के लिए नियम और विधि निर्धारित करती है। किसी भी पुरुष को विवाह हेतु अनुमति प्राप्त करने के लिए वधू के पिता को यह दिखाने के लिए वधू मूल्य देना होता था कि उसके पास पत्नी और उस सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाली सन्तानों को उपलब्ध कराने के लिए साधन थे। उसी रीति से, जब कोई व्यक्ति किसी ऋण को चुकाने के लिए अपने आप को दास के रूप में बेचता था, यदि वह उस अनुबन्धित दासत्व में पत्नी और बच्चों को लेकर आया था, तो छुटकारे के समय वह अपनी पत्नी और बच्चों को अपने साथ ले जाने के लिए स्वतन्त्र था। किन्तु यदि उसने एक अविवाहित पुरुष के रूप में दासत्व में प्रवेश किया और फिर दासत्व के समय उसने एक अन्य दासी से विवाह किया और उसमें उसके बच्चे उत्पन्न हुए तो वह स्वतन्त्रता के समय पत्नी और बच्चों को नहीं ले जा सकता था। यह व्यवस्था निर्दयी नहीं थी वरन् यह सुनिश्चित करने के लिए थी कि वधू मूल्य को चुकाया जाए।

इस बात का ईश्वरविज्ञानीय महत्व यह है कि ख्रीष्ट के पास एक वधू है—अर्थात् कलीसिया—और नया नियम प्रायश्चित्त के विषय में अपनी शिक्षा में पुष्टि करता है कि ख्रीष्ट ने अपनी वधू को मोल लिया है। उसने वधू मूल्य चुकाया है। वैसे ही उसने दासों को छुड़ाने के लिए मूल्य चुकाया।

प्रेरित पौलुस लिखता है, "तुम अपने नहीं हो, क्योंकि तुम मूल्य देकर खरीदे गए हो" (1 कुरिन्थियों 6:19-20)। मोल लेने की बात प्रायश्चित्त की बाइबलीय समझ के लिए केन्द्रीय है।

एक और दृष्टिकोण जिस पर विशेषकर बीसवीं शताब्दी में लूथरवादी *(Lutheran)* ईश्वरविज्ञानियों के द्वारा बल दिया गया है उसको *क्रिस्टस विक्टर (Christus Victor)* के रूप में जाना जाता है। इस दृष्टिकोण में क्रूस एक वैश्विक विजय थी जिसमें ख्रीष्ट ने भलाई और बुराई के बीच एक विशाल संघर्ष में दुष्टता की शक्तियों को घातक चोट पहुँचाने के द्वारा बन्दियों को छुड़ाया। उस अर्थ में तो यह उस प्राचीन श्राप की पूर्ति थी जिसे परमेश्वर ने अदन में सर्प पर घोषित किया था: "मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में तथा तेरे वंश और इसके वंश के बीच में बैर उत्पन्न करूँगा: वह तेरे सिर को कुचलेगा, और तू उसकी एड़ी को डसेगा" (उत्पत्ति 3:15)।

इस विचार के अनुसार, ख्रीष्ट ने इस विजय को प्राप्त करते हुए पीड़ा और चोट का अनुभव किया किन्तु यह पीड़ा उस पीड़ा की तुलना में कुछ नहीं थी जो दुष्टता के शासक को पहुँचाई गई थी।

प्रायश्चित्त को देखते समय विचार करने के लिए बहुत सी लड़ियाँ हैं और कुछ लोग प्रायश्चित्त के पूरे महत्व को समझने का प्रयास करते हुए केवल एक ही लड़ी पर ध्यान केन्द्रित करने की त्रुटि करते हैं। हमें यह देखना चाहिए कि ये सभी लड़ियाँ छुटकारे के जटिल कार्य के आयाम हैं।

प्रायश्चित्त के विषय में अशास्त्रसम्मत मतों को भी उठाया गया है। एक बहुत ही प्रसिद्ध मत है शासकीय मत *(governmental theory)*, जो यह कहता है कि ख्रीष्ट ने क्रूस पर मानव पाप के लिए वास्तविक मूल्य को नहीं चुकाया, परन्तु यह कि उसकी मृत्यु मनुष्यों के दण्ड के लिए एक अर्थपूर्ण प्रतिस्थापन *(meaningful substitute)* थी। ख्रीष्ट के दुःख उठाए जाने के द्वारा परमेश्वर ने पाप के प्रति अपनी अप्रसन्नता को प्रकट करते हुए तथा ईश्वरीय न्याय को बनाए रखते हुए क्षमा प्रदान को सम्भव किया।

सन्तुष्टि मत

ऐन्सेल्म की शिक्षा के पश्चात् जिस प्रायश्चित्त के दृष्टिकोण ने सबसे अधिक ध्यान आकर्षित किया है, वह है सन्तुष्टि मत *(Satisfaction Theory)।* यह मत ऐन्सेल्म द्वारा प्रायश्चित्त की आवश्यकता के विषय में स्पष्टीकरण की जड़ तक पहुँचता है। सन्तुष्टि मत के आधार में जो सिद्धान्त है, वह है परमेश्वर का न्याय।

कुछ समय पहले मैंने एक व्यक्ति से बात की जिसने मुझे बताया कि वह परमेश्वर पर विश्वास करता है किन्तु मसीही परमेश्वर पर नहीं, क्योंकि ऐसे परमेश्वर पर विश्वास करना हास्यास्पद है जो मनुष्यों के साथ मेल-मिलाप के लिए एक लहू के बलिदान की माँग करता है। उसने पूछा, "किस प्रकार का परमेश्वर इतना प्रतिशोधी होगा जो इस प्रकार की बात की माँग करता है?" मैंने उत्तर

दिया, "एक न्यायी परमेश्वर।" वह व्यक्ति इस बात को स्वीकार नहीं कर सका। उसने सोचा था कि एक सच्चा न्यायी परमेश्वर लोगों को उनके पापों के लिए एकपक्षीय क्षमा कर देगा और कोई माँग निर्धारित नहीं करेगा।

बहुत से लोगों को परमेश्वर के प्रेम, अनुग्रह या दया के सम्बन्ध में सोचना अच्छा लगता है और उनको यह विचार अच्छा नहीं लगता है कि परमेश्वर, न्याय का परमेश्वर है। किन्तु यदि हम न्याय के विषय में बाइबल की समझ को देखें, तो हम देखते हैं कि न्याय धार्मिकता से और भलाई दोनों से सम्बन्धित है। बाइबल में न्याय और धार्मिकता भिन्न हैं किन्तु एक दूसरे से अलग नहीं हैं। न्याय सच्ची धार्मिकता का एक आवश्यक भाग है और इसके साथ यह भलाई का भी एक आवश्यक भाग है। उस सन्देहवादी *(skeptic)* के साथ मेरी चर्चा वास्तव में इस विषय में थी कि क्या परमेश्वर भला है। उसको मसीही धर्म इसलिए अच्छा नहीं लगा क्योंकि वह सोचता था कि मसीहियत एक बुरे परमेश्वर की शिक्षा देती है। उसके विचारानुसार एक भला परमेश्वर, पाप के कारण दण्डित नहीं करेगा। किन्तु इस विचार के विपरीत, प्रायश्चित्त तो प्रभावशाली रीति से परमेश्वर की भलाई को प्रकट करता है।

जब परमेश्वर ने घोषित किया कि वह अपने न्याय को सदोम और अमोरा पर उण्डेलने वाला था, तब अब्राहम ने लोगों के लिए मध्यस्थता की। अब्राहम चिन्तित था कि परमेश्वर अपने क्रोध में दुष्टों के साथ निर्दोष लोगों को भी हानि पहुँचाएगा। अब्राहम ने एक प्रश्न उठाया जिसका उत्तर केवल हाँ हो सकता था: "क्या समस्त पृथ्वी का न्यायी उचित न्याय न करे?" (उत्पत्ति 18:25) अब्राहम की सोच सटीक निशाने पर थी। वह समझ गया कि मानवीय बातों के विषय में उच्चतम न्यायाधीश केवल वही करता है जो सही है। हम इस बात से सान्त्वना प्राप्त कर सकते हैं कि आकाश और पृथ्वी का न्यायाधीश सदैव और सर्वत्र धर्मी है। वह अपने न्याय में सर्वज्ञानी है और अपने अवलोकन में सिद्ध है। जब वह न्याय घोषित करता है तो वह सब गम्भीरता को कम करने वाले परिस्थितियों को ध्यान में रखता है। अपने सिद्ध ज्ञान के अतिरिक्त, यह न्यायाधीश भला भी है। ऐसा न्यायाधीश भला नहीं है जो कभी भी दुष्टता को दण्डित नहीं करता है क्योंकि वह न्यायी नहीं है।

जब पौलुस ने क्रूस के रहस्य को जाँचा तो उसने कहा कि परमेश्वर धर्मी और धर्मी ठहराने वाला, दोनों है (रोमियों 3:26)। हम ऋणग्रस्तताओं *(indebtedness)* के प्रकारों के बीच भिन्नता करने के द्वारा इसके अर्थ को समझ सकते हैं। जब हम परमेश्वर के विरुद्ध पाप करते हैं तो हम नैतिक ऋणी बन जाते हैं। परमेश्वर की व्यवस्था एक उत्तरदायित्व को लाती है और हमें उस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए बुलाया जाता है, जो कि सिद्धता है। यदि हम एक भी बार पाप करें, तो हम ऐसे ऋणी बन जाते हैं जिनके लिए अपना ऋण चुकाना असम्भव है।

आर्थिक ऋण और नैतिक ऋण में भेद करना सहायक सिद्ध होता है। आर्थिक ऋण वह है जब

किसी लेन-देन में पैसे देने शेष रहते हैं। कल्पना कीजिए कि एक छोटा लड़का कुल्फी की दुकान पर जाता है। वह कुल्फी माँगता है और जब वहाँ कार्य करने वाली महिला उसे कुल्फी देती है तो वह उससे कहती है कि उसे बीस रुपये देने हैं। जब वह जेब से दस रुपये का नोट निकालता है तो उसका मुँह उतर जाता है। वह कहता है "मेरी मम्मी ने मुझे दस ही रुपये दिया है।" यदि आप ऐसा होते हुए देख रहे होते तो आप क्या करते? सम्भवतः आप अपनी जेब में हाथ डालकर, दस रुपये निकालकर कर्मचारी को देते और कहते, "यह लीजिए, कुल्फी के आधे पैसे मैं दे रहा हूँ।" तो वह लड़का आपको देखकर कहता, "बहुत-बहुत धन्यवाद" और अपने मार्ग पर चला जाता। परन्तु क्या वह कर्मचारी आपके उस भुगतान को स्वीकार करने के लिए बाध्य होगा? इसका उत्तर तो होगा हाँ; क्योंकि यह एक आर्थिक ऋण है। जब आप उस छोटे लड़के की ओर से काउन्टर पर पैसे रखते हैं, तो यह वैधानिक रीति से मान्य है और उस कर्मचारी को यह भुगतान स्वीकार करना ही होगा।

यदि हम कहानी को थोड़ा परिवर्तित कर दें तो परिणाम भिन्न होगा। कल्पना करें कि वही लड़का फिर से दुकान में प्रवेश करता है, परन्तु कुल्फी माँगने के विपरीत वह कार्यकारी महिला के दुकान के पीछे चले जाने की प्रतीक्षा करता है और तब वह काउन्टर के पीछे जाकर कुल्फी उठाकर दुकान से भागने का प्रयास करता है। आप देखते हैं कि दुकान का स्वामी उसे पकड़ता है और फिर पुलिस को बुलाता है। आप को उस लड़के के लिए बुरा लगता है तो इसलिए आप पुलिस वाले को यह कहकर सम्बोधित करते हैं: "एक मिनट श्रीमान। आइए हम इस बात को भूल जाएँ। मैं लड़के की कुल्फी के लिए भुगतान करूँगा।" तब आप स्वामी को बीस रुपये देते हैं। पुलिस वाला स्वामी को देखकर पूछता है, "क्या आप मुकद्दमा करना चाहते हैं?" पुलिस वाला समझता है कि दुकान का स्वामी कुल्फी के लिए आपके भुगतान को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि इस घटना में एक आर्थिक लेन-देन से कहीं बढ़कर एक और बात सम्मिलित है। यहाँ पर एक विधान का उल्लंघन हुआ है; और एक नैतिक ऋण चढ़ गया है। इसलिए आपके भुगतान को स्वीकार करने अथवा नकारने के लिए उस व्यवसाय का स्वामी स्वतन्त्र है।

हम प्रायश्चित्त को इस दूसरे उदाहरण के प्रकाश में देख सकते हैं। यह वहाँ पर पास में खड़े व्यक्ति का विचार नहीं था कि एक प्रतिस्थापन के द्वारा मूल्य चुकाया जाना चाहिए; वरन्, यह तो उस व्यवसाय के स्वामी का विचार था। उसी प्रकार परमेश्वर पिता ही था जिसने अपने पुत्र को हमारे नैतिक दोष के मूल्य को चुकाने के लिए जगत में भेजा। पिता ने पुत्र से कहा, "इन दोषी लोगों के स्थान पर जो अपना ऋण नहीं चुका सकते हैं, मैं तुम्हारे भुगतान को स्वीकार करूँगा।"

परमेश्वर अपने न्याय से समझौता नहीं करता है। वह अपनी धार्मिकता का बलिदान नहीं

करता है और न ही अपनी खराई को त्यागता है। संक्षेप में उसने कहा, "मैं सुनिश्चित करूँगा कि पाप को दण्डित किया जाए।" यही क्रूस की न्यायोचितता है। क्रूस की दया इस में दिखती है कि परमेश्वर ने एक प्रतिस्थापक *(substitute)* के भुगतान को स्वीकारा है। पौलुस के शब्द स्पष्ट हो जाते हैं: परमेश्वर धर्मी है और भक्तिहीन को धर्मी ठहराने वाला भी है।

अध्याय 29

प्रतिस्थापनीय प्रायश्चित्त

Substitutionary Atonement

मैंने एक बहुत ही उदारवादी सेमिनरी में पढाई की। मेरी उपदेश-कला *(homiletics)* की कक्षा जिसमें छात्रों को प्रचार करना सिखाया जाता है, उसके प्राध्यापक ईश्वरविज्ञानी से अधिक एक भाषण प्रशिक्षक थे जिसके कारण प्रत्येक विद्यार्थी के सन्देश के पश्चात्, वह प्रस्तुतीकरण और संगठन पर समीक्षा देते थे किन्तु साधारणतः वह ईश्वरविज्ञानीय विषय-वस्तु के विषय में आलोचना करने से बचते थे। किन्तु एक दिन एक विद्यार्थी ने मेरी समझ से प्रायश्चित्त के प्रतिस्थापनीय सन्तुष्टि मत *(substitutionary satisfaction view)* के विषय में एक भावोत्तेजक सन्देश दिया, किन्तु जब उसने समाप्त किया तो उपदेश-कला के प्राध्यापक क्रोध के कारण अपने आपे से बाहर थे। उन्होंने उस विद्यार्थी से कहा, "इस समय और युग में प्रायश्चित्त के प्रतिस्थापनीय सन्तुष्टि के सिद्धान्त को प्रचार करने का तुमने दुस्साहस कैसे किया!" मैंने अपना हाथ उठाकर पूछा, "मुझे क्षमा करें, किन्तु इस समय और युग में ऐसी क्या बात है जिसने प्रायश्चित्त के विषय में इस के प्राचीन बाइबलीय सिद्धान्त को अचानक कालविरुद्ध बना दिया?"

यह तो प्रायश्चित्त के प्राचीन दृष्टिकोण के उस भीषण प्रतिरोध का एक उदाहरण है। कुछ ऐसे लोग हैं जो यह विश्वास करते हैं कि यह कहना तो स्पष्ट रीति से बर्बर तथा विज्ञानपूर्व *(prescientific)* है कि परमेश्वर के न्याय की माँगों को सन्तुष्ट करने के लिए एक प्रतिस्थापक *(substitute)* को अपना लहू बहाना पड़ा। परन्तु प्रतिस्थापन का विचार छुटकारे के विषय में बाइबलीय धारणा में इतनी गहराई से आधारित है कि उसको हमारे ईश्वरविज्ञान और हमारे ख्रीष्टविज्ञान से हटाने का अर्थ है कि पूर्ण रीति से पवित्रशास्त्र को ही त्याग देना।

कार्ल बार्थ ने एक बार यह टिप्पणी की थी कि उसकी समझ में नए नियम में सबसे महत्वपूर्ण यूनानी शब्द हुपेर *(huper)* है, जिसका अर्थ है "के स्थान पर।" नए नियम में यीशु को दी गई कई उपाधियों में एक है, "अन्तिम आदम" या "दूसरा आदम," जो यह संचार करता है कि आदम

जो हमारा प्रथम प्रतिनिधि था उसके जैसे ही ख्रीष्ट भी हमारे लिए एक प्रतिनिधि बना। एक मनुष्य के पतन के कारण संसार में विनाश और मृत्यु आयी, और दूसरे मनुष्य की आज्ञाकारिता के कारण छुटकारा और अनन्त जीवन आया। यीशु वह सफल आदम था जिसने अपने लोगों *के स्थान पर* वह किया जिसे करने में पहला आदम विफल हुआ था।

पाप का हटाया जाना

हम पुराने नियम में देखते हैं कि प्रायश्चित्त की अवधारणा इस्राएल में एक विस्तृत बलिदान की प्रणाली के माध्यम से कार्यान्वित हुई। वार्षिक प्रायश्चित्त के दिन, अनेक पशु सम्मिलित किए जाते थे जैसा कि लैव्यव्यवस्था 16 में विवरण दिया गया है। महायाजक द्वारा स्वयं के पाप के लिए एक बछड़े का बलिदान करने के पश्चात् दो बकरे लाए जाते थे और उनके लिए चिट्ठी डाली जाती थी। उसी एक बकरे की इस प्रक्रिया से हमें *बलि का बकरा (scapegoat)* शब्द मिलता है; महायाजक लोगों के पापों का बकरे पर स्थानान्तरण *(transfer)* या अभ्यारोपण *(imputation)* का चित्रण करते हुए अपने हाथों को बकरे के सिर पर रखता था। फिर बकरे को परमेश्वर की आशीष की उपस्थिति से बाहर जंगल में भेजा जाता था; वह लोगों के पापों को धारण करता और उन्हें दूर ले जाता है। परन्तु वह तो प्रायश्चित्त का केवल एक ही भाग था; दूसरा भाग वह था जिसमें दूसरे बकरे का घात किया जाता था। दूसरे बकरे का लहू दया के आसन *(mercy seat)* पर छिड़का जाता था जो वाचा के सन्दूक का ढक्कन था। दया के आसन का नाम "प्रायश्चित्त का ढकना" इसलिए था क्योंकि उस पर बहाया गया लहू उस माध्यम की ओर संकेत करता था जिसके द्वारा लोगों के पापों का प्रायश्चित्त होता था और लोगों का परमेश्वर के साथ मेल-मिलाप होता था।

नए नियम में हमें स्मरण दिलाया जाता है कि प्रायश्चित्त के दिन उपयोग किए जाने वाले वे प्रतिस्थापनीय पशु एक ऐसी वास्तविकता के छाया मात्र थे जो आगे आने वाला था। इब्रानियों का लेखक लिखता है:

> व्यवस्था में तो भावी अच्छी वस्तुओं का वास्तविक स्वरूप नहीं, परन्तु छाया मात्र है। अतः लोगों द्वारा निरन्तर वर्ष प्रति वर्ष चढ़ाए जाने वाले बलिदानों से समीप आने वालों को वह कभी भी सिद्ध नहीं कर सकती। अन्यथा उनका चढ़ाया जाना बन्द क्यों नहीं हो जाता? आराधना करने वाले तो एक बार ही शुद्ध हो जाते और उनका विवेक उन्हें फिर पापी न ठहराता। इसके विपरीत उन बलिदानों के द्वारा प्रति वर्ष पापों का स्मरण होता

है। क्योंकि यह असम्भव है कि बैलों और बकरों का लहू पापों को दूर करे। (इब्रानियों 10:1-4)

पुराने नियम में उन प्रायश्चित्त के बलिदानों का महत्व इस में था कि वे उस आने वाले वास्तविक प्रायश्चित्त का नाटकीय प्रस्तुतीकरण थे। दूसरे शब्दों में, उन विधियों को भविष्य की वास्तविकता की छाया के रूप में देखते हुए लोग परमेश्वर की प्रतिज्ञा पर विश्वास करने के द्वारा धर्मी ठहराए जाते थे। उन्होंने केवल ख्रीष्ट के द्वारा वास्तविक प्रायश्चित्त पाया। पुराने नियम की विधि में प्रतिस्थापन की अवधारणा केन्द्रीय थी।

मेरे मित्र जॉन गेस्ट *(John Guest)* ने जो कि एक ऐंग्लिकन सुसमाचार प्रचारक हैं, एक बार ख्रीष्ट के क्रूस पर प्रचार किया और यह प्रश्न पूछा: “यदि यीशु ने इस पृथ्वी पर आकर अपनी उँगली नाखून पर खरोंची होती जिससे कि लहू की एक या दो बूँदें गिरी होतीं, तो क्या वह कुछ बूँदें हमें छुड़ाने के लिए पर्याप्त होतीं? यदि हम ख्रीष्ट के लहू के द्वारा बचाए जाते हैं, तो क्या वह पर्याप्त नहीं होता?” गेस्ट यह बात कह रहे थे क्योंकि ऐसा नहीं है कि ख्रीष्ट का लहू अपने आप में हमें बचाता है। इस्राएलियों के लिए लहू के बहाए जाने का अर्थ था प्राण का दिया जाना क्योंकि मृत्यु तो आरम्भ से ही पाप के लिए दण्ड थी। परमेश्वर के विरुद्ध अपराध के लिए भुगतान के रूप में दोषी का जीवन दिया जाना अपेक्षित था। पुराने नियम की बलिदान प्रणाली में, परमेश्वर इस्राएल के लोगों से कह रहा था, “तुमने मेरे विरुद्ध मृत्युदण्ड के योग्य अपराध किए हैं और व्यवस्था तुम्हारी मृत्यु की माँग करती है, परन्तु तुम्हारी मृत्यु के स्थान पर मैं एक प्रतिस्थापक की मृत्यु को स्वीकार करूँगा, जिसका चित्रण पशुओं की मृत्यु द्वारा किया जाएगा।”

पापनिष्कृति और कोपसन्तुष्टि

पवित्रशास्त्र इस प्रतिस्थापनीय क्रिया के दो भिन्न आयामों की बात करता है: पापनिष्कृति और *कोपसन्तुष्टि (propitiation)*। *पापनिष्कृति (expiation),* जिसके अंग्रेज़ी शब्द में एक्स- उपसर्ग है, जिसका अर्थ है “से” या “से बाहर,” किसी व्यक्ति से दोष का हटाया जाना है। यह प्रायश्चित्त का क्षैतिज आयाम है। यह आयाम बलि के बकरे के नाटकीय प्रस्तुतीकरण में दिखता है। लोगों का पाप बकरे पर हस्तान्तरित कर दिया जाता था और फिर बकरा जब परमेश्वर की उपस्थिति से दूर जंगल में भेजा जाता था तो वह पापों को उठा ले जाता था। भजनकार पापनिष्कृति की भाषा का उपयोग करता है: “उदयाचल से अस्ताचल जितनी दूर है उसने हमारे अपराधों को हमसे उतनी ही दूर कर दिया है” (भजन 103:12)।

वास्तविकता तो यह है कि निस्सन्देह ही हमारे पाप किसी बलि के बकरे पर नहीं किन्तु ख्रीष्ट

पर डाल दिए जाते हैं, जिसने परमेश्वर के मेमने के रूप में हमारे दोष को अपने ऊपर ले लिया। वह पाप-धारक बना जिसके द्वारा उसने प्रभु के दास से सम्बन्धित नबूवतों को पूरा किया, जो मुख्यतः यशायाह 53 में पाई जाती हैं: "वह हमारे ही अपराधों के कारण बेधा गया, वह हमारे अधर्म के कामों के लिए कुचला गया; हमारी ही शान्ति के लिए उस पर ताड़ना पड़ी, उसके कोड़े खाने से हम चंगे हुए" (5 पद)।

कोपसन्तुष्टि में प्रायश्चित्त का लम्बवत् *(vertical)* आयाम सम्मिलित है। कोपसन्तुष्टि के कार्य में परमेश्वर का धर्मी प्रकोप शान्त किया जाता है और उसका न्याय सन्तुष्ट किया जाता है। जिस नैतिक दायित्व के प्रति हम अपने पापों के कारण ऋणी हैं उसे परमेश्वर को चुकाया जाता है और वह इस प्रकार सन्तुष्ट होता है। वह उस मूल्य से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट है जिसे हमारे प्रतिस्थापक के द्वारा चुकाया गया है। यदि हमारे पास प्रतिस्थापक नहीं है, तो फिर न पापनिष्कृति हो सकती है और न कोपसन्तुष्टि क्योंकि हम परमेश्वर के न्याय की माँगों को पूरा करने में सक्षम नहीं हैं। यदि हम ऐसा कर सकते थे तो प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु क्योंकि हम अपना नैतिक ऋण नहीं चुका सकते हैं इसलिए हमें एक प्रतिस्थापक की पूरी आवश्यकता है।

मैं प्रायः स्वयं को ऐसे सन्देहवादियों के साथ वार्तालाप में पाता हूँ जो मसीहियत के सत्य के कथनों पर प्रश्न उठाते हैं। यदि मैं एक प्रश्न का उनकी सन्तुष्टि के अनुसार उत्तर देता हूँ, तो वे एक और प्रश्न के साथ सदैव तैयार रहते हैं। अन्ततः मैं उस अन्तहीन चक्र को यह पूछकर रोकता हूँ, "आप अपने दोषबोध के साथ क्या करते हैं?" यह प्रश्न प्रायः वार्तालाप को रोक देता है क्योंकि उनके पास किसी न किसी प्रकार की अस्वीकृति के अतिरिक्त कोई और उत्तर नहीं होता है। लोगों को यह कहते हुए सुनना दुःखद है कि उनमें कोई दोषबोध नहीं है। प्रत्येक जन परमेश्वर के सामने दोषी है। हमें प्रायश्चित्त के क्षैतिज एवं लम्बवत् दोनों आयामों की आवश्यकता है और दोनों में एक प्रतिस्थापक सम्मिलित है।

वाचाई ढाँचा

बाइबल द्वारा प्रायश्चित्त की समझ इसके वाचाई ढाँचे में पायी जाती है। जिन वाचाई अनुबन्धों—उसकी आज्ञाओं—को परमेश्वर ने निर्धारित किया था, उनका पालन किया जाना चाहिए था। वाचाओं में दोहरे प्रतिबन्ध थे: व्यवस्था को मानने के लिए प्रतिफल और उसका उल्लंघन करने पर दण्ड। पवित्रशास्त्र में उन दोहरे प्रतिबन्धों को व्यक्त करने के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा थी आशीष और शाप। उदाहरण के लिए व्यवस्थाविवरण में परमेश्वर ने लोगों से कहा:

> धन्य हो तू नगर में, और धन्य हो तू गाँव में। धन्य हो तेरी सन्तान, और तेरी भूमि की उपज, तेरे पशुओं के बच्चे, तेरे मवेशियों की बढ़ती, तेरे रेवड़ के मेमने। धन्य हो तेरी

> टोकरी और तेरी कठौती। धन्य हो तू भीतर आते समय, और धन्य हो तू बाहर जाते समय। (28:3-6)

इसके विपरीत:

> यदि तू अपने परमेश्वर यहोवा की न सुने और जिन नियमों और विधियों की आज्ञा मैं आज तुझे दे रहा हूँ उन सब को मानने में चौकसी न करे तो ये सब शाप तुझ पर आ पड़ेंगे। शापित हो तू नगर में और शापित हो तू गाँव में। शापित हो तेरी टोकरी तथा तेरी कठौती। शापित हो तेरी सन्तान तथा तेरी भूमि की उपज, तेरे मवेशियों की बढ़ती तथा तेरे रेवड़ के बच्चे। शापित हो तू भीतर आते समय और शापित हो तू बाहर जाते समय। (28:15-19)

शाप का विषय वाचा की अवधारणा के लिए केन्द्रीय है। हम पुराने नियम में पढ़ते हैं कि इस्राएलियों ने सामूहिक और व्यक्तिगत रीति से वाचा का उल्लंघन किया। हम सब वाचा का उल्लंघन करने वाले लोग हैं जिसका अर्थ है कि हम सब शाप के अधीन खड़े होते हैं। संसार शापित है; हमारा कार्य शापित है; सर्प शापित है; पुरुष शापित है; स्त्री शापित है। हम सब परमेश्वर के शाप के अधीन हैं। वाचा का शाप किसी प्रकार का तन्त्र-मन्त्र नहीं था। परमेश्वर द्वारा शापित होने का अर्थ है उसकी उपस्थिति और आशीष से वंचित किया जाना।

इसके विपरीत, पुराने नियम में परमेश्वर द्वारा आशीषित होने का अर्थ था उसके पास लाए जाना, उसके मुख के प्रकाश को प्राप्त करना। ख्रीष्ट ने इसे एक प्रतिस्थापनीय रीति से पूरा किया, जिसे प्रभावशाली रीति से प्रेरित पौलुस द्वारा सिखाया जाता है: "और पवित्रशास्त्र ने आरम्भ से यह जान कर कि परमेश्वर विश्वास के द्वारा ग़ैरयहूदियों को धर्मी ठराएगा, पहिले से ही अब्राहम को सुसमाचार सुना दियाः 'समस्त जातियाँ तुझ में आशीष पाएँगी'" (गलातियों 3:8)। वह पुराना सुसमाचार है, परमेश्वरीय आशीष की प्रतिज्ञा:

> इसलिए फिर जो विश्वास करते हैं, वे विश्वासी अब्राहम, विश्वास के पुरुष के साथ आशीष पाते हैं।

> परन्तु जो लोग व्यवस्था के कामों पर निर्भर हैं, वे शाप के अधीन हैं, क्योंकि लिखा है, "जो कोई व्यवस्था की पुस्तक में लिखी सभी बातों का पालन नहीं करता, वह शापित है।" इसलिए यह स्पष्ट है कि व्यवस्था द्वारा परमेश्वर की दृष्टि में कोई धर्मी नहीं ठहरता, क्योंकि "धर्मी जन विश्वास से जीवित रहेगा।" परन्तु विश्वास से व्यवस्था का कोई सम्बन्ध नहीं। इसके विपरीत, "जो उसकी बातों का पालन करेगा वह उनके कारण जीवित रहेगा।" ख्रीष्ट ने व्यवस्था के शाप से हमें मूल्य चुका कर छुड़ाया, और स्वयं हमारे लिए शापित बना, क्योंकि लिखा है, 'जो कोई काठ पर लटकाया जाता है वह शापित है'। (पद 9-13)

इन बातों का निचोड़ यह है—ख्रीष्ट ने हमारे लिए शापित बनने के द्वारा हमें व्यवस्था के शाप से छुड़ाया है।

जब पौलुस प्रायश्चित्त की गहराइयों को जाँचता है, तो वह शाप की अवधारणा में जाता है। पाप का मूल्य चुकाने का अर्थ है परमेश्वर के शाप का अनुभव करना। ख्रीष्ट शापित हुआ। वह ग़ैरयहूदियों के हाथों सौंप दिया गया। यह महत्वपूर्ण है कि वह अपने लोगों द्वारा नहीं परन्तु ग़ैरयहूदियों द्वारा मारा गया जिन्हें "अशुद्ध लोग" माना जाता था जो "छावनी के बाहर" थे। यीशु यरूशलेम नगर के बाहर मरा *(गुलगुता-Golgotha नगर की सीमाओं से बाहर था)*। उसको छावनी से बाहर ले जाया जाना था, ग़ैरयहूदियों की संख्या में गिना जाना था, और अशुद्ध माना जाना था, और परमेश्वर ने यह दिखाने के लिए संसार को अन्धकार में डुबोया कि परमेश्वर के मुख का प्रकाश हट गया था। ख्रीष्ट ने क्रूस से पुकारा, "हे मेरे परमेश्वर, हे मेरे परमेश्वर, तू ने मुझे क्यों छोड़ दिया" (मत्ती 27:46)। उसका त्यागा जाना आवश्यक था क्योंकि पाप का दण्ड परमेश्वर द्वारा त्यागा जाना है। यीशु हमारे बदले जीवितों की भूमि से काट दिया गया जिससे कि हम काटकर न निकाले जाएँ।

अध्याय 30

प्रायश्चित्त का विस्तार

The Extent of the Atonement

धर्मसुधारवादी *(Reformed)* ईश्वरविज्ञान की विशिष्टताओं को प्रायः अक्षरबद्ध *(acrostic)* शब्द *ट्यूलिप (TULIP)* से सारांशित किया जाता है, जिसका *L* सीमित प्रायश्चित्त *(limited atonement)* के विचार को सन्दर्भित करता है। जो लोग ट्यूलिप को मानते हैं, उनको "पाँच-बिन्दु कैल्विनवादी" *(five-point Calvinists)* कहा जाता है। चार-बिन्दु कैल्विनवादी *L* अक्षर, सीमित प्रायश्चित्त के विचार के प्रति आपत्ति जताते हैं। इसलिए पाँच- और चार-बिन्दु कैल्विनवादियों में मतभेद का क्षेत्र प्रायश्चित्त के विस्तार से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में ख्रीष्ट किन लोगों के लिए मरा?

"सीमित प्रायश्चित्त" *(limited atonement)* के विषय में बहुत अधिक भ्रम है। ऐतिहासिक रीति से धर्मसुधारवादी ईश्वरविज्ञानियों ने इस वाक्याँश का उपयोग नहीं किया है। वे "निश्चित प्रायश्चित्त" *(definite atonement)* को प्राथमिकता देते हैं जो कि "अनिश्चित प्रायश्चित्त" *(indefinite atonement)* से भिन्न है, क्योंकि विचाराधीन विषय प्रायश्चित्त का मूल्य नहीं है। वह बलिदान जो ख्रीष्ट ने पिता को चढ़ाया था वह तो सिद्ध था। मानव जाति का छुटकारा करने के लिए जो कुछ उसने किया, वह उस से कुछ और अधिक नहीं कर सकता था।

प्रायश्चित्त को प्रायः इस वाक्याँश के साथ सारांशित किया जाता है "सब के लिए पर्याप्त तथा कुछ के लिए प्रभावशाली" जिसका अर्थ है कि वह एक विशेष लोगों के समूह के लिए प्रभाव में सीमित था परन्तु पूरे संसार के पापों को ढाँपने के लिए पर्याप्त था। इस बात पर बहुत कम असहमति है कि प्रायश्चित्त सब लोगों के लिए प्रभावशाली *(efficaciously)* रीति से नहीं लागू किया गया, इसलिए यह वाक्याँश केवल सर्वमुक्तिवाद *(universalism)* और विशिष्टमुक्तिवाद *(particularism)* में अन्तर को परिभाषित करता है। यह ख्रीष्ट की मृत्यु की पर्याप्तता से सम्बन्धित है, न कि प्रायश्चित्त में परमेश्वर की विशिष्ट मनसा से।

सर्वमुक्तिवाद वह विचारधारा है कि यीशु सब लोगों के पापों के लिए प्रभावशाली रीति से मरा, इसलिए संसार में प्रत्येक व्यक्ति उद्धार पाता है। इसलिए, सर्वमुक्तिवादी कहते हैं कि सब लोग ख्रीष्ट के प्रायश्चित्त के सामर्थ्य द्वारा बचाए जाते हैं। सर्वमुक्तिवाद, कम से कम सुसमाचारवादी *(evangelical)* लोगों में, एक बहुत ही अल्पदृष्टिकोण है। वास्तव में, जो व्यक्ति स्वयं को सर्वमुक्तिवादी कहता है, वह सही अर्थ में अपने आप को सुसमाचारवादी नहीं कह सकता है क्योंकि सुसमाचारवादी वास्तविक नरक में विश्वास करते हैं जहाँ अपश्चात्तापी लोग उपस्थित हैं।

विशिष्टमुक्तिवाद कहता है कि कुछ ही लोग बचाए जाते हैं। सुसमाचारवादियों में विशिष्टमुक्तिवाद के विषय में दृढ़ सहमति है, जिसका विचार है कि क्रूस का प्रभाव कुछ ही लोगों पर लागू किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि यीशु ख्रीष्ट के प्रायश्चित्त के मूल्य या योग्यता पर कोई सीमा लगाई जा रही है। उसका योग्यतापूर्ण मूल्य सब लोगों के पापों को ढाँपने के लिए पर्याप्त है और जो कोई भी यीशु ख्रीष्ट पर अपना भरोसा रखता है, उसे प्रायश्चित्त के लाभ की पूरी मात्रा प्राप्त होगी।

यह समझना भी महत्वपूर्ण है कि सुसमाचार का प्रचार सर्वत्र होना चाहिए। यह एक और विवादास्पद बिन्दु है क्योंकि यद्यपि सुसमाचार उन सब को प्रस्तुत किया जाता है जो उसके प्रचार को सुन सकते हैं, परन्तु तौभी यह बिना प्रतिबन्ध के प्रस्तुत नहीं किया जाता है। यह उन सभी को दिया जाता है जो पश्चात्ताप करते हैं और विश्वास करते हैं। निस्सन्देह, प्रायश्चित्त का लाभ उन सब को दिया जाता है जो अपने पापों से मन फिराते हैं और विश्वास करते हैं। इसलिए बात क्रूस की *पर्याप्तता (sufficiency)* की नहीं, परन्तु उसके *उद्देश्य (design)* की है।

प्रायश्चित्त का उद्देश्य *(Design)*

प्रायश्चित्त के उद्देश्य पर विचार करने के लिए, हमें पहले रचनाकार *(designer)* को पहचानना होगा। प्रायश्चित्त का उद्देश्य सर्वप्रथम किसने निर्धारित किया? सनातनकाल से पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा, सृष्टि तथा छुटकारे के विषय में सिद्ध सहमति में थे। परमेश्वर रचनाकार है। उसी ने ख्रीष्ट को जगत में भेजा। क्या उसने केवल यह आशा करते हुए ऐसा किया कि लोग अवसर का लाभ उठाएँगे? कुछ लोग ऐसा ही कहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि परमेश्वर नहीं जानता है कि लोग क्या करने जा रहे हैं क्योंकि उसका ज्ञान मनुष्यों के चुनावों द्वारा सीमित है। परन्तु ऐसी सोच तो पवित्रशास्त्र को नकारती है जो हमें बताती है कि "यीशु आरम्भ से जानता था कि विश्वास न करने वाले कौन हैं, और वह कौन है, जो उसे पकड़वाएगा" (यूहन्ना 6:64)। इसके अतिरिक्त, यीशु ने

कहा कि "वह सब जो पिता मुझे देता है, मेरे पास आएगा, और जो कोई मेरे पास आएगा मैं निश्चय ही उसे न निकालूँगा" (यूहन्ना 6:37)। ख्रीष्ट जब छुटकारे के कार्य को करने की तैयारी कर रहा था तो वह इस बात को लेकर पूर्ण रीति से सचेत था कि वह उसे उन लोगों के लिए कर रहा था जिनको पिता ने उसे दिया था, इसलिए यह कार्य व्यर्थ में नहीं होने वाला था।

परिकल्पनात्मक *(hypothetical)* छुटकारे की अवधारणा के साथ समस्या यह है कि ख्रीष्ट सिद्धान्ततः *(theoretically) सभी* के लिए मर सकता है परन्तु वास्तव में *किसी के लिए नहीं* —अर्थात् यदि कोई भी सुसमाचार के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता है। तब क्रूस का व्यर्थ होना सिद्धान्ततः सम्भव होगा।

यहीं पर परमेश्वर के चरित्र के विषय में हमारी समझ के अनुसार हम क्रूस के विषय में सोचने के लिए बाध्य हो जाते हैं। यदि परमेश्वर ने प्रायश्चित्त का उद्देश्य निर्धारित किया है, यदि क्रूस छुटकारे के लिए परमेश्वर की योजना थी, तो हमें ऐसा ही होने की अपेक्षा करनी चाहिए। क्रूस का प्रभाव ठीक उस मात्रा तक पूर्ण हुआ जितना परमेश्वर ने आरम्भ में चाहा था।

बहुत से लोग विश्वास करते हैं कि मनुष्यों का उद्धार अन्ततः मनुष्य पर निर्भर है। परन्तु परमेश्वर के ईश्वरीय-प्रावधान *(providence)* के बाहर किसी का भी पतन नहीं होता है। छुटकारे के मूल उद्देश्य और योजना में कोई भी बात प्रभावशाली होने के लिए हम पर निर्भर नहीं होती है। यह केवल परमेश्वर पर निर्भर होती है। यही वह विचाराधीन बात है। अन्तिम विश्लेषण में उद्धार मनुष्य से नहीं किन्तु प्रभु से है।

चुनाव का सिद्धान्त *(The Doctrine of Election)*

धर्मसुधारवादी ईश्वरविज्ञानी कहते हैं कि क्रूस के लाभों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को विश्वास करना होगा, पर वह विश्वास भी परमेश्वर की ओर से एक वरदान है। ख्रीष्ट उद्धार के अनन्त उद्देश्य को पूरा करता है कि प्रत्येक व्यक्ति जिसके लिए वह मरा, उद्धार पाए। यीशु केवल चुने हुओं के लिए मरा; वह सब के लिए नहीं मरा। बहुत लोग बाइबल की इस शिक्षा की ओर संकेत करते हुए इस बिन्दु पर आपत्ति करते हैं कि ख्रीष्ट पूरे जगत के पापों के लिए मरा (1 यूहन्ना 2:2)। हाँ, ख्रीष्ट जगत के सब *स्थानों* के लोगों के लिए मरा और पवित्रशास्त्र "जगत" के विषय में इस प्रकार से ही बात करता है। दूसरे शब्दों में, बाइबल के दृष्टिकोणानुसार यीशु केवल यहूदियों के लिए नहीं मरा। वह यहूदियों के लिए और सब प्रकार के ग़ैरयहूदियों के लिए मरा। वह प्रत्येक कुल, भाषा, और जाति के लोगों के लिए मरा। वह सब चुने हुए लोगों के लिए मरा, जिसमें जगत के प्रत्येक स्थान से लोग सम्मिलित हैं। किन्तु वह उनके लिए नहीं मरा जो चुने हुए नहीं हैं। वह शैतान के लिए नहीं मरा। वह उन लोगों के लिए नहीं मरा जो परमेश्वर की सनातन आज्ञप्ति *(decree)* के अनुसार चुनाव के रूप में उसकी कृपादृष्टि के विशेष पात्र नहीं हैं।

ट्यूलिप के *L* को मानना कसौटी पर खरे उतरने जैसा है कि क्या वह व्यक्ति वास्तव में शेष अक्षरों की बातों को मानता है या नहीं। लोग कहते हैं कि वे सम्पूर्ण भ्रष्टता *(total depravity)*—*T* अक्षर—पर विश्वास करते हैं किन्तु वे सीमित प्रायश्चित्त पर विश्वास नहीं करते हैं। वे कहते हैं कि वे अप्रतिबन्धित चुनाव *(unconditional election)*—*U* अक्षर—पर विश्वास करते हैं अर्थात् परमेश्वर ने सम्प्रभुता में होकर सनातन काल में उन लोगों को चुना है जिन्हें वह केवल अपने भले अभिप्राय के कारण बचाएगा, किन्तु वे सीमित प्रायश्चित्त को नहीं मानते हैं। यद्यपि हम ऐसा नहीं कर सकते हैं कि एक पर विश्वास करें और दूसरे पर नहीं। क्योंकि यदि हम विश्वास करते हैं कि चुनाव अप्रतिबन्धित है और यह सनातन काल से परमेश्वर की सम्प्रभुता की दया और उसके अनुग्रह पर आधारित है, तो हमें क्रूस के उद्देश्य को भी देखना होगा। क्रूस का *मूल्य* सर्वत्र विस्तृत है, परन्तु क्रूस के लिए परमेश्वर की *योजना* और *उद्देश्य* यह था कि वह अपने न्याय की माँगों को सन्तुष्ट करने के द्वारा पतित मानवता के केवल कुछ लोगों को बचाए। उसने अपने पुत्र के कार्य को उन लोगों के लाभ के लिए लागू करने का निर्णय लिया जिन्हें उसने जगत की उत्पत्ति से पहले चुना था।

क्रूस सदैव छुटकारे के लिए परमेश्वर की सनातन योजना का भाग रहा है और इसका उद्देश्य चुने हुए लोगों के लिए है। यह सान्त्वना देनी वाली बात है कि ख्रीष्ट व्यर्थ में नहीं मरा और उसके द्वारा पूरा किया गया छुटकारा निश्चित रूप से उन पर लागू किया जाएगा जिनको वह बचाना चाहता था।

भाग पाँच

आत्माविज्ञान

Pneumatology

अध्याय 31

पुराने नियम में पवित्र आत्मा

The Holy Spirit in the Old Testament

मेरा हृदय-परिवर्तन *(conversion)* मेरे जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। उस समय विवाह के लिए मेरी मँगनी हो चुकी थी और मैंने अपनी मंगेतर को ख्रीष्ट की ओर मेरे हृदय-परिवर्तन की परिस्थितियों और हमारे सम्बन्ध के लिए इसके अर्थ को विस्तृत रूप से समझाने का प्रयास किया। हमने मुख्यतः पत्रों और दूरभाष के द्वारा संवाद किया क्योंकि हम अलग-अलग महाविद्यालयों में थे और हमने इस चर्चा को कई महीनों तक बनाए रखा। मुझे लगा कि मैं प्रगति नहीं कर रहा था। अन्ततः वह मुझसे भेंट करने आई और मैंने उसे एक प्रार्थना सभा में ले जाने का निर्णय लिया। उससे पहले मैंने पूरी सुबह, उसके और उस कार्यक्रम के लिए घुटनों पर प्रार्थना करते हुए व्यतीत की और मेरे लिए यह बहुत हर्षजनक बात रही कि उस सभा में ख्रीष्ट की ओर उसका हृदय-परिवर्तित हुआ और तत्पश्चात् आगे चलकर मैंने उससे विवाह किया। अपने हृदय-परिवर्तन के दिन उसने मुझसे कहा, "अब मैं जानती हूँ कि पवित्र आत्मा कौन है।" मैंने सोचा कि ख्रीष्ट की ओर जागृत होने के प्रति उसकी यह प्रतिक्रिया चित्ताकर्षक थी और बीते वर्षों में मैंने इस बात पर बहुत मनन किया है। यह महत्वपूर्ण बात है कि उसने कहा कि "अब मैं जानती हूँ कि पवित्र आत्मा *कौन* है" और यह नहीं कहा, "अब मैं जानती हूँ कि पवित्र आत्मा *क्या* है।"

मसीहियत के विषय में संसार की एक सामान्य त्रुटिपूर्ण धारणा यह है कि पवित्र आत्मा किसी प्रकार की अव्यक्तिगत शक्ति या परमेश्वर का एक सक्रिय सामर्थ्य है, न कि एक वास्तविक व्यक्ति, अर्थात् ईश्वरीय त्रिएकता का एक सदस्य। पर यीशु और प्रेरितों ने पवित्र आत्मा को "वह" (किसी व्यक्ति के लिए उपयोग किया जाने वाला सर्वनाम) कहा। पवित्रशास्त्र हमें दिखाता है

कि पवित्र आत्मा के पास एक इच्छाशक्ति, ज्ञान, और स्नेह हैं—वे सब बातें जो किसी व्यक्ति *(personhood)* का निर्माण करती हैं पवित्र आत्मा के लिए उपयोग किए जाते हैं।

पवित्र आत्मा के सम्बन्ध में पुराने नियम में और नए नियम तथा आज मसीहियों के जीवनों में उसके कार्य में भिन्नता को लेकर एक बड़े भ्रम का विषय है। पवित्र आत्मा का कार्य एकदम आरम्भ में चलकर सृष्टि की उत्पत्ति से देखा जा सकता है: "आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की। पृथ्वी बेडौल और वीरान थी, और अथाह जल की सतह पर अन्धियारा था" (उत्पत्ति 1:1-2अ)। अनिर्मित संसार को अन्धकारमय, बेडौल, और वीरान के रूप में वर्णित किया गया है। कार्ल सेगन *(Carl Sagan)* अपनी पुस्तक *कोसमोस (Cosmos-विश्व-व्यवस्था)* में हठधर्मिता *(dogmatic)* से यह दृढ़कथन करते हैं कि विश्व-व्यवस्था सुव्यवस्थित है, अस्त-व्यस्त नहीं है, जो कि व्यवस्था और गड़बड़ी के बीच का अन्तर है।* बाइबलीय श्रेणियों में, यह घोर अन्धकार और उजियाले के बीच का अन्तर है, एक ऐसा रिक्त विश्व जिसमें कुछ भी अर्थपूर्ण नहीं है और एक ऐसा विश्व जो सृष्टिकर्ता के फल से परिपूर्ण एवं भरा हुआ है। उत्पत्ति की पुस्तक के आरम्भ के पदों में हम विश्व-व्यवस्था की एक नाटकीय उद्घोषणा को पाते हैं, जिसमें संसार का कोई आकार नहीं था और जल की गहरी सतह पर अन्धियारा था।

परन्तु, उत्पत्ति 1:2 के अगले भाग में, हम पहली बार पवित्र आत्मा से भेंट करते हैं: "और परमेश्वर का आत्मा जल की सतह पर मण्डराता था।" *मण्डराता (hovering)* के लिए एक और शब्द *सेता (brooding-जो कि अण्डे सेने से सम्बन्धित)* है। इसी विचार का संचार तब किया गया था जब परमेश्वर ने जिब्राईल स्वर्गदूत को नासरत में एक ग्रामीण युवती मरियम के पास यह बताने के लिए भेजा था कि वह माँ बनने वाली थी। मरियम ने स्वर्गदूत से पूछा, "यह कैसे हो सकता है, क्योंकि मैं तो कुँवारी ही हूँ?" (लूका 1:34)। स्वर्गदूत ने उत्तर दिया, "पवित्र आत्मा तुझ पर उतरेगा और परमप्रधान का सामर्थ्य तुझ पर आच्छादित होगा" (35 पद)। जिस क्रिया का उपयोग मरियम पर पवित्र आत्मा के उतरने के लिए किया गया है, उसका वही अर्थ है जो उस शब्द का है जिसका उपयोग उत्पत्ति 1 में पवित्र आत्मा के रचनात्मक सामर्थ्य का वर्णन करने के लिए किया गया है। आत्मा बेडौल स्थिति में आया और वह मण्डराया, या सेया। जिस प्रकार मुर्गी जीवन उत्पन्न करने के लिए अपने अण्डों को सेती है, उसी प्रकार आत्मा ने व्यवस्था *(order)* और सत्त्व और उजियाले को उत्पन्न किया। जैसा कि नया नियम बताता है, परमेश्वर गड़बड़ी का स्रोत नहीं है (1 कुरिन्थियों 14:33)। वह अस्तव्यस्तता को उत्पन्न नहीं करता है। परमेश्वर का आत्मा

* कार्ल सेगन, *कोसमोस* (न्यू यॉर्क: बैलनटाइन, 1985)।

अव्यवस्था में से व्यवस्था लाता है; वह कुछ नहीं में से कुछ उत्पन्न करता है; वह अन्धियारे में से उजियाला लाता है।*

सामर्थ्य का आत्मा

जब हम पुराने नियम को पढ़ते हैं, तो हम परमेश्वर के गौरव और उसके सामर्थ्य दोनों से प्रभावित होने से स्वयं को नहीं रोक सकते हैं। जब कोई भूकम्प होता है या एक बवंडर मैदानी राज्यों में से होकर जाता है, हम विनाश के चिह्नों को देखते हैं और प्रकृति के सामर्थ्य से भावविह्वल होते हैं। पर सम्पूर्ण प्रकृति के प्रभु के सर्वोत्कृष्ट सामर्थ्य की तुलना में वे कुछ भी नहीं हैं। उसका सामर्थ्य इस ग्रह पर होने वाली किसी भी घटना से अधिक है। हम पुराने नियम में इस सामर्थ्य को प्राथमिक रीति से पवित्र आत्मा द्वारा प्रकट होते हुए देखते हैं, जिसको यूनानी भाषा में परमेश्वर का *डायनामिस (dynamis)* कहा जाता है। *डायनामिस* शब्द को "सामर्थ्य" के रूप में अनुवाद किया जाता है। इसी शब्द से हमें अंग्रेज़ी शब्द *डायनामाइट* प्राप्त होता है। पवित्र आत्मा को सामर्थ्य के आत्मा के रूप में दिखाया जाता है।

पहले, हमने ख्रीष्ट के तिहरे पद का अध्ययन किया था—नबी, याजक और राजा। वे सब मध्यस्थता के पद थे, और वे *चमत्कारी (charismatic)* पद थे। किन्तु केवल वे ही *चमत्कारी* पद नहीं थे; न्यायी *(judges)* लोग जो कि इस्राएल के इतिहास में राजाओं से पहले हुए थे, वे भी चमत्कारी अगुवे थे। *चमत्कारी* शब्द यूनानी *ख़रिस्मा-charisma* से आता है, जिसका सम्बन्ध वरदानयुक्त होने से है। वे जिन्हें अद्वितीय रूप से वरदान दिया गया था वे पवित्र आत्मा द्वारा अभिषिक्त थे। उदाहरण के लिए, परमेश्वर का आत्मा शिमशोन पर उतरा, और वह पराक्रमी कार्य करने के लिए सशक्त किया गया। यही बात गिदोन और नबियों के विषय में भी सच थी; पवित्र आत्मा ने उन पर उतरकर उनको सेवा के लिए सशक्त किया। पवित्र आत्मा ने याजकों और राजाओं को भी अभिषिक्त किया जिससे कि वे अपने कार्य को कर सकें।

पुराने नियम में सर्वाधिक वरदानयुक्त व्यक्ति मूसा था, जिसने परमेश्वर के लोगों को मिस्र से निकालने के लिए सशक्तिकरण प्राप्त किया। पर मूसा ने उससे भी उत्तम दिन की ओर भविष्य में देखा, जब परमेश्वर के सब लोग उसके आत्मा के द्वारा अभिषेक किए जाएँगे। पुराने नियम के एक समय में, जब परमेश्वर ने आश्चर्यकर्म करते हुए इस्राएलियों को मिस्र से छुड़ाया था, लोगों ने कुड़कुड़ाना आरम्भ किया कि उनके पास मन्ना को छोड़, जो स्वर्ग से वह रोटी थी जिसे परमेश्वर ने उनके लिए मरुस्थल में उपलब्ध कराया था, खाने के लिए कुछ और नहीं था। वे उन "खीरे और

---

* पवित्र आत्मा के कार्य के विषय में और जानने के लिए, देखें,आर.सी. स्प्रोल, द *मिस्ट्री ऑफ द होली स्पिरिट* (रीप्रिन्ट, फियर्न, रॉलशायर, इंग्लैण्ड: क्रिस्चियन फोकस, 2009)।

तरबूज और गन्दने और प्याज और लहसुन" (गिनती 11:5) के लिए लालायित होने लगे जिनका आनन्द उन्होंने तब उठाया था जब वे मिस्र में दास थे। उनकी कुड़कुड़ाहट ने मूसा को दुःखी किया, और वह भी, कुड़कुड़ाने लगा: "मैं अकेला इन सब लोगों को नहीं सम्भाल सकता, क्योंकि यह बोझ मेरे लिए बहुत भारी है। यदि तू मुझसे ऐसा ही व्यवहार करना चाहता है और यदि तेरा अनुग्रह मुझ पर हो तो मुझे शीघ्र ही मार डाल, जिस से कि मैं अपनी दुर्दशा देख न पाऊँ।" (पद 14-15) परमेश्वर ने मूसा को मारने का निर्णय नहीं किया; वरन् उसने उसके लिए सहायता उपलब्ध कराई:

> तब यहोवा ने मूसा से कहा, "इस्राएली प्राचीनों में से मेरे लिए सत्तर पुरुष जिनको तू जानता है कि वे प्रजा के प्राचीन और अगुवे हैं, इकट्ठा कर और उन्हें मिलापवाले तम्बू के पास ले आ और वे तेरे साथ वहीं खड़े हों। तब मैं उतरकर वहाँ तुझ से बात करूँगा और जो आत्मा तुझ में है उसमें से कुछ लेकर उनमें डाल दूँगा, और वे तेरे साथ लोगों का बोझ उठाएँगे जिससे कि तुझे अकेले ही उठाना न पड़े।" (16-17 पद)

इस रीति से परमेश्वर ने उसी आत्मा के अभिषेक को उन सत्तर प्राचीनों को दिया जिसका अभिषेक उसने पहले केवल मूसा को दिया था। पर उस सन्दर्भ में, मूसा ने कहा, "अच्छा होता कि यहोवा की सारी प्रजा के लोग नबी होते और यहोवा अपना आत्मा उन में डाल देता" (गिनती 11:29)।

क्योंकि केवल इसलिए कि पुराने नियम में लोगों को पवित्र आत्मा द्वारा अभिषिक्त किया गया था और विशेष कार्य करने के लिए सशक्त किया गया था, इसका अर्थ यह नहीं था कि वे पवित्र आत्मा द्वारा जन्मे थे। यह अनिवार्य नहीं था कि वे विश्वासीगण थे। हम पवित्र आत्मा को राजा शाऊल पर उतरते हुए और फिर उससे *चले जाते* हुए देखते हैं। हम बिलाम और अन्य लोगों के अभिषिक्त किए जाने को देखते हैं जिन्होंने अनजाने में पवित्र आत्मा के सामर्थ्य और प्रेरणा में होकर नबूवत की, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वे लोग विश्वासी ही थे। पुराने नियम में पवित्र आत्मा का अभिषेक अधिकतर विश्वासियों को दिया गया, परन्तु केवल विश्वासियों को ही नहीं दिया गया था। और पवित्र आत्मा का अभिषेक पुनःजन्म *(rebirth)* अर्थात् नये जन्म के वरदान के समान नहीं था।

हम इस सम्बन्ध में पुराने नियम और नए नियम में कुछ समानान्तर बातों को अवश्य देखते हैं। पुराने नियम में, आत्मा का सशक्तिकरण केवल गिने चुने लोगों को दिया जाता था—नबियों को,

याजकों को, राजाओं को, न्यायियों को, उन कलाकारों और शिल्पकारों को जिन्हें परमेश्वर द्वारा मिलाप वाले तम्बू में वस्तुओं और सजावट को बनाने के लिए बुलाया गया था। पहली बार जब हम पवित्र आत्मा द्वारा लोगों को भरने के विषय में पढ़ते हैं, तो ये वे शिल्पकार थे जिनको आत्मा के द्वारा उनके कार्य के लिए विशेष रीति से वरदान दिया गया था (निर्गमन 28:3)। मुख्य बात तो यह है कि छावनी में प्रत्येक जन, प्रत्येक विश्वासी के पास यह वरदान नहीं था। यह कुछ ही चुने हुए लोगों तक सीमित था। परन्तु मूसा की आशा थी कि यह स्थिति परिवर्तित होगी। और ठीक वैसा ही नए नियम में पिन्तेकुस्त के समय हुआ भी (प्रेरितों के काम 2)।

अध्याय 32

नए नियम में पवित्र आत्मा

The Holy Spirit in the New Testament

जब परमेश्वर ने मनुष्यों की सृष्टि की तो उसने केवल निष्क्रिय मूर्तियों को नहीं रचा, जैसा कि एक कलाकार करता है, जब वह पत्थर या मिट्टी को पुनर्व्यवस्थित करता है। जब परमेश्वर ने उस आकृति को बना लिया जिसे उसने धूल से बनाया था, तो उसने नीचे झुककर उसमें श्वास फूँका जिससे कि मनुष्य एक जीवित *रूआह (ruah-रूआहः इब्रानी भाषा में आत्मा के लिए शब्द)* बन गया, एक जीवित आत्मा (उत्पत्ति 2:7; 1 कुरिन्थियों 15:45)। परमेश्वर ने अपने स्वयं के जीवन को मनुष्य में फूँका। यह सब रहस्यों में से एक महान् रहस्य है—स्वयं जीवन का रहस्य।

बाइबल से हम जानते हैं कि जीवन का स्रोत पवित्र आत्मा है। पौलुस ने कहा कि हम परमेश्वर में जीवित रहते, चलते-फिरते और अस्तित्व रखते हैं (प्रेरितों के काम 17:28)। एक अन्यजाति व्यक्ति भी पवित्र आत्मा के सामर्थ्य के बिना श्वास नहीं ले सकता है। यद्यपि बाइबल ख्रीष्ट के विषय में बताती है कि वह मरियम के गर्भ में पवित्र आत्मा के सामर्थ्य के द्वारा आया था, परन्तु एक *सामान्य* अर्थ में बिना पवित्र आत्मा के द्वारा कोई भी गर्भ में नहीं आ सकता है।

जीवन का आत्मा

दोनों इब्रानी और यूनानी में, हम *आत्मा* के लिए उपयोग किये गए शब्दों के सम्बन्ध में एक श्लेष अलंकार को पाते हैं। यूनानी शब्द *न्यूमा (pneuma)* का अनुवाद "आत्मा" *(spirit)* के रूप में किया गया है, उसका अनुवाद "हवा" *(wind)* या "श्वास" *(breath)* के रूप में भी किया जाता है। परमेश्वर के आत्मा और जीवन के श्वास में एक घनिष्ट सम्बन्ध है। किन्तु नए नियम में पवित्र आत्मा का जीवन से सम्बन्ध को लेकर मुख्य ध्यान आरम्भिक सृष्टि पर नहीं परन्तु उस रचनात्मक

सामर्थ्य पर दिया जाता है जो आत्मिक जीवन के लिए आवश्यक है। ख्रीष्ट ने कहा, "मैं इसलिए आया हूँ कि वे जीवन पाएँ, और बहुतायत से पाएँ" (यूहन्ना 10:10)। वहाँ ख्रीष्ट बायोस *(bios)* के विषय में बात नहीं कर रहा था, जो यूनानी में "जीवन" या "जीवित प्राणियों" के लिए शब्द है। ख्रीष्ट ने एक अलग शब्द ज़ोए *(zōē)* का उपयोग किया है क्योंकि वह एक विशेष गुण वाले या प्रकार के जीवन की बात कर रहा था, वह जीवित आत्मिक जीवन जिसे केवल परमेश्वर उन को दे सकता है जो आत्मिक रीति से मृतक हैं। यीशु ने उन शब्दों को ऐसे लोगों से कहा जो शारीरिक रीति से तो जीवित थे पर आत्मिक रीति से मृतक थे, ऐसे लोगों से जिनके जीवनसूचक लक्षण कार्य कर रहे थे परन्तु वे परमेश्वर की बातों के प्रति मृतक थे।

छुटकारा देने वाले के रूप में ख्रीष्ट हमें जीवन देने आया और पवित्र आत्मा त्रिएकता का वह व्यक्ति है जो ख्रीष्ट के छुटकारे के कार्य को हमारे जीवन में लागू करता है। इसलिए जब हम त्रिएकता के कार्य को देखते हैं, तो हम ध्यान देते हैं कि पिता ने छुटकारे की योजना को प्रारम्भ किया; ख्रीष्ट ने वह सब किया जो हमारे छुटकारे को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक था; और पवित्र आत्मा ख्रीष्ट के कार्य को हम पर लागू करता है और मृतक प्राणों को नया जीवन देने के द्वारा उसको हमारा बना देता है, जिसे ईश्वरविज्ञानी "पुनरुज्जीवन" *(regeneration)* कहते हैं। नया नियम बल देता है कि पुनरुज्जीवन पवित्र आत्मा का कार्य है।

पुनरुज्जीवन क्या है? *पुनः (re)* उपसर्ग का अर्थ "फिर से" है। इसलिए पुनरुज्जीवन एक आरम्भिक घटना की पुनरावृत्ति है। हम एक घर पर पुनः रंग चढ़ा सकते हैं, पर ऐसा करना यह सूचित करता है कि उस पर पहले न्यूनतम एक बार रंग चढ़ाया जा चुका है। इसी प्रकार से, पुनरुज्जीवन तभी हो सकता है यदि उससे पहले एक जीवित किया जाना हो चुका है।

बाइबलीय सन्दर्भ में, यह प्रथम बार जीवित किया जाना मनुष्य का शारीरिक जन्म है, किन्तु यद्यपि मनुष्य शारीरिक रीति से जीवित अवस्था में जन्म लेता है, परन्तु वह आत्मिक रीति से मृतक जन्म लेता है। हम भ्रष्टता की स्थिति में जन्म लेते हैं। पौलुस ने लिखा:

> तुम तो उन अपराधों और पापों के कारण मरे हुए थे, जिनमें तुम पहिले इस संसार की रीति और आकाश में शासन करने वाले अधिकारी अर्थात् उस आत्मा के अनुसार चलते थे जो अब भी आज्ञा न मानने वालों में क्रियाशील है। उन्हीं में हम सब भी पहिले अपने शरीर की लालसाओं में दिन बिताते थे, शारीरिक तथा मानसिक इच्छाओं को पूरा करते थे, और अन्य लोगों के समान स्वभाव ही से क्रोध की सन्तान थे। (इफिसियों 2:1-3)

पौलुस यहाँ शारीरिक मृत्यु की बात नहीं कर रहा है। जिस मृत्यु को वह सन्दर्भित करता है, वह आत्मिक मृत्यु है। पौलुस जो यहाँ सिखाता है वह परमेश्वर और लोगों के बीच के सम्बन्ध के विषय

में उस प्रचलित दृष्टिकोण के विपरीत है जो हमारे समाज और हमारी कलीसियाओं में भी व्याप्त है—यह विचार कि हम सब स्वभाव ही से परमेश्वर की सन्तान हैं। बहुत लोग विश्वास करते हैं कि सब लोग परमेश्वर के परिवार के भाग हैं; पर कोई भी मसीही के रूप में जन्म नहीं लेता है। एक व्यक्ति ईश्वरभक्त परिवार में जन्म ले सकता है, पर वह एक मसीही के रूप में जन्म नहीं लेता है। प्रत्येक जन क्रोध की सन्तान के रूप में जन्म लेता है। स्वभाव ही से हम परमेश्वर से दूर हैं, उसके शत्रु हैं और अपने पाप में मृतक हैं।

क्योंकि हम स्वाभाविक रीति से परमेश्वर की बातों के प्रति मृतक हैं, तो एक मसीही बनने का एकमात्र उपाय पवित्र आत्मा के कार्य के द्वारा ही है, जो हमें आत्मिक रीति से जीवित करता है। इफिसियों 2 में पौलुस पुनरुज्जीवन के विषय में लिख रहा है, मानव आत्मा का आत्मिक मृत्यु से पुनरुत्थान। जब नीकुदेमुस, यहूदियों का एक अधिकारी यीशु के पास आया तो उसने कहा, "हे रब्बी, हम जानते हैं कि तू परमेश्वर की ओर से आया हुआ गुरु है, क्योंकि इन चिन्हों को जो तू दिखाता है कोई नहीं दिखा सकता जब तक कि परमेश्वर उसके साथ न हो" (यूहन्ना 3:2)। नीकुदेमुस ने वहाँ सही समझ को प्रकट किया, परन्तु वह तब भी नहीं जान पाया कि यीशु कौन था। इसलिए यीशु ने उससे कहा, "मैं तुझसे सच सच कहता हूँ कि जब तक कोई नया जन्म न ले, वह परमेश्वर का राज्य नहीं देख सकता" (3 पद)। नीकुदेमुस ने आगे यीशु की शिक्षा पर प्रश्न उठाया इसलिए यीशु ने उससे कहा, "क्या तू इस्राएलियों का गुरु नहीं, तौभी इन बातों को नहीं समझता?" (10 पद)। महासभा के सदस्य तथा फरीसी होने के नाते नीकुदेमुस एक ईश्वरविज्ञानी था और उसको इन बातों का ज्ञान होना चाहिए था क्योंकि उनकी शिक्षा पुराने नियम के पवित्रशास्त्रों में होती थी। दूसरे शब्दों में, यीशु यहाँ किसी नए विचार का परिचय नहीं दे रहा था। ऐसा नहीं था कि पुराने नियम के समय-काल के लोग पुनरुज्जीवन के बिना बचाए जाते थे। अब्राहम को पवित्र आत्मा के द्वारा जन्म लेना था और वैसे ही दाऊद को और उन सब को भी जिनका कभी छुटकारा हुआ है। पुनरुज्जीवन उद्धार के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है।

इसलिए "नया जन्म पाये हुए मसीही" वाक्याँश का उपयोग करना तो अनावश्यक है। क्या किसी अन्य प्रकार का भी मसीही होता है? यीशु के अनुसार, कोई भी जन बिना नया-जन्म-पाए-हुए मसीही नहीं होता है। लोग आजकल इस अभिव्यक्ति का उपयोग सच्चे विश्वासियों को उन लोगों से भिन्न दिखाने के लिए करते हैं जो यह दावा करते हैं कि बिना पुनरुज्जीवित हुए भी किसी व्यक्ति का छुटकारा होना सम्भव है। पुराने और नए नियम में परमेश्वर के आत्मा की एक केन्द्रीय भूमिका पुनरुज्जीवन है। आत्मा वह व्यक्ति है जो नई उत्पत्ति की सृष्टि करता है, जो आत्मिक जन्म देता है।

पवित्र पालन-पोषण करने वाला

पवित्र आत्मा हमें न केवल पुनरुज्जीवित करता है, पर वह मसीहियों का परम पालन-पोषण करने वाला भी है। नया नियम पवित्रीकरण में पवित्र आत्मा की भूमिका पर बल देता है। वही है जो हमें ख्रीष्ट के स्वरूप में आकार देता है और आत्मिक परिपक्वता के लिए हमारा पालन-पोषण करता है। तो आत्मा न केवल हमें जीवित करता है, और विश्वास तथा आत्मिक जीवन प्रदान करता है जिससे कि हम धर्मी ठहराए जाएँ, परन्तु वह उन लोगों का जीवन भर पालन-पोषण भी करता है जिन्हें उसने आत्मिक मृत्यु से जिलाया है—उनकी अगुवाई करते हुए, उन्हें प्रभावित करते हुए, और उनके भीतर कार्य करते हुए जिससे कि वास्तविकता में उनका चरित्र, पापी से सन्त की ओर परिवर्तित हो सके।

ध्यान दीजिए कि आत्मा के साथ "पवित्र" शीर्षक जोड़ा जाता है। पवित्रशास्त्र में यह स्पष्ट है कि पवित्रता एक गुण है जो समान रीति से त्रिएकता के तीनों व्यक्तियों से सम्बन्धित है, परन्तु छुटकारे की योजना के अन्तर्गत उसकी सेवा में उसके सन्केन्द्रित कार्य के कारण इसका विशेष रीति से श्रेय आत्मा को दिया जाता है। हमें पवित्र बनाने के लिए परमेश्वर उसी को भेजता है।

पवित्र आत्मा हमारे जीवनों में—हमारे पुनरुज्जीवन से आरम्भ होते हुए और जीवन भर पवित्रीकरण की प्रक्रिया में चलते हुए, जब तक वह महिमान्वीकरण में सम्पन्न नहीं हो जाता है—अपना कार्य विभिन्न चरणों में पूरा करता है। पवित्र आत्मा हमारे चरित्र में उस महत्वपूर्ण परिवर्तन को प्रारम्भ करता है, फिर वह हमारे जीवन में उसका पालन-पोषण करता है और अन्त में उसे पूरा करता है। उसकी सेवा के अनेक आयाम हैं। वह मूल *(original)* सृष्टि के समय था और वह पुनः- सृष्टि का सामर्थ्य है। वह मूल जीवन के दिए जाने में था और वह आत्मिक जीवन के दिए जाने में है। वह पवित्रीकरण में है और वह महिमान्वीकरण में होगा।

पवित्र शिक्षक

इसके साथ, पवित्र आत्मा ने पुराने नियम में लोगों को सशक्त किया। उसी ने पावन पवित्रशास्त्र को, अर्थात् बाइबल के लिखे जाने को प्रेरित किया। और उसने न केवल पवित्रशास्त्र के आरम्भिक लेखन को प्रेरित किया किन्तु वह उसे प्रदीप्त *(illumine)* भी करता है: पौलुस हमें बताता है कि (1 कुरिन्थियों 2:11),"परमेश्वर के आत्मा को छोड़ परमेश्वर के विचारों को कोई नहीं जानता है," इसलिए पवित्र आत्मा हमारे अन्धकारमय मनों में ज्योति चमकाने के द्वारा हमें पवित्रशास्त्र समझने में सहायता करता है। वही है जो हमें पाप और धार्मिकता के सम्बन्ध में दोषी ठहराता है। वह हमारा पैराक्लीट *(अधिवक्ता)* है, ऐसा सहायक जिसे ख्रीष्ट ने अपनी कलीसिया को देने की प्रतिज्ञा की थी।

अध्याय 33

अधिवक्ता (सहायक)

The Paraclete

यीशु के उपदेशों में से एक का केन्द्रीय बिन्दु घृणा है। हम यीशु की शिक्षा में प्रेम की केन्द्रीयता से परिचित हैं, परन्तु ऊपरी कक्ष के उपदेश में यीशु ने अपने प्रति संसार की घृणा के विषय में बात की। उस घृणा के कारण यीशु अपने शिष्यों को बताने के लिए उत्साही था कि उन्हें संसार से क्या अपेक्षा रखनी चाहिए: “यदि संसार तुमसे घृणा करता है तो तुम जानते हो कि उसने तुमसे पहले मुझसे घृणा की है। यदि तुम संसार के होते तो संसार अपनों से प्रेम करता; परन्तु इसलिए कि तुम संसार के नहीं हो क्योंकि मैंने तुम्हें संसार में से चुन कर निकाल लिया है—इसलिए संसार तुमसे घृणा करता है” (यूहन्ना 15:18-19)। यीशु ने उसके पश्चात् सताव के विषय में बात की।

परन्तु पहले उस उपदेश में, यीशु ने अपने शिष्यों को सताव और मसीही जीवन की परीक्षाओं के मध्य ईश्वरीय सहायता के लिए एक प्रतिज्ञा प्रदान की थी—वह सान्त्वनादाता या अधिवक्ता (सहायक) जिसे वह एक प्रतिरोधी संसार में अपने लोगों के मध्य में होने के लिए भेजेगा।

एक अन्य

ख्रीष्ट ने अधिवक्ता (सहायक) का परिचय इस प्रकार से दिया: “मैं पिता से विनती करूँगा, और वह तुम्हें *एक और* अधिवक्ता [पैराक्लीट] देगा कि वह सदा तुम्हारे साथ रहे” (यूहन्ना 14:16)। ध्यान दीजिए कि पवित्र आत्मा का परिचय “एक और” पैराक्लीट के रूप में दिया गया है। निस्सन्देह एक और पैराक्लीट होने के लिए, उस से पहले कम से कम एक अन्य पैराक्लीट रहा होगा। इसलिए यह यूनानी शब्द *पैराक्लेटोस-paraklētos,* सबसे पहले पवित्र आत्मा के लिए नहीं परन्तु स्वयं यीशु के लिए उपयोग किया गया है। नए नियम में, यीशु को पैराक्लीट के रूप में प्रकट किया गया

है, और पवित्र आत्मा ही वह दूसरा पैराक्लीट है, यीशु के साथ एक और पैराक्लीट। इस बात में बहुत महत्व है, न केवल क्योंकि यह यीशु से सम्बन्धित है, पर क्योंकि यह पविल आत्मा के व्यक्ति और कार्य से भी सम्बन्धित है।

अपने उपदेश में, यीशु ने कहा:

यदि मैं उनके मध्य वे काम न करता जिन्हें किसी और ने नहीं किए, तो वे पापी न ठहरते, परन्तु अब तो उन्होंने मुझे और मेरे पिता दोनों को देखा है, और दोनों से घृणा की है। परन्तु उन्होंने ऐसा इसलिए किया कि वह वचन पूरा हो जो उनकी व्यवस्था में लिखा है: "उन्होंने बिना कारण मुझसे घृणा की है।"

जब वह सहायक आएगा जिसे मैं पिता की ओर से तुम्हारे पास भेजूँगा, अर्थात् सत्य का आत्मा, जो पिता से निकलता है, वह मेरी साक्षी देगा, और तुम भी साक्षी दोगे, क्योंकि तुम आरम्भ से ही मेरे साथ रहे हो।

ये बातें मैंने तुमसे इसलिए कही हैं, कि तुम ठोकर खाने से बचे रहो। वे तुम्हें आराधनालय से निकाल देंगे, परन्तु वह समय आ रहा है कि जो कोई तुम्हें मार डालेगा, समझेगा कि परमेश्वर की सेवा कर रहा है। और वे ऐसा इसलिए करेंगे क्योंकि उन्होंने न तो पिता को जाना और न मुझे। और ये बातें मैंने इसलिए कहीं कि जब समय आए तो तुम स्मरण करो कि मैंने तुम्हें इनके विषय में बता दिया था, और ये बातें मैंने तुम से आरम्भ में इसलिए नहीं कहीं क्योंकि मैं तुम्हारे साथ था। (यूहन्ना 15:24-16:4)

एक और सान्त्वनादाता

सान्त्वनादाता अर्थात् पवित्र आत्मा को भेजने के विषय में यीशु की चर्चा का सन्दर्भ घृणा और प्रत्याशित सताव है। ऐतिहासिक रीति से, पवित्र आत्मा की सेवा को शान्ति से जोड़ा गया है, और हम उसे "सान्त्वनादाता" शीर्षक देते हैं। यह एक ऐसा आयाम है जिसमें हम आत्मा की सेवा के विषय में कुछ महत्वपूर्ण बात से चूक जाते हैं।

उन्नीसवी शताब्दी के फ्रांसीसी दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे *(Friedrich Nietzsche)* पाश्चात्य संस्कृति पर मसीहियत के प्रभाव के विषय में अत्यन्त आलोचनात्मक थे। उन्होंने घोषणा की कि परमेश्वर की मृत्यु हो गयी थी, वह दया के कारण मर गया था। नीत्शे पश्चिमी यूरोप में मसीही कलीसिया के द्वारा प्रसारित शिक्षा से घृणा करते थे जिसे वह दुर्बलता की नीति *(ethic)* मानते थे जो नम्रता, धीरज और सज्जनता पर बल देती थी। उसने कहा कि सच्ची मानवता केवल "अतिमानव"

(superman) में पायी जाती है जो “सामर्थ्य के लिए इच्छाशक्ति” को व्यक्त करता है। नीत्शे के अनुसार एक सच्चा जन वह है जो अन्तिम विश्लेषण में एक विजेता है। उसने सामर्थ्य तथा पौरुष की नीति की माँग की। एडोल्फ़ हिटलर *(Adolf Hitler)* ने जर्मनी में सत्ता में आने से पहले अपने साथियों को ख्रीष्ट जन्मोत्सव के उपहार के रूप में नीत्शे की पुस्तकें दीं।

जिस प्रकार नीत्शे ने मसीही नीति को त्रुटिपूर्वक समझा था, वैसे ही हमारी संस्कृति ने पवित्र आत्मा को एक और पैराक्लीट, एक और सान्त्वनादाता के रूप में यीशु के उल्लेख को बहुत ही त्रुटिपूर्वक समझा है। जब हम सान्त्वना लाने वाले किसी व्यक्ति के विषय में सोचते हैं, तो हमारे मन में ऐसा व्यक्ति आता है जो पीड़ा में हमारी सेवा करता है, ऐसा व्यक्ति जो हमारी आँखों से आँसू पोछता है और जब हम उदास हैं, तो हमें सान्त्वना देता है। पर यीशु के मन में यह नहीं था। निःसन्देह नया नियम यह सिखाता है कि परमेश्वर अपने लोगों को ढाढ़स देता है। वास्तव में, यीशु के जन्म की घोषणा “इस्राएल की शान्ति” (लूका 2:25) के प्रकट होने के रूप में की जाती है, इसलिए मैं यह नहीं कहना चाहता हूँ कि पवित्र आत्मा हमारी पीड़ा और दुःखों में हमारी सेवा नहीं करता है। वह वास्तव में ऐसा व्यक्ति है जो हमें ऐसी शान्ति देता है जो समझ से परे है (फिलिप्पियों 4:7), परन्तु यीशु यहाँ उस विचार को सम्बोधित नहीं कर रहा है।

पैराक्लेटोस (paraklētos) शब्द यूनानी संस्कृति से आता है। *पैरा-para* उपसर्ग का अर्थ “के साथ” है, जिसे हम *पैराचर्च (parachurch), पैरालीगल (paralegal)* और *पैरामेडिक (paramedic)* जैसे अंग्रेज़ी शब्दों में पाते हैं। आपको स्मरण होगा कि हमने पहले कहा था कि कोई जन या वस्तु जो *पैरा* है, वह किसी और के साथ है। *पैराक्लेटोस* का मूलरूप, *कालेयो (kaleō)* क्रिया से आता है, जिसका अर्थ है “बुलाना।” तो *पैराक्लेटोस* का अक्षरशः अर्थ है कोई ऐसा व्यक्ति जिसे किसी और के निकट साथ में आने के लिए बुलाया गया है। यूनानी संस्कृति में एक पैराक्लीट परिवार का न्यायवादी *(attorney)* होता था जो परिवार के उन सदस्यों का बचाव करता था जिन पर किसी अपराध के लिए आरोप लगाए गए थे। पैराक्लीट लोगों का प्रतिरक्षक, उनको प्रबल बनाने वाला, तथा समस्या के समय में सहायता करने वाला व्यक्ति था।

एक और अधिवक्ता

यूहन्ना ने अपने पहले पत्र में इसी यूनानी शब्द, *पैराक्लेटोस* का उपयोग किया, पर अधिकाँश अंग्रेज़ी अनुवाद उसे “सान्त्वनादाता” या “सहायक” नहीं कहते हैं; वे उसे *“एडवोकेट-advocate”* के रूप में अनुवाद करते हैं: “परन्तु यदि कोई पाप करता है तो पिता के पास हमारा एक एडवोकेट

[*पैराक्लेटोस*] है, अर्थात् यीशु ख्रीष्ट जो धर्मी है" (1 यूहन्ना 2:1)। इसीलिए हम कहते हैं कि ख्रीष्ट मूल पैराक्लीट है। हम उसे अपने एडवोकेट *(अधिवक्ता)* के रूप में नहीं सोचते हैं, पर हमें ऐसा करना चाहिए। एक "अधिवक्ता" का उल्लेख सीधे-सीधे एक न्यायवादी की ओर होता था, एक ऐसा व्यक्ति जो किसी और के लिए याचना करेगा, और इसी चित्रण को हम नए नियम में यीशु के सम्बन्ध में पाते हैं। अद्भुत बात यह है कि यीशु हमारा न्यायाधीश और अधिवक्ता दोनों है। जब हम सर्वशक्तिमान परमेश्वर के सामने उपस्थित होंगे, तो ख्रीष्ट न्यायाधीश के रूप में बैठा होगा और जब हम न्याय कक्ष में प्रवेश करेंगे, तो हम पाएँगे कि वही न्यायाधीश हमारा अधिवक्ता भी है। यीशु ख्रीष्ट हमारा अधिवक्ता है, हमारा पैराक्लीट, जो पिता के सामने हमारा बचाव करेगा।

हमें इस प्रतिरोधी संसार के मध्य भी एक प्रतिरक्षक की आवश्यकता है। इसीलिए घृणा, सताव, और क्लेश के विषय में अपने उपदेश के मध्य, यीशु ने एक और अधिवक्ता (सहायक) भेजने की प्रतिज्ञा की थी। उसने पवित्र आत्मा की प्रतिज्ञा की जो हमारे परिवार का न्यायवादी होगा, जो सदा के लिए हमारे साथ उपस्थित होगा। वह हमें प्रोत्साहित करने के लिए, हमारा बचाव करने के लिए और भीषण युद्ध में हमें सशक्त करने के लिए उपस्थित होगा। सान्त्वनादाता का चित्रण एक ऐसे व्यक्ति का नहीं है जो युद्ध के *पश्चात्* हमारे आँसुओं को पोंछने आता है, परन्तु एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण है जो युद्ध के लिए हमें सामर्थ्य और साहस देने आता है।

सान्त्वनादाता शब्द को इसी रीति से आज त्रुटिपूर्वक समझा जाता है। समय के साथ भाषा में छोटे परिवर्तन होते हैं। रानी एलिज़ाबेथ के काल में अंग्रेज़ी शब्द *कमफर्टर-comforter* अपने लातीनी मूलशब्द से जुड़ा हुआ था: *कम-cum,* जिसका अर्थ "के साथ" है, और *फोर्टे-forte* जिसका अर्थ "सामर्थ्य" है। मूल रूप से *कमफर्ट* (शान्ति) शब्द का अर्थ "सामर्थ्य के साथ" था, न कि "सान्त्वना।" इसलिए यीशु उन लोगों से जो विरोध और घृणा का सामना करने वाले थे, निरुत्साहित न होने के लिए कह रहा था क्योंकि वह इन सबके मध्य उनको सुदृढ़ करने के लिए उनके पास एक और सान्त्वनादाता को भेजने जा रहा था।

पवित्र करने वाला

पौलुस ने लिखा कि ख्रीष्ट में हम जयवन्त से भी बढ़कर हैं (रोमियों 8:37)। जिस शब्द का उसने उपयोग किया वह *हायपरनिकोमेन (hypernikōmen)* था, जो लातीनी में *सूपरविनसेमुस (supervincemus)*—"अतिजयवन्त" है। जब हम यह पढ़ते हैं तो हम स्वाभाविक रीति से नीत्शे के विषय में सोचते हैं। उसको विजेता चाहिए थे। देखा जाए तो, सच्चे विजेता वे हैं जो पवित्र आत्मा द्वारा तैयार किए जाते हैं।

सत्य ही वह एक मुख्य उपाय है जिसके द्वारा वह हमें संसार का सामना करने के लिए सशक्त करता है। तत्पश्चात् ऊपरी कक्ष के उपदेश में, यीशु ने कहा:

> मुझे तुमसे और भी बहुत-सी बातें कहनी हैं, परन्तु तुम अभी उन्हें सहन नहीं कर सकते। परन्तु जब वह, अर्थात् सत्य का आत्मा आएगा, तो वह तुम्हें सब सत्य का मार्ग बताएगा; क्योंकि वह अपनी ओर से कुछ नहीं कहेगा, परन्तु जो कुछ सुनेगा, वही कहेगा और आने वाली बातों को तुम पर प्रकट करेगा। वह मेरी महिमा करेगा, क्योंकि वह मेरी बातों को लेकर तुम पर प्रकट करेगा। जो कुछ पिता का है वह सब मेरा है, इसलिए मैंने कहा, वह मेरी बातों को लेकर तुम पर प्रकट करेगा। (यूहन्ना 16:12-15)

हम यहाँ फिर से देखते हैं कि पवित्र आत्मा की सेवा, ख्रीष्ट के कार्य को उसके लोगों पर लागू करना है, और वह ऐसा हमें पवित्र करने, हम पर परमेश्वर के सत्य को प्रकट करने, और सामर्थ्य में हमारे पास आने के द्वारा करता है। यीशु का ऊपरी कक्ष उपदेश (यूहन्ना 14-17) नए नियम का एक अति महत्वपूर्ण भाग है। उसकी प्राणदण्ड की पूर्वसन्ध्या पर, उस रात को जब वह पकड़वाया गया, यह उसके शिष्यों के साथ यीशु का अन्तिम शैक्षणिक सत्र था। यूहन्ना के सुसमाचार के इन चार अध्यायों में, हमें पवित्र आत्मा के व्यक्ति और कार्य के विषय में शेष नए नियम से अधिक जानकारी दी जाती है।

यीशु अपने शिष्यों को अपने सन्निकट प्रस्थान के लिए तैयार कर रहा था और उनके भय में उनकी सहायता कर रहा था:

> ये बातें तुम्हारे साथ रहते हुए मैंने तुम से कहीं। परन्तु सहायक, अर्थात् पवित्र आत्मा जिसे पिता मेरे नाम में भेजेगा, वह तुम्हें सब बातें सिखाएगा, और सब कुछ जो मैंने तुम से कहा है, तुम्हें स्मरण कराएगा। मैं तुम्हें शान्ति दिए जाता हूँ; अपनी शान्ति तुम्हें देता हूँ; ऐसे नहीं देता जैसे संसार तुम्हें देता है। तुम्हारा मन व्याकुल न हो, और न भयभीत हो। (यूहन्ना 14:25-27)

वे उसकी उपस्थिति के द्वारा सशक्त और प्रोत्साहित किए गए थे, पर वह जा रहा था। तौभी उन्हें स्वयं को बचाने के लिए अकेले नहीं छोड़ दिया गया था। पवित्र आत्मा उनके साथ रहने वाला

था, उन्हें सत्य बोलने, उन्हें प्रोत्साहित करने और उन्हें कष्ट के मध्य में विश्वासयोग्य बनाए रखने के लिए। ख्रीष्ट ने अपनी प्रतिज्ञा को पिन्तेकुस्त के दिन पूरा किया, जब उसने पवित्र आत्मा को अपने लोग, कलीसिया के पास भेजा। इसलिए जब सताव आया तो ख्रीष्ट की कलीसिया फलवन्त हुई। उसके लोग उस सामर्थ्य के विषय में पूरी रीति से सचेत थे जिसे ख्रीष्ट ने उन्हें एक प्रतिरोधी संसार का सामना करने के लिए दी थी।

अध्याय 34

पवित्र आत्मा का बपतिस्मा

The Baptism of the Holy Spirit

पिछले पचास वर्षों में पवित्र आत्मा के व्यक्ति और कार्य के विषय में शेष मसीही इतिहास की तुलना में अधिक पुस्तकें लिखी गईं हैं। साहित्य के इस अद्भुत प्रवाह का बड़ा कारण तथाकथित चमत्कारी आन्दोलन *(charismatic movement)* है, जो कि उन्नीसवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ और फिर बीसवीं शताब्दी के मध्य तक प्रमुख मसीही धर्मसम्प्रदायों में आ गया।

पिन्तेकुस्तवाद

चमत्कारी आन्दोलन की जड़ें पिन्तेकुस्तवाद *(Pentecostalism)* और पवित्र आत्मा के बपतिस्मा के सिद्धान्त एवं उसकी शिक्षा में पाई जाती हैं। मूल पिन्तेकुस्तवादी ईश्वरविज्ञान में पवित्र आत्मा का बपतिस्मा और अन्य-अन्य भाषाओं में बात करने की घटना पवित्रीकरण के एक विशेष सिद्धान्त से जुड़ी हुई थी, एक प्रकार का सिद्धतावाद *(perfectionism)* जिसे "दूसरी आशीष" या "अनुग्रह का दूसरा कार्य" कहा जाता था। ये पिन्तेकुस्तवादी विश्वास करते थे कि अनुग्रह का पहला कार्य हृदय-परिवर्तन *(conversion)* था, परन्तु आत्मा का उतना ही प्रभावशाली एक दूसरा कार्य था जिसके द्वारा व्यक्ति इस जीवन में पूर्ण पवित्रीकरण *(sanctification)* प्राप्त कर सकता था। इसमें सोच यह थी कि कोई भी व्यक्ति जो इस दूसरी आशीष का अनुभव करता था वह आत्मिक आज्ञाकारिता के सम्बन्ध में सिद्ध बना दिया जाता था, जिसके कारण इस आन्दोलन को "सिद्धतावाद" कहा गया। विगत वर्षों में, पिन्तेकुस्तवादियों ने सिद्धतावाद के विभिन्न स्तरों और प्रकारों को अपनाया है।

समय के साथ, पिन्तेकुस्तवादी सिद्धान्त ने मसीही साम्प्रदायिक *(denominational)* सीमाओं को पार किया है और इसने लगभग प्रत्येक मसीही सम्प्रदाय पर प्रभाव डाला है। पवित्र आत्मा का बपतिस्मा के ईश्वरविज्ञान *(theology of the baptism of the Holy Spirit)* को ऐतिहासिक मसीहियत के साथ समाहित करने का प्रयास किया गया है, जिसका परिणाम नव-पिन्तेकुस्तवादी *(neo-Pentecostal)* ईश्वरविज्ञान है। पिन्तेकुस्तवाद और नव-पिन्तेकुस्तवाद में मुख्य भिन्नता पवित्र आत्मा के बपतिस्मा के सम्बन्ध में है। नव-पिन्तेकुस्तवादी आत्मा के बपतिस्मा को पवित्रीकरण के लिए अनुग्रह के दूसरे कार्य के रूप में नहीं मानते हैं। इसके विपरीत यह आत्मा का ईश्वरीय कार्य है जिसका उद्देश्य लोगों को वरदान देना और सेवकाई के लिए सशक्त करना है। उस सम्बन्ध में यह आत्मा के कार्य के विषय में नए नियम के विचार से अधिक मेल खाता है।

तौभी, नव-पिन्तेकुस्तवादी ईश्वरविज्ञान के विभिन्न समूहों के बीच में असहमति पाई जाती है। बहुत से आज भी विश्वास करते हैं कि किसी व्यक्ति द्वारा पवित्र आत्मा का बपतिस्मा पाने का अनिवार्य चिन्ह है अन्य भाषाओं में बोलना। वे दावा करते हैं कि जो लोग अन्य भाषाओं में बात नहीं करते हैं, उन्होंने बपतिस्मा नहीं पाया है। कुछ और लोग विश्वास करते हैं कि अन्य भाषाओं में बात करना आत्मा का बपतिस्मा के अनुभव के साथ हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। तौभी, सब नव-पिन्तेकुस्तवादी विश्वास करते हैं कि ख्रीष्ट की ओर हृदय-परिवर्तन और पवित्र आत्मा का बपतिस्मा पाने में एक समय का अन्तराल है। दूसरे शब्दों में, कोई व्यक्ति बिना पवित्र आत्मा का बपतिस्मा पाए हुए भी मसीही हो सकता है। वे विश्वास करते हैं कि प्रत्येक मसीही के लिए पवित्र आत्मा में बपतिस्मा सम्भव है, पर सब ने उसे प्राप्त नहीं किया है।

हृदय-परिवर्तन और आत्मा का बपतिस्मा के मध्य में समय के अन्तराल के इस विचार के लिए बाइबलीय समर्थन प्रेरितों के काम की पुस्तक में पाया जाता है, विशेषकर पिन्तेकुस्त के दिन के विवरण में। प्रेरितों के काम 2 में हम पढ़ते हैं:

> जब पिन्तेकुस्त का दिन आया, तो वे सब एक स्थान पर एकत्रित थे। एकाएक आकाश से एक प्रचण्ड आँधी की सी सनसनाहट का शब्द हुआ, और उस से सारा घर, जहाँ वे बैठे हुए थे, गूँज गया। और उन्हें आग के समान जीभें विभाजित होती हुई दिखाई दीं, और उनमें से प्रत्येक पर आ ठहरीं। वे सब पवित्र आत्मा से भर गए, और जैसे आत्मा ने उन्हें बोलने की सामर्थ्य दी वे अन्य-अन्य भाषाओं में बोलने लगे। ... वे विस्मित होते रहे और घबराकर एक दूसरे से पूछने लगे, "यह क्या हो रहा है?" (प्रेरितों के काम 2:1-4, 12)

लूका अपने वृतान्त में न केवल घटनाओं का वर्णन करता है परन्तु वह इस अद्भुत घटना को समझाता भी है। यह वृतान्त आगे बढ़ता है:

> परन्तु कुछ लोग ठट्ठा करते हुए कहने लगे, "वे तो नई मदिरा के नशे में चूर हैं।"
>
> परन्तु पतरस उन ग्यारहों के साथ खड़ा हुआ और ऊँचे शब्द से उपदेश देने लगा: "हे यहूदियो, और यरूशलेम के सब निवासियो, तुम यह जान लो और मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनो। जैसा तुम समझ रहे हो, ये लोग नशे में नहीं हैं, क्योंकि अभी तो सुबह का नौ ही बजा है, परन्तु यह वह बात है जो योएल नबी के द्वारा कही गयी थी:
>
> "परमेश्वर कहता है, 'अन्तिम दिनों में ऐसा होगा कि मैं अपना आत्मा सब लोगों पर उण्डेलूँगा। तुम्हारे पुत्र और तुम्हारी पुत्रियाँ नबूवत करेंगी। तुम्हारे जवान दर्शन देखेंगे और तुम्हारे वृद्ध-जन स्वप्न देखेंगे। मैं अपने दासों और दासियों पर भी उन दिनों में अपने आत्मा में से उण्डेलूँगा और वे नबूवत करेंगे। (13-18 पद)

जब पतरस ने पिन्तेकुस्त के दिन इन घटनाओं का अर्थानुवाद किया, तो उसने योएल की पुराने नियम की नबूवत की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया, जहाँ योएल ने भविष्य में परमेश्वर के राज्य के आने के विषय में प्रचार किया, जिस समय परमेश्वर अपने आत्मा को सब लोगों पर उण्डेलेगा।

सब लोगों पर उण्डेला गया

हमने पिछले एक अध्याय में ध्यान दिया था कि पुराने नियम में आत्मा का अभिषेक मूसा जैसे विशेष व्यक्तियों तक सीमित था, फिर भी परमेश्वर ने आत्मा को समुदाय के सत्तर प्राचीनों में बाँट दिया, जिन्होंने तब नबूवत करना आरम्भ किया (गिनती 11:24-25)। जब यहोशू ने प्राचीनों को नबूवत करते हुए सुना, तो उसने मूसा से उन्हें रोकने के लिए कहा, पर मूसा ने उत्तर दिया, "क्या तुझे मेरे लिए जलन होती है? अच्छा होता कि यहोवा की सारी प्रजा के लोग नबी होते और यहोवा अपना आत्मा उन पर डाल देता!" (29 पद)। मूसा की कामना थी कि परमेश्वर अपना आत्मा समुदाय के सब लोगों को देता, और उसने उसके लिए प्रार्थना की।

जब हम योएल में पहुँचते हैं, मूसा की प्रार्थना एक नबूवत बन गई है। योएल कहता है कि वह

समय आएगा जब परमेश्वर अपने आत्मा को परमेश्वर के सब लोगों पर उण्डेलेगा। तब ऐसा नहीं होगा कि कुछ के पास वह है और कुछ के पास नहीं है। हम प्रेरितों के काम की पुस्तक में देखते हैं कि पतरस ने पिन्तेकुस्त की घटनाओं को योएल की नबूवत की पूर्ति के रूप में देखा, जो पूर्ण रूप से इस विचार के विपरीत है कि परमेश्वर अपने आत्मा को कुछ विश्वासियों को देता है पर सब को नहीं, जैसा कि पिन्तेकुस्तवादियों ने सिखाया है।

जो लोग पिन्तेकुस्त पर एकत्रित हुए थे, वे कईं प्रान्तों से यहूदी विश्वासी थे। वे पुराने नियम के पिन्तेकुस्त के उत्सव को मनाने के लिए आए थे, और जब आत्मा यहूदी विश्वासियों पर उतरा, तो वह *उन सब पर* उतरा। उन यहूदी विश्वासियों में प्रत्येक ने आत्मा के दिए जाने को प्राप्त किया। पिन्तेकुस्त ने परमेश्वर के छुटकारे की योजना में एक नए युग को चिन्हित किया।

हम प्रेरितों के काम की पुस्तक में तीन अतिरिक्त घटनाओं को देखते हैं जिनको हम “छोटे-पिन्तेकुस्त” के रूप में सोच सकते हैं। प्रेरितों के काम 8 में, हम सामरी विश्वासियों को पवित्र आत्मा के दिए जाने के विषय में पढ़ते हैं:

> जब यरूशलेम में प्रेरितों ने सुना कि सामरियों ने परमेश्वर का वचन ग्रहण किया है, तो उन्होंने उनके पास पतरस और यूहन्ना को भेजा। उन्होंने वहाँ पहुँचकर उनके लिए प्रार्थना की कि वे पवित्र आत्मा पाएँ। क्योंकि वह अब तक उनमें से किसी पर नहीं उतरा था; उन्होंने केवल प्रभु यीशु के नाम से बपतिस्मा लिया था। तब उन्होंने उन पर हाथ रखे और उन्होंने पवित्र आत्मा पाया। (14-17 पद)

उस खण्ड का उपयोग हृदय-परिवर्तन और आत्मा के ग्रहण करने के बीच में समय के अन्तराल का समर्थन करने के लिए किया जाता है, और अवश्य ही सामरी विश्वासियों के साथ ऐसा हुआ था। उन्होंने यीशु पर विश्वास किया था, पर उन्होंने अभी तक पवित्र आत्मा को प्राप्त नहीं किया था।

फिर, प्रेरितों के काम 10 में, हम देखते हैं कि कुरनेलियुस के घराने में क्या हुआ:

> जब पतरस यह वचन कह ही रहा था, तभी वचन के सब सुनने वालों पर पवित्र आत्मा उतर आया। और जितने ख़तना किए हुए विश्वासी पतरस के साथ आए हुए थे, सब विस्मित हुए कि पवित्र आत्मा का दान ग़ैरयहूदियों पर भी उण्डेला गया है। क्योंकि वे

उन्हें भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते और परमेश्वर की बड़ाई करते हुए सुन रहे थे। (44-46 पद)

पतरस कुरनेलियुस के घर जा रहा था, जिसे प्रेरितों के काम में एक परमेश्वर का भय मानने वाला कहा गया है, एक ग़ैरयहूदी विश्वासी जिसने यहूदी धर्म को अपनाया था पर ख़तनारहित था। पतरस कुरनेलियुस के घर में था जब पवित्र आत्मा इन परमेश्वर का भय मानने वाले ग़ैरयहूदियों पर उतरा। पतरस ने फिर निर्देश दिया कि ग़ैरयहूदियों को बपतिस्मा दिया जाए: "तब पतरस ने कहा, "क्या कोई जल की रोक कर सकता है कि ये लोग जिन्होंने हमारे समान ही पवित्र आत्मा पाया है, बपतिस्मा न पाएँ?" और उसने आज्ञा दी कि उनको यीशु ख्रीष्ट के नाम में बपतिस्मा दिया जाए। तब उन्होंने उस से कुछ दिन और ठहरने के लिए विनती की" (46-48 पद)। इन परमेश्वर का भय मानने वालों को नए नियम की कलीसिया में जोड़ा जाना था; उन्हें नई वाचा के समुदाय में पूर्ण सदस्य होना था क्योंकि परमेश्वर ने उन्हें आत्मा दिया था। प्रेरितों के काम 19 में आगे चलकर, हम इसी प्रकार की घटना को इफिसुस के मसीहियों के साथ भी होते हुए देखते हैं। वे भी पवित्र आत्मा को ग्रहण करते हैं।

इसलिए प्रेरितों के काम की पुस्तक में पवित्र आत्मा के उण्डेले जाने के चार विवरण हैं। इन उण्डेले जाने के विषय में ध्यान देने वाली दो महत्वपूर्ण बातें हैं। पहला, इन घटनाओं में विश्वासी के रूप में उपस्थित सब लोगों ने आत्मा को पाया। दूसरा, लूका लोगों के चार विशिष्ठ समूहों का वर्णन करता है: यहूदी, सामरी, परमेश्वर-का-भय-मानने-वाले, और ग़ैरयहूदी। प्रेरितों के काम की पुस्तक से प्रेरित पौलुस की पत्रियों तक मसीही कलीसिया के आरम्भिक वर्षों में एक सबसे बड़ा विवाद था, ख्रीष्ट की देह में ग़ैरयहूदियों का स्थान। ग़ैरयहूदी लोग इस्राएल की प्रजा कहलाए जाने से वंचित थे और पुरानी वाचा में भागी नहीं थे, और इस कारण परमेश्वर-का-भय-मानने-वाले लोगों को अधूरी सदस्यता दी गई थी, सामरियों को कोई भी सदस्यता नहीं दी गई थी, और ग़ैरयहूदियों को छावनी के बाहर माना जाता था। तो जब सुसमाचार इन समूहों के बीच में प्रचार किया गया, तो यह विवादस्पद विषय उठा कि उनमें उन लोगों के साथ क्या किया जाना चाहिए जो विश्वासी बन गए हैं। क्या उनको ख्रीष्ट की देह में पूर्ण सदस्यता मिलनी चाहिए थी?

यदि हम प्रेरितों के काम की पुस्तक की साहित्यिक संरचना और प्रगति को देखें, तो हम देखते हैं कि लूका प्रेरितीय कलीसिया के विस्तार को, यहूदियों के साथ आरम्भ करते हुए और सब देशों तक पहुँचते हुए प्रस्तुत करता है, ठीक वैसे ही जैसे ख्रीष्ट ने अपने अन्तिम शब्दों में शिष्यों से कहा

था: “परन्तु जब पवित्र आत्मा तुम पर आएगा तब तुम सामर्थ्य पाओगे, और यरूशलेम, सारे यहूदिया और सामरिया में, यहाँ तक कि पृथ्वी के छोर तक तुम मेरे साक्षी होगे” (प्रेरितों के काम 1:8)।

प्रेरितों के काम की पुस्तक इसी रीति से आगे बढ़ती है। जब प्रत्येक प्रकार के लोगों से सम्पर्क होता है—सामरियों, परमेश्वर का भय मानने वाले और ग़ैरयहूदियों से—तो परमेश्वर नए नियम की कलीसिया में सब विशेषाधिकारों और सदस्यता के साथ उनके समावेश की पुष्टि को उन्हें पवित्र आत्मा देने के द्वारा करता है।

पिन्तेकुस्तवादी ईश्वरविज्ञान के साथ मेरी समस्या यह है कि यह पिन्तेकुस्त के महत्व को कम आँकता है। नए नियम में पिन्तेकुस्त को दिया गया महत्व यह है कि पवित्र आत्मा का उण्डेला जाना सम्पूर्ण कलीसिया और इसलिए प्रत्येक विश्वासी के लिए है। जिस प्रकार पौलुस लिखता है, “क्योंकि हम सब ने, चाहे यहूदी हों या यूनानी, दास हों या स्वतन्त्र, एक ही आत्मा द्वारा एक देह होने के लिए बपतिस्मा पाया और हमें एक ही आत्मा पिलाया गया” (1 कुरिन्थियों 12:13)। मेरी समझ में, बाइबलीय सिद्धान्त में ऐसे विचार के लिए कोई स्थान नहीं है कि कुछ मसीहियों ने पवित्र आत्मा का बपतिस्मा को पाया है और कुछ मसीहियों ने नहीं। बपतिस्मा हृदय-परिवर्तन के साथ आता है। यह स्वयं हृदय-परिवर्तन के समान नहीं है, परन्तु सिद्धान्त तो यह है कि सब मसीही लोग पवित्र आत्मा के बपतिस्मा को प्राप्त करते हैं।

अध्याय 35

आत्मा के वरदान

The Gifts of the Spirit

जब पवित्र आत्मा के वरदानों के विषय का परिचय दिया जाता है, तो विशेषकर अन्य भाषाओं में बोलने के वरदान के सम्बन्ध में बहुत विवाद उत्पन्न होता है। वरदानों के विषय में कुछ प्रश्न एक निश्चयात्मक सम्मति तक पहुँचने को कठिन बनाते हैं।

उदाहरण के लिए, क्या कुरिन्थियों की कलीसिया में हो रहे *ग्लोसोलालिया (glossolalia),* या अन्य भाषाओं में बोला जाना (जिसका वर्णन 1 कुरिन्थियों 12-14 में किया गया है) ठीक वही था जो पिन्तेकुस्त के समय हुआ? अनकहे रूप में मान्यता यह है कि वे एक ही बात और एक समान हैं, पर कुछ विद्वानों ने संकेत दिया है कि सम्भवतः पिन्तेकुस्त के समय तो अवश्य ही, वहाँ आश्चर्यकर्म *बोलने* की क्रिया से कहीं अधिक *सुनने* की क्रिया में घटित हुआ था; अर्थात्, यह अनुवाद का आश्चर्यकर्म था। पिन्तेकुस्त के दिन, विभिन्न पृष्ठभूमि और क्षेत्रों से एकत्रित हुए लोग सभा में यहूदियों के शब्दों को समझ पाए थे। बाइबल इसके विषय में स्पष्ट नहीं है तो इसलिए यह अनुमान का विषय बना रहता है। इससे सम्बन्धित एक प्रश्न यह है कि जो कुरिन्थियों के समुदाय में घटित हुआ था, क्या वह आश्चर्यकर्म था और यदि ऐसा था, तो आज अन्य भाषाओं के बोले जाने की जो सूचना प्राप्त होती है क्या वह भी आश्चर्यकर्म है, अथवा क्या पवित्र आत्मा के प्रभाव में लोगों के पास अबोधगम्य रीति से बोलने की प्राकृतिक क्षमता है। यह विवाद तो बना हुआ है।

वरदानों से सम्बन्धित एक और प्रश्न, विशेषकर अन्य भाषाओं को लेकर यह है कि क्या परमेश्वर की इच्छा थी कि ये सम्पूर्ण मसीही इतिहास में बनी रहें। इसके बहुत ही छुटपुट प्रमाण हैं। कलीसियाई इतिहास के पृष्ठ विरले ही अन्य भाषाओं की घटनाओं का वर्णन करते हैं। कुछ लोग तर्क देते हैं कि इस अपेक्षाकृत शान्ति का युगान्तिक *(eschatological)* महत्व है। यह विचार

योएल 2:23 में नबूवत की गई “पहली बरसात” और “बाद की बरसात” से आता है। इस विचार के अनुसार, “पहली बरसात” पहली शताब्दी की कलीसिया पर आत्मा का उण्डेला जाना था, और आज अन्य भाषाओं में बोलने का पुनः प्रचलन “बाद की बरसात” है, जो ख्रीष्ट के पुनः आगमन से पहले छुटकारे के इतिहास के अन्तिम क्षणों का एक अग्रवर्ती है।

एक प्रश्न यह भी है कि क्या अन्य भाषाओं में बोलना पवित्र आत्मा के द्वारा बपतिस्मा पाने का आवश्यक सूचक है।

कुरिन्थियों के लिए पौलुस की शिक्षा

आत्मा के वरदानों के विषय में सबसे लम्बी चर्चा 1 कुरिन्थियों 12-14 में पाई जाती है। बाइबल का एक सबसे प्रसिद्ध अध्याय 1 कुरिन्थियों 13 है, जिसे हम “प्रेम का अध्याय” कहते हैं, पर यह मुख्यतः इस कारण से प्रसिद्ध है क्योंकि इसे बहुधा सन्दर्भ से बाहर निकाला जाता है। 1 कुरिन्थियों 13 में प्रेम की श्रेष्ठता के विषय में प्रेरित पौलुस का संवाद इस प्रकार से आरम्भ होता है: “यदि मैं मनुष्यों और स्वर्गदूतों की भाषाएँ बोलूँ पर प्रेम न रखूँ तो मैं ठनठनाती घण्टी और झनझनाती झाँझ हूँ” (1 कुरन्थियों 13:1)। परन्तु, यह अध्याय एक बड़े संवाद का भाग है जो 12वें अध्याय में आरम्भ होता है: “हे भाइयो, मैं नहीं चाहता कि आत्मिक वरदानों के विषय में तुम अनभिज्ञ रहो” (पद 1)। पौलुस चाहता है कि परमेश्वर के लोग आत्मिक वरदानों के विषय में जानकार हों और उसी के अनुसार उनका उपयोग करें। कुरिन्थियों की कलीसिया सबसे अधिक समस्याग्रस्त कलीसियाओं में से एक थी जिसके साथ पौलुस ने अपनी सेवा में कार्य किया था। वहाँ भीतरी मतभेद और दुर्व्यवहार के ऐसे रूप थे जिनके कारण फटकार और ताड़ना से भरीं हुईं न्यूनतम दो प्रेरितीय पत्रियाँ लिखी गई थीं। पहली शताब्दी के अन्त में, क्लेमेन्ट ने, जो कि रोम के बिशप थे कुरिन्थियों की कलीसिया को उन्हीं समस्याओं को सम्बोधित करने के लिए एक पत्री लिखी, जिनका स्पष्ट रूप से समाधान नहीं मिल पाया था। अपनी पत्री में, उसने कुरिन्थियों को पौलुस के प्रेरितीय निर्देश का स्मरण दिलाया:

> तुम्हें पता है कि जब तुम अन्यजाति थे तब गूँगी मूर्तियों की ओर जिस प्रकार भटकाए जाते थे उसी प्रकार चलते थे। इसलिए मैं तुम्हें बताए देता हूँ कि परमेश्वर के आत्मा के द्वारा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं कहता कि यीशु शापित है। और न पवित्र आत्मा के बिना कोई यह कह सकता है कि यीशु प्रभु है। (1 कुरिन्थियों 12:2-3)

पौलुस उसके बाद वरदानों के विषय में निर्देशों को आरम्भ करता है:

> वरदान तो विभिन्न प्रकार के हैं, पर आत्मा एक ही है। और सेवाएँ भी कई प्रकार की हैं, परन्तु प्रभु एक ही है। प्रभावशाली कार्य भी अनेक प्रकार के हैं, परन्तु परमेश्वर एक ही है जो सब में सब कुछ करता है। परन्तु प्रत्येक को सब की भलाई के लिए आत्मिक वरदान दिया जाता है। क्योंकि एक को आत्मा के द्वारा बुद्धि का वचन और दूसरे को उसी आत्मा के द्वारा ज्ञान का वचन दिया जाता है। किसी को उसी आत्मा से विश्वास का तथा किसी और को उसी एक आत्मा से चंगा करने का वरदान दिया जाता है, फिर किसी को सामर्थ्य के कार्यों की शक्ति और किसी को नबूवत करने, किसी को आत्माओं की परख, किसी को भिन्न भिन्न प्रकार की भाषाएँ बोलने, और किसी को भाषाओं का अर्थ बताने का वरदान दिया जाता है। परन्तु वही एक आत्मा ये सब कार्य करवाता है और अपनी इच्छानुसार जिसे जो चाहता है अलग अलग बाँट देता है। (4-11 पद)

वरदानों की विभिन्नता

ऐसा विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि पौलुस की आत्मिक वरदानों की सूची व्यापक सूची है। वह यह बात कह रहा था कि आत्मा परमेश्वर के लोगों को अनेक तथा विभिन्न प्रकार के वरदान देता है। इसलिए पवित्र आत्मा के वरदानों के विषय में पहली बात जो हम सीखते हैं वह यह है कि वे विभिन्न प्रकार के हैं। पौलुस यह भी सिखाता है कि वरदानों का उद्देश्य सम्पूर्ण देह का आत्मिक निर्माण है। आत्मिक वरदानों के विषय में इस चर्चा के सन्दर्भ में, पौलुस कलीसिया के स्वभाव के विषय में हमें बहुमूल्य अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। ख्रीष्ट ने कलीसिया को सृजा था और उसने उसे ये पवित्र आत्मा के वरदान सम्पूर्ण देह का आत्मिक निर्माण और सुदृढ़ीकरण करने के लिए दिए थे।

पौलुस आगे कहता है: "क्योंकि जिस प्रकार देह तो एक है और उसके कई अंग हैं, और देह के सब अंग यद्यपि अनेक हैं तौभी वे एक ही देह हैं, इसी प्रकार ख्रीष्ट भी है। क्योंकि हम सब ने, चाहे यहूदी हों या यूनानी, दास हों या स्वतन्त्र, एक ही आत्मा द्वारा एक देह होने के लिए बपतिस्मा पाया, और हमें एक ही आत्मा पिलाया गया" (12-13 पद)। यह पवित्र आत्मा का बपतिस्मा के विषय में शिक्षात्मक निर्देश है। यहाँ पौलुस का विषय यह है कि परमेश्वर की कलीसिया के सभी सदस्य, यहूदी और ग़ैरयहूदी दोनों, सेवा के लिए पवित्र आत्मा द्वारा सशक्त किए गए हैं।

यह स्थल धर्मसुधारवाद के एक सिद्धान्त की जड़ प्रमाणित हुआ—सभी विश्वासियों का

याजकपन। यह सिद्धान्त लूथर के लिए महत्वपूर्ण था और इस पर उसके बल देने के कारण बहुत लोग सोचते थे कि वह पादरी वर्ग *(clergy)* को हटाना चाहता था। परन्तु ऐसी बात नहीं थी। लूथर की मुख्य बात यह थी कि यद्यपि कुछ व्यक्ति पास्टर, प्राचीन या धर्मसेवक के पद पर हैं, किन्तु कलीसिया की सेवा गिने चुने व्यावसायिक लोगों तक सीमित नहीं है। सम्पूर्ण देह को पवित्र आत्मा के द्वारा कलीसिया के अभियान में भाग लेने के लिए सुसज्जित किया गया है।

एक देह

यह महत्वपूर्ण है कि जब पौलुस आत्मा के वरदानों की चर्चा करता है, तो वह इसकी बात कलीसिया के सन्दर्भ में करता है और कलीसिया के चित्रण को ख्रीष्ट की देह के रूप में प्रस्तुत करता है। कलीसिया व्यवस्थित है और इसमें विभिन्न भाग हैं, जिस प्रकार एक मानव देह में विभिन्न अंग हैं। पौलुस इस बात पर बहुत बल देता है कि जिस प्रकार सम्पूर्ण देह के स्वास्थ्य के लिए मानव देह के व्यक्तिगत अंगों के विशेष कार्य हैं उसी प्रकार कलीसिया के अभियान को पूर्ण करने में सहायता करने के लिए ख्रीष्ट की देह के प्रत्येक भाग के पास पूरा करने के लिए एक विशेष कार्य है और उसे उस कार्य को करने की क्षमता दी गई है:

> क्योंकि देह तो एक अंग का नहीं पर अनेक अंगों का समूह है। यदि पैर कहे, "मैं हाथ नहीं, इसलिए मैं देह का अंग नहीं, तो क्या वह इस कारण देह का अंग नहीं? यदि कान कहे, "मैं आँख नहीं इसलिए मैं देह का अंग नहीं," तो क्या वह इस कारण देह का अंग नहीं? यदि पूरी देह आँख ही होती, तब सुनना कहाँ होता? और यदि सारी देह से सुनना ही होता तो सूंघना कहाँ होता? परन्तु परमेश्वर ने सब अंगों को अपनी इच्छा के अनुसार एक एक करके देह में रखा है। और यदि वे सब के सब एक ही अँग होते तो देह कहाँ होती? अंग तो अनेक हैं, परन्तु देह एक है। (14-20 पद)

पौलुस यहाँ तर्क के एक पुराने रूप का उपयोग कर रहा है *असंगति-प्रदर्शन तर्क (रिडैक्टियो ऐड अब्सर्डम-reductio ad absurdum),* जो मानवीय तर्कबुद्धि को उसके तार्किक निष्कर्ष तक लेकर जाता है और दिखाता है कि परिणाम निरर्थक हैं। वह उन लोगों को सम्बोधित कर रहा है जो अन्य भाषाओं में बोलने के वरदान को कलीसिया के जीवन में आत्मिकता का श्रेष्ठ स्तर बनाना

चाहते थे। पौलुस कह रहा है, "यदि आप अन्य भाषाओं को एकमात्र महत्वपूर्ण वरदान बनाना चाहते हैं, तो यह ऐसा कहने के जैसा है कि पूरी देह को आँख ही होना चाहिए। इससे हमें उत्तम दृष्टि तो मिल जाती, परन्तु हम बहरे और गूंगे भी होते।"

पौलुस आगे कहता है: "इसी प्रकार तुम ख्रीष्ट की देह हो और एक एक करके उसके अंग हो, और परमेश्वर ने कलीसिया में प्रथम प्रेरित, द्वितीय नबी, तृतीय शिक्षक, फिर सामर्थ्य के कार्य करने वाले, चंगा करने के वरदान वाले, परोपकारी, प्रबन्धक, तथा अन्य-अन्य भाषाएँ बोलने वालों को नियुक्त किया है" (27-28 पद)। यह महत्वपूर्ण है कि अन्य भाषाओं के वरदान को एक ऐसी सूची में अन्तिम रखा जाता है जो प्रेरितों से आरम्भ होती है, क्योंकि प्रेरितीय पद नये नियम में अधिकार का सर्वोच्च पद था।

फिर पौलुस शब्दाडंबरपूर्ण *(rhetorically)* रीति से पूछता है, "क्या सब प्रेरित हैं?" (पद 29)। यहाँ की यूनानी संरचना के अनुसार तो एकमात्र सम्भव उत्तर है, नहीं। "क्या सब नबी हैं?" इसका उत्तर फिर से होना चाहिए, नहीं। "क्या सब शिक्षक हैं?" उत्तर होना चाहिए, नहीं। "क्या सब सामर्थ्य के काम करने वाले हैं?" फिर से, व्याकरण के आधार पर उत्तर होना चाहिए, नहीं। "क्या सब को चंगा करने का वरदान मिला है? क्या सब अन्य अन्य भाषाएँ बोलते हैं?" (29-30 पद)। यहाँ की यूनानी संरचना के अनुसार, उत्तर सुस्पष्ट है। इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि ख्रीष्ट की देह में प्रत्येक जन को अन्य भाषाओं का वरदान नहीं दिया गया है। बाद में पौलुस एक प्रेरितीय इच्छा को व्यक्त करता है कि सब लोग अन्य भाषाओं में बोलें (14:5), परन्तु प्रत्येक व्यक्ति ऐसा नहीं करता है।

नबूवत का वरदान

वह आगे कहता है: "तुम बड़े से बड़े वरदान की धुन में रहो। परन्तु मैं तुम्हें सब से उत्तम मार्ग दर्शाता हूँ" (12:31)। ये वे शब्द हैं जो 13वें अध्याय के आरम्भ से ठीक पहले आते हैं: "यदि मैं मनुष्यों और स्वर्गदूतों की भाषाएँ बोलूँ पर प्रेम न रखूँ तो मैं ठनठनाती घण्टी और झनझनाती झाँझ हूँ" (13:1)। प्रेरित पौलुस स्पष्ट कर देता है कि प्रेम का वरदान परमेश्वर के लोगों के लिए इन प्रभावशाली वरदानों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है: "प्रेम कभी मिटता नहीं। नबूवतें हों तो समाप्त हो जाएँगी, भाषाएँ हों तो जाती रहेंगी; और ज्ञान हो तो लुप्त हो जाएगा। क्योंकि हमारा ज्ञान अधूरा है और हमारी नबूवतें अधूरी हैं। परन्तु जब सर्व-सिद्ध आएगा तो अधूरापन मिट जाएगा" (8-10 पद)।

हम उसके निर्देश के मूल बिन्दु को 14 अध्याय के आरम्भ में पाते हैं: "प्रेम का पीछा करो

और आत्मिक वरदानों की धुन में रहो, विशेषकर यह कि तुम नबूवत करो" (1 पद)। प्रेरित का "नबूवत" से क्या तात्पर्य है? क्या वह इस शब्द को प्रकाशन के अभिकर्ता के विशेष अर्थ के रूप में उपयोग कर रहा है, जैसा कि पुराने नियम के नबी और नये नियम के प्रेरितों के साथ था? मैं ऐसा नहीं सोचता हूँ, और नये नियम की अधिकतर टीकाएँ तर्क करती हैं कि जब पौलुस लोगों को नबूवत करने के लिए उत्साहित करता है, तो वह परमेश्वर के सत्य को व्यक्त करने की क्षमता के विषय में सोच रहा है। प्रचारक का प्रचार करना और व्यक्तिगत मसीहियों का अपने विश्वास की साक्षियों को देना नबूवतीय कार्य हैं, परन्तु परमेश्वर के समुदाय को नये प्रकाशन देने के अर्थ में नहीं, जिस प्रकार पुराने नियम के नबियों ने किया था। पुराने नियम में भी, *भविष्य की बातें बताने* और *बातों को दृढ़ता से कहने* में भिन्नता की गई थी। प्राथमिक बल भविष्य की बातों को प्रकट करने पर नहीं परन्तु परमेश्वर के सत्य को दृढ़ता से कहने पर दिया गया था, और मैं विश्वास करता हूँ कि पौलुस लोगों को इसी के लिए प्रोत्साहित कर रहा है।

अन्य भाषाओं का वरदान

एक तर्क यह दिया जाता है कि यहाँ 1 कुरिन्थियों में अन्य भाषाओं के विषय में पौलुस की शिक्षा पिन्तेकुस्त में जो घटना घटी थी उससे भिन्न है और वह यह है कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह यह सुझाव दे रहा है कि अन्य भाषाओं में बोलना एक प्रकार से प्रार्थना की भाषा है:

> क्योंकि जो अन्य भाषा में बोलता है वह मनुष्यों से नहीं परन्तु परमेश्वर से बातें करता है, क्योंकि उसकी कोई नहीं समझता, परन्तु वह आत्मा में भेद की बातें बोलता है। परन्तु जो नबूवत करता है वह आत्मिक उन्नति, उपदेश तथा सान्त्वना देने के लिए मनुष्यों से बोलता है। जो अन्य भाषा में बोलता है वह अपनी ही उन्नति करता है, परन्तु जो नबूवत करता है वह कलीसिया की उन्नति करता है। अब मैं चाहता तो हूँ कि तुम सब अन्य भाषाएँ बोलते परन्तु इस से भी बढ़कर यह कि तुम नबूवत करो, क्योंकि जो नबूवत करता है, वह उस से भी बढ़कर है जो अन्य भाषाओं में बोलता तो है, पर अनुवाद नहीं कर सकता कि कलीसिया की उन्नति हो।
>
> भाइयो, यदि मैं तुम्हारे पास आकर अन्य भाषाओं में बोलूँ तो मुझ से तुम्हें क्या लाभ होगा जब तक कि मैं प्रकाश अथवा ज्ञान या नबूवत या शिक्षा की बातें न बोलूँ? (14:2-6)

दूसरे शब्दों में, पौलुस कह रहा है कि परमेश्वर के लोगों को परमेश्वर के सत्य का सुबोध विषय-वस्तु संचार किए बिना कोई लाभ नहीं प्राप्त होगा। तो फिर अन्य भाषाओं के साथ समस्या, तब

और अब, यह है कि वे अबोधगम्य *(unintelligible)* है, जिसके कारण नये नियम के अनेक विद्वान विश्वास करते हैं कि वर्तमान की अन्य भाषाओं का रूप केवल पवित्र आत्मा के प्रभाव में भावविभोर होकर उच्चारण करने की मानवीय क्षमता है। यह इस बात को नहीं नकारता है कि जब लोग इस कार्य को करते हैं तो वे पवित्र आत्मा के साथ संवाद कर रहे हैं; परन्तु यह साधारण रीति से यह भी कहता है कि ऐसा करने के लिए आश्चर्यजनक रूप से सशक्तिकरण की आवश्यकता नहीं है।

अन्य भाषाओं के साथ एक समस्या यह है कि मूर्तिपूजक धर्मों और पंथों में जैसे कि मॉर्मनवाद *(Mormonism)* में इस घटना के अनेक विवरण हैं। बहुत से लोग हैं जो ख्रीष्ट के ईश्वरत्व को नकारते हैं और तौभी दावा करते हैं कि उनके पास यह योग्यता है, और उनके कार्यों में और पवित्र आत्मा के प्रभाव में मसीहियों के द्वारा प्रार्थना में किए जाने वाले कार्यों में कोई भी प्रत्यक्ष भिन्नता नहीं है।

आरम्भिक कलीसिया में अन्य भाषाओं के वरदान का उपयोग किस प्रकार किया जाना था, इसके लिए पौलुस कड़े निर्देश देता रहता है। वह गड़बड़ी के स्थान पर व्यवस्था पर बल देता है, और वह निर्देश देता है कि सभाओं में अन्य भाषाओं द्वारा हस्तक्षेप न किया जाए जब तक कि कोई अर्थ बताने वाला उपस्थित न हो, कोई ऐसा व्यक्ति जो उसे बोधगम्य बना सके। जब कोई अविश्वासी सभा में आता है और जब वह नहीं जानता है कि वहाँ पर क्या हो रहा है, उस समय बहुत ही संवेदनशीलता प्रकट की जानी चाहिए।

निष्कर्ष में, पौलुस यह नहीं कहता है कि अन्य भाषाएँ बुरी हैं और नबूवत अच्छी है। उसका भेद अच्छे और बुरे में नहीं है परन्तु अच्छे और उत्तम में है। अन्य भाषाएँ ठीक हैं, परन्तु नबूवत उत्तम है। वह कह रहा है, "यदि आप अन्य-अन्य भाषाओं में प्रार्थना करना चाहते हैं तो वह ठीक है, पर कलीसिया के आत्मिक निर्माण के लिए उत्तम वरदानों की इच्छा रखो।" आज हमारे लिए बड़ी चेतावनी यह है कि हम इस एक वरदान को इतना ऊँचा पद न दें कि इसे उत्कृष्ट आत्मिकता या परमेश्वर द्वारा विशेष सशक्तिकरण के चिन्ह के स्तर का समझने लगें—भले ही जो अब हो रहा है, वह वही है जो कुरिन्थियों के समुदाय में होता था।

अध्याय 36

आत्मा का फल

The Fruit of the Spirit

जब हमारे मध्य कुछ असामान्य, असाधारण, या प्रभावशाली होता है तो हमारा ध्यान उत्तेजित होता है। विशेषकर मसीही लोग परमेश्वर की उपस्थिति के असाधारण प्रकटीकरण की ओर खिंचते हैं। उत्तेजक के प्रति आकर्षित होने की हमारी इस प्रवृत्ति के कारण, हम आत्मा का फल की तुलना में पवित्र आत्मा के वरदानों पर अधिक ध्यान देते हैं। किन्तु परमेश्वर के आदेश को पूरा करने के लिए सुसमाचार के फलों को लागू करना पवित्र आत्मा का मुख्य लक्ष्य है: "परमेश्वर की इच्छा है कि तुम पवित्र बनो" (1 थिस्सलुनीकियों 4:3)।

परमेश्वर की बातों में किसी विश्वासी की उन्नति का सबसे बड़ा चिन्ह उसके वरदानों का प्रभावशाली प्रकटीकरण नहीं है, चाहे वे वरदान जो भी हों। यह सम्भव है कि कोई व्यक्ति एक वरदान-युक्त *(gifted)* प्रचारक या शिक्षक हो सकता है, परन्तु फिर भी आत्मिक परिपक्वता में बढ़ोत्तरी के थोड़े ही प्रमाण प्रकट करे। हमारे जीवन के अन्त में हमारा मूल्याँकन इस आधार पर नहीं किया जाएगा कि हमने कितने वरदान प्रदर्शित किए अथवा परमेश्वर ने हमें कौन सी प्रतिभाएँ दी थीं, परन्तु इस आधार पर कि हम मसीही के रूप में कितने फलवन्त हुए हैं।

आत्मा के अनुसार चलो

पौलुस आत्मा का फल के विषय में गलातियों को लिखी गई अपनी पत्री में चर्चा करता है और वह अपनी चर्चा को इस प्रकार से आरम्भ करता है: "परन्तु मैं कहता हूँ कि पवित्र आत्मा के अनुसार चलो" (गलातियों 5:16)। यह एक प्रेरितीय आदेश है। मसीही होने के नाते, हमें आत्मा के अनुसार चलने के लिए बुलाया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें रहस्यवाद *(mysticism)* या आत्मिकता के लिए सरल उपायों का पीछा करना चाहिए। बीते वर्षों में, असंख्य विद्यार्थियों ने मुझसे

पूछा है, “डॉ. स्प्रोल, मैं और आत्मिक कैसे बन सकता हूँ?” या “मैं और वरदान-युक्त कैसे बन सकता हूँ?” मैंने एक ही विद्यार्थी को यह पूछते हुए सुना है, “मैं और धर्मी कैसे बन सकता हूँ?” किन्तु यीशु ने स्वयं कहा था कि, “पहले परमेश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकता की खोज में लगे रहो तो ये सब वस्तुएँ भी तुम्हें दे दी जाएँगी” (मत्ती 6:33)। हमें आत्मिक बढ़ोत्तरी प्रदर्शित करने, परमेश्वर के आत्मा के अनुसार चलने के लिए बुलाया गया है, और यह प्रदर्शन पवित्र आत्मा के वरदानों के प्रकटीकरण में नहीं वरन् फल में दिखता है।

सार्क्स

पौलुस आगे कहता है: “पवित्र आत्मा के अनुसार चलो तो तुम शारीरिक इच्छाओं को किसी रीति से पूर्ण नहीं करोगे। क्योंकि शरीर तो पवित्र आत्मा के विरोध में और पवित्र आत्मा शरीर के विरोध में लालसा करता है। ये तो एक दूसरे के विरोधी हैं, कि जो तुम करना चाहते हो उसे न कर सको। परन्तु यदि तुम पवित्र आत्मा के चलाए चलते हो, तो व्यवस्था के अधीन न रहे” (गलातियों 5:16-18)। पौलुस यहाँ शरीर *(flesh)* और आत्मा *(spirit)* में अन्तर करता है। यहाँ “शरीर” के रूप में अनुवादित यूनानी शब्द *सार्क्स (sarx)* है, और “आत्मा” के रूप में *न्यूमा (pneuma)* शब्द को प्रस्तुत किया गया है। *सोमा (sōma)* शब्द, जिसको प्रायः “देह” *(body),* के रूप में अनुवाद किया जाता है, और वह कभी-कभी *सार्क्स* के पर्यायवाची के रूप में कार्य करता है; दूसरे शब्दों में, सार्क्स शब्द कभी-कभी केवल हमारी देह के भौतिक स्वभाव या प्रकृति को सन्दर्भित करता है।

परन्तु नया नियम प्रायः हमारे भ्रष्ट स्वभाव, हमारे पतित स्थिति को, *सार्क्स* के रूप में कहता है। पौलुस ने एक स्थान पर कहा कि, “यद्यपि हमने ख्रीष्ट को भी शरीर के अनुसार जाना है, तथापि अब से हम उसे ऐसा नहीं जानते” (2 कुरिन्थियों 5:16)। यहाँ उपयोग किया गया वाक्याँश, *काटा सार्का (kata sarka),* का अर्थ है “शरीर की रीति पर” या “शरीर के अनुसार।” वह कह रहा था कि वह पहले ख्रीष्ट को एक भक्तिहीन, सांसारिक दृष्टिकोण से देखता था। पहले, यीशु ने कहा, “जो शरीर से जन्मा है वह शरीर है, और जो आत्मा से जन्मा है वह आत्मा है” (यूहन्ना 3:6)। वह हमारे भौतिक शरीरों की बात नहीं कर रहा था परन्तु हमारे पतित स्वभाव की जिसमें न केवल हमारे शरीर परन्तु हमारे मन, हमारी इच्छाशक्ति, और हमारे हृदय भी सम्मिलित हैं।

इसलिए जब हम नये नियम में सार्क्स शब्द को पाते हैं, तो हमें कैसे पता चलता है कि यह हमारे पतित मानवीय स्वभाव को सन्दर्भित कर रहा है या हमारी शारीरिक क्षमताओं को? सामान्य रीति से, जब भी हम *सार्क्स* या “शरीर” को *न्यूमा* या “आत्मा” के ठीक विपरीत के रूप में चर्चित होते देखते हैं, तो भौतिक शरीर और आत्मा में अन्तर की चर्चा नहीं परन्तु भ्रष्ट, पतित स्वभाव और

नये पुनरुज्जीवित *(regenerate)* मनुष्य के बीच चर्चा की जा रही है। यह बात गलातियों 5 में सुस्पष्ट है।

सड़ा हुआ फल

इससे पहले कि पौलुस समझाता है कि आत्मा द्वारा संचालित होने का अर्थ क्या है और हमें आत्मा का फल गिनाता है, वह हमें दिखाता है कि आत्मा का फल क्या *नहीं* है:

> अब शरीर के काम स्पष्ट हैं, अर्थात् व्यभिचार, अशुद्धता, कामुकता, मूर्तिपूजा, जादूटोना, बैर, झगड़ा, ईर्ष्या, क्रोध, मतभेद, फूट, दलबन्दी, द्वेष, मतवालापन, रंगरेलियां तथा इस प्रकार के अन्य काम हैं जिनके विषय में मैं तुम को चेतावनी देता हूँ—जैसा पहले चेतावनी दे चुका हूँ—कि ऐसे-ऐसे काम करने वाले तो परमेश्वर के राज्य के उत्तराधिकारी न होंगे। (गलातियों 5:19-21)

यह बाइबल का एक सबसे डरावना खण्ड है क्योंकि यह हमें पूरी स्पष्टता से बताता है कि जो लोग ऐसे कार्य करते हैं वे परमेश्वर के राज्य के उत्तराधिकारी नहीं होंगे। हम ऐसे लोगों को जानते हैं जो ख्रीष्ट पर अत्यधिक विश्वास के बड़े अँगीकार करते थे परन्तु बाद में व्यभिचार में गिरे, मदिरा के दुरुपयोग के साथ सन्घर्ष या जीवन भर घमण्ड या झगड़ालूपन से सन्घर्ष करते रहे। हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किसी भी ऐसे व्यक्ति के पास उद्धार की कोई भी आशा नहीं है जो इन पापों में से एक में गिरता है, परन्तु पौलुस यह नहीं कह रहा है कि यदि कोई व्यक्ति एक ही बार मतवाला होता है, तो वह स्वर्ग नहीं जाएगा। वह कह रहा है कि यदि ऐसी बातें हमें *परिभाषित* करती हैं, यदि वे एक जीवनशैली को बनाती हैं, तो यह एक लक्षण है कि हम शरीर में हैं और आत्मा में नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, हमने अभी भी नए जन्म को नहीं पाया है और हम परमेश्वर के राज्य में सम्मिलित नहीं किए जाएँगे। यह व्यवस्थाविरोधवाद *(antinomianism)* से पूरा-पूरा विपरीत है, जो दृढ़ता से कहता है कि लोग बिना मसीही जीवन में उन्नति का प्रमाण दिखाए नया जन्म पाए हुए हो सकते हैं। पौलुस की गम्भीर चेतावनी को देखने के लिए व्यवस्थाविरोधवादियों *(Antinomians)* को गलातियों के इस भाग को पढ़ना चाहिए। यदि ये या इनके जैसे पाप आपका नियमित और अपश्चात्तापी अभ्यास हैं, तो आप परमेश्वर के राज्य के उत्तराधिकारी नहीं होंगे।

आत्मिक फल

शरीर के कार्यों से विपरीत, पौलुस आत्मा का फल की सूची बनाता है:

> परन्तु पवित्र आत्मा का फल प्रेम, आनन्द, शान्ति, धीरज, दयालुता, भलाई, विश्वस्तता, नम्रता व संयम है। ऐसे-ऐसे कामों के विरुद्ध कोई व्यवस्था नहीं है। और जो ख्रीष्ट यीशु

के हैं, उन्होंने अपने शरीर को दुर्वासनाओं तथा लालसाओं समेत क्रूस पर चढ़ा दिया है।

यदि हम पवित्र आत्मा के द्वारा जीवित हैं तो पवित्र आत्मा के अनुसार चलें भी। हम अहंकारी न बनें, एक दूसरे को न छेड़ें, और न ही डाह रखें। (22-26 पद)

पौलुस विश्वासियों को चिता रहा है कि शरीर के कार्यों में न पड़ें पर आत्मा का फल प्रकट करें। यह हमें बताता है कि मसीहियों को भी पुराने स्वभाव के साथ संघर्ष करना पड़ता है। शरीर का एक तत्त्व मसीही व्यक्ति में बना रहता है, जिसे परमेश्वर के वचन की निरन्तर छानबीन और पवित्र आत्मा के अनुशासन के अधीन आना होगा जिससे कि हम पाप के प्रति कायल हों और उससे भागें और उससे विपरीत प्रकार के अभ्यास को विकसित करें। जिसको बोया जाता है वही फल आता है और यीशु ने स्वयं कहा, "तुम उनके फलों से उन्हें पहचान लोगे" (मत्ती 7:20)।

हम क्या चाहते हैं कि हमें कैसे स्मरण किया जाए? क्या हम चाहते हैं कि कहा जाए कि हमने बहुत पैसे अर्जित किये, या हमने बहुत युद्ध जीते, या असाधारण रीति से अद्भुत कार्यों से भरपूर थे? या क्या हम ऐसे लोगों के रूप में स्मरण किये जाना चाहते हैं जिन्होंने प्रेम, आनन्द, शान्ति, धीरज, दयालुता, भलाई, विश्वस्तता, नम्रता और संयम को प्रकट किया? ये वे बातें हैं जिन्हें परमेश्वर हम से चाहता है। ये वे बातें हैं जिनमें परमेश्वर आनन्द लेता है, फिर भी हम इन्हें प्राथमिकता नहीं बनाते हैं। उदाहरण के लिए, हम सब जानते हैं कि हमें और अधिक प्रेमी होना चाहिए। यद्यपि उस विशिष्ट फल के विषय में बहुत लिखा गया है, परन्तु फिर भी हम प्रेम के विषय में ऊपरी समझ को रखते हैं। प्रेम अपने आत्मिक आयाम में अन्य फल से अविभाज्य रीति से सम्बन्धित है।

आत्मा का फल और आत्मा के वरदानों के मध्य एक अन्तर है। आत्मा के वरदानों के सम्बन्ध में पौलुस का ध्यान एकता और विभिन्नता पर है, परन्तु आत्मा के फल के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। जब वह आत्मा के वरदानों के विषय में सिखाता है तो वह यह बल देता है कि आत्मा, सम्पूर्ण कलीसिया के आत्मिक निर्माण के लिए वैयक्तिक वरदानों को विशिष्ट लोगों में बाँटता है। एक के पास प्रबन्धन का वरदान हो सकता है जबकि दूसरे के पास परोपकार, शिक्षा देने या सहायता का वरदान हो सकता है। इसके विपरीत आत्मा का फल उसके परिपूर्णता में, प्रत्येक मसीही के जीवन में प्रकट होना चाहिए।

विचार कीजिए कि आत्मा का फल के कुछ आयामों को विश्वासियों के जीवन में कैसे दिखना चाहिए:

नम्रता

आजकल प्रायः नम्रता या विनम्रता के विचार को शक्तिहीन होने से जोड़ा जाता है किन्तु वास्तव में एक नम्र व्यक्ति वह है जिसके पास शक्ति है परन्तु वह उसका सीमित उपयोग करता है।

मैंने एक बार एक नवयुवक से चर्चा की जिसे किसी संस्था में अधिकार के पद पर पदोन्नत किया गया था। उसके अधीन कार्य करने वाले उलाहना देते थे कि वह अपने प्रबन्धन में अत्याचारी था। उसने मुझसे कहा, "वे मेरे अधिकार का आदर नहीं करते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि मैं बहुत युवा हूँ, इसलिए मुझे उन्हें दिखाना पड़ता है कि स्वामी कौन है।"

मैंने उससे कहा: "तुम्हारे पास अधिकार है, और उस अधिकार के साथ तुम्हारे पास सामर्थ्य है, और उस सामर्थ्य के साथ उच्च स्तर का उत्तरदायित्व आता है। नेतृत्व का एक रहस्य है कि जब तुम्हारे पास सामर्थ्य है, तो तुम अनुग्रहकारी हो सकते हो। तुम्हें अत्याचारी होने की आवश्यकता नहीं है। जब कोई व्यक्ति अपने सामर्थ्य के पद पर असुरक्षित होता है, तब वह नम्र होने में विफल हो जाता है।"

नम्रता संवेदनशीलता से सम्बन्धित है। नम्र होने का अर्थ है किसी भी परिस्थिति में आवश्यकता से कम सामर्थ्य लगाना। हम इस बात को यीशु से सीख सकते हैं, क्योंकि वह इस संसार के निर्बल और असमर्थ लोगों के साथ बहुत कोमलता से व्यवहार करता था। व्यभिचार में पकड़ी गई स्त्री के साथ वह नम्र था, जबकि अन्य लोग उसे नाश करने के लिए तैयार थे (यूहन्ना 8:3-11)। परन्तु जब उन दिनों के सामर्थी लोग अर्थात् फरीसीगण अपने सामर्थ्य को उपयोग करने का प्रयास करते हुए आए, तो उसने बड़े सामर्थ्य के साथ प्रतिक्रिया दी। दूसरे शब्दों में, वह सामर्थी के विरुद्ध सामर्थी, शक्तिशाली के विरुद्ध दृढ़, परन्तु निर्बल के प्रति कोमल था। हमारी सोचने की यह प्रवृत्ति है कि हमें प्रत्येक जन के साथ एक ही जैसा व्यवहार करना चाहिए, पर यहाँ ऐसा नहीं है। हमें अपने सामर्थ्य को नियन्त्रण में और सन्तुलित करना सीखना चाहिए। इसी रीति से हम अपनी नम्रता के आत्मिक फल को प्रकट करते हैं।

आनन्द

आनन्द को मसीही जीवन का एक चिन्ह होना चाहिए। ऐसे मसीहियों के रूप में जो परमेश्वर के आत्मा के द्वारा चल रहे हैं, हमें कुड़कुड़ाने वाले लोग नहीं होना है। परन्तु आत्मा का आनन्द, दुःख या पीड़ा और कष्ट को हटा नहीं देता है। बात यह है जैसा कि पौलुस अन्य स्थान पर समझाता है कि सब बातों में हमें आनन्दित होना सीखना चाहिए (उदाहरण के लिए, फिलिप्पियों 4:4)। हमारे आनन्द का आधारभूत कारण परमेश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध है क्योंकि हम जानते हैं कि ख्रीष्ट

में हमारा छुटकारा कभी भी किसी प्रियजन, सम्पत्ति, नौकरी या किसी भी वस्तु के खोए जाने से, जोखिम में नहीं आता है। हम सब प्रकार की पीड़ादायक रुकावट और कष्टों का सामना कर सकते हैं, परन्तु उन बातों को हमें उस आधारभूत आनन्द से वंचित नहीं रखना चाहिए जो ख्रीष्ट में हमारा है। हम सब बातों में आनन्दित हो सकते हैं क्योंकि उस अद्भुत सम्बन्ध की तुलना में सब कुछ महत्वहीन है जिसका हम, ख्रीष्ट के द्वारा हमारे स्थान पर किये गये कार्य के कारण परमेश्वर पिता के साथ आनन्द उठाते हैं। परन्तु इस आनन्द को विकसित किया जाना चाहिए। जितना अधिक हम अपने जीवन में परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को समझेंगे, उतना ही अधिक हम उसकी प्रतिज्ञाओं को अपने जीवन में समझेंगे, और उनता ही अधिक हम आनन्द का अनुभव भी करेंगे।

धीरज

वे सब फल जिन्हें लाने के लिए हमें बुलाया जाता है परमेश्वर के चरित्र का अनुकरण करते हैं। परमेश्वर आनन्द का निर्माता है, वह दयालु और नम्र है, और यदि किसी को भी धैर्यवान कहा जा सकता है, तो वह परमेश्वर है। वह क्रोध करने में शीघ्र नहीं है। वह न्याय करने के लिए उतावला नहीं है वह धैर्य रखने वाला है, और वह लोगों को उसकी ओर फिरने के लिए समय देता है। हमें उसके धीरज में उसका अनुकरण करना चाहिए।

दयालुता

दयालुता सद्गुण को परिभाषित करना कठिन है, तौभी एक अर्थानुसार इसको परिभाषित किए जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हर कोई जानता है कि वह क्या है। दयालु होने का अर्थ है दूसरों के प्रति चिन्ता करना और उनका ध्यान रखना। इस फल को भी प्रत्येक विश्वासी में चिन्हित होना चाहिए।

आत्मा का फल के इस संक्षिप्त अवलोकन से, हम पवित्र आत्मा की प्राथमिकता को देख सकते हैं। परमेश्वर हम से यही चाहता है। जो कुछ हम करते हैं उससे तो उतना नहीं, परन्तु जो हम हैं वह आत्मा को प्रसन्न या खेदित करता है।

अध्याय 37

क्या आश्चर्यकर्म आज के लिए हैं?

Are Miracles for Today?

इससे पहले कि हम पवित्र आत्मा के व्यक्ति *(person)* और कार्य *(work)* के विषय में अपनी संक्षिप्त समीक्षा से आगे बढ़ जायें, हमें एक और विषय पर विचार करना है, ऐसा विषय जिसको लेकर आज कलीसिया में बहुत विवाद है: क्या मसीहियों को आज आश्चर्यकर्मों की अपेक्षा करनी चाहिए, अथवा क्या प्रेरितीय युग के अन्त के साथ आश्चर्यकर्म भी समाप्त हो गए हैं? इससे सम्बन्धित एक प्रश्न यह है कि: क्या शैतान और उसके साथी आश्चर्यकर्म कर सकते हैं? आत्मा के तथाकथित आश्चर्यकर्म के वरदानों के सन्दर्भ में ये प्रश्न उठाए जाते हैं।

सुसमाचारवादी कलीसिया में अधिकाँश लोग आज विश्वास करते हैं कि आश्चर्यकर्म अभी भी होते हैं और शैतान और उसके साथियों के पास आश्चर्यकर्म करने का सामर्थ्य है। जो लोग इसके विपरीत दृष्टिकोण को मानते हैं जिसमें मैं भी सम्मिलित हूँ, प्रायः इस बिन्दु पर त्रुटिपूर्वक रीति से समझे जाते हैं। इस अध्याय में हम इन बातों से सम्बन्धित कुछ समस्याओं पर विचार करेंगे और इस पर कि शास्त्रसम्मत धर्मसुधारवादी दृष्टिकोण ऐतिहासिक समाप्तिवाद *(cessationism)* क्यों रहा है।

आश्चर्यकर्म की परिभाषा

जब लोग आश्चर्यकर्मों की बात करते हैं, तो उनका अर्थ सदैव एक सा नहीं होता है। कुछ कहते हैं कि प्रार्थना का कोई भी उत्तर एक आश्चर्यकर्म है। अन्य लोग तर्क करते हैं कि कोई भी अलौकिक कार्य, जैसे कि मानव हृदय का पुनरुज्जीवन, एक आश्चर्यकर्म है और कुछ इस सीमा तक जाते हैं कि वे कहते हैं कि कुछ भी जो अद्भुत या आकर्षक है जैसे कि एक बच्चे का जन्म होना भी एक आश्चर्यकर्म है। परन्तु बच्चे तो हर दिन जन्म लेते हैं; उसमें कुछ भी असाधारण बात नहीं है। यदि

साधारण घटनाएँ वास्तव में आश्चर्यकर्म हैं, तो आश्चर्यकर्मों को असाधारण नहीं माना जाना चाहिए। पवित्रशास्त्र में आश्चर्यकर्मों का महत्व उनके असाधारण चरित्र में पाया जाता है।

बाइबलीय इतिहास में ऐसी अवधियाँ हुई थीं जब छोटे समयकाल के लिए बहुतायत से आश्चर्यकर्म हुए। इनमें से सबसे उल्लेखनीय अवधि निस्सन्देह ही यीशु के जीवन काल की थी। यीशु के जीवन में बहुत सारे आश्चर्यकर्म हुए। परन्तु हम आश्चर्यकर्म की अवधियों को मूसा के जीवनकाल में और उसके पश्चात् एलिय्याह के जीवन में भी देखते हैं। तौभी पुराने नियम की अधिकतर अवधियों में आश्चर्यकर्म तो अनुपस्थित थे। वे नियमित रीति से नहीं हुआ करते थे।

जबकि *आश्चर्यकर्म (miracle)* शब्द अंग्रेज़ी अनुवादों में बहुधा आता है, यह मूल भाषाओं में किसी एक शब्द के लिए सटीकता से उपयोग नहीं किया गया है। ईश्वरविज्ञानी आश्चर्यकर्म के विचार को बाइबल के तीन शब्दों से निकालते हैं (विशेषकर नये नियम में): *सामर्थ्य (powers), चमत्कार (wonders)* और *चिन्ह (signs)।* आश्चर्यकर्म तो ईश्वरीय सामर्थ्य के प्रकटीकरण हैं; वे अचरज और भय को उत्पन्न करते हैं; और वे अर्थपूर्ण हैं। आश्चर्यकर्म का वर्णन करने के लिए, यूहन्ना ने प्रायः *सिमेओन (sēmeion)* शब्द का उपयोग किया, जिसे "चिन्ह" के रूप में अनुवाद किया जाता है। जब यीशु ने काना के विवाह में पानी को दाखरस में बदला तो यूहन्ना ने लिखा कि, "गलील के काना में यीशु ने अपने अद्भुत चिन्ह का आरम्भ इस प्रकार करके अपनी महिमा प्रकट की, और उसके चेलों ने उस पर विश्वास किया" (यूहन्ना 2:11)।

आश्चर्यकर्मों का उद्देश्य

चिन्ह स्वयं से परे किसी बात की ओर संकेत करते हैं। उनका कुछ अभिप्राय होता है; वे किसी बात को चिन्हित करते हैं। नये नियम के तथाकथित आश्चर्यकर्म या चिन्ह किस बात को चिन्हित करते थे? उन्होंने किसकी ओर संकेत किया?

यह बात स्पष्ट है कि जो कार्य उन्होंने सम्पन्न किया उसमें उनका अत्यधिक महत्व था। यीशु ने विवाह के प्रधान की आवश्यकता को सन्तुष्ट किया जब उसने पानी में से दाखरस बनाया, और जब उसने बीमारों को चंगा किया और विलाप करने वाले माता-पिताओं के बच्चों को मृतकों में से जिलाया, तो निस्सन्देह ही उसने उनकी आवश्यकताओं को पूरा किया। परन्तु उन बातों का महत्व क्या था?

उस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, हम पहले नीकुदेमुस को देख सकते हैं। जब नीकुदेमुस रात को यीशु के पास आया, तो उसने उससे कहा, "हे रब्बी, हम जानते हैं कि तू परमेश्वर की ओर से आया हुआ गुरु है, क्योंकि इन चिन्हों को जो तू दिखाता है कोई नहीं दिखा सकता जब तक कि परमेश्वर उसके साथ न हो" (यूहन्ना 3:2)। नीकुदेमुस यह कह रहा था कि यीशु के द्वारा किए गए चिन्हों के कारण यह स्पष्ट है कि वह परमेश्वर ही की ओर से होगा। कुछ समय पश्चात् यीशु ने स्वयं कहा,

"मेरा विश्वास करो कि मैं पिता में हूँ और पिता मुझमें, अन्यथा कामों ही के कारण मेरा विश्वास करो" (यूहन्ना 14:11)।

इस विचार को इसके पूर्ण माप में देखने के लिए, हम इब्रानियों में एक चेतावनी को देख सकते हैं:

> इस कारण, हमें चाहिए कि जो कुछ हमने सुना है, उस पर और अधिक गहराई से ध्यान दें, ऐसा न हो कि हम उससे भटक जाएँ। क्योंकि यदि वह वचन जो स्वर्गदूतों द्वारा कहा गया अटल सिद्ध हुआ, और प्रत्येक अपराध और आज्ञा न मानने का ठीक ठीक फल मिला, तो हम ऐसे महान् उद्धार की उपेक्षा कर के कैसे बच सकेंगे? इसका वर्णन सर्वप्रथम प्रभु द्वारा किया गया और इसकी पुष्टि सुनने वालों ने हमारे लिए की। परमेश्वर ने भी चिन्हों, चमत्कारों और विभिन्न प्रकार के आश्चर्यकर्मों तथा अपनी इच्छा के अनुसार पवित्र आत्मा के वरदानों के द्वारा इसकी साक्षी दी। (2:1-4)

इब्रानियों का लेखक कह रहा है कि परमेश्वर अपने वचन के सत्य की पुष्टि आश्चर्यकर्मों के द्वारा करता है। इस बिन्दु को बहुधा खेदजनक रीति से उपेक्षित किया जाता है, परन्तु इसके महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। यदि पवित्रशास्त्र कहता है कि हम जानते हैं कि परमेश्वर का वचन सत्य है क्योंकि उसके लेखकों को आश्चर्यकर्मों के द्वारा प्रमाणित किया गया है, तो एक ऐसा व्यक्ति आश्चर्यकर्म कैसे कर सकता है जो प्रकाशन का अभिकर्ता नहीं है? यदि सब प्रकार के लोग इन बातों को कर सकते हैं, तो फिर उनके "चिन्ह" उनके अधिकार के विषय में या इस विषय में कुछ नहीं प्रमाणित करते हैं कि क्या वे परमेश्वर की ओर से प्रवक्ताओं के रूप में भेजे गए हैं या नहीं। इस विचाराधीन विषय में ख्रीष्ट का अधिकार, प्रेरितों का अधिकार, और स्वयं बाइबल का अधिकार दाँव पर लगा हुआ है।

मूसा को फ़िरौन का सामना करने और मिस्र से इस्राएलियों को निकालने के लिए परमेश्वर के द्वारा एक जलती हुई झाड़ी से बुलाया गया था। मूसा इस आज्ञा के प्रति विचलित हुआ और उसने कहा, "यदि वे मेरा विश्वास न करें या मेरी बात न मानें और कहें, 'यहोवा ने तुझे दर्शन नहीं दिया है' तो क्या होगा?" (निर्गमन 4:1)। इसलिए परमेश्वर ने मूसा को लाठी भूमि पर फेंकने का निर्देश दिया और लाठी एक सर्प बन गई। फिर परमेश्वर ने मूसा से कहा कि अपने हाथ को अपने वस्त्र के अन्दर रखे, जो उसने किया, और मूसा का हाथ कोढ़ से भर गया। परमेश्वर अपने वचन को आश्चर्यकर्मों के द्वारा प्रामाणित करने की योजना बना रहा था; ये "चिन्ह" वे साधन होंगे जिसके द्वारा मूसा दिखाएगा कि वह परमेश्वर का प्रवक्ता और नियुक्त किया गया अगुवा था।

रोमन कैथोलिक कलीसिया ने सोलहवीं शताब्दी में धर्मसुधारकों के विरुद्ध तर्क करने के लिए आश्चर्यकर्मों का दावा किया। रोम ने कहा, "हमारे पास अपने इतिहास में आश्चर्यकर्म हैं और वे आश्चर्यकर्म कैथोलिक कलीसिया के सत्य को प्रमाणित करते हैं। तुम्हारे आश्चर्यकर्म कहाँ हैं? तुम अपने दावों के सत्य को बिना आश्चर्यकर्मों के कैसे प्रमाणित कर सकते हो?" धर्मसुधारकों ने उत्तर दिया, "हमारे पास हमारी शिक्षा को प्रमाणित करने वाले आश्चर्यकर्म हैं, और वे नये नियम में वर्णित हैं।" कोई भी जन कह सकता है कि उसने आश्चर्यकर्म किया है परन्तु केवल परमेश्वर द्वारा नियुक्त किये गए प्रवक्ता के पास आश्चर्यकर्म करने की वास्तविक सामर्थ्य है।

आश्चर्यकर्म आज?

बहुत लोग आज कहते हैं कि वे आश्चर्यकर्म करते हैं। परन्तु यदि वे वास्तव में बाइबलीय अर्थ में आश्चर्यकर्म करते हैं, तो हमें यह निष्कर्ष निकालना होगा कि या तो उनकी शिक्षाएँ परमेश्वर द्वारा समर्थित हैं अथवा ऐसे कार्य सच्ची प्रेरितीय शिक्षाओं को प्रमाणित नहीं करते हैं। इस कारण से हमें *आश्चर्यकर्म* शब्द के संकीर्ण अर्थ में और *आश्चर्यकर्म* के व्यापक अर्थ में भिन्नता करनी होगी। ईश्वरविज्ञानी *आश्चर्यकर्म* को संकीर्ण रीति से परिभाषित करने में सावधान रहते हैं। व्यापक अर्थ में *आश्चर्यकर्म* परमेश्वर की अपने लोगों के जीवन में निरन्तर चलने वाली अलौकिक क्रियाशीलता को सन्दर्भित करता है—हमारी प्रार्थनाओं के प्रति उसके उत्तर, उसके आत्मा का उण्डेला जाना, हमारे जीवनों का हृदय-परिवर्तन। निश्चय ही ये क्रियाएँ आज भी हो रही हैं। परन्तु ईश्वरविज्ञानियों द्वारा उपयोग की जाने वाली संकीर्ण परिभाषा के अनुसार, एक आश्चर्यकर्म ऐसा असाधारण कार्य है जो परमेश्वर के तत्कालीन सामर्थ्य के द्वारा प्रत्यक्ष संसार में किया जाता है, ऐसा कार्य जो प्रकृति के विरुद्ध है जिसे केवल परमेश्वर ही कर सकता है, जैसे कि मृत्यु में से जीवन लाना।

अधिकतर लोग जो आज आश्चर्यकर्मों की निरन्तरता को मानते हैं, इस प्रकार के आश्चर्यकर्म की बात करने से पीछे हटते हैं जिन्हें हम बाइबल में पाते हैं, जैसे कि लोगों को मृतकों में से जिलाना, परन्तु कुछ ऐसे लोग भी हैं जो उस सीमा तक भी चले जाते हैं। क्या हम आज पुनरुत्थान को होते हुए देखते हैं? मैं ऐसा नहीं सोचता हूँ। प्रश्न यह नहीं है कि क्या परमेश्वर आश्चर्यकर्म कर सकता है या उसने किए हैं कि नहीं; किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह आज ऐसा कर रहा है या नहीं। हमें उन आश्चर्यकर्मों की गुणवत्ता के बीच में भिन्नता करनी होगी जिन्हें आज कुछ लोग करने का दावा कर रहे हैं और जिन्हें हम पवित्रशास्त्र में देखते हैं। आज के तथाकथित आश्चर्यकर्म उस प्रकार के नहीं हैं जिन्हें केवल परमेश्वर ही कर सकता है।

शैतान और आश्चर्यकर्म

क्योंकि हमें पवित्रशास्त्र में शैतान और उसकी चतुर चालों के प्रति चेताया गया है, जो झूठे चिन्ह और चमत्कार करता है, इसलिए अधिकतर सुसमाचारवादी विश्वास करते हैं कि शैतान *वास्तविक* आश्चर्यकर्म कर सकता है। उदाहरण के लिए, मिस्र के जादूगरों ने मूसा के साथ लड़ाई में अद्भुत कार्य किए और उन कार्यों के श्रेय को प्रायः शैतान के सामर्थ्य और प्रभाव को दिया जाता है। किन्तु यदि शैतान एक *वास्तविक* आश्चर्यकर्म कर सकता है, तो हम कैसे जानते हैं कि बाइबल परमेश्वर का वचन है और हम कैसे जानते हैं कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है? बाइबल में आश्चर्यकर्म परमेश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं करते हैं; वे उसके कार्य की पुष्टि करते हैं। जब पौलुस ने एथेंस में यूनानी दार्शनिकों से बात की, तो उसने कहा कि ख्रीष्ट को उसके पुनरुत्थान के द्वारा परमेश्वर के पुत्र के रूप में प्रमाणित किया गया था (प्रेरितों के काम 17:31)। परन्तु हम कैसे जानते हैं कि पुनरुत्थान शैतान के द्वारा नहीं किया गया था और हम कैसे जानते हैं कि यीशु द्वारा किये गए सब कार्यों को शैतान ने नहीं करवाया था? फरीसियों ने तो यीशु पर यही आरोप लगाया था।

मैं नहीं विश्वास करता हूँ कि शैतान ने उन कार्यों को किया था क्योंकि मैं नहीं विश्वास करता हूँ कि शैतान परमेश्वर है या फिर वह ऐसे कार्य कर सकता है जिन्हें केवल परमेश्वर ही कर सकता है। यीशु ने चिताया कि शैतान झूठे चिन्ह और चमत्कार कर सकता है जो चुने हुओं को भी भटका सकते हैं (मरकुस 13:22)। किन्तु एक झूठा चिन्ह या चमत्कार क्या होता है? शैतान के पास वह सामर्थ्य नहीं है जो केवल परमेश्वर के पास है, परन्तु वह किसी भी मनुष्य से अधिक परिष्कृत *(sophisticated)* है।

हमारे समय के प्रसिद्ध जादूगर नहीं कहते हैं कि वे आश्चर्यकर्म करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि उनकी चालें केवल हाथों का खेल हैं। परन्तु यह बात प्राचीन संसार में सत्य नहीं थी। प्राचीन काल के जादूगर कहते थे कि उनके पास अलौकिक सामर्थ्य है। वे कहते थे कि वे जादू करते थे, परन्तु वह सब कुछ धोखाधड़ी थी। फ़िरौन के राजभवन के जादूगरों ने अपनी चालों के पिटारे में से सब कुछ का उपयोग किया, परन्तु कुछ ही समय में उनके करतब समाप्त हो गए। परन्तु मूसा अपने कार्यों को करता गया, क्योंकि मूसा कोई जादूगर नहीं था। उसे परमेश्वर के सामर्थ्य द्वारा उस कार्य को करने के लिए अभिषिक्त किया गया था जिसे कोई जादूगर नहीं कर सकता था। उसी रीति से, शैतान चालाक हो सकता है और लोगों को धोखा दे सकता है, परन्तु वह उन कार्यों को नहीं कर सकता है जिसे केवल परमेश्वर ही कर सकता है। शब्द के संकीर्ण अर्थानुसार, वह वास्तविक आश्चर्यकर्म नहीं कर सकता है।

भाग छः

उद्धारविज्ञान

Soteriology

अध्याय 38

सामान्य अनुग्रह

Common Grace

उ*द्धारविज्ञान (soteriology)* शब्द का कलीसिया में प्रायः उपयोग नहीं किया जाता है, परन्तु यह एक महत्वपूर्ण शब्द है क्योंकि यह हमारे उद्धार से सम्बन्धित है। अंग्रेज़ी में *सोटेरियोलॉजी-soteriology* शब्द यूनानी क्रिया *सोज़ो-sōzō* से आता है, जिसका अर्थ है "बचाना।" इसका संज्ञा रूप *सोटेर-sōtēr* का अर्थ "उद्धारकर्ता" है।

पवित्रशास्त्र उद्धार के विषय में एक से अधिक रीति से बात करता है। हम *उद्धार* शब्द को इस अर्थ में "बचाए जाने" के लिए उपयोग करने के अभ्यस्त हैं जिसमें हम परमेश्वर द्वारा अनन्त काल के लिए छुड़ाए जाते हैं। एक अर्थानुसार वह महाविपत्ति जिससे हम बचाए जाते हैं वह स्वयं परमेश्वर ही है; अर्थात् , हम न्याय के दिन उसका सामना करने से बचाए जाते हैं। एक ही समय में परमेश्वर, उद्धारकर्ता भी है और वह जन भी है जिससे हम बचाए जाते हैं।

परन्तु यूनानी क्रिया *सोज़ो (sōzō)* शब्द किसी भी विपरीत परिस्थिति से छुटकारे के कार्य को सन्दर्भित करता है। प्राण घातक रोग से पुनः स्वस्थ हुआ व्यक्ति बचाया गया है। युद्ध में पकड़े जाने से छुड़ाया गया व्यक्ति बचाया गया है। किसी भी प्रकार की आपदा से छुटकारा एक प्रकार का उद्धार है।

उद्धार का अध्ययन करने वाले धर्मसुधारवादी ईश्वरविज्ञानियों में केन्द्रीय विचार अनुग्रह की अवधारणा है। जी.सी. बर्खावर *(G.C. Berkhouwer)* ने एक बार टिप्पणी की कि ईश्वरविज्ञान का सारतत्त्व ही अनुग्रह है। आरम्भ से अन्त तक उद्धार प्रभु की ओर से है और यह कुछ ऐसा नहीं है जिसे हम कमा सकते हैं या जिसके हम योग्य हैं। यह परमेश्वर की दया और उसके प्रेम के द्वारा सेंतमेंत में दिया जाता है।

अनुग्रह परिभाषित

आरम्भ ही में हमें अनुग्रह और न्याय में भिन्नता करनी होगी। न्याय एक ऐसी बात है जिसे हमारे कार्यों के द्वारा कमाया या उसके योग्य हुआ जाता है। जब पौलुस उद्धार के विषय में लिखता है, तो वह स्पष्ट कर देता है कि यदि उद्धार कार्यों के द्वारा है, तो वह अनुग्रह के द्वारा नहीं हो सकता है, किन्तु क्योंकि यह अनुग्रह के द्वारा है, इसलिए यह कार्यों के द्वारा नहीं हो सकता है। इसलिए न्याय, योग्यता *(merit)* के स्तर से सम्बन्धित है। इसके विपरीत, अनुग्रह अयोग्य-पात्रों को दिया जाता है; अर्थात् , इसे कमाया या इसके योग्य नहीं हुआ जाता है। इसके स्थान पर, अनुग्रह परमेश्वर द्वारा सेंतमेंत में दिया जाता है। वह इसे देने के लिए बाध्य या विवश नहीं है। प्रेरित पौलुस उस बात को उद्धरित करता है जिसे परमेश्वर ने मूसा से कहा था: "मैं जिस पर चाहूँ उसी पर दया करूँगा, और जिस पर चाहूँ उसी पर तरस खाऊँगा" (रोमियों 9:15)। अनुग्रह सर्वदा ईश्वरीय विशेषाधिकार होता है, यह कभी भी अनिवार्य नहीं होता है।

यह अति महत्वपूर्ण है कि हम इस बात को समझें क्योंकि हम यह सोचने के प्रवृत्त हैं कि परमेश्वर हमारा ऋणी है। हम प्रायः विश्वास करते हैं कि यदि परमेश्वर वास्तव में भला होता, तो वह हमें किसी न किसी प्रकार से एक अच्छा जीवन देता, परन्तु यदि हम यह सोचते हैं कि परमेश्वर हमारा ऋणी है, तो हम वस्तुतः न्याय के विषय में सोच रहे हैं, क्योंकि अनुग्रह का ऋण कभी नहीं चढ़ता है। परमेश्वर किसी को भी अनुग्रह देने के लिए बाध्य नहीं है। अनुग्रह की पारम्परिक परिभाषा है "अयोग्य उपकार।" जब परमेश्वर हमारे प्रति कृपापूर्ण रीति से व्यवहार करता है, भले ही अपनी योग्यता के द्वारा उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं है, तो वह सर्वदा अनुग्रह होता है।

सामान्य अनुग्रह

सामान्य अनुग्रह *(common grace)* और विशेष अनुग्रह *(special grace)* के मध्य में एक और महत्वपूर्ण भिन्नता है। विशेष अनुग्रह में वह छुटकारा सम्मिलित है जिसे परमेश्वर बचाए हुओं को देता है। इसके विपरीत सामान्य अनुग्रह को "सामान्य" इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह लगभग सार्वलौकिक है। यह वह अनुग्रह है जिसे परमेश्वर सब लोगों को बिना किसी भेद विचार के देता है। सामान्य अनुग्रह वह दया और दयालुता है जिसे परमेश्वर मानव जाति को प्रदान करता है। बाइबल कहती है कि परमेश्वर अपने ईश्वरीय-प्रावधान *(providence)* में वर्षा को धर्मियों और अधर्मियों पर भेजता है (मत्ती 5:45), और यह सामान्य अनुग्रह का उदाहरण है। एक ही नगर में दो किसान हो सकते हैं, एक जो भक्तिमय और परमेश्वर की बातों के प्रति समर्पित है और दूसरा यथासम्भव भक्तिहीन। दोनों को फसल के लिए वर्षा की आवश्यकता है और परमेश्वर अपनी भलाई में होकर पृथ्वी को पानी देता है, इस प्रकार से दोनों व्यक्ति बौछारों से लाभ पाते हैं। दोनों में से किसी भी किसान के पास फसल की देखभाल के लिए वर्षा का अधिकार नहीं है, किन्तु परमेश्वर की वर्षा दोनों पर गिरती है, केवल भक्तिमय व्यक्ति पर ही नहीं।

परमेश्वर का सामान्य अनुग्रह वर्षा से कहीं बढ़कर व्यापक है। ऐसे लोग जो परमेश्वर के साथ संगति में नहीं हैं उसके अनेक उपकारों का आनन्द उठाते हैं। समय के साथ मानवीय जीवन के स्तर में परिवर्तन—जीवन-स्तर, उन्नत स्वास्थ्य और विकसित सुरक्षा—इतिहास में परमेश्वर के अनुग्रह की प्रगति को दिखाता है। यद्यपि यह सच है कि हर व्यक्ति एक जैसे जीवन-स्तर का आनन्द नहीं उठाता है और निस्सन्देह अमरीका का साधारण जीवन-स्तर जगत के अन्य स्थानों से बहुत अच्छा है। परन्तु उन स्थानों में भी आयु-सम्भाविता और जीवन-स्तर बीती शताब्दियों से बहुत उन्नत हुए हैं। जीवन सरल बन गया है।

बहुत से लोग इन सुधारों का श्रेय केवल विज्ञान या शिक्षा को देते हैं, परन्तु हमें बीते दो हज़ार वर्षों में मसीही कलीसिया के प्रभाव को भी जोड़ना होगा। कई अनाथालय मसीही समुदाय द्वारा आरम्भ किए गए थे, और साथ में कई चिकित्सालय और विद्यालय भी। मसीहियों ने विज्ञान की प्रगति को भी बहुत रीतियों से आगे बढ़ाया है। विश्वासियों ने पृथ्वी ग्रह के अच्छे भण्डारी होने के परमेश्वर द्वारा दिए गए अपने उत्तरदायित्व को गम्भीरता से लिया है। यदि हम इतिहास में अनेक विभिन्न क्षेत्रों में कलीसिया के प्रभाव की सूची को बनाएँ, तो हम देखते हैं कि उन लोगों के विपरीत जो जगत पर धर्म के प्रभाव की निन्दा करते हैं, पृथ्वी पर जीवन का स्तर मसीहियत के प्रभाव के द्वारा बहुत अधिक सुधरा है।

हमें परमेश्वर का अनुसरण करने वाला होने के लिए बुलाया गया है, और परमेश्वर के स्वरूप में बनाए जाने का अर्थ तो यही है। यदि परमेश्वर मानव जाति के सामान्य कल्याण के विषय में चिन्तित है, तो मसीहियों को भी मानव जाति के सामान्य कल्याण के विषय में चिन्तित होने के लिए बुलाया गया है। वास्तव में, यीशु कहता है कि यदि हमारा पड़ोसी (या हमारा शत्रु भी) नंगा है, तो हमें उसे कपड़े पहनाने चाहिए; यदि वह भूखा है, तो हमें उसे खिलाना चाहिए; यदि वह प्यासा है, तो हमें उसे पानी पिलाना चाहिए; यदि वह बन्दीगृह में है, तो हमें उससे मिलना चाहिए; यदि वह अस्वस्थ है, तो हमें उसकी सेवा करनी चाहिए (मत्ती 25:34-36)। दयालु सामरी का दृष्टान्त (लूका 10:25-37) यीशु की प्राथमिकता की ओर संकेत करता है कि कलीसिया न केवल विशेष-अनुग्रह वाले क्षेत्र पर सुसमाचार प्रचार की चिन्ता करे वरन् मानव जाति के सर्वसामान्य कल्याण पर भी। अन्य स्थान में, याकूब हमें बताता है कि अनाथों और विधवाओं की सुधि लेना (याकूब 1:27) ही निर्मल भक्ति का सार है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उदारवाद ने मसीही विश्वास के अलौकिक पक्षों को नकारा जिसमें कुँवारी द्वारा जन्म, पुनरुत्थान, प्रायश्चित्त और ख्रीष्ट का ईश्वरत्व सम्मिलित हैं। उदारवादियों ने सामाजिक दृष्टिकोण से व्यवहार्य बने रहने के लिए कलीसिया के लिये एक नये उद्देश्य को बनाने का प्रयास

किया—मानवतावादी सेवा। वे सुसमाचार प्रचार को छोड़कर सामाजिक कार्यक्रमों पर बल देने लगे। उदारवादी शाखा द्वारा अलौकिकवाद *(supernaturalism)* के खण्डन की पूर्ति करने के लिए शास्त्रसम्मत मसीहियों को सुसमाचार प्रचार के अपने प्रयासों को दुगना करना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप, सुसमाचारवादीगण सामाज सेवा को केवल एक उदारवादी विषय के रूप में देखने लगे और उन्होंने केवल व्यक्तिगत उद्धार पर ध्यान केन्द्रित किया।

दोनों पक्ष त्रुटिपूर्ण थे। कलीसिया को न केवल विशेष अनुग्रह की सेवा के लिए परन्तु सामान्य अनुग्रह की सेवा के लिए भी बुलाया गया है। मसीही होने के नाते हमें सुसमाचार प्रचार के साथ-साथ, दरिद्रता और भूख के विषय में, लोगों को जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं को प्रदान करने के विषय में भी चिन्तित होना चाहिए।

जब एड्स महामारी का आरम्भ हुआ था तो बहुत से मसीहियों ने उसके पीड़ितों की किसी भी प्रकार की सहायता करने से मना कर दिया था क्योंकि उन्होंने उस बीमारी को पाप—मादक पदार्थ-व्यसन और समलैंगिक क्रिया-कलापों—के प्रभाव के रूप में देखा था। किन्तु यदि हम किसी को रोगी और नाली में मरते हुए पाते हैं, तो हम उससे यह नहीं पूछते हैं कि वह उस नाली में कैसे आया। ख्रीष्ट का प्रेम हमें उसे उस नाली से खींचकर बाहर निकालने और उसकी सहायता करने के लिए हर सम्भव प्रयास करने के लिए विवश करता है, और यही बात तो दयालु सामरी के दृष्टान्त का मुख्य विषय है। कोई भी परमेश्वर की सेवा या दया को प्राप्त करने के योग्य नहीं है। यदि एड्स का रोगी कलीसिया की दया के द्वारा सहायता प्राप्त करने के योग्य नहीं है, तो मैं भी और आप भी दया के योग्य नहीं हैं। हम सब दया के लाभों को अनुग्रह के आधार पर प्राप्त करते हैं और हम में से जिन लोगों ने असामान्य अनुग्रह *(uncommon grace)*—अर्थात् विशेष अनुग्रह *(special grace)*—को प्राप्त किया है, हमें दया प्रकट करने के लिए पंक्ति में प्रथम होना चाहिए।

एक मसीही व्यक्ति अन्यजातियों, विपरीत धर्मों, अथवा यहाँ तक कि धर्मत्यागी *(apostate)* समूहों के साथ भी कब हाथ मिला सकता है या कन्धा से कन्धा मिला सकता है? फ्रान्सिस शेफर *(Francis Schaeffer)* ने एक बार कहा कि जब सामान्य अनुग्रह के विषयों की बात आती है, तो एक मसीही को सब प्रकार के लोगों के साथ जो मसीही नहीं हैं कार्य करना चाहिए। जब मैं अजन्मे शिशुओं के अधिकारों के लिए प्रदर्शन यात्रा में निकलता हूँ, तो मैं किसी के साथ भी खड़ा हो जाऊँगा, यदि वे भी उसी चिन्ता को रखते हैं। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें हमें बाहर निकलकर लोगों का समर्थन करना चाहिए। परन्तु मैं शैतान की आराधना करने वालों की आराधना सभा में कन्धे से कन्धा नहीं मिलाऊँगा या मैं मुसलमानों के साथ प्रार्थना भोज में नहीं बैठूँगा क्योंकि ऐसे कार्यक्रम विशेष अनुग्रह के क्षेत्र में आते हैं। हमें दोनों में भिन्नता को समझने की आवश्यकता है।

विशेष अनुग्रह

रोमियों 9 में हम परमेश्वर की ओर से इन शब्दों को पढ़ते हैं: "याकूब से मैंने प्रेम किया, परन्तु एसाव को अप्रिय जाना" (13 पद)। तो यह हमारे आजकल के उस प्रसिद्ध विचार के साथ क्या करता है कि परमेश्वर सब से अप्रतिबन्धित *(unconditionally)* रीति से प्रेम करता है? परमेश्वर सब से अप्रतिबन्धित रीति से प्रेम नहीं करता है; हमें परमेश्वर के *परोपकार के प्रेम (love of benevolence)* में और उसके *आत्मसन्तोष के प्रेम (love of complacency)* में एक भिन्नता करनी होगी, जहाँ पर *के (of)* उस बात को परिभाषित करता है कि वह प्रेम किस में से उमड़ता है।

परमेश्वर के परोपकार के प्रेम का सम्बन्ध मनुष्यों के कल्याण के लिए उसकी सामान्य चिन्ता से है। उस अर्थ में, यह उचित रीति से कहा जा सकता है कि परमेश्वर सब से प्रेम करता है क्योंकि वह सब के प्रति परोपकार करता है। परमेश्वर के आत्मसन्तोष का प्रेम भिन्न है। जब लोग आज किसी को "आत्मसन्तुष्ट" कहते हैं, तो उनका अर्थ होता है कि वह स्वयं ही में दम्भी या अहंकारी है, परन्तु जब ईश्वरविज्ञानीगण परमेश्वर के आत्मसन्तोष के प्रेम की बात करते हैं तो उनका यह अर्थ नहीं है। ईश्वरविज्ञानी आत्मसन्तोष की बात सन्तुष्टि या प्रसन्नता के अर्थ में करते हैं। परमेश्वर के आत्मसन्तोष के प्रेम का सम्बन्ध उसके छुटकारीय *(redemptive)* प्रेम से है जिसका ध्यान मुख्य रूप से उसके प्रिय पुत्र पर केन्द्रित है, किन्तु तौभी वह उन पर उमड़कर गिरता है जो ख्रीष्ट में हैं। परमेश्वर के पास छुड़ाए हुओं के प्रति एक विशेष प्रेम है जो शेष जगत के नहीं है।

अध्याय 39

चुनाव और परित्यक्ति

Election and Reprobation

"उन्हीं दिनों में ऐसा हुआ कि औगुस्तुस कैसर की ओर से यह राजाज्ञा निकली कि सारे जगत के लोगों की गणना की जाए" (लूका 2:1)। यीशु के जन्म के विषय में लूका के वृतान्त से यह वाक्य औगस्तुस कैसर के अधिकार की ओर से ध्यान आकर्षित करता है, जो प्राचीन जगत में सबसे सामर्थी शासकों में से एक था। जब कैसर जैसे शासक ने कोई राजाज्ञा निकाली, तो वह आज्ञा उन सब पर लागू की जाती थी जो उसके राज्य में थे। कैसर की राजाज्ञा के कारण यीशु का जन्म बैतलहम में हुआ। किन्तु इससे पहले कि औगस्तुस *(Augustus)* उस राजाज्ञा को देने का विचार करता जिसके कारण मरियम और यूसुफ को बैतलहम जाना पड़ा, परमेश्वर ने एक आज्ञप्ति (राजाज्ञा) निकाली थी कि मसीहा का जन्म वहाँ होगा। राजाओं और सम्राटों की राजाज्ञाओं से ऊपर और उससे बढ़कर सर्वशक्तिमान परमेश्वर की आज्ञप्ति (राजाज्ञा) सदैव स्थिर रहती है।

ईश्वरविज्ञानी परमेश्वर की आज्ञप्तियों पर ध्यान देते हैं क्योंकि हम जानते हैं कि परमेश्वर सम्प्रभु *(sovereign)* है। उसकी सम्प्रभुता में उसके द्वारा बनाए गए सब कुछ पर उसका अधिकार और शासन सम्मिलित है। परमेश्वर संसार पर राज्य करता है, इसलिए जब वह अपनी सम्मति और अनन्त योजना के अनुसार कोई आज्ञप्ति निकालता है, तो वह आज्ञप्ति पूरी होती है।

पूर्वनिर्धारण

परमेश्वर की अनन्त आज्ञप्तियों के अनेक पक्षों को पवित्रशास्त्र प्रकट करता है, किन्तु जिन आज्ञप्तियों ने सबसे अधिक विवाद को उत्पन्न किया है, वे उद्धार की उसकी योजना से सम्बन्धित हैं, मुख्यतः चुनाव की आज्ञप्ति। इस अध्याय में, हम पूर्वनिर्धारण (पहले से ठहराया जाना) के कठिन

सिद्धान्त से आमना सामना करेंगे। *पूर्वनिर्धारण* शब्द सम्भवतः बाइबल के अन्य किसी भी शब्द से अधिक ईश्वरविज्ञानीय चर्चा को उत्पन्न करता है।

जब हम किसी यात्रा पर निकलते हैं तो हमारा कोई नियत गन्तव्य होता है, कोई ऐसा स्थान जहाँ हम सुरक्षित पहुँचने की आशा करते हैं। कभी-कभी हम अपनी "नियति" की बात ऐसे करते हैं, जिससे हमारा अर्थ होता है हमारा अन्तिम गन्तव्य। जब पवित्रशास्त्र उस शब्द के साथ *पूर्व- (pre)* उपसर्ग को जोड़ता है, जिसका अर्थ है "पहले ही" या "पहले से," तो यह संकेत करता है कि परमेश्वर ने अपने लोगों के लिए एक गन्तव्य निर्धारित किया है। पौलुस ने लिखा:

> हमारे प्रभु यीशु ख्रीष्ट का पिता परमेश्वर धन्य हो, जिसने हमें ख्रीष्ट में स्वर्गीय स्थानों में सब प्रकार की आत्मिक आशीषों से आशीषित किया है। उसने हमें जगत की उत्पत्ति से पूर्व ख्रीष्ट में चुन लिया कि हम उसके समक्ष प्रेम में पवित्र और निर्दोष हों। उसने हमें अपनी इच्छा के भले अभिप्राय के अनुसार पहिले से ही अपने लिए यीशु ख्रीष्ट के द्वारा लेपालक पुत्र होने के लिए ठहराया, कि उसके उस अनुग्रह की महिमा की स्तुति हो जिसे उसने हमें उस अति प्रिय में सेंतमेंत दिया। (इफिसियों 1:3-6)

जब पौलुस इस खण्ड में पूर्वनिर्धारण और चुनाव के विचारों का परिचय कराता है, तो वह हमारे आशीषित होने की बात करता है। पौलुस ने परमेश्वर द्वारा पूर्वनिर्धारण को नकारात्मक दृष्टि से नहीं देखा; इसके विपरीत, पूर्वनिर्धारण ने उसमें उल्लास और कृतज्ञता के भाव उत्पन्न किए और वह परमेश्वर को महिमा देने के लिए प्रेरित हुआ। दूसरे शब्दों में, प्रेरित ने पूर्वनिर्धारण के सिद्धान्त को एक आशीष के रूप में देखा। यह निस्सन्देह एक आशीष है जिसे हम में भी कृतज्ञता और स्तुति के भाव को प्रेरित करना चाहिए।

जब धर्मसुधारवादी ईश्वरविज्ञानी पूर्वनिर्धारण के सिद्धान्त के विषय में बात करते हैं, तो उस चर्चा में वह शिक्षा सम्मिलित होती है जिसे हम "अनुग्रह के सिद्धान्त" *(the doctrines of grace)* कहते हैं। सम्भवतः किसी भी अन्य सिद्धान्त से अधिक, पूर्वनिर्धारण के सिद्धान्त के द्वारा हमारा सामना सर्वशक्तिमान परमेश्वर की दया और उसके अनुग्रह की गहराइयों और धन से कराया जाता है। यदि हम पूर्वनिर्धारण के विषय में अपनी सोच को उस आशीषित होने के सन्दर्भ से अलग करते हैं, तो हम इस सिद्धान्त के साथ निरन्तर संघर्ष करेंगे।

जॉन कैल्विन जिन्हें प्रायः पूर्वनिर्धारणवादियों *(predestinarians)* का प्रधान माना जाता है, उन्होंने यह कहा कि पूर्वनिर्धारण का सिद्धान्त इतना रहस्यमय है कि इसके साथ अत्यधिक

सावधानी और नम्रता से व्यवहार किया जाना चाहिए क्योंकि इसे सरलता से विकृत किया जा सकता है जिससे कि परमेश्वर की खराई पर उँगली उठाई जा सके। यदि त्रुटिपूर्वक रीति से इसे उपयोग किया गया तो यह सिद्धान्त परमेश्वर को एक ऐसे अत्याचारी के रूप में दिखा सकता है जो अपनी सृष्टि के साथ खेलता है, जो मानो कि हमारे उद्धार के सम्बन्ध में पासा फेंकता है। इस प्रकार की विकृतियाँ अनेक हैं और यदि आप इस सिद्धान्त के साथ संघर्ष करते हैं, तो आप अकेले नहीं हैं।* दूसरी ओर मैं यह विश्वास करता हूँ कि यह संघर्ष लाभप्रद है क्योंकि हम इस सिद्धान्त की जितनी अधिक जाँच करते हैं तो हम उतना ही अधिक परमेश्वर के प्रताप को और उसके अनुग्रह और उसकी दया की मधुरता को देखने लगते हैं।

यदि हमारे ईश्वरविज्ञान को बाइबलीय होना है, तो हमारे पास पूर्वनिर्धारण का कोई न कोई सिद्धान्त तो होना ही होगा क्योंकि बाइबल—न कि ऑगस्टीन, लूथर या कैल्विन—इस अवधारणा का स्पष्ट रीति से परिचय कराती है। कैल्विन के पूर्वनिर्धारण के सिद्धान्त में ऐसा कुछ नहीं है जो लूथर के सिद्धान्त में पहले से नहीं था, और लूथर के पूर्वनिर्धारण के सिद्धान्त में ऐसा कुछ नहीं है जो ऑगस्टीन के सिद्धान्त में पहले से नहीं था, और मैं सोचता हूँ कि यह कहना सही होगा कि ऑगस्टीन के पूर्वनिर्धारण के सिद्धान्त में ऐसा कुछ नहीं है जो पौलुस के सिद्धान्त में पहले से नहीं था। इस सिद्धान्त की जड़ कलीसियाई इतिहास के ईश्वरविज्ञानियों में नहीं परन्तु बाइबल में है, जो इसका स्पष्ट रीति से वर्णन करती है।

इफिसियों 1 में पौलुस कहता है कि हम "स्वर्गीय स्थानों में सब प्रकार की आत्मिक आशीषों से आशीषित किए गए हैं। उसने हमें जगत की उत्पत्ति से पूर्व ख्रीष्ट में चुन लिया कि हम उसके समक्ष प्रेम में पवित्र और निर्दोष हों। उसने हमें अपनी इच्छा के भले अभिप्राय के अनुसार पहिले से ही अपने लिए यीशु ख्रीष्ट के द्वारा लेपालक पुत्र होने के लिए ठहराया है।" जिस पूर्वनिर्धारण की बात पौलुस यहाँ कर रहा है, उसका सम्बन्ध चुनाव से है। *पूर्वनिर्धारण* और *चुनाव* पर्यायवाची शब्द नहीं हैं यद्यपि उनमें एक घनिष्ट सम्बन्ध है। पूर्वनिर्धारण का सम्बन्ध प्रत्येक बात के विषय में परमेश्वर की आज्ञप्तियों से है। चुनाव एक विशेष प्रकार का पूर्वनिर्धारण है जिसका सम्बन्ध परमेश्वर के परिवार में लेपालक पुत्र होने के लिए परमेश्वर द्वारा ख्रीष्ट में कुछ लोगों के चुने जाने से है, या फिर सरल शब्दों में कहें तो बचाए जाने से है। एक बाइबलीय दृष्टिकोण से परमेश्वर के पास उद्धार की एक योजना है जिसमें अनादिकाल से उसने अपने परिवार में लेपालक पुत्र होने के लिए लोगों को चुना है।

अधिकतर लोग जो पूर्वनिर्धारण और परमेश्वर की सनातन आज्ञप्तियों से व्यवहार करते हैं, वे सहमत होते हैं कि चुनाव उद्धार हेतु है और ख्रीष्ट में पाए जाने के लिए है, तौभी इस बिन्दु पर दो

---

* चुनाव के सिद्धान्त के सूक्ष्म भेदों के विषय में और जानने के लिए, देखें, आर.सी. स्प्रोल, *परमेश्वर द्वारा चुने गए (Chosen by God)*, संशोधित संस्करण (कैरल स्ट्रीम, इलिनोई: टिन्डेल, 1994)।

विवादस्पद विषय उठते हैं। पहले बिन्दु का सम्बन्ध उस बात से है जिसे ईश्वरविज्ञानी "परित्यक्ति" *(reprobation)* कहते हैं, जो कि परमेश्वर की आज्ञप्तियों के नकारात्मक पक्ष से सम्बन्धित है। यहाँ पर प्रश्न तो सरल रीति से यह है कि: यदि परमेश्वर आज्ञप्ति देता है कि कुछ लोग उद्धार के लिए चुने जाते हैं, तो क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि कुछ लोग चुने *नहीं* गए हैं और इसलिए न चुने हुओं *(nonelects)*, अथवा परित्यक्तों *(reprobates)* की श्रेणी में हैं। यहीं पर दोहरा पूर्वनिर्धारण *(double predestination)* का विषय आता है। दूसरा विवादस्पद विषय उस कारण से जुड़ा हुआ है जिसके आधार पर परमेश्वर उद्धार के लिए लोगों को चुनता है।

पूर्वबोध का दृष्टिकोण

पूर्वनिर्धारण के एक लोकप्रिय रूप को "पूर्वबोध का दृष्टिकोण" *("the view of prescience")* कहा जाता है। पूर्वबोध के लिए अंग्रेज़ी शब्द *प्रेसियन्स (prescience)* में *सायन्स (science)* शब्द है, जो ज्ञान के लिए लातीनी शब्द से आता है, जिसके साथ *प्री-(pre)* उपसर्ग है, जिसका अर्थ है "पूर्व से" या "पहले से ही।" पूर्वबोध के दृष्टिकोण के अनुसार परमेश्वर का चुनाव अन्ततः उसके पूर्व ज्ञान पर आधारित है कि लोग क्या करेंगे या क्या नहीं करेंगे। इस दृष्टिकोण के अनुसार परमेश्वर ने अनन्तकाल पूर्व में समय में आगे झाँककर देखा कि कौन ख्रीष्ट को ग्रहण करेगा और कौन उसे नकारेगा और उस पूर्व ज्ञान के आधार पर, उसने उन लोगों को लेपालक पुत्र बनाने का चयन किया जिनके विषय में वह जानता था कि वे उचित चुनाव करेंगे। परन्तु मेरे विचार में यह पूर्वनिर्धारण के बाइबलीय सिद्धान्त को नहीं समझाता है। सच बोलूँ तो, मैं यह सोचता हूँ कि यह उसको नकारता है क्योंकि जिस प्रकार से मैं पवित्रशास्त्र को समझता हूँ, उसके अनुसार बाइबल कह रही है कि हम उसे चुनते हैं क्योंकि उसने हमें पहले चुना था। इसके अतिरिक्त पवित्रशास्त्र सिखाता है कि पूर्वनिर्धारण केवल परमेश्वर की इच्छा की भली सम्मति पर आधारित है।

पौलुस इफिसियों में कहता है, "उसने हमें अपनी इच्छा के भले अभिप्राय के अनुसार पहिले से ही अपने लिए यीशु ख्रीष्ट के द्वारा लेपालक पुत्र होने के लिए ठहराया, कि उसके उस अनुग्रह की महिमा की स्तुति हो" (1:5)। हम यहाँ पर सीखते हैं कि परमेश्वर जो भी करता है, वह ऐसा क्यों करता है—अपनी स्वयं की महिमा के लिए। परमेश्वर की आज्ञप्तियों का अन्तिम लक्ष्य परमेश्वर की महिमा है और अपने उद्धार की योजना में जो निर्णय और चुनाव वह करता है वह उसकी इच्छा के भले अभिप्राय पर आधारित है।

इस बिन्दु पर औसतन आपत्ति यह होती है कि: "यदि परमेश्वर लोगों के कार्यों से पृथक होकर, एक जन के स्थान पर किसी दूसरे को चुनता है, तो फिर क्या वह स्वेच्छाचारी और अत्याचारी नहीं है?" पौलुस कहता है कि चुनाव परमेश्वर के भले अभिप्राय से आता है; परमेश्वर का बुरी अभिप्राय

जैसी कोई बात होती ही नहीं है। परमेश्वर जो भी चुनता है वह उसकी आन्तरिक धार्मिकता और भलाई पर आधारित है। परमेश्वर एक बुरा चुनाव या कोई दुष्टता नहीं करता है जिसके कारण पौलुस परमेश्वर के उद्धार की योजना के लिए उसकी स्तुति करता है।

परमेश्वर की दया

यहाँ इफिसियों 1 में पौलुस जिस बात की ओर संकेत करता है, वह उसको और अधिकाई से रोमियों को लिखी गई पत्री में विकसित करता है, विशेषकर रोमियों 8-9 में:

> परन्तु रिबका ने भी एक पुरुष अर्थात् हमारे पिता इसहाक से जुड़वाँ बच्चों का गर्भ धारण किया; यद्यपि अब तक न तो जुड़वाँ जन्मे थे और न कुछ भला या बुरा किया था, इस अभिप्राय से कि परमेश्वर द्वारा चुनने का उद्देश्य कर्म के कारण नहीं वरन् बुलाने वाले के कारण स्थिर रहे, उस से यह कहा गया था, "ज्येष्ठ पुत्र छोटे की सेवा करेगा।" जैसा लिखा है, "याकूब से मैंने प्रेम किया, परन्तु एसाव को अप्रिय जाना।" (9:10-13)

पौलुस यहाँ कह रहा है कि परमेश्वर ने याकूब को छुड़ाने के लिए निर्णय लिया परन्तु एसाव को नहीं। दोनों बच्चे एक ही परिवार के थे; वरन् वे तो जुड़वा थे। इससे पहले कि उन्होंने कुछ अच्छा या बुरा किया, परमेश्वर ने दोनों के जन्म से पहले ही घोषणा करी कि वह अपने परोपकारी और आत्मसन्तोष के प्रेम को एक जन को देगा और एक से रोके रखेगा।

पौलुस आगे कहता है: "तो हम क्या कहें? क्या परमेश्वर अन्यायी है?" (14क पद)। पौलुस एक महत्वपूर्ण बात कह रहा है। जब लोग सीखते हैं कि पूर्वनिर्धारण परमेश्वर के सम्प्रभु एवं भले अभिप्राय पर आधारित है, तो वे प्रायः परमेश्वर की धार्मिकता के विषय में प्रश्न उठाते हैं। पौलुस इस आपत्ति की प्रत्याशा करता है; वह स्वयं ही प्रश्न को शब्दाडंबरपूर्ण *(rhetorically)* रीति से पूछता है। फिर वह अपना स्पष्ट उत्तर देता है "कदापि नहीं!" (14ख)। अन्य अनुवादों में उसके शब्दों के लिए यह कहते हैं "कभी नहीं!" या "परमेश्वर न करे!" फिर पौलुस हमें पुराने नियम की शिक्षा का स्मरण दिलाता है: "क्योंकि वह मूसा से कहता है, 'मैं जिस पर चाहूँ उसी पर दया करूँगा, और जिस पर चाहूँ उसी पर तरस खाऊँगा'" (15 पद)। पौलुस बताता है कि यह परमेश्वर का सम्प्रभु परमाधिकार है कि अनुग्रह और दया को जैसा वह चाहे अपनी इच्छा के अनुसार दिखाए।

जब हमने परमेश्वर के न्याय को एक पिछले अध्याय में देखा था तो हमने ध्यान दिया था कि न्याय की श्रेणी से बाहर सब कुछ ग़ैर-न्याय *(nonjustice)* है। दोनों, अन्याय *(injustice)* और

दया, न्याय की श्रेणी के बाहर होते हैं, तौभी अन्याय बुरा है जबकि दया नहीं है। जब परमेश्वर ने भ्रष्ट मानव जाति को उसके प्रति विद्रोह में जीते हुए देखा, तो उसने आज्ञप्ति निकाली कि वह कुछ पर दया दिखाएगा और कुछ का न्याय करेगा। एसाव को न्याय प्राप्त हुआ; याकूब को अनुग्रह प्राप्त हुआ; दोनों में से किसी को भी अन्याय प्राप्त नहीं हुआ। परमेश्वर कभी भी निर्दोष लोगों को दण्डित नहीं करता है, किन्तु वह दोषी लोगों को छुड़ाता अवश्य है। वह उन सब को नहीं छुड़ाता है और वह उनमें से किसी को भी छुड़ाने के लिए बाध्य नहीं है। अद्भुत बात तो यह है कि वह कुछ को छुड़ाता भी है।

पौलुस फिर यह निष्कर्ष देता है: “अतः यह न तो चाहने वाले पर और न दौड़-धूप करने वाले पर निर्भर है, परन्तु परमेश्वर पर जो दया करता है। . . . अतः वह जिस पर चाहता है दया करता है, और जिसे चाहता है उसे कठोर कर देता है” (16, 18 पद)। पौलुस इससे अधिक स्पष्ट नहीं हो सकता था कि हमारा चुनाव हमारे दौड़-धूप, हमारे कार्य, हमारे चुनाव या हमारी इच्छा पर आधारित नहीं है; यह अन्ततः परमेश्वर की सम्प्रभु इच्छा पर निर्भर है।

अध्याय 40

प्रभावशाली बुलाहट

Effectual Calling

जब हम पूर्वनिर्धारण या चुनाव और परमेश्वर के अनुग्रह की सम्प्रभुता पर चर्चा करते हैं, तो हमें इस प्रश्न का सामना करना ही होगा कि परमेश्वर जब किसी के जीवन में हस्तक्षेप करता है तो उस व्यक्ति को विश्वास में लाने के लिए वह वास्तव में क्या करता है। ऐतिहासिक रीति से, कैल्विनवादी *(Calvinist)* या ऑगस्टीनवादी *(Augustinian)* मत कहता है कि चुनाव पूर्ण रीति से परमेश्वर का सम्प्रभु कार्य है, जबकि अरमिनियसवादी *(Arminian)* या अर्ध-पेलेजियसवादी *(semi-pelagian)* मत इसको मनुष्य और परमेश्वर के मध्य एक सहकारी कार्य के रूप में देखते हैं। दोनों पक्ष—कैल्विनवाद और अर्मिनियसवाद—सहमत हैं कि उद्धार के लिए अनुग्रह एक अनिवार्य आवश्यकता है। परन्तु वे अनुग्रह की आवश्यकता के स्तर के विषय में असहमत हैं। जब एक पापी आत्मिक मृत्यु से आत्मिक जीवन की ओर फिरता है, तो क्या यह कार्य *ईशैककृतिवाद (monergism)* के द्वारा या फिर *सहक्रियावाद (synergism)* के द्वारा होता है। कैल्विनवाद और अर्मिनियसवाद के मध्य का, या ऑगस्टीनवाद और अर्ध-पेलेजियसवाद के मध्य का यह विवाद, इन दो शब्दों और इनके अर्थों पर होता है।

ईशैककृतिवाद, न कि सहक्रियावाद

ईशैककृतिवाद शब्द में *एक-* उपसर्ग पाया जाता है, जिसका अर्थ “एक” है, और *कृति*, जिसका अर्थ “कार्य” है, इसलिए *ईशैककृतिवाद* संकेत करता है कि केवल एक ही जन कार्य करता है। *सहक्रियावाद* में *सह-* उपसर्ग पाया जाता है, जिसका अर्थ “के साथ” है, इसलिए सहक्रियावाद का सम्बन्ध सहकारिता से है, जिसमें दो या अधिक लोग एक साथ कार्य करते हैं। थॉमस अक्काइनस ने इस प्रश्न को इस प्रकार से प्रस्तुत किया: क्या पुनरुज्जीवन का अनुग्रह, कार्यकारी *(operative)* अनुग्रह है या सहकारी *(cooperative)* अनुग्रह? दूसरे शब्दों में, जब पवित्र आत्मा एक पापी

को नया जन्म देता है, तो क्या वह थोड़ी सी सामर्थ्य का योगदान करता है जिसमें कि पापी अपनी ऊर्जा या सामर्थ्य जोड़े जिससे कि अपेक्षित प्रभाव दिखे या फिर क्या पुनरुज्जीवन परमेश्वर का एक एकपाक्षिक *(unilateral)* कार्य है? या इसे दूसरी रीति से ऐसे भी पूछ सकते हैं, कि क्या केवल परमेश्वर ही एक पापी के हृदय को परिवर्तित करता है, या फिर हृदय का परिवर्तन पापी के परिवर्तित होने की तत्परता पर निर्भर है?

पौलुस लिखता है:

> तुम तो उन अपराधों और पापों के कारण मरे हुए थे, जिनमें तुम पहिले इस संसार की रीति और आकाश में शासन करने वाले अधिकारी अर्थात् उस आत्मा के अनुसार चलते थे जो अब भी आज्ञा न मानने वालों में क्रियाशील है। उन्हीं में हम सब भी पहिले अपने शरीर की लालसाओं में दिन बिताते थे, शारीरिक तथा मानसिक इच्छाओं को पूरा करते थे, और अन्य लोगों के समान स्वभाव ही से क्रोध की सन्तान थे। (इफिसियों 2:1-3)

इस खण्ड में, पौलुस इफिसुस के विश्वासियों को स्मरण दिला रहा था कि ख्रीष्ट से पहले उनकी क्या स्थिति थी। वे मृतक थे—आत्मिक रीति से मृतक। मृतक लोग सहयोग नहीं करते हैं। हम यूहन्ना के सुसमाचार में पढ़ते हैं कि यीशु के पहुँचने से पहले लाज़र चार दिन से मरा हुआ था। संसार का एकमात्र सामर्थ्य जो उस शव को क़ब्र से बाहर निकाल सकता था वह परमेश्वर का सामर्थ्य था। ख्रीष्ट ने लाज़र को क़ब्र से बाहर निकलने के लिए निमन्त्रण नहीं दिया; उसने लाज़र के सहयोग के लिए प्रतीक्षा नहीं की। उसने कहा, "हे लाज़र, निकल आ" और उस आदेश के प्रतापी सामर्थ्य के द्वारा, वह जो मृतक था जीवित हो गया (यूहन्ना 11:43)। लाज़र ने क़ब्र से बाहर निकलने के द्वारा सहयोग किया, किन्तु मृत्यु से जीवन के उसके अवस्थान्तर में उसका कोई सहयोग नहीं था।

इसी रीति से, पौलुस इफिसियों में कहता है कि हम आत्मिक मृत्यु की स्थिति में हैं। हम स्वभाव से क्रोध की सन्तान हैं और यीशु के अनुसार, कोई भी उसके पास नहीं आ सकता है जब तक पिता उसे न खींचे (यूहन्ना 6:44)।

पौलुस आगे कहता है:

> परन्तु परमेश्वर ने जो दया का धनी है, अपने उस महान् प्रेम के कारण जिस से उसने हमसे प्रेम किया, जबकि हम अपने अपराधों के कारण मरे हुए थे उसने हमें ख्रीष्ट के साथ जीवित किया—अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ है—और ख्रीष्ट यीशु में उसके साथ उठाया और स्वर्गीय स्थानों में बैठाया, जिससे कि आने वाले युगों में वह अपनी उस

कृपा से जो ख्रीष्ट यीशु में हम पर है अपने अनुग्रह का असीम धन दिखाए। (इफिसियों 2:4-7)

अपने शरीर में होकर हम कुछ नहीं कर सकते हैं; यदि हमें स्वयं पर छोड़ दिया जाए, तो हम कभी भी परमेश्वर की बातों को नहीं चुनेंगे। जब हम आत्मिक मृत्यु की स्थिति में होते हैं, और इस संसार की रीति के अनुसार चल रहे होते हैं तथा अपने शरीर की वासनाओं की सुन रहे होते हैं, तो उसी स्थिति से परमेश्वर हमें जिलाता है। जब परमेश्वर हमें जिलाता है तो हम विश्वास में बढ़ते हैं परन्तु वह पहला कदम एक ऐसा कार्य है जिसे केवल परमेश्वर ही कर सकता है। वह हमारे कान में फुसफुसाता नहीं है कि, "क्या आप कृपया मेरे साथ सहयोग करेंगे?" इसके विपरीत वह आत्मिक रीति से मृतक हृदयों के प्रवृत्ति को परिवर्तित करने के लिए अपने पवित्र आत्मा के द्वारा हस्तक्षेप करता है।

इफिसियों को लिखी गई पत्री के आरम्भिक परिच्छेद में जहाँ वह पूर्वनिर्धारण की मधुरता का वर्णन करता है, और इस बिन्दु तक जहाँ वह ख्रीष्ट यीशु में हमारे प्रति परमेश्वर की भलाई में परमेश्वर के अनुग्रह के आश्चर्यजनक धन को दिखाता है, पौलुस परमेश्वर के अनुग्रह के अद्भुत आश्चर्यकर्मों की बड़ाई करता है। तब वह फिर से यह कहता है: "क्योंकि विश्वास के द्वारा अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ है—और यह तुम्हारी ओर से नहीं वरन् परमेश्वर का दान है, यह कार्यों के कारण नहीं जिससे कि कोई घमण्ड करे। क्योंकि हम उसके हाथ की कारीगरी हैं, जो ख्रीष्ट यीशु में उन भले कार्यों के लिए सृजे गए हैं जिन्हें परमेश्वर ने प्रारम्भ ही से तैयार किया कि हम उन्हें करें" (2:8–10)।

दोहरा पूर्वनिर्धारण

वह लिखता है कि हम विश्वास के द्वारा अनुग्रह से बचाए जाते हैं, "और यह तुम्हारी ओर से नहीं।" व्याकरण के आधार पर "यह" की पूर्ववर्ती *(antecedent)* में "विश्वास" शब्द सम्मिलित है। हम विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराए जाते हैं परन्तु हमारा वह विश्वास भी ऐसा कार्य नहीं है जिसे हम उत्पन्न करते हैं। यह एक पतित स्वभाव से नहीं आता है; किन्तु यह परमेश्वर के रचनात्मक कार्य का प्रमाण होता है और धर्मसुधारवादी ईश्वरविज्ञानियों का यही अर्थ है जब वे ईशैककृतिवादी *(monergistic)* पुनरुज्जीवन *(regeneration)* की बात करते हैं। परमेश्वर चुने हुओं के हृदयों में हस्तक्षेप करता है और उनके प्राण की प्रवृत्ति को परिवर्तित करता है। वह विश्वास-रहित हृदयों में विश्वास की सृष्टि करता है।

ईशैककृतिवादी पुनरुज्जीवन का विचार अर्ध-पेलेजियसवादियों के लिए घिनौना है, जो कहते हैं कि पवित्र आत्मा एकपक्षीय रीति से आकर लोगों की इच्छा के विरुद्ध उनके हृदयों को परिवर्तित नहीं करता है। परन्तु पतित मानव इच्छाशक्ति सदैव और सर्वत्र परमेश्वर के विरुद्ध है, तो इसलिए

कि कोई व्यक्ति कभी भी स्वेच्छा से ख्रीष्ट को चुने, इसके लिए तो एकमात्र उपाय यही है कि परमेश्वर उसके प्राण को पुनः सृजने के द्वारा उसे इच्छुक बनाने के लिए हस्तक्षेप करे। वह लोगों को आत्मिक मृत्यु से जिलाता है और उन्हें आत्मिक जीवन देता है जिससे कि न केवल वे ख्रीष्ट को चुन सकें वरन् उसे चुनेंगे ही, परन्तु ऐसा वे स्वेच्छा से करते हैं। पुनरुज्जीवन के सतह के नीचे वह हृदय परिवर्तन है जिसके द्वारा अनिच्छुक को परमेश्वर के आत्मा के द्वारा इच्छुक बनाया जाता है। पुनरुज्जीवन में उन लोगों को जिन्होंने परमेश्वर की बातों से घृणा की है, एक पूर्ण रीति से नयी प्रवृत्ति, एक नया हृदय दिया जाता है। यीशु ने ठीक यही कहा था—जब तक व्यक्ति का फिर से जन्म न हो, वह परमेश्वर के राज्य को देख नहीं सकता है, उसमें प्रवेश करना तो दूर की बात है (यूहन्ना 3:1-5)।

धर्मसुधारवादी ईश्वरविज्ञान और ग़ैर-धर्मसुधारवादी *(non-Reformed)* ईश्वरविज्ञान में मूल भिन्नता विश्वास और पुनरुज्जीवन के सम्बन्ध में उद्धार के क्रम *(order of salvation)* को लेकर है। अधिकतर सुसमाचारवादी मसीही विश्वास करते हैं कि पुनरुज्जीवन से पहले विश्वास आता है। दूसरे शब्दों में, किसी भी व्यक्ति को फिर से जन्म लेने के लिए विश्वास करना होगा। इससे पहले कि पुनरुज्जीवन हो सके, उस व्यक्ति को ख्रीष्ट को चुनना होगा। यदि ऐसी बात होती तो हमारे पास उद्धार के लिए कोई भी आशा नहीं होती, क्योंकि एक आत्मिक रीति से मृतक व्यक्ति जो परमेश्वर से शत्रुता रखता है ख्रीष्ट को नहीं चुन सकता है। और न ही हम सुसमाचार प्रचार के द्वारा दूसरों के हृदयों को परिवर्तित कर सकते हैं। हम सुसमाचार को प्रस्तुत कर सकते हैं; हम उसके लिए तर्क दे सकते हैं और विश्वासोत्पादक होने का प्रयास कर सकते हैं। परन्तु केवल परमेश्वर ही हृदय को परिवर्तित कर सकता है। क्योंकि केवल परमेश्वर के पास किसी मानव प्राण के स्वभाव को परिवर्तित करने के लिए सामर्थ्य है, इसलिए हमें कहना होगा कि विश्वास से पहले पुनरुज्जीवन होता है। यह धर्मसुधारवादी ईश्वरविज्ञान का सार है। इससे पहले कि कोई व्यक्ति विश्वास में आता है पवित्र आत्मा प्राण की प्रवृत्ति को परिवर्तित करता है।

क्या इसका अर्थ यह है कि जब हम विश्वास करने लगते हैं, तो परमेश्वर हमारे द्वारा विश्वास करवाता है? नहीं, हम ही लोग विश्वास करते हैं। क्या हम ख्रीष्ट को चुनते हैं? हाँ, हम ख्रीष्ट को चुनते हैं। हम प्रतिउत्तर देते हैं। हमारी इच्छाशक्तियाँ परिवर्तित होती हैं जिससे कि जिस परमेश्वर से हम पहले घृणा करते थे, अब हम उससे प्रेम करते हैं; और हम पुत्र की ओर भागते हैं। परमेश्वर हमें हमारे प्राणों में उसके लिए इच्छा देता है। यह कहना बाइबलीय दृष्टिकोण को विकृत करना है कि स्वाभाविक मनुष्य परमेश्वर को पाने के लिए इधर-उधर हताशापूर्ण रीति से दौड़ रहा है, परन्तु परमेश्वर उनमें से कुछ को प्रवेश नहीं करने देगा क्योंकि वे उसकी सूची में नहीं हैं। बिना परमेश्वर के विशेष अनुग्रह के कोई भी ख्रीष्ट के पास आने का प्रयास नहीं करता है।

इस विवाद में दोनों पक्ष सहमत हैं कि अनुग्रह की उपस्थिति आवश्यक है। वे केवल ईशैककृतिवाद और सहक्रियावाद के विषय में असहमत हैं, कि क्या पुनरुज्जीवन का अनुग्रह प्रभावशाली *(effectual)* है, अथवा एक अन्य रीति से कहें तो, क्या वह अप्रतिरोध्य

(irresistible) है। जो लोग कहते हैं कि हमारे पास उसको नकारने की सामर्थ्य है, वे एक आशाहीन ईश्वरविज्ञान में उलझ जाते हैं। यह मानव पतन के मौलिक स्वभाव के बाइबलीय दृष्टिकोण को गम्भीरता से नहीं लेता है। हम तो इस विषय में अपने आप को परिवर्तित करने के लिए या परमेश्वर के साथ सहयोग करने के लिए भी असमर्थ हैं। कोई भी सहयोग का विचार, यह पहले से मान कर चलता है कि परिवर्तन पहले ही हो चुका था क्योंकि जब तक वह परिवर्तन नहीं हो जाता है, तब तक कोई भी सहयोग नहीं करता है। जो लोग विश्वास करते हैं कि मनुष्य पुनरुज्जीवन में सहयोग करता है वे एक प्रकार से कार्यों पर आधारित धार्मिकता को मानते हैं। अन्यथा यह और कैसे हो सकता है, यदि कुछ लोग "सही" प्रतिउत्तर देने के द्वारा प्रवेश कर सकते हैं? यह तो सुसमाचार का खण्डन है। मनुष्य के पुनरुज्जीवन में कोई मानव धार्मिकता नहीं है।

सुनहरी लड़ी

ईश्वरविज्ञानी उद्धार की "सुनहरी लड़ी" *(the golden chain)* की बात करते हैं:

> हम जानते हैं कि जो लोग परमेश्वर से प्रेम रखते हैं उनके लिए वह सब बातों के द्वारा भलाई को उत्पन्न करता है, अर्थात् उन्हीं के लिए जो उसके अभिप्राय के अनुसार बुलाए गए हैं। क्योंकि जिन के विषय में उसे पूर्वज्ञान था, उसने उन्हें पहले से ठहराया भी कि वे उसके पुत्र के स्वरूप में हो जाएँ, जिससे कि वह बहुत-से भाइयों में पहिलौठा ठहरे; फिर जिन्हें उसने पहले से ठहराया है, उन्हें बुलाया भी; और जिन्हें बुलाया, उन्हें धर्मी भी ठहराया; और जिन्हें धर्मी ठहराया, उन्हें महिमा भी दी है। (रोमियों 8:28-30)

यहाँ पर एक लड़ी है, एक अनुक्रम जिसका आरम्भ पूर्वज्ञान *(foreknowledge)* से होता है। इसके पश्चात् पूर्वनिर्धारण *(predesination)*, बुलाहट *(calling)*, धर्मीकरण *(justification)* और महिमान्वीकरण *(glorification)* आते हैं। यह एक लुप्तपद *(elliptical)* कथन है—जिसमें किसी एक बात को माना जा रहा है परन्तु स्पष्ट नहीं किया जा रहा है। यहाँ पर वह लुप्तपद शब्द है *सब*। जिन सब लोगों के विषय में परमेश्वर को पूर्वज्ञान था उसने उन्हें पूर्वनिर्धारित किया, जिन सब को उसने पूर्वनिर्धारित किया उसने बुलाया भी है, जिन सब को उसने बुलाया है उसने उन्हें धर्मी भी ठहराया है, और वे सब जिन्हें उसने धर्मी ठहराया है महिमान्वित किए जाते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि इस सुनहरी लड़ी में पूर्वज्ञान शेष कार्यों से पहले आता है, जिसके कारण वे चुनाव के विषय में पूर्वबोध *(prescience)* के दृष्टिकोण को मानते हैं। भले ही आप जिस भी दृष्टिकोण को मानें, पूर्वनिर्धारण को तो पूर्वज्ञान *(foreknowledge)* से ही आरम्भ होना होगा क्योंकि परमेश्वर किसी को भी पूर्वनिर्धारित नहीं कर सकता है जिसके विषय में वह पहले से

नहीं जानता है। यह तथ्य इस बात को अनिवार्य बनाता है कि इस लड़ी को पूर्वज्ञान से ही आरम्भ होना चाहिए। परन्तु वे सब जिनके विषय में पूर्वज्ञान था, वे पूर्वनिर्धारित किए जाते हैं, और वे सब पूर्वनिर्धारित किए गए लोग, बुलाए भी जाते हैं। पौलुस के मन में यहाँ जगत के सब लोग नहीं हैं, किन्तु केवल वे ही हैं जो पूर्वनिर्धारित हैं, जिनके विषय में पूर्वज्ञान था और जिन्हें बुलाया भी गया था।

मुख्य बात यह है कि प्रत्येक जन जो बुलाया जाता है, वह धर्मी भी ठहराया जाता है, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक बुलाए गए जन को विश्वास प्राप्त होता ही है, जिसका अर्थ है कि यह स्थल उसके विषय में नहीं हो सकता जिसे ईश्वरविज्ञानी "सुसमाचार की बाहरी बुलाहट" *(the external call of the gospel)* कहते हैं, जो कि प्रत्येक जन के पास जाती है। यह स्थल भीतरी बुलाहट *(internal call)* के विषय में है, वह क्रियात्मक *(operative)* बुलाहट, पवित्र आत्मा का वह कार्य जो प्रभावशाली रीति से हृदय को परिवर्तित करता है। पवित्र आत्मा की प्रभावशाली *(effectually)* बुलाहट हमारे हृदयों में वह कराती है जिसे परमेश्वर ने जगत की उत्पत्ति से पहले करने का अभिप्राय किया था। वे *सब* जिन्हें पूर्वनिर्धारित किया गया है वे पवित्र आत्मा द्वारा प्रभावशाली रीति से बुलाए जाते हैं; वे *सब* जो पवित्र आत्मा द्वारा बुलाए जाते हैं वे धर्मी ठहराए जाते हैं; वे *सब* जो धर्मी ठहराए जाते हैं वे महिमान्वित किए जाते हैं। यदि हम इस सुनहरी लड़ी में अर्मिनियसवादी श्रेणियों को लागू करें तो हमें कहना होगा कि, *कुछ ही* लोग हैं जिनके विषय में पूर्वज्ञान है उनको पूर्वनिर्धारित किया गया है; *कुछ ही* लोग जिन्हें पूर्वनिर्धारित किया गया है उन्हें ही बुलाया गया है; *कुछ ही* लोग जिन्हें बुलाया गया है वे ही धर्मी ठहराए जाते हैं; और *कुछ ही* लोग जो धर्मी ठहराए गए हैं वे महिमान्वित किए जाते हैं। ऐसी स्थिति में तो, उस पूरे स्थल का कोई अर्थ ही नहीं होगा।

अध्याय 41

केवल विश्वास के द्वारा धर्मीकरण

Justification by faith alone

धर्मीकरण का सिद्धान्त मसीहियत के इतिहास में अत्यधिक विवाद का कारण रहा है। उसके कारण सोलहवीं शताब्दी में प्रोटेस्टेन्ट धर्मसुधार हुआ, जब धर्मसुधारकों ने *सोला फिडे (sola fide),* या केवल विश्वास के द्वारा धर्मीकरण के लिए खड़े हुए। मार्टिन लूथर का कहना था कि धर्मीकरण का सिद्धान्त वह अनुच्छेद *(article)* है जिस पर कलीसिया स्थिर होती है या गिर जाती है, और जॉन कैल्विन उससे सहमत थे। वे इस सिद्धान्त को अत्यधिक दृढ़ता से मानते थे क्योंकि उन्होंने पवित्रशास्त्र से देखा कि जब धर्मीकरण पर विवाद होता है तो स्वयं सुसमाचार दाँव पर होता है।

धर्मीकरण का सिद्धान्त पतित मनुष्यों की सबसे गम्भीर दुर्दशा को सम्बोधित करता है—परमेश्वर के न्याय के प्रति उनकी अनाश्रयता *(exposure)*। परमेश्वर न्यायी है, परन्तु हम नहीं हैं। जैसे दाऊद ने प्रार्थना की, "हे याह, यदि तू अधर्मों का लेखा लेता, तो हे प्रभु, कौन टिक पाता?" (भजन 130:3)। निस्सन्देह यह एक शब्दाडंबरपूर्ण *(rhetorical)* प्रश्न है; कोई भी ईश्वरीय जाँच के सामने नहीं टिक सकता है। यदि परमेश्वर अपने न्याय के मापन दण्ड को बढ़ाता और हमारे जीवनों का मूल्याँकन करता, तो हम नाश हो जाते क्योंकि हम धर्मी नहीं हैं। हम में से अधिकतर लोग सोचते हैं कि यदि हम अच्छे लोग होने के लिए परिश्रम करें, तो जब हम परमेश्वर के न्याय के सिंहासन के पास आएँगे तब यह पर्याप्त होगा। लोकप्रिय संस्कृति की एक बड़ी कल्पित कथा जिसने कलीसिया में प्रवेश किया है, वह यह है कि लोग परमेश्वर के अनुग्रह को *कमा* सकते हैं, यद्यपि पवित्रशास्त्र स्पष्ट रीति से कहता है कि व्यवस्था के कार्यों से कोई भी धर्मी ठहराया नहीं जाएगा (गलातियों 2:16)। हम ऐसे ऋणी हैं जो अपना ऋण नहीं चुका सकते।

यही कारण है कि सुसमाचार को "शुभ सन्देश" कहा जाता है। जैसे पौलुस ने सुसमाचार के विषय में लिखा: "मैं सुसमाचार से लज्जित नहीं होता, क्योंकि यह प्रत्येक विश्वास करने वाले के

लिए, पहले यहूदी और फिर यूनानी के लिए, उद्धार के निमित्त परमेश्वर की सामर्थ्य है। क्योंकि इसमें परमेश्वर की धार्मिकता विश्वास से और विश्वास के लिए प्रकट होती है; जैसा कि लिखा है, 'परन्तु धर्मी मनुष्य विश्वास से जीवित रहेगा'" (रोमियों 1:16-17)। अन्तिम विश्लेषण में, धर्मीकरण परमेश्वर द्वारा की गई एक विधिक घोषणा *(legal pronouncement)* है। दूसरे शब्दों में, धर्मीकरण तभी हो सकता है जब परमेश्वर जो स्वयं धर्मी *(just)* है, किसी को अपनी दृष्टि में धर्मी होने की आज्ञप्ति *(decreeing)* देने के द्वारा धर्मीकर्ता *(Justifier)* बनता है।

सिमुल इयुस्टिस एट पेक्केटोर (Simul Iustis Et Peccator)

सोलहवीं शताब्दी का विवाद इस विषय में था कि क्या उन्हें धर्मी घोषित करने से पहले परमेश्वर लोगों के धर्मी बनने के लिए प्रतीक्षा करता है या क्या वह उन्हें अपनी दृष्टि में धर्मी घोषित करता है जब वे पापी ही हैं। लूथर ने एक सूत्र को प्रतिपादित किया जो उस विवाद के समय से अभी तक बना हुआ है। उन्होंने कहा कि हम *सिमुल इयुस्टिस एट पेक्केटोर* हैं, जिसका अर्थ है "एक ही समय में धर्मी और पापी।" लूथर कह रहे थे कि एक धर्मी ठहराया गया व्यक्ति एक ही साथ धर्मी और पापी है। हम ख्रीष्ट के कार्य के कारण धर्मी हैं, तौभी हम सिद्ध नहीं बना दिए गए हैं, इसलिए हम अभी भी पाप करते हैं।

रोमन कैथोलिक कलीसिया तर्क करती है कि लूथर का सिद्धान्त वैधिक *(legal)* काल्पनिक बात है। रोमन कैथोलिक ईश्वरविज्ञानी पूछते हैं कि परमेश्वर कैसे लोगों को धर्मी घोषित कर सकता है जब वे पापी ही हैं? यह बात परमेश्वर के अनुरूप नहीं होगी। इसके स्थान पर रोम तथाकथित "विश्लेषणात्मक धर्मीकरण" *(analytical justification)* के पक्ष में तर्क देता है। वे सहमत हैं कि धर्मीकरण तब होता है जब परमेश्वर किसी को धर्मी घोषित करता है; परन्तु रोम के अनुसार परमेश्वर किसी व्यक्ति को तब तक धर्मी घोषित नहीं करेगा जब तक वह वास्तव में धर्मी न हो। प्रोटेस्टेन्टगण प्रतिक्रिया देते हैं कि जब परमेश्वर किसी व्यक्ति को धर्मी घोषित करता है, तो उसमें कोई भी काल्पनिक बात नहीं होती है। वह व्यक्ति यीशु ख्रीष्ट के वास्तविक कार्य के आधार पर परमेश्वर की दृष्टि में धर्मी है, जो किसी भी रीति से काल्पनिक नहीं है।

साधन कारण *(The Instrumental Cause)*

हम कहते हैं कि धर्मीकरण केवल विश्वास के द्वारा है, और इस नारे में ये शब्द '*के द्वारा*' सोलहवीं शताब्दी के विवाद का भाग थे। '*के द्वारा*' उस साधन की ओर संकेत करते हैं जिसके द्वारा कोई बात घटित होती है। इसलिए विवाद धर्मीकरण के साधन कारण के विषय में था। आज हम साधन कारणों के विषय में अधिक बात नहीं करते हैं। वास्तव में, यह भाषा प्राचीन यूनान तक जाती है, जब अरस्तू *(Aristotle)* दार्शनिक ने विभिन्न प्रकार के कारणों में भेद किया: उपादान

(material), आकारिक *(formal)*, अन्तिम *(final)*, निमित्त *(efficient)* और साधन *(instrumental)*। उदाहरण के रूप में, अरस्तू ने मूर्तिकार द्वारा प्रतिमा के बनाए जाने का उपयोग किया। मूर्तिकार पत्थर के टुकड़े को रूप देता है। प्रतिमा का उपादान कारण वह पदार्थ है जिसमें से कला की वस्तु बनाई जाती है, जो कि स्वयं पत्थर है। साधन कारण, वह साधन है जिसके द्वारा पत्थर का टुकड़ा एक भव्य प्रतिमा में परिवर्तित होता है, अर्थात् हथौड़ा और छेनी। इसी भाषा को सोलहवीं शताब्दी के विवाद में उपयोग किया गया।

अन्तर्वाह या अभ्यारोपण? *(Infusion Or Imputation?)*

रोमन कैथोलिक कलीसिया ने कहा कि धर्मीकरण का साधन कारण *(instrumental cause)* बपतिस्मा का संस्कार है। बपतिस्मा का संस्कार प्राप्तकर्ता पर धर्मीकरण के अनुग्रह को प्रदान करता है; दूसरे शब्दों में ख्रीष्ट की धार्मिकता बपतिस्मा प्राप्त करने वाले व्यक्ति के प्राण में उण्डेली जाती है। प्राण में अनुग्रह के इस उण्डेले जाने को "अन्तर्वाह" कहा जाता है। इसलिए रोम विश्वास नहीं करता है कि लोग अनुग्रह या विश्वास से पृथक धर्मी-ठहराए-जाते *(justified)* हैं, परन्तु वह धर्मीकरण अनुग्रह के अन्तर्वाह के परिणामस्वरूप होता है जिसके द्वारा मानवीय धार्मिकता सम्भव बनाई जाती है।

फिर रोम ने कहा कि लोगों को धर्मी बनने के लिए, उन्हें अन्तर्वाहित *(infused)* अनुग्रह के साथ सहयोग करना होगा। लोगों को उसके साथ उस स्तर तक सहमत होना होगा जिससे कि धार्मिकता अर्जित की जाए। जब तक लोग अपने आप को प्राणघातक *(mortal)* पाप से बचाए रखते हैं, वे धर्मी-ठहराई-गई *(justified)* स्थिति में बने रहते हैं। परन्तु रोम के अनुसार, प्राणघातक पाप उस धर्मी-ठहराने-वाले *(justifying)* अनुग्रह को मारने के लिए पर्याप्त है जो कि एक प्राण के पास है, जिससे कि वे सब लोग जो प्राणघातक पाप करते हैं धर्मीकरण के अनुग्रह को खो देते हैं। किन्तु फिर भी सब कुछ नहीं खोया है। एक पापी व्यक्ति को धर्मीकरण की स्थिति में कायाक्लेश *(penance)* के संस्कार के द्वारा पुनःस्थापित किया जा सकता है, जिसे रोमी कलीसिया धर्मीकरण की दूसरी पटरी के रूप में उन लोगों के लिए परिभाषित करती है जिन्होंने अपने विश्वास-रूपी "जहाज़ को डुबो" दिया है। इसीलिए लोग पाप-अँगीकार *(confession)* के लिए जाते हैं, जो कि कायाक्लेश के संस्कार का एक भाग है। जब व्यक्ति अपने पापों का अँगीकार करता है तो वह दोषमुक्ति *(absolution)* को प्राप्त करता है, जिसके पश्चात् उसे आत्मशोधन *(satisfaction)* के कार्य करने होंगे जो रोम द्वारा कहे गए "उपयुक्त योग्यता" *(congruous merit)* को अर्जित करते हैं। उपयुक्त योग्यता के कार्य कायाक्लेश के संस्कार के लिए अविभाज्य हैं, क्योंकि ये आत्मशोधन के कार्य परमेश्वर द्वारा पापी को अनुग्रह की स्थिति में पुनः लाने को

उचित, या उपयुक्त बनाते हैं। इसलिए रोम के पास धर्मीकरण के लिए वास्तव में दो साधन कारण हैं: बपतिस्मा और कायाक्लेश।

उस दृष्टिकोण के विरोध में, प्रोटेस्टेन्ट धर्मसुधारकों ने तर्क किया कि विश्वास ही धर्मीकरण का एकमात्र साधन कारण है। जैसे ही लोग विश्वास के द्वारा ख्रीष्ट को थामते हैं, ख्रीष्ट की योग्यता उन पर स्थानान्तरित की जाती है। जबकि रोम अन्तर्वाह *(infusion)* के द्वारा धर्मीकरण को मानता है, प्रोटेस्टेन्ट लोग अभ्यारोपण *(imputation)* के द्वारा धर्मीकरण को मानते हैं। रोमन कैथोलिक कलीसिया कहती है कि परमेश्वर किसी को धर्मी घोषित केवल उसके द्वारा ख्रीष्ट के अन्तर्वाहित *(infused)* अनुग्रह के साथ सहयोग के आधार पर करता है। प्रोटेस्टेन्ट लोगों के लिए, धर्मीकरण का आधार पूर्ण रीति से ख्रीष्ट की धार्मिकता है—हम *में* ख्रीष्ट की धार्मिकता नहीं पर हमारे *लिए* ख्रीष्ट की धार्मिकता, वह धार्मिकता जिसे ख्रीष्ट ने परमेश्वर की व्यवस्था के प्रति अपनी सिद्ध आज्ञाकारिता में प्राप्त की। यह धार्मिकता, धर्मीकरण के आधार का पहला भाग, उन सब के लिए लागू किया जाता है जो ख्रीष्ट पर अपना भरोसा रखते हैं। धर्मीकरण के आधार का दूसरा भाग ख्रीष्ट द्वारा क्रूस पर उसके बलिदान की मृत्यु में व्यवस्था के नकारात्मक दण्डों को सिद्ध रीति से सन्तुष्ट करना है।

इसका अर्थ है कि हम केवल यीशु की मृत्यु के द्वारा ही नहीं परन्तु उसके जीवन के द्वारा भी बचाए जाते हैं। एक दोहरा स्थानान्तरण होता है, अर्थात् एक दोहरा अभ्यारोपण। परमेश्वर के मेमने के रूप में, ख्रीष्ट ने क्रूस पर जाकर परमेश्वर के प्रकोप को सहा, परन्तु ऐसे किसी पाप के लिए नहीं जिसे परमेश्वर ने उस में पाया। उसने स्वेच्छा से हमारे पापों को अपने ऊपर लिया। वह पाप को धारण करने वाला बना जब परमेश्वर पिता ने हमारे पापों को उस पर स्थानान्तरित किया या उसके ऊपर माना। अभ्यारोपण यही है—एक विधिक स्थानान्तरण। ख्रीष्ट ने अपने व्यक्ति में हमारे दोष को लिया; हमारे दोष को उस पर अभ्यारोपित किया गया। दूसरा स्थानान्तरण तब होता है जब परमेश्वर ख्रीष्ट की धार्मिकता को हम पर अभ्यारोपित करता है।

इसलिए जब लूथर ने कहा कि धर्मीकरण केवल विश्वास के द्वारा है, तो उसका अर्थ यह था कि धर्मीकरण *केवल ख्रीष्ट* के द्वारा है, उसके द्वारा परमेश्वर की धार्मिकता की माँगों को सन्तुष्ट करने के लिए अर्जित किए गए कार्य के द्वारा। अभ्यारोपण में किसी अन्य की धार्मिकता का स्थानान्तरित किया जाना सम्मिलित है। अन्तर्वाह में ऐसी धार्मिकता का लगाया जाना सम्मिलित है जो भीतर अस्तित्व में है या अन्तर्निहित है।

इसलिए रोम के अनुसार धर्मीकरण के साधन कारण बपतिस्मा और कायाक्लेश के संस्कार हैं, और प्रोटेस्टेन्ट लोगों के लिए धर्मीकरण का साधन कारण केवल विश्वास है। इसके अतिरिक्त, धर्मीकरण के विषय में रोमन कैथोलिक दृष्टिकोण अन्तर्वाह पर निर्भर है, परन्तु प्रोटेस्टेन्ट दृष्टिकोण अभ्यारोपण पर निर्भर है।

विश्लेषणात्मक या कृत्रिम?

एक और भिन्नता यह है कि धर्मीकरण के विषय में रोमन कैथोलिक दृष्टिकोण विश्लेषणात्मक *(analytical)* है, जबकि धर्मसुधार का दृष्टिकोण कृत्रिम *(synthetic)* है। एक विश्लेषणात्मक कथन ऐसा कथन होता है जो परिभाषा से सत्य है; उदाहरण के लिए, "एक कुँवारा पुरुष एक अविवाहित पुरुष है।" यह विधेय *(predicate)* "अविवाहित पुरुष," वाक्य के कर्ता "एक कुँवारा पुरुष" में कोई नई जानकारी नहीं जोड़ता है, इसलिए यह वाक्य परिभाषा के अनुसार सत्य है। परन्तु यदि हम यह कहें कि, "कुँवारा पुरुष एक धनी पुरुष होता है," तो हमने कुँवारे पुरुष के विषय में कुछ कहा है, या ऐसा विशेषण बताया है जो उस कर्ता में नहीं पाया जाता है, क्योंकि सब कुँवारे पुरुष धनी नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में, हमारे पास एक कृत्रिम कथन है।

रोमन कैथोलिक कलीसिया कहती है कि परमेश्वर लोगों को तब तक धर्मी नहीं घोषित करता है जब तक, विश्लेषण किए जाने पर, वे धर्मी न *हों।* प्रोटेस्टेन्ट कहते हैं कि लोग मात्र कृत्रिम रीति से धर्मी हैं, क्योंकि उनमें कुछ जोड़ा जाता है, जो कि यीशु की धार्मिकता है। तो कैथोलिक लोगों के लिए, धार्मिकता को *अन्तर्निहित (inhere)* होना चाहिए, जबकि प्रोटेस्टेन्ट लोगों के लिए, धार्मिकता *एक्सट्रा नोस (extra nos),* या "हम से बाहर" है। यह सही रूप से कहा जाए तो, हमारी स्वयं की नहीं है। यह हमारे लिए तभी मानी जाती है जब हम विश्वास के द्वारा ख्रीष्ट को थामते हैं।

सुसमाचार का अद्भुत समाचार यह है कि हमें उस समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी है जब तक हमारी बची हुई सारी अशुद्धता पापशोधन-स्थल *(purgatory)* में शुद्ध नहीं की जाती है; जिस क्षण हम यीशु ख्रीष्ट पर अपना भरोसा रखते हैं, तो वह जो भी है और उसके पास जो भी है वह हमारा बन जाता है, और हम तुरन्त परमेश्वर के साथ मेल-मिलाप की स्थिति में स्थानान्तरित किए जाते हैं।

अध्याय 42

बचाने वाला विश्वास

Saving Faith

हमने पिछले अध्याय में देखा कि रोमन कैथोलिक कलीसिया के अनुसार धर्मीकरण के साधन कारण *(instrumental causes)* बपतिस्मा और कायाक्लेश के संस्कार हैं, परन्तु प्रोटेस्टेन्ट लोगों के लिए साधन कारण केवल विश्वास है। इसके अतिरिक्त, धर्मीकरण के विषय में रोमन कैथोलिक दृष्टिकोण धार्मिकता के अन्तर्वाह पर निर्भर है, जबकि प्रोटेस्टेन्ट दृष्टिकोण ख्रीष्ट की धार्मिकता के अभ्यारोपण पर निर्भर है। बहुत लोग विश्वास करते हैं कि रोमन कैथोलिक लोग विश्वास के महत्व को कम मानते हैं, परन्तु यह सत्य नहीं है। रोमन कैथोलिक कलीसिया दृढ़ता से धर्मीकरण के लिए विश्वास की आवश्यकता की बात करती है; परन्तु वह मानती है कि किसी को धर्मी ठहराने के लिए स्वयं में विश्वास पर्याप्त नहीं है। वहाँ पर कार्य भी होने चाहिए। इसलिए यहाँ पर वास्तविक अन्तर यह है कि रोम विश्वास और कार्यों पर और अनुग्रह के साथ योग्यता पर विश्वास करता है, जबकि धर्मसुधारवादी घोषित करते हैं कि धर्मीकरण केवल विश्वास और केवल अनुग्रह के द्वारा ही है।

विश्वास मसीहियत के लिए केन्द्रीय है। नया नियम बारम्बार लोगों को प्रभु यीशु ख्रीष्ट पर विश्वास करने के लिए बुलाता है। एक निश्चित विषयवस्तु है जिस पर विश्वास किया जाना चाहिए, जो हमारे धार्मिक क्रियाओं का अभिन्न भाग है। धर्मसुधार के समय के विवाद में बचाने *(saving)* वाले विश्वास का *स्वभाव (nature)* सम्मिलित था। बचाने वाला विश्वास क्या है? केवल विश्वास के द्वारा धर्मीकरण का विचार बहुत लोगों को एक विरलता से छिपी हुई व्यवस्थाविरोधीवाद *(antinomianism)* का सुझाव देता है जो यह मानता है कि लोग जब तक उचित बातों पर विश्वास करते हों तब तक वे जैसे भी चाहें जी सकते हैं। तौभी याकूब ने अपनी पत्री में लिखा: “हे मेरे भाइयो, यदि कोई कहे कि मैं विश्वास करता हूँ, पर कर्म न करे, तो इस से क्या लाभ? क्या ऐसा

विश्वास उसका उद्धार कर सकता है? . . . विश्वास भी, यदि उसके साथ कार्य न हो, तो अपने आप में मृतक है" (2:14, 17)। लूथर ने कहा कि धर्मी ठहराने वाला विश्वास *फिडेस वीवा (fides viva)* है, एक "जीवित विश्वास," जो अनिवार्यतः, आवश्यक रूप से और तुरन्त धार्मिकता का फल लाता है। धर्मीकरण केवल विश्वास के द्वारा है, परन्तु उस विश्वास के द्वारा नहीं जो अकेला है। ऐसा विश्वास जो धार्मिकता की उपज न लाए सच्चा विश्वास नहीं है।

रोमन कैथोलिक कलीसिया के लिए, विश्वास और कार्य को जोड़ने पर धर्मीकरण होता है; व्यवस्थाविरोधीवादियों के लिए, विश्वास से कार्य को घटाने पर धर्मीकरण होता है; प्रोटेस्टेन्ट धर्मसुधारकों के लिए, विश्वास बराबर धर्मीकरण और कार्य होता है। दूसरे शब्दों में, कार्य तो सच्चे विश्वास के अनिवार्य फल हैं। परमेश्वर की इस उद्घोषणा में कि हम उसकी दृष्टि में धर्मी हैं, कार्यों को ध्यान में नहीं रखा जाता है; वे हमें धर्मी घोषित करने के लिए परमेश्वर के निर्णय के आधार के भाग नहीं हैं।

बचाने वाले विश्वास के आवश्यक तत्त्व

बचाने वाले विश्वास के संघटक तत्त्व क्या हैं? प्रोटेस्टेन्ट धर्मसुधारकों ने पहचाना कि बाइबलीय विश्वास के तीन आवश्यक आयाम हैं: *नोटिश्या (notitia), असेन्सस (assensus),* और *फिडुश्या (fiducia)।*

नोटिश्या विश्वास की विषय-वस्तु *(content)* से, अर्थात् उन बातों से सम्बन्ध रखता है जिन पर हम विश्वास करते हैं। ख्रीष्ट के विषय में कुछ बातें हैं जिन पर हमारा विश्वास करना अनिवार्य है, अर्थात् कि वह परमेश्वर का पुत्र है, कि वह हमारा उद्धारकर्ता है, कि उसने प्रायश्चित्त का प्रावधान किया है, इत्यादि।

असेन्सस यह दृढ़ विश्वास है कि हमारे विश्वास की विषय-वस्तु सत्य है। एक व्यक्ति मसीही विश्वास के विषय में जान सकता है और तौभी विश्वास कर सकता है कि यह सत्य नहीं है। सम्भवतः हमारे विश्वास में एक या दो सन्देह मिश्रित हों, परन्तु यदि हमें बचाया जाना है तो एक स्तर का मानसिक पुष्टिकरण और दृढ़ विश्वास होना चाहिए। इससे पहले कि कोई भी व्यक्ति यीशु ख्रीष्ट पर भरोसा कर सके, उसे विश्वास करना होगा कि ख्रीष्ट वास्तव में उद्धारकर्ता है, कि वह वही है जो उसने कहा कि वह है। वास्तविक विश्वास कहता है कि विषय-वस्तु, *नोटिश्या*, सत्य है।

फिडुश्या व्यक्तिगत भरोसा और निर्भरता से सम्बन्ध रखता है। मसीही विश्वास की विषय-वस्तु को जानना और विश्वास करना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि दुष्टात्माएँ भी ऐसा कर सकती हैं (याकूब 2:19)। विश्वास तभी प्रभावी है यदि व्यक्ति उद्धार के लिए केवल ख्रीष्ट पर व्यक्तिगत रीति से भरोसा करे। किसी कथन के प्रति मानसिक स्वीकृति एक बात है परन्तु उस पर व्यक्तिगत रीति से भरोसा करना कुछ और ही बात है। हम कह सकते हैं कि हम केवल विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराए जाने पर विश्वास करते हैं और तौभी सोच सकते हैं कि हम अपनी उपलब्धियों, अपने कार्यों,

या अपने यत्न के द्वारा स्वर्ग पहुँचेंगे। विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराए जाने के सिद्धान्त को अपने सिरों में प्रवेश कराना सरल है, परन्तु इसको रक्तप्रवाह में इस रीति से प्रवेश कराना कठिन है कि हम उद्धार के लिए *केवल* ख्रीष्ट को थामें।

फिडुश्या में भरोसा के साथ एक और तत्त्व भी है, और वह है स्नेह। एक अपुनरुज्जीवित *(unregenerate)* व्यक्ति कभी भी यीशु के पास नहीं आएगा क्योंकि वह यीशु को नहीं चाहता है। अपने मस्तिष्क और हृदय में, वह परमेश्वर की बातों से आधारभूत रीति से शत्रुता की मुद्रा में है। जब तक एक व्यक्ति ख्रीष्ट का बैरी है, उसमें उसके लिए कोई स्नेह नहीं है। शैतान इसका उदाहरण है। शैतान सत्य को जानता है, परन्तु वह सत्य से घृणा करता है। वह परमेश्वर की आराधना करने के लिए पूर्ण रीति से अनिच्छुक है क्योंकि उसमें परमेश्वर के लिए कोई प्रेम नहीं है। हम स्वभाव से ऐसे ही हैं। हम अपने पाप में मृतक हैं। हम इस संसार की शक्तियों के अनुसार चलते हैं और शरीर की इच्छाओं को पूरा करते हैं। जब तक पवित्र आत्मा हमें परिवर्तित नहीं करता है, हमारे पास पत्थर के हृदय हैं। एक अपुनरुज्जीवित हृदय ख्रीष्ट के प्रति स्नेह रहित है; यह निर्जीव तथा प्रेम-रहित दोनों है। पवित्र आत्मा हमारे हृदयों की प्रवृत्ति को परिवर्तित करता है जिससे कि हम ख्रीष्ट की मधुरता को देखें और उसे ग्रहण करें। हम में से कोई भी ख्रीष्ट को सिद्धता से प्रेम नहीं करता है, परन्तु हम उससे तब तक प्रेम नहीं कर सकते हैं जब तक पवित्र आत्मा पत्थर के हृदय को परिवर्तित करके उसे माँस का हृदय न बना ले।

हृदय-परिवर्तन के फल

ईश्वरविज्ञानियों ने परम्परागत रीति से अनेक तत्त्वों को पहचाना है जो बचाने वाले विश्वास के साथ या उसके पश्चात् आते हैं। इन्हें "हृदय-परिवर्तन के फल" कहा जाता है। हम उनमें से कुछ को यहाँ देखेंगे।

मन फिराव (Repentance)

जब कोई व्यक्ति पवित्र आत्मा द्वारा विश्वास में लाया जाता है, तो वह एक हृदय-परिवर्तन का अनुभव करता है। उसका जीवन पलट जाता है। इस पलटने को "मन फिराव" कहा जाता है, और यह वास्तविक विश्वास का एक तात्कालिक फल है। कुछ लोग मन फिराव को वास्तविक विश्वास के भाग के रूप में सम्मिलित करते हैं। परन्तु, बाइबल मन फिराव और विश्वास में भेद करती है। हम में ख्रीष्ट के प्रति तब तक स्नेह नहीं हो सकता है जब तक हम न पहचानें और न मानें कि हम पापी हैं और हमें हमारे बदले उसके कार्य की अत्यन्त आवश्यकता है। मन फिराव में हमारे पाप के प्रति घृणा सम्मिलित है, जो उस नए स्नेह के साथ आती है जो हमें परमेश्वर के प्रति दिया जाता है।

मैं व्याकुल होता हूँ जब सेवकगण कहते हैं कि, "यीशु के पास आओ और तुम्हारे सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा।" मेरा जीवन तब तक जटिल नहीं था जब तक मैं एक मसीही

नहीं बना। मसीही होने से पहले, मैं एकपक्षीय मार्ग पर चलता था। मैं अभी भी इस संसार के प्रवाह द्वारा प्रलोभित होता हूँ, तौभी परमेश्वर ने मेरे हृदय में ख्रीष्ट के प्रति स्नेह और भरोसा रोपित किया है। दूसरे शब्दों में, हम मन फिराते हैं क्योंकि हम अपने पाप से घृणा करते हैं। हाँ, हमारा एक भाग अभी भी हमारे पाप से प्रेम करता है, परन्तु सच्चे मन फिराव में परमेश्वर का अपमान करने के कारण परमेश्वर की इच्छा के अनुसार दुःख और पाप से छूटने का संकल्प सम्मिलित होता है। मन फिराव का अर्थ पाप पर सम्पूर्ण विजय नहीं है। यदि सम्पूर्ण विजय अनिवार्य होती, तो कोई भी बचाया नहीं जाता। मन फिराव एक पलट जाना है, पाप के प्रति भिन्न दृष्टिकोण रखना है। "मन फिराव" के लिए यूनानी शब्द *मेटानोइया (metanoia)* का अक्षरशः अर्थ "मन का परिवर्तन" है। पहले, हम अपने पाप को सही ठहराते थे, परन्तु अब हम समझते हैं कि पाप एक दुष्ट बात है; हमारे पास उसके प्रति एक अलग मानसिकता है।

लेपालकपन (Adoption)

जब परमेश्वर हमें यीशु ख्रीष्ट में धर्मी घोषित करता है, वह हमें अपने घराने में गोद लेता है। उसका एक मात्र सच्चा पुत्र ख्रीष्ट है, परन्तु लेपालकपन के द्वारा ख्रीष्ट हमारा बड़ा भाई बन जाता है। कोई भी परमेश्वर के परिवार में जन्म नहीं लेता है। स्वभाव से हम क्रोध की सन्तान हैं, परमेश्वर की सन्तान नहीं; इसलिए, परमेश्वर स्वभाव से हमारा पिता नहीं है। परमेश्वर हमारा पिता तभी हो सकता है यदि वह हमें गोद लेता है, और वह केवल अपने पुत्र के कार्य के द्वारा हमें गोद लेगा। परन्तु जब हम अपने विश्वास और भरोसा को ख्रीष्ट पर रखते हैं, परमेश्वर न केवल हमें धर्मी घोषित करता है, वह लेपालकपन के द्वारा हमें अपना पुत्र और पुत्री भी घोषित करता है।

शान्ति (Peace)

पौलुस रोमियों को लिखता है, "इसलिए विश्वास से धर्मी ठहराए जाकर परमेश्वर से हमारा मेल *(शान्ति)* अपने प्रभु यीशु ख्रीष्ट के द्वारा है" (रोमियों 5:1)। धर्मी ठहराए जाने का प्रथम फल परमेश्वर के साथ मेल-मिलाप *(शान्ति)* है। हम शत्रु थे, परन्तु युद्ध समाप्त हुआ है। परमेश्वर उन सब के साथ मेल की सन्धि घोषित करता है जो ख्रीष्ट पर अपना भरोसा डालते हैं। जब वह ऐसा करता है, हम एक अस्थायी युद्धविराम में नहीं प्रवेश करते हैं, जैसे कि जब हम पहली बार कुछ अनुचित करें, तो परमेश्वर तलवार को खड़खड़ाने लगता है। यह मेल-मिलाप *(शान्ति)* एक अटूट, अनन्त मेल-मिलाप है क्योंकि यह ख्रीष्ट की सिद्ध धार्मिकता द्वारा अर्जित किया गया है।

परमेश्वर के पास पहुँच (Access to God)

पौलुस यह भी लिखता है, "[ख्रीष्ट] के द्वारा विश्वास से, उस अनुग्रह में जिसमें हम स्थिर हैं, हमने

प्रवेश पाया है, और परमेश्वर की महिमा की आशा में हम आनन्दित होते हैं" (रोमियों 5:2)। परमेश्वर तक पहुँच एक और फल है। परमेश्वर अपने शत्रुओं को अपने साथ घनिष्ट सम्बन्ध में नहीं आने देता है, परन्तु जब ख्रीष्ट के द्वारा परमेश्वर के साथ हमारा मेल-मिलाप हो जाता है, तो हमारे पास उसकी उपस्थिति में पहुँच है, और जो वह है हमारे पास उसकी महिमा में आनन्द है।

अध्याय 43

लेपालकपन और ख्रीष्ट के साथ मिलन

Adoption and Union with Christ

अपनी पहली पत्री में, प्रेरित यूहन्ना एक प्रेरितीय आश्चर्य का कथन कहता है: "देखो, पिता ने हमें कैसा महान् प्रेम प्रदान किया है कि हम परमेश्वर की सन्तान कहलाएँ; और वही हम हैं। इस कारण संसार हमें नहीं जानता, क्योंकि संसार ने उसे भी नहीं जाना। प्रियो, हम परमेश्वर की सन्तान हैं" (1 यूहन्ना 3:1-2)। हम यूहन्ना के लेखन में अचम्भे की भावना को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। यह तथ्य कि हम परमेश्वर की सन्तान हैं एक ऐसी बात है जिसे हम उचित महत्व नहीं देते हैं, परन्तु प्रेरितीय कलीसिया ने कभी भी ऐसा नहीं किया।

परमेश्वर की सन्तान

हम एक ऐसी संस्कृति में रहते हैं जो उन्नीसवीं शताब्दी में संसार के धर्मों के अध्ययन में रुचि से बहुत प्रभावित है। यात्रा क्षमता में उन्नति के परिणामस्वरूप, उस समय के लोग अन्य ऐसे धर्मों के विषय में जानकार हो गए जिनके विषय में वे पहले अनजान थे। विशेषकर जर्मनी में, तुलनात्मक धर्म के अध्ययन में रुचि की सनक थी। वास्तव में, तुलनात्मक धर्म एक नया शैक्षिक विभाग बन गया। इस समयकाल में नृविज्ञानियों, समाजशास्त्रियों, और ईश्वरविज्ञानियों ने विश्व के धर्मों की जाँच की और प्रत्येक धर्मों के सार तक पहुँचना और हिन्दुओं, मुसलमानों, मसीहियों, बौद्धधर्मियों, और अन्यों में समानताओं को खोजना चाहा।

उन विद्वानों में से एक अडॉल्फ वॉन हार्नाक *(Adolf von Harnack)* थे, जिन्होंने *डास वेसेन डेस क्रिस्टेन्टम्स* (Das Wesen des Christentums) शीर्षक की एक पुस्तक लिखी, जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद है *व्हाट इज़ क्रिस्टियैनिटी?-What Is Christianity? (मसीहियत क्या है?)।* इस पुस्तक में, उसने मसीहियत को सबसे आधारभूत विभाजक में घटाने का प्रयास किया जो वह अन्य धर्मों के साथ साझा करती है। उसने कहा कि मसीही विश्वास का सार दो आधार वाक्यों में पाया जाता है: परमेश्वर का विश्वव्यापी पितृत्व *(the universal fatherhood of God)* और मनुष्य का विश्वव्यापी बन्धुत्व *(the universal brotherhood of man)।* हार्नाक के निष्कर्ष के साथ समस्या यह है कि इनमें से एक भी अवधारणा बाइबल में सिखाई नहीं जाती है। जबकि परमेश्वर सब लोगों का सृष्टिकर्ता है, परमेश्वर का पितृत्व नए नियम में एक मौलिक *(radical)* अवधारणा है। इसी कारण से यूहन्ना अचम्भा के व्यवहार को व्यक्त करता है जब वह कहता है, "देखो, पिता ने हमें कैसा महान् प्रेम प्रदान किया है कि हम परमेश्वर की सन्तान कहलाएँ।"

जर्मनी के एक और विद्वान, जोकीम जेरेमियस *(Joachim Jeremias),* ने परमेश्वर के पितृत्व के पवित्रशास्त्रीय अवधारणा का अध्ययन किया। उसने ध्यान दिया कि प्राचीन यहूदी लोगों में, बच्चों को प्रार्थना में परमेश्वर को सम्बोधित करने के उचित उपायों को सिखाया जाता था। अनुमोदित शीर्षकों की लम्बी सूची में "पिता" सुस्पष्ट रीति से अनुपस्थित था। इसके विपरीत, जब हम नए नियम में आते हैं, तो हम देखते हैं कि यीशु द्वारा की गई लगभग प्रत्येक प्रार्थना में, उसने परमेश्वर को सीधे "पिता" के रूप में सम्बोधित किया। जेरेमियस ने आगे कहा कि मसीही समुदाय के बाहर, एक यहूदी द्वारा परमेश्वर को "पिता" सम्बोधित करते हुए प्रथम छपा हुआ उल्लेख इटली में दसवीं शताब्दी से था। दूसरे शब्दों में, यीशु द्वारा परमेश्वर को "पिता" सम्बोधित करना यहूदी रीति से एक मौलिक फिराव था, एक ऐसा तथ्य जिसने फरीसियों को क्रोधित किया क्योंकि उन्होंने इसे ईश्वरत्व के लिए अनकहा दावा समझा।

आज, परमेश्वर से "पिता" के रूप में प्रार्थना करने को अतिवादी नहीं माना जाता है। इससे भी आश्चर्यजनक यह है कि यीशु ने, प्रभु की प्रार्थना के देने में, अपने शिष्यों को निर्देश दिया कि पिता के लिए अपनी प्रार्थनाओं को सम्बोधित करें (मत्ती 6:9)। इसलिए न केवल यीशु ने परमेश्वर को "पिता" के रूप में सम्बोधित किया, उसने इस सौभाग्य को अपने शिष्यों को भी उपलब्ध कराया।

नए युग आन्दोलन *(New Age movement)* का वर्तमान के कुछ वर्षों में कलीसिया पर इतना प्रभाव हुआ है कि कुछ सेवक सिखाते हैं कि कोई भी सच्चा मसीही उतना ही परमेश्वर का देहधारण है जितना यीशु था। ऐसी शिक्षा उसके देहधारण में ख्रीष्ट की विशिष्टता का खण्डन करती है। ऐसे मसीहियों ने जो इस विचार को मानते हैं, परमेश्वर की सन्तान होने के महत्व को समझा

तो है परन्तु इसके साथ इतने अधिक उत्तेजित हो गए हैं कि वे ख्रीष्ट के पुत्रत्व की विशिष्टता को अस्पष्ट कर देते हैं।

ख्रीष्ट का पुत्रत्व नए नियम के लिए केन्द्रीय है। नए नियम में तीन बार परमेश्वर पिता स्वर्ग से बोलते हुए सुनाई देता है, और उन में से दो घटनाओं में वह यीशु के पुत्रत्व की घोषणा करता है: "यह मेरा प्रिय पुत्र है जिससे मैं अति प्रसन्न हूँ" (मत्ती 3:17; साथ में देखें मत्ती 17:5; यूहन्ना 12:28)। इसलिए हमें ख्रीष्ट के पुत्रत्व की विशिष्टता को संरक्षित रखने के लिए सावधान होना चाहिए। वास्तव में, उसे पिता का *मोनोगेनेस (monogenēs)*, "एकमात्र" कहा जाता है। यीशु के अनुसार, हम स्वभाव से परमेश्वर की सन्तान नहीं हैं; हम शैतान की सन्तान हैं। वह एकमात्र जन तो स्वयं यीशु ही है जो अपने आप को अंतर्निहित रीति से, या स्वभावतः परमेश्वर की सन्तान कह सकता है।

> वह जगत में था, और जगत उसके द्वारा उत्पन्न हुआ, और जगत ने उसे न पहचाना। वह अपनों के पास आया और उसके अपनों ने उसे ग्रहण नहीं किया। परन्तु जितनों ने उसे ग्रहण किया, उसने उन्हें परमेश्वर की सन्तान होने का अधिकार दिया, अर्थात् उन्हें जो उसके नाम पर विश्वास करते हैं—वे न तो लहू से, न शरीर की इच्छा से, और न मनुष्य की इच्छा से, परन्तु परमेश्वर से उत्पन्न हुए हैं (यूहन्ना 1:10-13)।

जिस यूनानी शब्द को 12 पद में "अधिकार" के रूप में अनुवाद किया गया है, वह "अधिकार" *(authority)* के लिए एक बलशाली शब्द है। यह वही शब्द है जिसे यीशु के लिए उसके समकालीन लोगों ने उपयोग किया जब उन्होंने कहा, "वह उन्हें शास्त्रियों के समान नहीं, वरन् अधिकार से उपदेश दे रहा था" (मरकुस 1:22)। हमें अद्भुत अधिकार दिया गया है क्योंकि हमें परमेश्वर को "पिता" कहने का अधिकार दिया गया है।

इसलिए हम यहाँ सीखते हैं कि परमेश्वर की सन्तान होना एक वरदान है। यह शारीरिक जन्म से अर्जित या ग्रहण नहीं किया जाता है। हम इसे कैसे प्राप्त करते हैं? पौलुस हमें बताता है:

> इसलिए हे भाइयो, हम शरीर के ऋणी नहीं कि शरीर के अनुसार जीवन व्यतीत करें—क्योंकि यदि तुम शरीर के अनुसार जीवन बिता रहे हो तो तुम्हें अवश्य मरना है, परन्तु यदि आत्मा के द्वारा शरीर के कार्यों को नष्ट कर रहे हो तो तुम जीवित रहोगे। क्योंकि वे सब जो परमेश्वर के आत्मा के द्वारा चलाए जाते हैं, वे परमेश्वर की सन्तान हैं। तुम ने दासत्व का आत्मा नहीं पाया है कि फिर भयभीत हो, परन्तु पुत्रों के समान लेपालकपन का आत्मा पाया है, जिस से हम 'हे अब्बा! हे पिता' कह कर पुकारते हैं। आत्मा स्वयं

> हमारी आत्मा के साथ मिल कर साक्षी देता है कि हम परमेश्वर की सन्तान हैं। यदि हम सन्तान हैं तो उत्तराधिकारी भी—परमेश्वर के उत्तराधिकारी और ख्रीष्ट के सह-उत्तराधिकारी जबकि हम वास्तव में उसके साथ दुःख उठाते हैं कि उसके साथ महिमा भी पाएँ। (रोमियों 8:12-17)

लेपालकपन के अधिकार

हम लेपालकपन के द्वारा परमेश्वर की सन्तान हैं, जो हमारे धर्मीकरण का एक फल है। जब परमेश्वर के साथ हमारा मेल-मिलाप होता है, तो वह हमें अपने परिवार में लाता है। कलीसिया एक परिवार है जिसमें एक पिता और एक पुत्र है, और परिवार के शेष सब लोग गोद लिए गए हैं। इसलिए हम ख्रीष्ट को अपने बड़े भाई के रूप में देखते हैं। हम परमेश्वर के उत्तराधिकारी बना दिए गए हैं और ख्रीष्ट के साथ सह-उत्तराधिकारी। परमेश्वर का सच्चा पुत्र वह सब उपलब्ध कराता है जो उसने उत्तराधिकार में प्राप्त किया। वह अपनी पूरी विरासत को अपने भाइयों और बहनों के साथ बाँटता है।

यह एक ऐसी बात है जिसे हमें कभी भी अल्प महत्व की बात नहीं समझना चाहिए। जब भी हम प्रार्थना करते हैं, "हे हमारे पिता," तो हमें आश्चर्य के साथ थरथराना चाहिए कि सब लोगों में से हम "परमेश्वर की सन्तान" कहलाए गए हैं। परमेश्वर के परिवार में कोई द्वितीय श्रेणी की सदस्यता नहीं है। यह उचित है कि हम परमेश्वर के स्वाभाविक पुत्र और परमेश्वर की लेपालक सन्तानों में भेद करें, परन्तु एक बार जब लेपालकपन हो जाता है, उसके परिवार में सदस्यता के स्तर में कोई भिन्नता नहीं है। वह अपनी सब सन्तानों को उत्तराधिकार का वह पूरा भाग देता है जो स्वाभाविक पुत्र का है।

पुत्र के रूप में अपने लेपालकपन में, हम ख्रीष्ट के साथ विश्वासी के रहस्यपूर्ण *(mystical)* मिलन का भी अनुभव करते हैं। जब हम किसी बात को "रहस्यपूर्ण" वस्तु के रूप में वर्णित करते हैं, तो हम कह रहे हैं कि वह स्वाभाविक से परे है और एक अर्थ में अकथनीय है। हम इस बात को यूनानी के दो पूर्वसर्गों *एन (en)* और *एईस (eis)* के अध्ययन के द्वारा समझ सकते हैं, जिन दोनों को "में" के रूप में अनुवादित किया जा सकता है। इन दो शब्दों में तकनीकी भिन्नता महत्वपूर्ण है। इस पूर्वसर्ग *एन* का अर्थ है "में" या "के भीतर," जबकि *एईस* पूर्वसर्ग का अर्थ है "उसमें।" जब नया नियम हमें प्रभु यीशु ख्रीष्ट पर विश्वास करने को कहता है, तो हम केवल उसके विषय में किसी बात पर विश्वास करने के लिए नहीं बुलाए गए हैं परन्तु *उसमें* विश्वास करने के लिए।

यदि हम किसी भवन के बाहर हैं, तो उसमें भीतर जाने के लिए हमें द्वार के माध्यम से जाना होगा। एक बार जब हम अवस्थांतर *(transition)* कर लेते हैं, एक बार जब हम बाहर से भीतर

चौखट को पार करते हैं, तो हम अन्दर होते हैं। भीतर प्रवेश करना *एईस* है, और जब हम भीतर हैं, हम *एन* हैं। यह भिन्नता महत्वपूर्ण है, क्योंकि नया नियम हमें कहता है कि हमें न केवल ख्रीष्ट *में* विश्वास करना है, परन्तु यह भी कि वे लोग जिनका विश्वास सच्चा है वे ख्रीष्ट *में* हैं। हम ख्रीष्ट में हैं, और ख्रीष्ट हम में है। प्रत्येक विश्वासी और स्वयं ख्रीष्ट में एक आत्मिक मिलन है।

इसके अतिरिक्त, हम सब सन्तों की रहस्यपूर्ण सहभागिता के भाग हैं। यह रहस्यपूर्ण सहभागिता उस पारलौकिक आत्मिक संगति का आधार है जिसका आनन्द प्रत्येक मसीही शेष सब मसीहियों के साथ उठाता है। इसके अतिरिक्त, इसका हम पर गहरा प्रभाव है। यदि आप और मैं दोनों ख्रीष्ट में हैं, हमारे मध्य एकता हमारे सम्बन्धों की समस्याओं से परे है। यह केवल एक सैद्धान्तिक अवधारणा नहीं है; उस परिवार का बन्धन उस बन्धन से भी अधिक दृढ़ है जिसका आनन्द हम अपने शारीरिक परिवार के साथ उठाते हैं। यह हमारे लेपालकपन का फल है।

अध्याय 44

पवित्रीकरण

Sanctification

जब मैं एक नया विश्वासी था, मैं बहुधा रॉबर्ट जे. लामॉन्ट *(Robert J. Lamont)* के रेडियो प्रचार को सुनता था। बाद में, जब मैं सेमिनरी में था, मुझे डॉ. लामॉन्ट से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ, और उस अवसर पर उन्होंने परिहास करते हुए मुझसे पूछा, "हे नवयुवक, तुम्हारे आँशिक रीति से पवित्रीकृत मस्तिष्क में क्या चल रहा है?"

मसीही विश्वास का अच्छा समाचार न केवल यह है कि हम किसी और की धार्मिकता के द्वारा धर्मी ठहराए जाते हैं, परन्तु यह भी है कि हमें परमेश्वर के द्वारा उसकी संगति में स्वीकृत होने के लिए तब तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है जब तक हम पूर्ण रीति से पवित्रीकृत न हो जाएँ। पवित्रीकरण, भले ही इस जीवन में जितना भी आँशिक क्यों न हो, यह वास्तविक है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा धर्मी घोषित किए गए लोग पवित्र बनाए जाते हैं। परमेश्वर के सामने हमारा स्थान किसी और की धार्मिकता के आधार पर है; परन्तु, जिस क्षण हम धर्मी ठहराए जाते हैं, पवित्र आत्मा के द्वारा हम में एक वास्तविक परिवर्तन किया जाता है, जिससे कि हम धीरे-धीरे ख्रीष्ट की समानता में बनाए जाते हैं। पवित्रता और धार्मिकता की ओर हमारा परिवर्तन तुरन्त आरम्भ होता है।

निश्चित पवित्रीकरण

हमने पहले ध्यान दिया था कि धर्मीकरण केवल विश्वास के द्वारा होता है, परन्तु ऐसे विश्वास के द्वारा नहीं जो अकेला है। दूसरे शब्दों में, यदि सच्चा विश्वास उपस्थित है, तो व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव में परिवर्तन होता है जो अपने आप को भले कार्यों में प्रकट करता है। धर्मीकरण का फल पवित्रीकरण है जो एक आवश्यक और अनिवार्य परिणाम है। यह सत्य उन लोगों के लिए चेतावनी के रूप में कार्य करता है जो इस दृष्टिकोण को मानते हैं कि बिना अच्छे फल लाए और व्यवहार में

परिवर्तन के यह सम्भव है कि लोग ख्रीष्ट में परिवर्तित हो सकते हैं। यह तो "शारीरिक मसीही" *(carnal Christian)* का विचार है।

निस्सन्देह ही एक अर्थानुसार मसीही लोग अपने जीवन भर शारीरिक हैं; अर्थात् हम इस जीवन में कभी भी शरीर के प्रभाव को पूर्ण रीति से पराजित नहीं करते हैं। हमें अपने शरीर के साथ तब तक संघर्ष करना होगा जब तक हम महिमा में प्रवेश न करें। किन्तु, यदि कोई व्यक्ति पूर्ण रीति से शरीर में है जिससे कि व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन का कोई प्रमाण नहीं है, तो यह व्यक्ति एक शारीरिक मसीही नहीं परन्तु एक शारीरिक ग़ैरमसीही है। कुछ लोग सुसमाचार प्रचार द्वारा हृदय-परिवर्तित लोगों की संख्या को बढ़ाने के लिए इतने उत्साही होते हैं कि वे इस विचार से घृणा करते हैं कि कुछ लोग विश्वास के झूठे अँगीकार करते हैं। परन्तु यदि कोई व्यक्ति विश्वास का अँगीकार करता है फिर भी किसी भी प्रकार का फल नहीं लाता है, तो उसका वास्तविक हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ था। हम विश्वास के *अँगीकार (profession)* के द्वारा नहीं परन्तु विश्वास को *अपनाने (possession)* के द्वारा धर्मी ठहराए जाते हैं। जहाँ विश्वास सच्चा है, उस विश्वास का फल तुरन्त प्रकट होने लगता है। एक हृदय-परिवर्तित व्यक्ति के लिए यह असम्भव है कि वह बिना परिवर्तन का जीवन जीए। नए स्वभाव की उपस्थिति—अन्तर्वासी पवित्र आत्मा का सामर्थ्य—संकेत करता है कि हम वास्तव में ऐसे लोग हैं जो परिवर्तित हुए हैं और परिवर्तित हो रहे हैं।

इसके साथ ही, हृदय-परिवर्तन के आरम्भिक बिन्दु से महिमा में हमारे घर जाने तक, पवित्रीकरण एक सीधी रेखा में प्रगति नहीं करता है। अधिकाँशतः, मसीही जीवन में नियमित विकास होता है, परन्तु उसमें ऊँचाईयाँ और घाटियाँ भी होती हैं। ऐसे अवसर हो सकते हैं जब एक मसीही लम्बे समय के लिए पाप में बुरी रीति से गिर जाए। वास्तव में, मसीही लोग इतने घोर पाप में गिर सकते हैं कि उन्हें कलीसियाई अनुशासन का सामना करना पड़ सकता है और उन्हें बहिष्कृत भी किया जा सकता है। कभी-कभी विश्वास से पीछे हटने वाले व्यक्ति को पुनःस्थापित करने के लिए बहिष्करण *(excommunication)* आवश्यक होता है, जो कि अनुशासन का अन्तिम चरण है। यह ध्यान में रखते हुए, जैसे-जैसे हम आत्मिक शिशुपन से आत्मिक वयस्कता की ओर बढ़ते हैं, ऊँचाईयाँ और घाटियाँ चौरस होती जाती हैं। हमारी आत्मिक ऊँचाईयाँ कम तीव्र होती हैं, परन्तु घाटियाँ में हमारा गिरना भी कम तीव्र होता है। एक रीति से देखा जाए तो हम अपने मसीही विकास और संगति में अधिक स्थिर हो जाते हैं।

वह कार्य करना जिसमें परमेश्वर सक्रिय है

बहुत कलीसियाएँ हैं जो सिद्धतावाद *(perfectionism)* के विभिन्न रूपों को सिखाती हैं, और उन विचारों से ही निकटता से जुड़े हुए वे आन्दोलन हैं जो पवित्र आत्मा के साथ गहरे-जीवन का अनुभव या गहरी संगति के द्वारा पवित्रीकरण के एक तात्कालिक वृद्धि की प्रतिज्ञा करते हैं। यद्यपि

इन आन्दोलनों के कई अनुयायी पूर्णता से सिद्धतावाद को नहीं सिखाते हैं, किन्तु वे दो प्रकार के मसीहियों की बात अवश्य करते हैं: ऐसे लोग, जो सामान्य विकास प्रक्रिया में हैं और ऐसे लोग जिन्होंने पवित्र आत्मा के साथ गहरे अनुभव के द्वारा अपने पवित्रीकरण में एक तात्कालिक विकास का अनुभव किया है। मैं किसी भी रीति से पवित्र आत्मा के साथ गहनता से चलने की खोज करने से किसी को भी निरुत्साहित नहीं करना चाहता हूँ; यह एक ऐसी बात है जिसकी खोज हमें सर्वदा करनी चाहिए। परन्तु पवित्रशास्त्र कहीं भी यह नहीं सिखाता है कि हमें पवित्र आत्मा के विशेष अनुभव के माध्यम से पाप से तत्काल उपचार की या एक विजयी मसीही जीवन की अपेक्षा करनी चाहिए।

थॉमस ए केम्पिस *(Thomas à Kempis)*, जिसने *ख्रीष्ट का अनुसरण (The Imitation of Christ)* नामक पुस्तक लिखी, जो पवित्रीकरण के विषय में एक उत्कृष्ट मसीही लेखनी बनी हुई है, उसने कहा कि यह तो दुर्लभ बात है कि कोई मसीही अपने पूरे जीवन काल में एक भी बुरे व्यसन को तोड़ पाए। ऐसे कई समय हैं जब प्रत्येक मसीही पूछता है, “मैं एक मसीही कैसे हो सकता हूँ जो अपने शरीर से अभी भी संघर्ष करता है?” यदि हम लम्बे समय से परमेश्वर के साथ चलते आ रहे हैं, तो हम अपने मसीही जीवन को पलटकर देखने में और यह पहचानने में सान्त्वना प्राप्त कर सकते हैं कि परमेश्वर हमें मसीही विश्वास में पुनःआकार दे रहा है और हमें वास्तविक प्रगति देता आ रहा है। फिर भी, आत्मिक परिपक्वता में आकार पाना और लाया जाना एक लम्बे समय का अनुभव है। हम तत्काल सन्तुष्टि की खोज करते हैं। हम तो यह जानना चाहते हैं कि हम तीन सरल चरणों में कैसे पवित्रीकृत हो सकते हैं, किन्तु ऐसे तीन सरल चरण तो हैं ही नहीं। पवित्रीकरण एक जीवन भर की प्रक्रिया है जिसमें बहुत अधिक मात्रा में कठिन परिश्रम सम्मिलित है।

पौलुस लिखता है: “इसलिए मेरे प्रियो, जिस प्रकार तुम सदैव आज्ञा पालन करते आए हो, न केवल मेरी उपस्थिति में परन्तु अब उस से भी अधिक मेरी अनुपस्थिति में डरते और काँपते हुए अपने उद्धार का काम पूरा करते जाओ, क्योंकि स्वयं परमेश्वर अपनी सुइच्छा के लिए तुम्हारी इच्छा और कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए तुम में सक्रिय है” (फिलिप्पियों 2:12-13)। पौलुस हमें अपने उद्धार का कार्य पूरा करने के लिए कहता है, जो वास्तव में धार्मिकता का पीछा करने में सत्यनिष्ठा की बुलाहट है। यह तो एक कार्य है, और इसलिए पवित्रीकरण और आत्मिक परिपक्वता की खोज करने वाले मसीही को सक्रिय होना चाहिए। पौलुस हमें यह भी कहता है कि हमें यह “डरते और काँपते” हुए करना चाहिए। उसका अर्थ यह नहीं है कि हमें शक्तिहीन चिन्ता की स्थिति में होना चाहिए। इसके विपरीत, वह उस वातावरण का वर्णन कर रहा है जिसमें हमें अपने उद्धार के कार्य को पूरा करना है। पवित्रीकरण की खोज में व्यक्ति सुस्त नहीं पड़ सकता है, मानो कि बिना किसी प्रयत्न के पवित्र आत्मा हमें उठाए लिए जा रहा हो। हमें परमेश्वर को प्रसन्न करने का प्रयास करना चाहिए।

जैसा कि पौलुस बताता है, अच्छा समाचार यह है कि हम ऐसा इसलिए कर सकते हैं क्योंकि परमेश्वर हम में हमारी इच्छा और कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए सक्रिय है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें एक वास्तविक सहक्रियता *(synergism)*, एक सहकारिता *(cooperation)* है। पवित्रीकरण एक सहकारी प्रक्रिया है जिसमें परमेश्वर कार्य करता है और हम भी कार्य करते हैं। पवित्र आत्मा का एक प्रमुख कार्य हमारे छुटकारे का लागूकरण है। वह हमारे प्राणों में हमारे धर्मीकरण के फल को लाता है। वह हमारे स्वयं के स्वभाव को परिवर्तित करने के लिए हमारे भीतर कार्य करता है, और हम उसके साथ सहयोग करते हैं।

पवित्रीकरण के विधर्मी विचार

यह आश्चर्य करने वाली दो विधर्मताओं के जोड़ों को प्रस्तुत करता है जिन्होंने पूरे इतिहास में कलीसिया को संकट में डाला है। इनमें से पहला जोड़ा सक्रियतावाद *(activism)* और नैष्कर्म्यवाद *(quietism)* है। सक्रियतावाद स्व-धार्मिकता की विधर्मता है जिसमें लोग पवित्रीकरण को अपने प्रयासों से अर्जित करने का प्रयास करते हैं। नैष्कर्म्यवाद की त्रुटि सत्रहवीं शताब्दी में फ्रान्सीसी रहस्यवादियों *(mystics)* द्वारा प्रचलन में लाई गई थी। नैष्कर्म्यवाद के समर्थक मानते हैं कि पवित्रीकरण पूर्णतः केवल पवित्र आत्मा का ही कार्य है। मसीहियों को उसके विषय में अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं है; जब पवित्र आत्मा सब कार्य करता है, तो उन्हें केवल शान्त होना चाहिए और मार्ग से हट जाना चाहिए। एक अर्थानुसार वे यह कहते हैं कि, “छोड़ दो और परमेश्वर को करने दो।” अवश्य ही ऐसे समय हैं जब छोड़ना आवश्यक है। यदि हम अपने सामर्थ्य को बहुत अधिक पकड़े रहते हैं और पवित्र आत्मा की सहायता पर निर्भर नहीं होते हैं, तो अवश्य ही वह समय शान्त होने का समय है। फिर भी हमें इस प्रकार के नैष्कर्म्यवाद को नहीं अपनाना चाहिए जो सब कार्य को परमेश्वर पर छोड़ने का प्रयास करता है।

पवित्रीकरण के सिद्धान्त का पीछा करने वाली विधर्मता की एक अन्य जोड़ी है व्यवस्थाविरोधीवाद *(antinomianism)* और व्यवस्थावाद *(legalism)*। बहुत ही कम कलीसियाएँ हैं जो इन कुरूपताओं में से एक न एक से, या कभी-कभी दोनों से भी गम्भीर रूप से ग्रसित नहीं हुई हैं। व्यवस्थावादीगण पवित्रीकरण के लिए परमेश्वर की व्यवस्था को इतना महत्वपूर्ण समझते हैं कि वे व्यवस्था में जोड़ते हैं। उनके पवित्रीकरण में सहायता करने के लिए, वे उन क्षेत्रों में नियम बनाने का प्रयास करते हैं जहाँ परमेश्वर ने मनुष्यों को स्वतन्त्र छोड़ा है। वे ऐसे नियमों और अधिनियमों को बनाया करते हैं, जैसे कि मसीहियों को नाचने या चलचित्र देखने से मना करना। जहाँ परमेश्वर ने नियम नहीं बनाए हैं, व्यवस्थावादी अन्य लोगों को बन्धनों में बाँधते हैं और अन्ततः परमेश्वर की वास्तविक व्यवस्था को मनुष्य द्वारा बनाई गई व्यवस्थाओं से प्रतिस्थापन्न करते हैं।

दूसरी चरम स्थिति व्यवस्थाविरोधीवाद है, जो यह दावा करता है कि परमेश्वर की व्यवस्था का मसीही जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। व्यवस्थाविरोधवादी कहते हैं कि क्योंकि मसीही अनुग्रह के अधीन हैं, तो इसलिए उन्हें परमेश्वर की व्यवस्था को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

यह विधर्मता तीव्रता से फैल रही है। वास्तव में, हम कलीसिया में व्यापक व्यवस्थाविरोधीवाद के युग में जी रहे हैं। एक सच्चा ईश्वरभक्त व्यक्ति समझता है कि वह अब व्यवस्था के दासत्व में नहीं है, फिर भी वह परमेश्वर की व्यवस्था से प्रेम करता है और दिन-रात उस पर मनन करता है क्योंकि वह उसी में इस बात को पाता है कि परमेश्वर को क्या प्रसन्न करता है और परमेश्वर के चरित्र को क्या प्रतिबिम्बित करता है। परमेश्वर की व्यवस्था से भागने के स्थान पर, सत्यनिष्ठा से धार्मिकता और पवित्रीकरण की खोज करने वाला व्यक्ति उसका गम्भीर छात्र बन जाता है।

अध्याय 45

सन्तों का डटे रहना

Perseverance of the saints

सच में हृदय-परिवर्तित लोग क्या अपने उद्धार को खो सकते हैं? मुझसे बहुधा उन लोगों के द्वारा यह प्रश्न नियमित रूप से पूछा जाता है, जो युवाओं को उस विश्वास को त्यागते हुए देखते हैं जिसमें वे बढ़ाए गए थे। परन्तु जिन लोगों के पास सच्चा विश्वास है, वे उसे कभी नहीं खो सकते हैं; जो लोग अपने विश्वास को खोते हैं, उनके पास वह कभी था ही नहीं। जैसे यूहन्ना ने लिखा, "वे निकले तो हम ही में से, परन्तु वास्तव में हम में से नहीं थे; क्योंकि यदि वे हम में से होते तो हमारे साथ रहते; परन्तु वे निकल इसलिए गए कि यह प्रकट हो जाए कि वे सब हम में से नहीं हैं" (1 यूहन्ना 2:19)।

ऐसे लोग भी हैं जो विश्वास का अँगीकार तो करते हैं और कलीसिया के जीवन में या किसी मसीही संस्था में गहरी रीति से सम्मिलित हो जाते हैं, और तदुपरांत कलीसिया से निकल जाते हैं और उस विश्वास को त्याग देते हैं जिसका उन्होंने अँगीकार किया था। ख्रीष्ट के प्रति वास्तविक हृदय-परिवर्तन किए बिना, संस्थाओं के प्रति परिवर्तित होना सरल है। इस प्रकार की सेवाएँ हैं जो मसीहियत को आकर्षक बनाने में कुशल हैं जिससे कि लोग भीड़ की भीड़ में जुड़ते हैं, परन्तु जुड़ने वाले कभी ख्रीष्ट या पाप से व्यवहार किए बिना ही ऐसा करते हैं। यीशु ने एक दृष्टान्त सुनाया जो इस बात से सीधी रीति से जुड़ा हुआ है:

> देखो, एक बोनेवाला बीज बोने निकला। बोते समय कुछ बीज मार्ग के किनारे गिरे और चिड़ियों ने आकर उन्हें चुग लिया। कुछ पथरीली भूमि पर गिरे जहाँ उन्हें अधिक मिट्टी नहीं मिली; और गहरी मिट्टी न होने के कारण वे शीघ्र उग आए। परन्तु सूर्य उदय होने पर

> वे झुलस गए और जड़ न पकड़ने के कारण सूख गए। और अन्य बीज कंटीली झाड़ियों में गिरे और झाड़ियों ने बढ़कर उन्हें दबा दिया। परन्तु कुछ बीज अच्छी भूमि पर गिरे और फल लाए, कोई सौ गुणा, कोई साठ गुणा और कोई तीस गुणा। (मत्ती 13:3-8)

इस दृष्टान्त का बिन्दु यह है कि केवल वही बीज जो अच्छी भूमि में बोए गए थे बने रहेंगे और वह अच्छी भूमि वह रूपान्तरित प्राण है जिसे पवित्र आत्मा के द्वारा पुनरुज्जीवित किया गया है।

दो दृष्टिकोण

सन्तों के डटे रहने *(perseverance)* का सिद्धान्त सीधी रीति से इस प्रश्न को सम्बोधित करता है कि क्या मसीही अपने उद्धार को खो सकते हैं। रोमन कैथोलिक कलीसिया का उत्तर है, हाँ। रोमन कैथोलिक ईश्वरविज्ञानी मानते हैं कि लोग प्राणघातक *(mortal)* पाप करने के द्वारा अपने उद्धार को खो सकते हैं और खोते भी हैं, जैसा कि हमने एक पिछले अध्याय में ध्यान दिया था, कि वह एक ऐसा पाप है जो प्राण में धर्मी ठहराने वाले अनुग्रह को मारता है या नष्ट करता है, जिससे कि एक पापी के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह कायाक्लेश *(penance)* की विधि के द्वारा पुनः धर्मी ठहराया जाए। यदि पापी पुनः धर्मी नहीं ठहराया जाता है, तो वह अपने उद्धार को खो सकता है और नरक जा सकता है। बहुत से अर्ध-पलेजियसवादी *(semi-Pelagians)* भी यह विश्वास करते हैं कि लोग अपने उद्धार को खो सकते हैं।

सन्तों के डटे रहने की शिक्षा पर धर्मसुधारवादी लोग, चुनाव के सिद्धान्त से निकले एक तार्किक परिणाम के रूप में विश्वास करते हैं। यदि परमेश्वर सनातनकाल से लोगों का चुनाव करता है, तो निस्सन्देह चुने हुए लोग सर्वदा के लिए चुने हुए बने रहेंगे। परन्तु, यद्यपि सन्तों के डटे रहने का सिद्धान्त चुनाव के सिद्धान्त का एक उपसिद्धान्त है, केवल किसी एक सिद्धान्त से तार्किक परिणाम या निष्कर्ष के आधार पर ईश्वरविज्ञान का निर्माण करना संकटपूर्ण है।

फिलिप्पियों के लिए, पौलुस ने लिखा:

> जब कभी मैं तुम्हें स्मरण करता हूँ, अपने परमेश्वर को धन्यवाद देता हूँ, तथा आनन्द के साथ तुम्हारे लिए सदा प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि पहले ही दिन से आज तक तुम सुसमाचार में मेरे सहभागी रहे हो। मुझे इस बात का निश्चय है कि जिसने तुम में भला कार्य आरम्भ किया है, वही उसे ख्रीष्ट यीशु के दिन तक पूर्ण करेगा। (फिलिप्पियों 1:3-6)

यहाँ पौलुस अपने प्रेरितीय भरोसे को व्यक्त करता है कि जिस कार्य को ख्रीष्ट ने आरम्भ किया, ख्रीष्ट उसे पूरा करेगा। ख्रीष्ट को हमारे “विश्वास का कर्ता और सिद्ध करने वाला” कहा जाता है (इब्रानियों 12:2)। हम ख्रीष्ट की सृष्टि हैं और जब वह किसी व्यक्ति को अपने स्वरूप में ढालता है, तब ख्रीष्ट को अन्त में उस उत्पाद (व्यक्ति) को फेंकना नहीं पड़ता है।

क्या उद्धार खोया जा सकता है?

परन्तु पवित्रशास्त्र में ऐसे खण्ड हैं जो यह संकेत करते हुए प्रतीत होते हैं कि लोग अपने उद्धार को खो सकते हैं और खोते भी हैं। स्वयं पौलुस ने कहा, “परन्तु मैं अपनी देह को यन्त्रणा देकर वश में रखता हूँ, कहीं ऐसा न हो कि मैं औरों को प्रचार करके स्वयं अयोग्य ठहरूँ” (1 कुरिन्थियों 9:27)। पवित्रशास्त्र का एक और महत्वपूर्ण खण्ड जो सम्भवतः उद्धार के खोए जाने से सम्बन्धित है, वह इब्रानियों की पुस्तक में पाया जाता है:

> इसलिए हम ख्रीष्ट के विषय में प्रारम्भिक शिक्षा को छोड़ कर सिद्धता की ओर बढ़ते जाएँ और मरे हुए कार्यों से मन फिराने, परमेश्वर पर विश्वास करने, बपतिस्मों और हाथ रखने तथा मरे हुओं के जी उठने और अनन्त न्याय की शिक्षा की नींव फिर से न डालें। यदि परमेश्वर चाहे तो हम ऐसा ही करेंगे। क्योंकि जो लोग एक बार ज्योति पा चुके हैं और स्वर्गिक वरदान का स्वाद चख चुके हैं तथा पवित्र आत्मा के भागी बनाए गए हैं, और परमेश्वर के उत्तम वचन का तथा आने वाले युग की सामर्थ्य का स्वाद चख चुके हैं, यदि वे भटक जाएँ तो उन्हें मन-परिवर्तन के लिए फिर से नया बनाना असम्भव है, क्योंकि वे अपने लिए परमेश्वर के पुत्र को पुनः क्रूस पर चढ़ाते हैं और खुलेआम उसका अपमान करते हैं। (इब्रानियों 6:1-6)

यहाँ हमारे पास एक गम्भीर चेतावनी है: ख्रीष्ट को पुनः क्रूस पर चढ़ाने वालों को उद्धार में पुनः स्थापित करना असम्भव है। यह खण्ड बहुत भयाकुलता *(consternation)* का कारण रहा है। यह परमेश्वर द्वारा अपने सन्तों को बनाए रखने के विषय में उन सब बातों के विपरीत जाते हुए प्रतीत होता है जिनकी शिक्षा नया नियम देता है।

बहुत से लोग विश्वास करते हैं कि इब्रानियों के लेखक के मन में कलीसिया के अपुनरुज्जीवित *(unregenerate)* सदस्य हैं। यीशु ने कहा कि उसकी कलीसिया गेहूँ और जँगली घास से भरी

होगी, और एक मिश्रित झुण्ड होगी (मत्ती 13:24-30)। लोग अवश्य कलीसिया में जुड़ते हैं और फिर उसका खण्डन करते हैं; उस अर्थ में, वे धर्मत्यागी *(apostate)* बनते हैं। वे पहले के विश्वास के अँगीकार से पीछे हटते हैं। फिर भी हमारे पास यह प्रश्न बना रहता है कि क्या लेखक उन लोगों की बात कर रहा था जिनका आरम्भिक विश्वास का अँगीकार वास्तविक था या उन लोगों की जो दृश्य वाचा के समुदाय में थे परन्तु वे कभी भी सच में हृदय-परिवर्तित नहीं थे।

ऐसे लोगों को "एक बार ज्योति पा चुके" के रूप में वर्णित किया गया है, परन्तु किस स्तर तक ज्योति पा चुके थे? ज्योति पा चुके में अहृदयपरिवर्तित *(unconverted)* लोग सम्मिलित हो सकते हैं जो कलीसिया में आते हैं और वहाँ पवित्रशास्त्र के पढ़े जाने और प्रचार किए जाने को सुनते हैं। इब्रानियों का लेखक ज्योति पाए हुओं के लिए कहता है कि वे "स्वर्गिक वरदान का स्वाद चख चुके हैं तथा पवित्र आत्मा में भागी बनाए गए हैं और परमेश्वर के उत्तम वचन का स्वाद चख चुके हैं।" यह कलीसिया में भाग लेने वालों पर चाहे हृदय परिवर्तन हुआ हो या नहीं हुआ हो, लागू होता है। कलीसिया में भाग लेने वाले वास्तविक रूप में संस्कारों *(sacraments)* का स्वाद लेते हैं और परमेश्वर के वचन को सुनते हैं—उन्हें मसीही विश्वास की पद्धति पूर्ण रूप से सिखाई जाती है। तो "ज्योति पा चुके" कलीसिया के ऐसे सदस्य हो सकते हैं जिनका कभी भी हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ था।

परन्तु, मैं विश्वास करता हूँ कि इब्रानियों का लेखक केवल कलीसिया के सदस्यों का वर्णन नहीं कर रहा है परन्तु वास्तविक विश्वासियों का वर्णन कर रहा है क्योंकि जो कोई भी सच में मन फिराता है वह तो एक पुनरुज्जीवित व्यक्ति है। एक झूठा मन फिराव भी होता है जैसे कि पुराने नियम में एसाव के मन फिराव की नाईं, परन्तु वास्तविक मन फिराव पुनरुज्जीवन के फलस्वरूप वास्तविक नवीनीकरण को लाता है। अतः क्योंकि पत्री कहती है कि लोगों को मन फिराव के लिए पुनः नया बनाना असम्भव है, यह स्पष्ट रीति से संकेत करता है कि एक समय ऐसा था जब ये लोग मन फिराव के द्वारा नये बनाए गए थे, इस प्रकार से यह संकेत करता है कि विश्वासियों की बात हो रही है।

तौभी, मैं यह नहीं विश्वास करता हूँ कि यह खण्ड सन्तों के डटे रहने के सिद्धान्त को ध्वस्त करता है। हमें सोचना चाहिए कि लेखक ने यह गम्भीर चेतावनी क्यों दी। हम नहीं जानते हैं कि इब्रानियों की पत्री को किसने लिखा या यह क्यों लिखी गई, परन्तु जिस मण्डली को यह लिखी गई थी, उसके सामने एक गम्भीर समस्या थी। विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि समस्या सताव की थी और उसके कारण विश्वासी अपने विश्वास को नकार रहे थे। यह एक सम्भावना है। इसके अतिरिक्त, पहली शताब्दी की कलीसिया ने यहूदीवादियों *(Judaizers)* की विधर्मता का सामना किया था, जिसने आरम्भिक कलीसिया को विघटित कर दिया। नए नियम की अन्य पुस्तकों के

समान गलातियों के लिए पौलुस की पत्री इस विषय को सम्बोधित करती है। यहूदीवादी दबाव डालते थे कि ग़ैरयहूदी नए विश्वासियों को ख़तना सहित पुराने नियम के यहूदीवाद को अपनाना होगा। पौलुस ने साहस के साथ उस शिक्षा का विरोध किया। उसने गलातियों को लिखा:

> परन्तु जो लोग व्यवस्था के कामों पर निर्भर हैं, वे शाप के अधीन हैं, क्योंकि लिखा है, "जो कोई व्यवस्था की पुस्तक में लिखी सभी बातों का पालन नहीं करता, वह शापित है।" इसलिए यह स्पष्ट है कि व्यवस्था द्वारा परमेश्वर की दृष्टि में कोई धर्मी नहीं ठहरता, क्योंकि "धर्मी जन विश्वास से जीवित रहेगा।" परन्तु विश्वास से व्यवस्था का कोई सम्बन्ध नहीं। इसके विपरीत, "जो उसकी बातों का पालन करेगा वह उनके कारण जीवित रहेगा।" ख्रीष्ट ने व्यवस्था के शाप से हमें मूल्य चुका कर छुड़ाया, और स्वयं हमारे लिए शापित बना, क्योंकि लिखा है, "जो कोई काठ पर लटकाया जाता है वह शापित है।" यह इसलिए हुआ कि अब्राहम की आशीष ख्रीष्ट यीशु में ग़ैरयहूदियों तक पहुँचे और हम विश्वास के द्वारा उस आत्मा को प्राप्त करें जिसकी प्रतिज्ञा की गई है। (गलातियों 3:10-14)

प्रेरितीय समुदाय ने *असंगति-प्रदर्शन* तर्क का उपयोग करते हुए अच्छी रीति से तर्क किया; दूसरे शब्दों में वे अपने विपक्षियों के आधार वाक्यों *(premises)* को यह दिखाने के लिए उनके तार्किक निष्कर्ष तक ले जाते थे कि ये केवल अनर्थकता की ओर ले जाते हैं। यदि इब्रानियों 6 में यहूदीवादी विधर्मता की बात चल रही है, तो इब्रानियों का लेखक वैसे ही लिख रहा है जैसे पौलुस ने गलातियों को लिखा। वह कह रहा है कि यदि उसके पाठक पुनः ख़तना की ओर जाना चाहते थे, तो एक रीति से देखा जाए वे ख्रीष्ट के पूरे किए गए कार्य की निन्दा कर रहे थे और यदि उन्होंने ख्रीष्ट के पूरे किए गए कार्य की निन्दा की, तो भला वे कैसे बचाए जा सकते थे? उनके पास बचने का कोई मार्ग नहीं होता, क्योंकि वे लौटकर पुरानी विधि को अपना रहे थे, जिससे पुनःस्थापित होने की कोई सम्भावना नहीं रहती है। मैं सोचता हूँ कि इब्रानियों का लेखक इस प्रकार की *असंगति-प्रदर्शन* तर्क का उपयोग कर रहा है; मैं सोचता हूँ कि इसे 9 पद में देखा जा सकता है: "परन्तु प्रियो, *यद्यपि हम इस प्रकार कहते हैं*, फिर भी हमें तुम्हारे विषय में इस से भी उत्तम बातों का अर्थात् उद्धार सम्बन्धी बातों का निश्चय है" (इब्रानियों 6:9)। लेखक यहाँ स्पष्ट कर देता है कि उद्धार से सम्बन्धित उसके शब्द, अभिव्यक्ति का एक प्रकार है। अन्तिम विश्लेषण में, वह उन के लिए उत्तम बातों के लिए निश्चित है, ऐसी बातें जो उद्धार के साथ आती हैं और उद्धार के साथ तो डटे रहना ही आता है।

ख्रीष्ट के द्वारा सुरक्षित

कोई भी मसीही गम्भीर और मौलिक पतन की क्षमता रखता है। प्रश्न यह है कि क्या एक सच्चा विश्वासी एक पूर्ण तथा अन्तिम पतन में गिर सकता है। यहूदा प्रेरितीय समुदाय का सदस्य था, यीशु ख्रीष्ट का शिष्य था, फिर भी यहूदा ने चाँदी के तीस सिक्कों के लिए ख्रीष्ट को पकड़वाया और फिर उसने जाकर फाँसी लगाई। यीशु ने कहा कि यहूदा आरम्भ से एक शैतान था (यूहन्ना 6:70)। उसने उसके विश्वासघात की बात को पहले ही बतलाया था: "मैं तुमसे सच सच कहता हूँ, कि तुम में से एक मुझे पकड़वाएगा" (यूहन्ना 13:21)। फिर उसने यहूदा को यह कहते हुए विश्वासघाती के रूप में पहचाना, "जो तू करता है, तुरन्त कर" (27 पद)। उसी समय, वह पतरस के नकारने को भी बतलाता है, जिस बात का पतरस ने उत्साह के साथ खण्डन किया। यीशु ने उसे देखकर कहा, "शमौन, हे शमौन, देख! शैतान ने तुम लोगों को गेहूँ के समान फटकने के लिए आज्ञा माँग ली है, परन्तु मैंने तेरे लिए प्रार्थना की है कि तेरा विश्वास चला न जाए। अतः जब तू फिरे तो अपने भाइयों को स्थिर करना" (लूका 22:31-32)। यीशु ने शमौन पतरस से यह नहीं कहा, "*यदि* तू फिरे"; उसने कहा, "*जब* तू फिरे।" शमौन ख्रीष्ट का था। वह भयानक रीति से गिरा, परन्तु ख्रीष्ट की मध्यस्थता का कार्य कार्यरत था इसलिए शमौन खोया नहीं गया।

अपनी महायाजकीय प्रार्थना में यीशु ने न केवल अपने शिष्यों के लिए प्रार्थना की परन्तु उन सब के लिए जो विश्वास करेंगे—जिसमें हम सम्मिलित हैं—कि वे खो न जाएँ (यूहन्ना 17:11, 15, 24)। सन्तों के डटे रहने में हमारा भरोसा शरीर पर आधारित नहीं है। हमें पतरस के जैसे नहीं होना चाहिए, जो अपनी सामर्थ्य पर इतना भरोसा रखता था कि उसने कहा कि वह कभी भी अपने प्रभु को नहीं नकारेगा। हम विश्वास में केवल एक कारण से डटे हैं क्योंकि परमेश्वर हमें संरक्षित करता है। यदि हमें स्वयं पर छोड़ दिया जाता, तो हम किसी भी क्षण गिर सकते हैं; शैतान हमें गेहूँ के समान फटक सकता है। हमारे उद्धार के अन्तिम अध्याय में हमारा भरोसा परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं पर निर्भर है कि वह उस कार्य को पूरा करेगा जिसे उसने आरम्भ किया था। यह हमारे उत्तम महायाजक के प्रभावकारिता *(efficacy)* पर निर्भर है, जो हमारे लिए प्रति दिन मध्यस्थता करता है। वह हमें बनाए रखेगा।

भाग सात

कलीसियाविज्ञान

Ecclesiology

अध्याय 46

कलीसिया के बाइबलीय चित्र

Biblical Images of the Church

कलीसियाविज्ञान विधिवत् ईश्वरविज्ञान का एक उपभाग है। यह कलीसिया के स्वभाव *(nature)*, कार्य *(function)*, और उद्देश्य *(mission)* से सम्बन्धित है। हम यूनानी शब्द *किरियाकॉन (kyriakon)* को देखने के द्वारा कलीसिया के उन पक्षों को समझना आरम्भ कर सकते हैं, जिससे हमें अंग्रेज़ी शब्द *चर्च (church)* प्राप्त होता है। अन्य भाषाओं में "कलीसिया" के लिए शब्द—स्कॉटलैण्ड की भाषा में *कर्क (kirk)*, डच भाषा में *केर्क (kerk)*, और जर्मन भाषा में *केर्श (Kirche)*—सभी एक ही मूल शब्द से आते हैं। *किरियाकॉन* उन लोगों की बात करता है जो *कुरियोस (kyrios)* या प्रभु के हैं या उसके अधीन हैं।

एक्लेसिया (ekklēsia) एक और यूनानी शब्द है जिसका अनुवाद "कलीसिया" के रूप में किया जाता है। *एक्लेसिया* शब्द *एक्क-(ek-)* उपसर्ग जिसका अर्थ "में से" या "से," और *कालेओ (kaleō)* क्रिया के एक रूप से बनता है, जिसका अर्थ है "बुलाना।" इस प्रकार, *एक्लेसिया* का अर्थ है "में से बाहर बुलाए गए लोग।"

परन्तु कलीसिया सर्वदा अपने नाम के अर्थ के अनुसार कार्य नहीं करती है। यह इसलिए है क्योंकि जैसे कि ऑगस्टीन ने कहा, कलीसिया एक *कॉर्पस पर मिक्सटम (corpus per mixtum)*, अर्थात् एक मिश्रित समूह है। संसार में कलीसिया गेहूँ और जँगली घास के संगठन से बनी है और जबकि कलीसिया को शुद्धता का अनुसरण करने के लिए बुलाया गया है, ख्रीष्ट ने अत्यधिक कठोर कलीसियाई अनुशासन के प्रति चेतावनी दी, जो कि जँगली घास को उखाड़ने के प्रयास में, गेहूँ को भी हानि पहुँचा सकता है (मत्ती 13:24-30)।

यीशु ने यह भी कहा: "उस दिन बहुत लोग मुझ से कहेंगे, 'हे प्रभु, हे प्रभु, क्या हमने तेरे नाम से नबूवत नहीं की और तेरे नाम से दुष्ट आत्माओं को नहीं निकाला और तेरे नाम से बहुत

आश्चर्यकर्म नहीं किए?' तब मैं उनसे स्पष्ट कहूँगा, 'मैंने तुम को कभी नहीं जाना; हे कुकर्मियो, मुझ से दूर हटो'" (मत्ती 7:22-23)। इसीलिए ऑगस्टीन ने दृश्य *(visible)* कलीसिया और अदृश्य *(invisible)* कलीसिया में भेद किया।

अदृश्य कलीसिया

ईश्वरविज्ञानी *अदृश्य कलीसिया* शब्द का उपयोग उन लोगों को सन्दर्भित करने के लिए करते हैं जो यीशु ख्रीष्ट की सच्ची कलीसिया का निर्माण करते हैं; अर्थात्, वे जो सच में पुनरुज्जीवित *(regenerate)* हैं। इसके विपरीत, *दृश्य कलीसिया* उन सब लोगों का समूह है जो अनुग्रह की स्थिति में होने का दृढ़ कथन करते हैं और कलीसिया के साथ अपनी पहचान जोड़ते हैं। अदृश्य कलीसिया को यह नाम इसलिए दिया जाता है क्योंकि पवित्रशास्त्र के अनुसार, हम केवल बाहरी प्रकटीकरण के आधार पर अन्य लोगों के विश्वास के दृढ़ कथनों और ख्रीष्ट के प्रति उनके समर्पण का अवलोकन कर सकते हैं। यदि कोई मुझ से कहे कि वह एक मसीही है तो मुझे मानना चाहिए कि वह सत्य कह रहा है। मैं उसके हृदय को नहीं पढ़ सकता हूँ। उसके प्राण की वास्तविक स्थिति को समझ पाना मेरी क्षमता से परे है।

फिर भी जो हमारे लिए अदृश्य है परमेश्वर के लिए स्पष्ट रूप से दृश्य है। हम बाहरी प्रकटीकरण तक सीमित हैं; परमेश्वर हृदय को पढ़ सकता है। परमेश्वर के लिए, कलीसिया के विषय में कुछ भी अदृश्य नहीं है; उसके लिए सब कुछ प्रकट और खुला है। हमें इस विचार से बचना चाहिए कि अदृश्य कलीसिया और दृश्य कलीसिया पृथक वास्तविकताएँ हैं। जैसा कि ऑगस्टीन ने टिप्पणी की थी, अदृश्य कलीसिया मूल रूप से दृश्य कलीसिया के भीतर पायी जाती है। इस प्रकार, अदृश्य कलीसिया दृश्य कलीसिया के भीतर सच्चे विश्वासियों से बनी है।

ऑगस्टीन ने यह भी कहा कि ऐसे भी सच्चे विश्वासी हैं जो अदृश्य कलीसिया के सदस्य हैं, किन्तु जो विभिन्न कारणों से संस्थानिक *(institutional)* कलीसियाओं की सूचियों में नहीं पाए जा सकते हैं। कभी कभी कोई विश्वासी किसी दृश्य कलीसिया में ईश्वरीय-प्रावधान के कारण जुड़ने से वंचित रह जाता है। उदाहरण के लिए, इससे पहले कि उसके पास किसी कलीसिया में जुड़ने का अवसर मिले वह विश्वास करके मर सकता है। लूका के सुसमाचार में डाकू के साथ ऐसा ही हुआ था (23:32-43)। इसी रीति से, कुछ लोग कलीसिया में जुड़ने से इसलिए बाधित हो सकते हैं क्योंकि वे अन्य विश्वासियों से दूर तथा अलग-थलग हैं।

अन्य लोग बाहर केवल इसलिए हो सकते हैं क्योंकि वे मसीहियों के रूप में अपने उत्तरदायित्व को त्यागते हैं। किसी न किसी कारण से वे स्वेच्छा से अपने आप को किसी कलीसिया में जुड़ने से दूर रखते हैं। बहुत से मसीही, विशेषकर आज हमारी संस्कृति में संस्थानिक कलीसिया से इतने कुण्ठित हैं कि वे कलीसियाई सदस्यता में प्रवेश न करने का निर्णय लेते हैं। परन्तु मेरी समझ से यह प्रभु यीशु ख्रीष्ट के विरुद्ध एक गहन अपराध है, जिसने दृश्य कलीसिया की स्थापना की तथा उसे एक

कार्य दिया और जिसने उसके भाग होने के लिए हमें बुलाया है। कुछ जो अपने विश्वास में नवीन हैं तथा इस समझ तक नहीं पहुँचे हैं कि उनको किसी दृश्य कलीसिया में होना चाहिए और वहाँ होना उनका कर्तव्य है। वे अभी भी कलीसिया में जुड़ने के महत्व को नहीं समझते हैं और इसलिए वे सहभागी नहीं होते हैं, किन्तु फिर भी वे अभी भी विश्वासी हैं। किन्तु, यदि कोई यह सीखता है कि उसे किसी कलीसिया में होना चाहिए और फिर भी वह बाहर बना रहता है, तब हम उचित रीति से प्रश्न उठा सकते हैं कि क्या वह व्यक्ति वास्तव में मसीही है भी या नहीं।

कुछ मसीही दृश्य कलीसिया में इसलिए नहीं हैं क्योंकि उनको बहिष्कृत *(excommunicated)* किया गया है। बहिष्करण अर्थात् किसी को कलीसिया की संगति से हटाना, कलीसियाई अनुशासन का अन्तिम चरण है। एक बार जब व्यक्ति कलीसियाई अनुशासन की प्रक्रिया के अन्तिम चरण तक पहुँचता है, तो उसको कलीसिया द्वारा एक अविश्वासी के रूप में समझा जाना चाहिए। अन्तिम विश्लेषण में केवल एक ही पाप है जिसके कारण व्यक्ति को बहिष्कृत किया जा सकता है, और वह है पश्चात्ताप न करना। यदि पापी कलीसियाई अनुशासन के पहले चरण में पश्चात्ताप करे, तो वह दृश्य कलीसिया में अपनी संगति को बनाए रख सकता है। बहिष्करण, जो कि अन्तिम चरण है, उसे केवल तभी किया जाता है यदि वह पश्चात्ताप करने से मना करे। सिद्धान्ततः, सच्चे मसीही घोर पाप में गिर सकते हैं और कलीसियाई अनुशासन की पूरी प्रक्रिया के समय उसमें बने रह सकते हैं, जिससे कि केवल बहिष्करण ही उनको उचित समझ प्रदान कर सकता है। और वास्तव में बहिष्करण का यही उद्देश्य है।

मुख्य बात यह है कि अदृश्य कलीसिया अर्थात् परमेश्वर के सच्चे लोगों का समूह, मूलतः दृश्य कलीसिया के भीतर उपस्थित है और प्रभु के लोग होने के कारण हमारा कर्तव्य है कि हम उसका भाग हों।

कलीसिया की जड़ें

कलीसिया की जड़ें पीछे तक अदन की वाटिका में पाई जाती हैं। आदम और हव्वा, अपने सृष्टिकर्ता को सीधी आराधना अर्पित करने के कार्य में, मानो कलीसिया थे। कुछ लोगों ने कलीसिया को पाप में पतन के बाद हाबिल के साथ आरम्भ होते हुए देखा है। उदाहरण के लिए, बीसवीं शताब्दी के एक रोमन कैथोलिक ईश्वरविज्ञानी ईव कॉन्गार *(Yves Congar)* ने, एक निबन्ध लिखा जिसका शीर्षक था *एक्लेसिया ऐब एबल (Ecclesia ab Abel),* अर्थात् *हाबिल से कलीसिया*। उस कार्य में कॉन्गार ने तर्क दिया कि कलीसिया नए नियम में आरम्भ नहीं की गई; वास्तव में तो वह बहुत पहले आरम्भ हुई थी, जैसा कि हम आदम और हव्वा के पुत्र, कैन और हाबिल को आराधना करते

हुए देखते हैं (उत्पत्ति 4), और इब्रानियों का लेखक संकेत करता है कि हाबिल ने अपनी भेंट को विश्वास के द्वारा चढ़ाया था (इब्रानियों 11:4)।

यदि मैंने वह निबन्ध लिखा होता तो मैं उसका शीर्षक *आदम से कलीसिया* देता, क्योंकि मैं विश्वास करता हूँ कि कलीसिया की अवधारणा को कैन और हाबिल के माता-पिता में भी देखा जा सकता है, जिन्होंने परमेश्वर की निकटतम उपस्थिति में सहभागिता का आनन्द उठाया जिसमें आराधना अवश्य रही होगी। जहाँ पर भी हम ऐसे लोगों को पाते हैं जो ख्रीष्ट (या पुराने नियम के सन्तों के लिए ख्रीष्ट की प्रतिज्ञा) के द्वारा अपने उद्धार के लिए परमेश्वर पर भरोसा रखते हैं, वहाँ हम कलीसिया को पाते हैं।

अध्याय 47

कलीसियाः एक तथा पवित्र

The Church: One and Holy

कलीसिया में वे लोग हैं जिन्हें परमेश्वर ने ख्रीष्ट में एक साथ एकत्रित किया है। नया नियम भद्दे व्यक्तिवाद *(individualism)* की अनुमति नहीं देता है। निस्सन्देह, कोई भी जन किसी और के विश्वास के द्वारा बचाया नहीं जाता है इसलिए इस सम्बन्ध में, विश्वास अत्यन्त व्यक्तिगत है। तौभी, परमेश्वर पृथक व्यक्तियों को एक सामूहिक जनसमूह को स्थापित करने के लिए बचाता है। जिस प्रकार से पुराने नियम में इस्राएल एक सामूहिक जनसमूह था, वैसे ही कलीसिया नए नियम में लोगों का एक जनसमूह है।

नया नियम कलीसिया का विवरण करने के लिए विभिन्न उपमाओं का उपयोग करता है। एक उपमा मानवीय देह की है, जिसे हमने संक्षिप्त में तब देखा था जब हमने पवित्र आत्मा की सेवा का अध्ययन किया था। प्रेरित पौलुस ने ख्रीष्ट की दृश्य कलीसिया में पायी जाने वाली विविधता के मध्य एकता का वर्णन करने के लिए देह के चित्रण का उपयोग किया था। प्रत्येक व्यक्ति के पास एक ही कार्य और वरदान नहीं है; सम्पूर्ण देह को संगठित स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए वे भिन्न हैं।

नए नियम में कलीसिया को *लाओस थियू (laos theou),* अर्थात् "परमेश्वर के लोगों" के रूप में भी वर्णित किया गया है। अंग्रेज़ी शब्द "लेयटी" *(laity*-जन साधारण) यूनानी शब्द *लाओस (laos)* से उत्पन्न हुआ है।

जब यीशु और प्रेरितों ने कलीसिया की प्रकृति के विषय में बात की है तो उन्होंने कभी-कभी भवन के चित्रण का उपयोग किया है। कलीसिया एक भवन नहीं है किन्तु कलीसिया एक *ऐसे* भवन के जैसी है जिसमें नींव, स्तम्भ, और दीवारें हैं। अधिकाँश मसीही विश्वास करते हैं कि कलीसिया की नींव ख्रीष्ट है, परन्तु यह त्रुटिपूर्वक है। ख्रीष्ट तो कोने का पत्थर है। वास्तविक नींव प्रेरित और

नबी हैं (इफिसियों 2:20)। शेष कलीसिया व्यक्तिगत पत्थरों से निर्मित है (21-22 पद; 1 पतरस 2:5)। ख्रीष्ट पर विश्वास करने वाला प्रत्येक जन जो दृश्य कलीसिया का भाग है, परमेश्वर की कलीसिया का एक पत्थर है।

कलीसिया ने स्वयं का वर्णन करने के लिए विभिन्न उपाय भी बनाए हैं। मुख्यतः ये नीकिया के विश्वास वचन *(Nicene Creed)* (परिशिष्ट देखें) में पाए जाते हैं, जिसे नीकिया की धर्मसभा (सन् 325) ने बनाया था। विश्वास वचन कलीसिया को चार विशेष गुणों के द्वारा परिभाषित करता है—एक *(one)*, पवित्र *(holy)*, विश्वव्यापी *(catholic)*, और प्रेरितीय *(Apostolic)*। यद्यपि ये शब्द आज विशेषकर सुसमाचारवादी प्रोटेस्टेन्टवाद में विरले ही उपयोग किये जाते हैं, किन्तु वे कलीसिया का एक अद्भुत वर्णन प्रदान करते हैं। हम इस अध्याय में, प्रथम दो शब्दों पर विचार करेंगे: एक और पवित्र।

कलीसिया एक है

तथाकथित कलीसिया-एकतावर्धक आन्दोलन *(ecumenical movement)* ने बीते कुछ दशकों में विभिन्न सम्प्रदायों *(denominations)* को एक साथ लाकर एक वैश्विक मसीही संस्थान में जोड़ने का उत्साहपूर्ण प्रयास किया है। यह प्रयास एकीकृत, दृश्य कलीसिया में विखण्डन और विघटन से प्रेरित रहा है। संयुक्त राज्य में तो दो हज़ार से अधिक पृथक प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय हैं। उसके कारण, बहुत लोग विश्वास करते हैं कि कलीसिया अपनी प्रभावकारिता को तब ही पुनः प्राप्त करेगी यदि उसके सारे सम्प्रदाय एक साथ आकर एकता में होकर संसार से संचार करें।

कलीसिया-एकतावर्धक आन्दोलन, कलीसिया के लिए ख्रीष्ट की प्रार्थना से अधिक प्रेरणा पाता है: "और वह महिमा जो तू ने मुझे दी है मैंने उन्हें दी है, कि वे वैसे ही एक हों जैसे हम एक हैं: मैं उनमें और तू मुझ में, कि वे सिद्ध होकर एक हो जाएँ, जिस से संसार जाने कि तू ने मुझे भेजा और जैसे तू ने मुझ से प्रेम किया वैसे ही उनसे भी प्रेम किया" (यूहन्ना 17:22-23)।

यह तथ्य और भी अधिक लज्जाजनक है कि आज दृश्य कलीसिया में एकता नहीं है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि यह कलीसिया के सिर, यीशु ख्रीष्ट के उद्देश्य के विपरीत है।

परन्तु, एकता के अभाव का अर्थ यह नहीं है कि सच्ची कलीसिया में कोई एकता नहीं है; न ही इसका अर्थ यह है कि हमारे मध्यस्थ के रूप में ख्रीष्ट विफल हुआ है। तो यह बात स्पष्ट है यदि हम अदृश्य कलीसिया की उस धारणा को मानें जिस प्रकार से ऑगस्टीन ने उसे समझाया था। सच में कलीसिया में एक वास्तविक एकता है, और यह सम्प्रदायों के मध्य होने वाली अदृश्य संगति, सन्तों की संगति में पाई जाती है। ख्रीष्ट के साथ उनके एक जैसे मिलन के आधार पर सभी सच्चे मसीहियों में एक अटूट संगति तथा एक आत्मिक एकता है।

इसलिए, ख्रीष्ट की प्रार्थना का उत्तर दिया गया है। सब मसीहीगण उद्देश्य की एकता का आनन्द उठाते हैं जिसमें हमारे पास एक प्रभु, एक विश्वास, और एक बपतिस्मा है (इफिसियों 4:4-5)। निःसन्देह दृश्य कलीसिया में विभाजन है, परन्तु यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि उस एकता की वास्तविकता है, जिसका आनन्द हम सब ख्रीष्ट में हमारी साझे की संगति के आधार पर उठाते हैं।

ऐसे असन्तुष्ट पृथक लोग सर्वदा से हैं जो मुख्य देह को छोड़कर कुछ नया आरम्भ करना चाहते हैं। हमें अन्य अँगीकार करने वाले मसीहियों के साथ एकता को बनाए रखने के प्रयास में कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। निःसन्देह, ऐसे समय होते हैं जब हमें अन्य समूहों या संस्थाओं के साथ संगति तोड़नी होगी, परन्तु बड़े रूप में हमें यत्न करना चाहिए कि जितना अधिक सम्भव हो, उतना अँगीकार करने वाले मसीहियों के साथ हम एक हों। कलीसियाएँ अति सरलता से बहुत सी बातों के कारण विभाजित होती हैं, परन्तु प्रायः वे नगण्य विषयों पर विभाजित होती हैं या एक साथ तब भी रहती हैं जब महत्वपूर्ण विषयों पर असहमति होती है। हमें सुसमाचार की मूल बातों पर समझौता नहीं करना चाहिए, परन्तु हमें छोटी बातों पर भिड़ना भी नहीं चाहिए।

कलीसिया पवित्र है

कलीसिया पवित्र भी है, यद्यपि एक अन्य दृष्टिकोण से यह पृथ्वी की सबसे भ्रष्ट संस्था है। यदि हम विचार करें कि भ्रष्टता को कैसे मापा जाता है तो हम कलीसिया को उचित रीति से भ्रष्ट के रूप में देख सकते हैं। हमें पवित्रशास्त्र में बताया जाता है, "प्रत्येक जिसे बहुत दिया गया है उस से बहुत माँगा जाएगा; और जिसे बहुत सौंपा गया है, उस से वे और भी अधिक माँगेंगे" (लूका 12:48)। कोई भी संस्था मसीही कलीसिया से अधिक वरदान-युक्त नहीं है। किसी और संस्था को इस से अधिक पवित्र उद्देश्य नहीं दिया गया है। जब हम उस उद्देश्य का पालन करने में विफल होते हैं तो इसका परिणाम भ्रष्टता है।

पवित्र (holy) शब्द का प्राथमिक अर्थ है "पृथक किया गया" या "पवित्र किया गया," जो *एक्लेसिया* शब्द से सीधी रीति से जुड़ा हुआ है, जिसका अर्थ है "बाहर बुलाए गए लोग।" कलीसिया में वे लोग सम्मिलित हैं जिन्हें बुलाया गया है और एक पवित्र कार्य के लिए पृथक किया गया है। कलीसिया इस अर्थ में तब तक पवित्र है जब तक कि उसके पास एक पवित्र कार्य है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि कलीसिया ही संसार के इतिहास में एकमात्र ऐसी संस्था है जिसको परमेश्वर ने पूर्ण आश्वासन दिया है कि अन्ततः यह विफल नहीं होगी। संसार की महान् संस्थाएँ आएँगी और जाएँगी, परन्तु यीशु ख्रीष्ट की कलीसिया बनी रहेगी। यीशु ने कलीसिया के

विषय में कहा कि, "अधोलोक के फाटक उस पर प्रबल न होंगे" (मत्ती 16:18)। प्राचीन संसार में फाटक रक्षात्मक तन्त्र थे इसलिए यीशु की बात के आधार पर, कलीसिया को शैतान के गढ़ों पर आक्रमण करने के लिए बुलाया गया है और वे गढ़ उस सामर्थ्य को नहीं सह सकते हैं जो कलीसिया को दी गई है।

कलीसिया इसलिए भी पवित्र है क्योंकि यह ऐसे लोगों से निर्मित है जिनमें पवित्र आत्मा वास करता है। कलीसिया पवित्र आत्मा की संस्था है। निःसन्देह पवित्र आत्मा कई अन्य संस्थाओं के लोगों के जीवन में कार्य करता है, परन्तु आत्मा की सेवकाई का केन्द्र बिन्दु कलीसिया है। ईश्वरीय अनुग्रह के साधन केवल दृश्य कलीसिया तक ही सीमित नहीं हैं, परन्तु वे वहाँ केन्द्रित हैं। इस्राएल की दृश्य छावनी का प्रत्येक जन बचाया नहीं गया; जैसे पौलुस ने लिखा, "वे सब जो इस्राएल के वंशज हैं, इस्राएली नहीं" (रोमियों 9:6)। उसने यह भी लिखा: "तब यहूदी को क्या लाभ? या ख़तने का क्या उपयोग?" हर प्रकार से बहुत कुछ। प्रथम तो यह कि परमेश्वर के वचन उन्हें सौंपे गए" (रोमियों 3:1-2)। कलीसिया के पास सामूहिक सभाओं में वचन का प्रचार, कलीसियाई विधियों का मनाया जाना और परमेश्वर की आराधना है और मसीही यहीं पर संगति में एकत्रित होते हैं। जहाँ तक यह पवित्र आत्मा का मुख्य क्षेत्र है और वह स्थान है जहाँ सन्त एकत्रित होते हैं, कलीसिया को "पवित्र" कहा जा सकता है।

अध्याय 48

कलीसिया: विश्वव्यापी तथा प्रेरितीय

The Church: Catholic and Apostolic

कुछ वर्ष पहले जब मैं अपनी पत्नी और दो मित्रों के साथ पूर्वी यूरोप में यात्रा कर रहा था, तो हमारी रेल-गाड़ी को रोमानिया में प्रवेश करते समय रोका गया। एक सीमा-शुल्क अधिकारी ने हमारे पासपोर्ट माँगे, जिन्हें हमने उसको सौंप दिए। जब उसने हमारे सामान में एक बाइबल को देखा, उसने कहा, "आप लोग अमरीकी नहीं हैं!" हम थोड़े हड़बड़ा गए क्योंकि हमारे पासपोर्ट ने स्पष्ट रीति से हमें अमरीकी नागरिक के रूप में पहचाना था। उसने बाइबल माँगी, जिसे हमने उसको सौंप दिया और उसने उसे खोला और इफिसियों 2:19 से पढ़ा: "अतः तुम अब विदेशी और अजनबी न रहे, परन्तु पवित्र लोगों के संगी स्वदेशी और परमेश्वर के कुटुम्ब के बन गए हो।" वह भी मसीही था और जब उसे हमारे साथ अपने सम्बन्ध का पता लगा, तो उसने आनन्दपूर्वक रोमानिया में हमारे प्रवेश की अनुमति दी।

कलीसिया विश्वव्यापी है

उस घटना ने हमसे सच्ची कलीसिया के तीसरे गुण की प्रत्यक्ष वास्तविकता का संचार किया—कलीसिया कैथोलिक (विश्वव्यापी), अथवा सार्वभौमिक है। यह कलीसिया के चार गुणों में से तीसरा गुण है जिसे नीकिया की महासभा ने चौथी शताब्दी में प्रस्तुत किया था। नीकिया का विश्वास वचन (परिशिष्ट देखें) घोषित करता है कि सच्ची कलीसिया एक, पवित्र, विश्वव्यापी, और प्रेरितीय है। हमने पहले दो गुणों को पिछले अध्याय में देखा था; इस अध्याय में हम तीसरे और चौथे गुणों पर विचार करेंगे।

कैथोलिक (विश्वव्यापी) कलीसिया—अर्थात् सार्वभौमिक कलीसिया—रोमन कैथोलिक *(Roman Catholic)* कलीसिया से भिन्न है। आजकल "रोमन कैथोलिक" को प्रायः संक्षिप्त में "कैथोलिक" कहा जाता है, जिससे कि जब लोग "कैथोलिक कलीसिया" की बात करते हैं, तो उनका अर्थ रोमन कैथोलिक कलीसिया से होता है। देखा जाए, तो *कैथोलिक* शब्द किसी विशेष संस्था का नाम नहीं है किन्तु यह यीशु ख्रीष्ट की कलीसिया को सन्दर्भित करता है जिसमें प्रत्येक देश, जनजाति और समुदाय के लोग हैं।

बहुत से प्रोटेस्टेन्ट कलीसियाओं की राष्ट्रीय या क्षेत्रीय सीमाएँ हैं, जबकि रोमन कैथोलिक कलीसिया की कोई सीमाएँ नहीं हैं। विश्वभर में इसके सदस्य रोम की अगुवाई के अधीन एक हैं। रोम अपनी दृष्टि में प्रोटेस्टेन्ट विघटन के कारण प्रोटेस्टेन्टगणों को सच्ची कलीसिया से पृथक मानता है। किन्तु विश्वव्यापी कलीसिया अदृश्य कलीसिया है। यीशु ख्रीष्ट की कलीसिया विश्व भर में फैली हुई है, जैसे कि मैंने रोमानिया की सीमा पर अनुभव किया।

कलीसिया प्रेरितीय है

सच्ची कलीसिया प्रेरितीय भी है। हमने पिछले अध्याय में ध्यान दिया था कि नबी और प्रेरित कलीसिया की नींव हैं। जब ख्रीष्ट ने नये नियम की वाचा के समुदाय को स्थापित किया, तो सर्वप्रथम उसने प्रेरित का पद प्रदान किया (इफिसियों 4:11)। आरम्भिक मसीही समुदाय का प्राथमिक अधिकार प्रेरितों में निहित था। *प्रेरित (apostle)* शब्द यूनानी शब्द *अपोस्टोलोस (apostolos)* से आता है, जिसका अर्थ है "भेजा गया जन।" प्राचीन यूनानी संस्कृति में प्रेरित, राजा या किसी अधिकारी की ओर से भेजा गया दूत या प्रतिनिधि था। प्रेरित के पास राजा का प्रदत्त अधिकार था। वह अपने भेजने वाले का वक्ता था।

हम *प्रेरित (apostle)* और *शिष्य (disciple)* शब्दों को एक दूसरे के स्थान पर उपयोग करने का प्रयास करते हैं, परन्तु उनमें एक महत्वपूर्ण भिन्नता है। प्रेरित पौलुस के अपवाद को छोड़कर, नये नियम में सब प्रेरित पहले शिष्य थे। परन्तु सब शिष्य प्रेरित नहीं बने। हम सुसमाचार से जानते हैं कि यीशु के पास बारह से कहीं अधिक शिष्य थे। अपनी सेवकाई में एक बार उसने सत्तर शिष्यों को एक विशेष कार्य के लिए भेजा (लूका 10)। "शिष्य" के लिए यूनानी शब्द, *मेथेटेस (mathētēs)* का अर्थ "विद्यार्थी" या "सीखनेवाला" है। शिष्य वे थे जो रब्बी यीशु के विद्यालय में सीखने के लिए उसके पास एकत्रित हुए थे। उन्होंने उसे "रब्बी" कहा और जैसे-जैसे वह सिखाने के लिए एक

स्थान से दूसरे स्थान में गया, वे उसके पीछे चलते गए। किन्तु अपनी पृथ्वी की सेवकाई के अन्त के निकट, उसने अपने शिष्यों के समूह में से एक विशेष संख्या को प्रेरित होने के लिए चुना (मत्ती 10)। उनको उसने यह कहते हुए अपना अधिकार दिया, "जो तुम्हें ग्रहण करता है वह मुझे ग्रहण करता है, और जो मुझे ग्रहण करता है, वह मेरे भेजने वाले को ग्रहण करता है" (मत्ती 10:40)।

कलीसिया के आरम्भ में विधर्मी समूहों ने प्रेरितों के अधिकार का स्थान लेने का प्रयास किया। उनमें से गूढ़ज्ञानवादियों *(Gnostics)* के एक समूह ने यह कहा कि उनके पास प्रेरितीय अधिकार है और साथ में वे यह भी कहते थे कि वे यीशु के प्रति विश्वासयोग्य हैं। किन्तु वे सच्चे प्रेरित नहीं थे।

नये नियम में पहला और प्राथमिक प्रेरित स्वयं यीशु था। वह पिता द्वारा भेजा गया था और पिता की ओर से बोलने के लिए अधिकृत था, जैसे कि उसने साक्षी दी: "स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार मुझे दिया गया है" (मत्ती 28:18) और "मैंने अपने आप कुछ नहीं कहा, परन्तु पिता जिसने मुझे भेजा है उसी ने आज्ञा दी है कि क्या कहूँ और क्या बोलूँ" (यूहन्ना 12:49)। जब फरीसियों ने यीशु के अधिकार को नकारने का प्रयास किया, उसने उनसे कहा:

> यदि मैं स्वयं अपने को प्रतिष्ठा दूँ, तो मेरी प्रतिष्ठा कुछ भी नहीं। मुझे प्रतिष्ठा देने वाला मेरा पिता है, जिसके विषय में तुम कहते हो कि वह हमारा परमेश्वर है। तुमने तो उसे नहीं जाना, परन्तु मैं उसे जानता हूँ। यदि मैं कहूँ कि मैं उसे नहीं जानता तो मैं तुम्हारे समान झूठा ठहरूँगा, परन्तु मैं उसे जानता हूँ, और उसके वचन का पालन करता हूँ। तुम्हारा पिता अब्राहम मेरा दिन देखने की आशा से आनन्दित हुआ। उसने देखा भी, और मग्न हुआ। (यूहन्ना 8:54-56)

दूसरे शब्दों में, कोई व्यक्ति पुत्र से घृणा करते हुए पिता से प्रेम नहीं कर सकता है और यही वह पुत्र था जिसने प्रेरितों में अपने अधिकार को निहित किया था। ल्यों का इरेनियस *(Irenaeus of Lyon)* (130-202 ईसवी), जो आरम्भिक कलीसिया का एक आपत्तिखण्डनशास्त्री *(apologist)* था, उसने अपने समय के विधर्मियों के विरुद्ध इसी बात को रखा, जब उसने कहा कि जो लोग प्रेरितों को अस्वीकार कर रहे थे वे उसको अस्वीकार कर रहे थे जिसने प्रेरितों को ठहराया था अर्थात् ख्रीष्ट को। परमेश्वर से ख्रीष्ट तक और फिर ख्रीष्ट से प्रेरितों तक, अधिकार की एक सीधी रेखा थी।

प्रेरितीय अधिकार पर वर्तमान के समय में और भी अधिक आक्रमण किया जा रहा है, मुख्य रीति से नारीवादियों *(feminists)* के द्वारा जो पौलुस की शिक्षाओं के विरुद्ध तर्क करते हैं और

उच्चतर आलोचकों के द्वारा भी, जो कहते हैं कि वे ख्रीष्ट के अनुयायी हैं जबकि वे पवित्रशास्त्र के अधिकार को ठुकराते हैं।

मैं एक सेवक को जानता हूँ जो एक बार लॉस ऐन्जेलिस, कैलिफोर्निया में अपने घर की ओर यात्रा कर रहे थे, और जब वह मार्ग में थे तो वहाँ पर एक भूकम्प आया। घर पहुँचने के बाद वह अपनी कलीसिया के भवन को देखने के लिए गए कि वहाँ कितनी हानि हुई है। वह यह देखकर चिन्तामुक्त हो गए कि भवन अभी भी खड़ा था और ऐसे लग रहा था कि भीतर सब कुछ ठीक है। एक भी खिड़की नहीं टूटी थी। किन्तु कुछ समय बाद, जब हानि का निरीक्षण करने के लिए विशेषज्ञ आए, तो उन्होंने पाया कि भवन के नीचे की नींव हिल गई थी। इसके परिणामस्वरूप, कलीसिया को अनिवास्य घोषित किया गया। बाहर से तो भवन ठीक प्रतीत हो रहा था, परन्तु वह ठीक नहीं था। नींव हिल गई थी इसलिए भवन अब स्थिर नहीं रहा।

यह स्थिति कलीसिया के प्रेरितीय स्वभाव के विषय को चित्रित करती है। जब लोग दावा करते हैं कि कलीसिया के पास अधिकार है किन्तु बाइबल को अस्वीकार करते हैं, तो वे वास्तव में स्वयं कलीसिया को अस्वीकार कर रहे हैं क्योंकि वे कलीसिया के चार में से एक गुण को अर्थात् उसके प्रेरितीय स्वभाव को अस्वीकार कर रहे हैं। यदि हम प्रेरितों के वचन के अधिकार पर आक्रमण करते हैं, तो हम कलीसिया के हृदय और प्राण पर आक्रमण करते हैं। जिस प्रकार भजनकार ने कहा, "यदि नींव ही नष्ट कर दी जाएँ, तो धर्मी क्या कर सकता है?" (भजन 11:3)।

पिछली दो शताब्दियों में उदारवादी ईश्वरविज्ञान ने बाइबल की प्रेरणा और उसके अधिकार को सीधा-सीधा ठुकराने के द्वारा, दृश्य कलीसिया को इस रीति से प्रभावित किया है कि वह लगभग नष्ट हो गई है। कुछ देशों में कलीसियाएँ लगभग खाली हैं; उनकी जनसंख्या में से दो प्रतिशत से थोड़े लोग कलीसिया की सभाओं में सम्मिलित होते हैं। इसका कारण अधिकाँशतः सामाजिक विषयों को ध्यान देते हुए प्रेरितीय अधिकार का त्यागा जाना है, जिससे कि कलीसिया को कई अन्य संस्थाओं से भिन्न करना कठिन है। प्रेरितीय अधिकार का अर्थ है बाइबलीय अधिकार जो कि कलीसिया की नींव है।

एक सच्ची कलीसिया के चिन्ह

धर्मसुधार के समय प्रोटेस्टेन्टवाद कई समूहों में बिखर गया था। स्विट्ज़रलैण्ड, नीदरलैण्ड्स और स्कॉटलैण्ड में धर्मसुधारवादी कलीसियाएँ; इंग्लैण्ड में ऐंग्लिकाई *(Anglican)* कलीसिया; जर्मनी और स्कैण्डिनेविया में लूथरवादी कलीसियाएँ *(Lutheran)*, फ्रान्स में ह्यूगॉनोस़ *(Huguenots)* थे; इत्यादि। जबकि उस पूरे समय रोम ने स्वयं को सच्ची कलीसिया घोषित किया। तो यही वह

समय था जब प्रोटेस्टेन्ट लोग *एक (a)* सच्ची कलीसिया के स्थान पर *एकमात्र (the)* सच्ची कलीसिया की बात करने लगे। धर्मसुधारकों ने कहा कि जिस प्रकार किसी भी मण्डली में गेंहू और जँगली घास का मिश्रण है, वैसे ही कोई भी सम्प्रदाय अचूक नहीं है; प्रत्येक सम्प्रदाय में किसी न किसी प्रकार की त्रुटि या भ्रष्टता है। फिर धर्मसुधारकों ने एक सच्ची कलीसिया के तीन मूलभूत चिन्हों को पहचाना था।

पहला यह है कि कलीसिया सुसमाचार का प्रचार करती है। यदि कलीसिया सुसमाचार की किसी भी मूलभूत बात का खण्डन करे, जैसे कि ख्रीष्ट के ईश्वरत्व को, प्रायश्चित्त को, या केवल विश्वास के द्वारा धर्मीकरण को, तो वह अब एक कलीसिया नहीं रही। धर्मसुधारकों ने रोमन कैथोलिक कलीसिया को भी सच्ची कलीसिया की श्रेणी से बाहर रखा क्योंकि यद्यपि वह ख्रीष्ट के ईश्वरत्व को और प्रायश्चित्त को स्वीकारती थी, किन्तु उसने केवल विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराए जाने को अस्वीकार किया। इसलिए धर्मसुधारकों ने कहा कि रोम अब एक सच्ची कलीसिया नहीं रही है।

दूसरा चिन्ह यह है कि कलीसियाई विधियों *(sacraments)*—बपतिस्मा और प्रभु भोज—का उचित रीति से संचालन किया जाता है। धर्मसुधारकों ने मसीहियों के मध्य प्रभु भोज में ख्रीष्ट की उपस्थिति और बपतिस्मा के प्रकार के विषय में भिन्नताओं को पहचाना, परन्तु उन्होंने कहा कि नियमित रीति से विधियों का आधारभूत संचालन किसी भी सच्ची कलीसिया के लिए एक अनिवार्य तत्त्व है। कुछ लोगों ने रोमन कैथोलिक द्वारा दी गयी विधियों पर बल को इस सीमा तक नकारा कि उन्होंने बिना विधियों की कलीसियाओं को स्थापित करना चाहा, परन्तु धर्मसुधारकों ने तर्क दिया कि विधियाँ ख्रीष्ट द्वारा परमेश्वर के लोगों के आत्मिक निर्माण के लिए ठहराई गई थीं, और इसलिए यह कलीसिया का कर्तव्य है कि उनको उचित रीति से किया करे।

एक सच्ची कलीसिया का तीसरा चिन्ह अनुशासन है, जिसके लिए किसी प्रकार की कलीसियाई शासन-प्रणाली की आवश्यकता है। यह देखने के लिए कि लोग विश्वास में बढ़ें और पवित्रता में बढ़ते रहें, कलीसिया अपने सदस्यों की आत्मिक परिपक्वता के लिए उत्तरदायी है। इसलिए कलीसिया को अशुद्धता और भ्रष्टता से संक्रमित होने से बचाने के लिए अनुशासन आवश्यक है। यदि किसी कलीसिया के अगुवे लगातार ख्रीष्ट के ईश्वरत्व को नकारते रहें, फिर भी कलीसिया उन्हें चेतावनी नहीं देती है या नहीं हटाती है, तो उस कलीसिया ने एक वैध कलीसिया होना छोड़ दिया है।

अध्याय 49

कलीसिया में आराधना

Worship in the Church

नया नियम हमें स्वयं स्वर्ग के भीतरी कक्ष की एक झलक दिखाता है और हम जीवित प्राणियों, प्राचीनों और स्वर्गदूतों के झुण्ड के गीत को सुनते हैं। यूहन्ना इस दृश्य का इस प्रकार वर्णन करता है:

> "वध किया हुआ मेमना सामर्थ्य, धन, बुद्धि, शक्ति, आदर, महिमा और धन्यवाद के योग्य है।"
>
> फिर मैंने सब सृजी हुई वस्तुओं को जो स्वर्ग में, पृथ्वी पर, पृथ्वी के नीचे और समुद्र में हैं, अर्थात् उनमें की सब वस्तुओं को यह कहते सुना, "जो सिंहासन पर बैठा है उसका, और मेमने का धन्यवाद और आदर, महिमा तथा राज्य, युगानुयुग रहे।"
>
> और चारों प्राणी "आमीन" कहते रहे, तथा प्राचीनों ने दण्डवत् करके उपासना की। (प्रकाशितवाक्य 5:12-14)

इस स्थल में हम कुछ असाधारण बात का सामना करते हैं, फिर भी यह कुछ ऐसा है जिससे सभी मसीहियों को सम्बद्ध करना चाहिए—शुद्ध आराधना। परमेश्वर के स्वरूप में सृजे गए प्राणियों के रूप में, हमें अपने सृजनहार की आराधना के लिए बनाया गया था, परन्तु हम अपने पापी मानवीय स्वभाव के कारण इस उद्देश्य से भटकते हैं। फिर भी, एक बार जब परमेश्वर का आत्मा लोगों को आत्मिक जीवन देते हुए जागृत करता है, तो उनके पास आराधना के लिए एक नई क्षमता होती है। हृदय की गहराइयों में, सभी मसीहियों के पास एक भूख है कि कैसे वे परमेश्वर की आराधना को व्यक्त करें।

इसलिए यह कोई संयोग नहीं है कि आराधना कलीसिया के केन्द्रीय उद्देश्यों में से एक है। जब परमेश्वर के लोग एक सामान्य मण्डली के रूप में एकत्रित होते हैं तो उद्देश्य आराधना करना होता

है। लोग प्रायः संगति, मसीही शिक्षा या आत्मिक निर्माण के लिए कलीसिया में जाते हैं, परन्तु वहाँ होने का हमारा प्राथमिक उद्देश्य अन्य विश्वासियों के साथ प्रभु की आराधना करना होना चाहिए।

आदर और उपासना के साथ

आराधना करने का अर्थ है परमेश्वर को मूल्यवान समझना या महत्व देना। उदाहरण के लिए, प्रकाशितवाक्य का गीत ख्रीष्ट के व्यक्ति को और उसकी उपलब्धियों को महत्व देता है। हम महत्व देने को "आदर" कहते हैं। हम उन लोगों का आदर करते हैं जिन्होंने अपने आप को ध्यान दिए जाने और अभिपुष्टि के योग्य प्रमाणित किया है। उन्होंने कुछ ऐसा अर्जित किया है जिसे हम मूल्यवान समझते हैं।

इसके विपरीत, रोमियों 1 में, पौलुस मानव जाति के प्रति परमेश्वर के प्रकोप के प्रकटीकरण के विषय में बात करता है। संसार परमेश्वर के प्रकोप के सामने आश्रयरहित है क्योंकि यद्यपि उसने अपने अनन्त सामर्थ्य और ईश्वरत्व को सब प्राणियों पर प्रकट किया है, तौभी मनुष्य परमेश्वर को परमेश्वर के रूप में आदर देने से नकारता है। हमारी पतित अवस्था में, हम परमेश्वर की आराधना को नकारते हैं; हम उसे उस आदर से वंचित करते हैं, जिसके वह योग्य है। पौलुस लिखता है कि परमेश्वर को आदर देने के स्थान पर, हम परमेश्वर के विषय में सत्य को झूठ से परिवर्तित कर देते हैं, और हम सृष्टिकर्ता के स्थान पर सृष्टि की आराधना और सेवा करते हैं (18-25 पद)। हमें स्वयं आदर पाना प्रिय लगता है और हमें ऐसे उत्सवों में उपस्थित होना प्रिय लगता है जहाँ मनुष्यों को अद्भुत उपलब्धियों के लिए आदर दिया जाता है। अनेक लोग कई बार अन्य लोगों को सभी प्रकार का आदर और महिमा देने में हर्षित होते हैं, परन्तु जब सबसे योग्य जन को आदर देने की बात आती है—अर्थात् परमेश्वर को जिसका मूल्य और महत्व सर्वोत्तम है, तो वे पीछे हट जाते हैं।

हम आराधना के अनुभव को *बड़ाई (exaltation)* और *स्तुति (praise)* जैसे शब्दों के साथ वर्णित करते हैं। हम स्तुति के संगीत और स्तुति की भेंट चढ़ाने की बात करते हैं जो बाइबलीय इतिहास पर आधारित है, विशेषकर पुराने नियम में जहाँ आराधना का प्राथमिक तत्त्व बलिदान चढ़ाना था। पाप के लिए पशुओं के बलिदान चढ़ाने से पहले भी, परमेश्वर के लिए केवल उसके आदर हेतु बलिदान चढ़ाए जाते थे। हम ऐसा सोचा करते हैं कि क्योंकि पुराने नियम की बलिदान की प्रणाली ख्रीष्ट में पूरी हुई है, इसलिए बलिदान का युग समाप्त हो गया है। पाप के लिए बलिदान का युग निश्चय ही समाप्त हो गया है क्योंकि ख्रीष्ट ने एक बार सब के लिए उस माँग को पूरा किया है, परन्तु पौलुस कहता है कि हमें अपनी देह को परमेश्वर के सम्मुख जीवित बलिदान के रूप में चढ़ाना है, जो हमारी "आत्मिक आराधना" है (रोमियों 12:1)। बलिदान को अभी भी दिया जाना चाहिए—परमेश्वर के लिए स्तुति के बलिदान (इब्रानियों 13:15)—और इसे हमारे सम्पूर्ण जीवन के तत्त्व से दिया जाना चाहिए।

स्तुति की धारणा का निकट सम्बन्ध *उपासना (adoration)* से है, एक ऐसा शब्द जिसके मूल्य को हमने वर्तमान समय में घटा दिया है। हम लोगों को "उपासनीय" *(adorable)* के रूप में वर्णित करते हैं, जिसका अर्थ है कि वे आकर्षक या मनमोहक हैं और प्रेम के सन्दर्भ में, यह सुनना असाधारण नहीं है कि प्रेमी को प्रेमिका "उपासनीय" लगती है। उचित रीति से कहा जाए तो उपासना उससे कहीं अधिक है। अपनी पत्नी से प्रेम करना एक बात है, किन्तु उसकी आराधना करना कुछ और ही बात है, जिसे मुझे निश्चय ही नहीं करना चाहिए। उपासना की अवधारणा के साथ सम्बन्धित स्नेह को केवल परमेश्वर को ही दिया जाना चाहिए।

बाइबलीय दृष्टिकोण के अनुसार, उपासना हमारे प्राण के भीतरी गुप्त स्थानों में होती है; यह एक ऐसी आत्मिक प्रवृति है जो सटीक परिभाषा से परे है, फिर भी हम इसे जानते हैं जब हम इसका अनुभव करते हैं। हम अपनी मानवता के अभौतिक आयाम और परमेश्वर के चरित्र के बीच में एक आत्मिक सम्बन्ध के प्रति जागरूक हैं जिसमें होकर हम अपने होंठों से या अपने विचारों से उसकी स्तुति करते हैं जिससे कि हमारी आत्माएँ उसके प्रति स्नेह, विस्मय, श्रद्धा और भय से उमड़ती हैं। उपासना में स्वयं को इस कारण से एक नम्र स्थान में रखना सम्मिलित है जिससे कि उस व्यक्ति की बड़ाई हो जिसे सम्मानित किया जा रहा है।

आत्मा और सच्चाई से

सूखार नगर के एक कुँए पर यीशु का वार्तालाप एक स्त्री से हुआ और उस वार्तालाप में, आराधना का विषय उठा। वह एक सामरी थी। सामरी लोग परमेश्वर की आराधना गिरिज्जीम पर्वत पर करते थे, जबकि यहूदी लोगों ने अपनी आराधना को यरूशलेम के मन्दिर में केन्द्रित किया। जब यीशु ने प्रकट किया कि वह जानता था कि उस स्त्री के पाँच पति रह चुके थे तो स्त्री ने उससे कहा, "महोदय, मुझे लगता है कि तू नबी है। हमारे पूर्वजों ने इस पर्वत पर आराधना की और तुम कहते हो कि यरूशलेम ही वह स्थान है जहाँ मनुष्यों को आराधना करनी है" (यूहन्ना 4:19-20)। यीशु ने उत्तर दिया:

> हे नारी, मेरा विश्वास कर कि समय आ रहा है जब तुम न तो इस पर्वत पर और न यरूशलेम में ही पिता की आराधना करोगे। तुम उसकी आराधना करते हो जिसे नहीं जानते, हम उसकी आराधना करते हैं जिसे हम जानते हैं, क्योंकि उद्धार यहूदियों में से ही है। परन्तु वह समय आ रहा है, वरन् आ गया है, जब सच्चे आराधक पिता की आराधना आत्मा और सच्चाई से करेंगे, क्योंकि पिता अपने लिए ऐसे ही आराधक चाहता है।

> परमेश्वर आत्मा है, और अवश्य है कि उसके आराधक आत्मा और सच्चाई से उसकी आराधना करें। (21-24 पद)

यहाँ यीशु ने उचित आराधना के विषय में दो बातें कहीं हैं, जो कि ऐसी आराधना है जिसे परमेश्वर अपने लोगों से चाहता है। उसने कहा कि वह आराधना जो परमेश्वर को प्रसन्न करती है आत्मा और सच्चाई से की जाती है। उचित आराधना के इन वर्णनों में से द्वितीय बात को समझने में कठिनाई नहीं है। सच्ची आराधना मूर्तिपूजक आराधना के सभी प्रकारों से भिन्न है, जो कि एक ऐसी वस्तु को परमेश्वर के स्थान पर रखती है जो सच्चा परमेश्वर नहीं है। झूठी आराधना पाखण्डी आराधना भी है, वह जो कपटपूर्ण है।

"आत्मा से" आराधना करने के विषय में यीशु के शब्दों का अर्थानुवाद करना थोड़ा कठिन है। बाइबल "आत्मा" के विषय में दो प्रकार से बात करती है। सबसे अधिक पाया जाने वाला उल्लेख पवित्र आत्मा के विषय में है, परन्तु पवित्रशास्त्र मनुष्य की आत्मा के विषय में भी बात करता है। हम मानव आत्मा पर थोड़ा ही ध्यान देते हैं। वास्तव में, हमने यह लगभग विश्वास करना ही बन्द कर दिया कि आत्मा या प्राण नाम की कोई वस्तु है जो हमारी मानवता का एक अभिन्न आयाम है। सूखार की स्त्री के साथ अपने वार्तालाप में, मैं सोचता हूँ कि यीशु अपने मन में ऐसी भावपूर्ण आराधना के विषय में सोच रहे हैं, जो कि हृदय से प्रवाहित होती है। परमेश्वर चाहता है कि लोग उसकी आराधना अपने अस्तित्व के उस गहरे भाग से करें जिसे कोई और देख नहीं सकता या माप नहीं सकता है, क्योंकि यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनूठा है। वास्तव में, जिसे हम "व्यक्तित्व" कहते हैं, यही उसका सारतत्त्व है। व्यक्ति होने के इस अभौतिक पक्ष को कोई भी नकार नहीं सकता है; उसके बिना, हम प्राणरहित, पशु-जैसे प्राणी होते। परन्तु क्योंकि हमारे पास यह है, हमारे पास परमेश्वर के साथ आत्मिक सम्बन्ध बनाने की क्षमता है।

सोलहवीं शताब्दी में धर्मसुधार के लिए जॉन कैल्विन का तीव्र उत्साह आराधना पर केन्द्रित था क्योंकि वह जानते थे कि परमेश्वर के लोगों के लिए स्वास्थ्य के प्रति सबसे महान् शत्रु मूर्तिपूजा की ओर उनका झुकाव है। मूर्तिपूजा असंख्य रीति से कलीसिया के जीवन में प्रवेश करती है, जिसके कारण कैल्विन परमेश्वर को शुद्ध आराधना अर्पित करने के लिए समर्पित था—एक ऐसी बात जो वर्तमान के समय में खो गई है। हम आत्मा और सच्चाई से आराधना को व्यक्त करने से अधिक मनोरंजन में अधिक रुचि रखते हैं।

पुराने नियम की आराधना

यदि हम पुराने नियम में पाई जाने वाली आराधना की पद्धतियों को ध्यान से देखें, तो हम पाते हैं कि परमेश्वर ने स्वयं उन पद्धतियों को निर्देशित किया और उन्हें अधिकृत किया है और उनसे हम उन

आधारभूत सिद्धान्तों को सीखते हैं जो परमेश्वर को प्रसन्न करते हैं।

पुराने नियम की आराधना का एक मुख्य तत्त्व यह है कि सम्पूर्ण व्यक्ति आराधना के कार्य में सम्मिलित था। यह निश्चय ही विचारहीन आराधना नहीं थी; वास्तव में मस्तिष्क तो बहुताई से जुड़ा हुआ था। परन्तु आराधना में मस्तिष्क से बढ़कर भी कुछ है। पुराने नियम की आराधना में पाँचों मानवीय ज्ञानेन्द्रियाँ सम्मिलित थीं।

मिलापवाले तम्बू की रचना और मन्दिर की सुन्दरता को निहारने के लिए, दृष्टि की इन्द्रिय का उपयोग किया गया था, जो ऐसी सुन्दर वस्तुओं से भरा था जिसे स्वयं परमेश्वर ने "वैभव और शोभा" के लिए बनवाया था (निर्गमन 28:2, 40)। भवन की प्रत्येक वस्तु, यहाँ तक कि याजक के वस्त्रों तक, परमेश्वर की पारलौकिक सुन्दरता के भाव के साथ आँख को आकर्षित करते थे।

हम जानते हैं कि सुनने की इन्द्रिय भी आराधना सभा का एक महत्वपूर्ण भाग थी क्योंकि पुराने नियम में संगीत को एक केन्द्रीय स्थान दिया गया था। भजन मूलभूत रीति से ऐसे गीत हैं जो आराधना में उपयोग किये जाते थे।

सूँघने की क्षमता भी आराधना का भाग था, जिसके कारण गन्धरस का उपयोग किया जाता था। सुखदायक सुगन्ध को परमेश्वर की उपस्थिति के साथ जोड़ा जाता था; यह उनकी आराधना का एक आनन्ददायक इन्द्रिय आयाम था। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि हमें आज की आराधना सभाओं में गन्धरस को लाना चाहिए। परन्तु बात यह है कि पुराने नियम के आराधकों के प्रतिउत्तर में सूँघने की क्षमता का एक महत्वपूर्ण भाग था।

स्वाद की इन्द्रिय का भी एक स्थान था, जो फसह के भोज में प्रकट था जिसे नये नियम में प्रभु भोज में परिवर्तित किया गया। इसके साथ ही हम पुराने नियम के एक आराधना के गीत में यह सुनते हैं, "चख कर देखो कि यहोवा कैसा भला है!" (भजन 34:8)।

अन्ततः, स्पर्श का भी आयाम था, जिसमें परमेश्वर की आशीष या आशीर्वाद को दर्शाने के लिए याजक अपने हाथों को आराधकों पर रखता था। आरम्भिक कलीसिया में, सेवक प्रत्येक सदस्य पर हाथ रखकर परमेश्वर की आशीष की घोषणा करता था। आज भी, जब एक सेवक हाथ उठाकर आशीष वचन की घोषणा करता है, तो वह उसी परम्परा को दोहरा रहा है। जैसे-जैसे समय के साथ मण्डलियाँ बढ़ती गईं, सेवक का उठाया हुआ हाथ परमेश्वर की आशीष को प्रदान करने वाले सेवक के स्पर्श को चिन्हित करने लगा।

यदि हम पुराने नियम को देखें, तो हम आराधना के जीवित सिद्धान्तों को पातें हैं जो हमें सिखा सकते हैं कि कैसे परमेश्वर को उसके योग्य आदर, उपासना और स्तुति अर्पित किए जाएँ।

अध्याय 50

कलीसिया की विधियाँ (संस्कार)

The Sacraments of the Church

कलीसियाई विधियाँ अथवा संस्कार *(sacraments)* मसीही ईश्वरविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जो समाप्त न होने वाले विवादों का कारण रही हैं, और जिसके विषय में मसीहियों के मध्य बहुत ही थोड़ी सहमति हुई है। यह बात आज भी सत्य बनी हुई है। जैसा कि अंग्रेज़ी शब्द *सैक्रामेन्ट (sacrament)* संकेत करता है, कलीसियाई विधियाँ पवित्र *(sacred)* हैं, और यही मौलिक कारण है कि यह वाद-विवाद इतना भीषण है। विवादों में निम्न बातें सम्मिलित हैं: विधियों के संचार की रीति, किसको सहभागी होने की अनुमति है, और किनको अगुवाई की अनुमति है। एक बड़ा वाद-विवाद कलीसियाई विधियों की संख्या के विषय में भी है। रोमन कैथोलिक कलीसिया विश्वास करती है कि सात कलीसियाई विधियाँ हैं, जबकि अधिकतर प्रोटेस्टेन्ट कलीसियाएँ मानती हैं कि केवल दो ही विधियाँ हैं।

रोमन कैथोलिक दृष्टिकोण

रोम की कलीसिया प्रत्येक कलीसियाई विधि को अनुग्रह के साधन के रूप में देखती है। थॉमस अक्वायनस ने कहा कि रोमन कैथोलिक कलीसिया की सात कलीसियाई विधियाँ, भाग लेने वाले व्यक्ति को जीवन के विभिन्न पड़ावों के लिए तैयार करतीं हैं। इस प्रकार, प्रथम कलीसियाई विधि बपतिस्मा है, जिसे शिशुओं को दिया जाता है। जब एक बच्चे को बपतिस्मा दिया जाता है, तो यह माना जाता है कि धर्मीकरण का अनुग्रह बच्चे के प्राण में अन्तर्वाहित *(infused)* किया जाता है या उण्डेला जाता है। इसके बाद, यदि बच्चा उस अनुग्रह के साथ सहयोग करता है, वह धार्मिकता की अवस्था में लाया जाता है और परमेश्वर के द्वारा धर्मी घोषित किया जाता है।

कहा जाता है कि यह अनुग्रह *एक्स औपेरा औपराटो (ex opera operato)* कार्य करता

है, जिसका अर्थ है, “कार्यों के कार्य करने के द्वारा।” रोमन कैथोलिक कलीसिया में यह सूत्र सभी कलीसियाई विधियों के लिए लागू होता है। यहाँ पर विचार यह है कि वह अनुग्रह जो कलीसियाई विधियों के द्वारा दिया जाता है स्वयं में तब तक प्रभावशाली है जब तक कि प्राप्तकर्ता द्वारा कोई बाधा नहीं लाई जाती है।

बपतिस्मा मार्ग का आरम्भ है। बपतिस्मा प्राप्त करने पर, प्राप्तकर्ता न केवल अनुग्रह के अन्तर्वाह को प्राप्त करता है, परन्तु अपने प्राण पर एक अमिट चिन्ह भी प्राप्त करता है, जो *इनडेलेबिलिस (indelebilis)* गुण है। यह आत्मिक चिन्ह बपतिस्मा पाए हुए बच्चे पर इस प्रकार से छप जाता है कि यदि बाद में चलकर वह उस अनुग्रह को खो भी दे जिसे उसने कलीसियाई विधि के द्वारा प्राप्त किया, तौभी उसको पुनः बपतिस्मा नहीं दिया जाता है। वह मूल बपतिस्मा पर्याप्त रीति से उसके प्राण को चिन्हित करता है।

रोमन कैथोलिक प्रणाली में दूसरी कलीसियाई विधि दृढ़ीकरण *(confirmation)* है, और इस समय पर इसके द्वारा बपतिस्मा में दिए गए अनुग्रह की पुष्टि होती है। यह कलीसियाई विधि बाल्यावस्था से वयस्कता में परिवर्तन के समय होती है। यह पुराने नियम के इस्राएल में *बार मिट्ज़्वाह (bar mitzvah)* की अवधारणा को प्रतिबिम्बित करती है जिसमें एक युवक ऐसा पुरुष बनता था, जो स्वयं के द्वारा व्यवस्था के पालन के लिए उत्तरदायी है।

कायाक्लेश *(penance)* भी रोमन कैथोलिक कलीसियाई विधि है, जिसे कलीसिया द्वारा धर्मीकरण के “द्वितीय पटरे” के रूप में परिभाषित किया गया है, यह उन लोगों के लिए है जिन्होंने अपने प्राण के “विश्वास रूपी जहाज को डुबो दिया” है। बपतिस्मा के समय प्रदत्त, बचाने वाला अनुग्रह प्राणघातक पाप (*mortal sin*) के किये जाने के द्वारा खोया जा सकता है परन्तु पापी, कायाक्लेश या पाप अँगीकार *(confession)* के साधन द्वारा अनुग्रह की स्थिति में पुनःस्थापित किया जा सकता है। यह धर्मी ठहराने वाले अनुग्रह का द्वितीय विधिक *(sacramental)* स्रोत है। एक बार फिर से, माना जाता है कि ख्रीष्ट का अनुग्रह प्राण में अन्तर्वाहित किया जाता है, जिससे कि व्यक्ति को अवसर मिले कि वह धर्मीकरण की स्थिति में पुनःस्थापित हो सके।

पवित्र विवाह *(matrimony)* भी रोमन कैथोलिक कलीसिया में एक कलीसियाई विधि है। निस्सन्देह प्रत्येक जन को विवाह की कलीसियाई विधि प्राप्त नहीं होती है क्योंकि प्रत्येक जन विवाह नहीं करता है। फिर भी, जब विवाह के पवित्र बन्धन में दो लोगों का मिलन होता है, तो उस मिलन को कलीसिया द्वारा आशीषित किया जाता है, और दम्पति को विधि के द्वारा नया अनुग्रह दिया जाता है जो उन्हें उनके वैवाहिक मिलन में बढ़ने के लिए आवश्यक सामर्थ्य देगा।

पुरोहिताभिषेक *(holy orders)* की विधि अन्य सम्प्रदायों में पादरी बनाए जाने *(ordination)* की विधि के तुल्य है। जब कोई पुरुष पुरोहिताई के पद पर उन्नत किया जाता है, तो वह पुरोहिताभिषेक की विधि में से होकर जाता है, जिसके द्वारा उसे इन्हीं विधियों के द्वारा अनुग्रह प्रदान करने के लिए सक्षम बनाया जाता है। पुरोहिताभिषेक के अनुग्रह को प्राप्त किए बिना, व्यक्ति के पास पवित्रीकरण की प्रार्थना करने के सामर्थ्य का अभाव होता है, जिसके द्वारा

रोटी और दाखरस के तत्त्व रोमन कैथोलिक मिस्सा *(Mass)* के समय ख्रीष्ट की देह और उसके लहू में परिवर्तित हो जाते हैं।

रोमन कैथोलिक कलीसिया में रोगियों के अभिषेक की कलीसियाई *(anointing of the sick)* विधि भी है, जिसे पहले अन्तिम विलेपन *(extreme unction)* या अन्तिम संस्कार *(last rites)* कहा जाता था। यह ऐसे व्यक्ति को अनुग्रह देने के लिए बनाया गया है जो मृत्यु के बहुत निकट है जिससे कि वह परमेश्वर के न्याय के सिंहासन के समक्ष आने के लिए तैयार हो सके। मूलतः, रोगियों का अभिषेक याकूब की पत्री में उसके इस निर्देश पर आधारित था: "क्या तुम में कोई रोगी है? यदि है तो कलीसिया के प्राचीनों को बुलाए और वे उस पर तेल मल कर प्रभु के नाम से उसके लिए प्रार्थना करें, और विश्वासपूर्ण प्रार्थना के द्वारा रोगी चंगा हो जाएगा और प्रभु उसे उठा खड़ा करेगा" (याकूब 5:14-15)। यह पहले कलीसिया में एक चंगाई का संस्कार था, परन्तु समय के बीतने के साथ, यह एक रूप से अन्तिम चंगाई के संस्कार के रूप में विकसित हुआ, जिससे कि प्राण को, संसार छोड़ते समय, चंगा किया जाए।

रोमी कलीसिया द्वारा सबसे महत्वपूर्ण मानी जाने वाली कलीसियाई विधि यूखरिस्ट (*Eucharist*) या प्रभु भोज है, जिसमें पवित्र करने वाला अनुग्रह और ख्रीष्ट का पोषण देने वाला सामर्थ्य उन लोगों को संचारित किया जाता है जो उसे प्राप्त करते हैं।

प्रोटेस्टेन्ट दृष्टिकोण

मार्टिन लूथर की पुस्तिका *बाबुल में कलीसिया की बँधुवाई (The Babylonian Captivity of the Church)* प्रोटेस्टेन्ट धर्मसुधार का एक अत्यधिक भड़कानेवाला लेख था। इसमें उन्होंने विधियों से सम्बन्धित रोमी प्रणाली पर आक्रमण किया और उसे "पुरोहितवाद" *(sacerdotalism)* कहा, जो यह विश्वास करता है कि उद्धार पुरोहितों के द्वारा संचारित किया जाता है। लूथर ने रोमन कैथोलिक कलीसिया की विधि-सम्बन्धित प्रणाली का प्रबलता से विरोध किया, जो कि इस स्तर तक विकसित हो गया था कि उसने परमेश्वर के वचन के केन्द्रीय महत्व का स्थान लेना आरम्भ कर दिया था।

इसके विपरीत, धर्मसुधारकों ने इस विश्वास के साथ वचन और कलीसियाई विधियों में उचित सन्तुलन लाने का प्रयास किया कि दोनों में भेद किया जाना चाहिए, परन्तु उनको कभी भी अलग नहीं किया जाना चाहिए; अर्थात् यह कि कलीसियाई विधियों को कभी भी वचन के प्रचार के बिना कभी भी वितरित नहीं किया जाना चाहिए या मनाया नहीं जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, मैं जिस कलीसिया में प्रचार करता हूँ, मुझे परमेश्वर के वचन की उद्घोषणा के बिना प्रभु भोज मनाने की अनुमति नहीं है। धर्मसुधारक उन लोगों के विषय में भी चिन्तित थे जो पूर्ण रीति से कलीसियाई विधियों को हटाना चाहते थे। कुछ लोग रोमी विधियों की प्रणाली के इतने विरुद्ध थे कि वे सोचते थे

कि वचन को बिना विधियों के अकेले ही उपयोग किया जाना चाहिए। धर्मसुधारकों ने इस दल को स्मरण दिलाया कि ख्रीष्ट ने स्वयं विधियों को स्थापित किया और अधिकृत किया था, और इसलिए उनको कभी भी उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए।

रोमन कलीसिया के विपरीत, धर्मसुधारकों ने दो कलीसियाई विधियों पर बल दिया—बपतिस्मा और प्रभु भोज। धर्मसुधारकों की दृष्टि में ये विधियाँ कलीसियाई विधियों के रूप में योग्य हैं क्योंकि वे स्पष्ट रीति से ख्रीष्ट द्वारा स्थापित की गईं थीं। ऊपरी कक्ष में, यीशु ने स्पष्टता के साथ प्रभु भोज के मनाए जाने को स्थापित किया (मत्ती 26:26-29), और महान् आदेश में, उसने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि वे उन लोगों को बपतिस्मा दें जिन्हें वे मसीही विश्वास में प्रवेश कराते थे (28:19)। धर्मसुधारकों ने शेष रोमन कैथोलिक विधियों को विशेष विधियों के रूप में देखा जो इस योग्यता के स्तर से कम पाए जाते थे।

धर्मसुधारकों ने *एक्स औपेरा औपराटो* का भी खण्डन किया, और इसके स्थान पर *एक्स औपेरा औपरान्टिस (ex opere operantis)* के विचार को अपनाया अर्थात् "कर्ता के कार्य करने के द्वारा।" लतीनी भाषा में सरल भिन्नता का लेना-देना कलीसियाई विधियों से प्रवाहित होने वाली प्रभावोत्पादकता *(efficacy)* या लाभ से है; वे उन्हीं लोगों के लिए प्रभावशाली हैं जो उन्हें विश्वास में होकर और विश्वास के द्वारा ग्रहण करते हैं। इसलिए उदाहरण के लिए, यद्यपि शिशु बपतिस्मा की कलीसियाई विधि को प्राप्त करते हैं, उस कलीसियाई विधि द्वारा प्रतिज्ञा किए गए लाभ स्वतः नहीं हो जाते हैं। कोई व्यक्ति केवल इसलिए नहीं बचाया जाता है क्योंकि उसका बपतिस्मा हुआ है—सभी लोग केवल विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराए जाते हैं। जब व्यक्ति के पास विश्वास होता है, तो बपतिस्मा के चिन्ह *(sign)* और छाप *(seal)* के द्वारा संचारित सभी कुछ पूर्ण रीति से प्राप्त किया जाता है। इसी प्रकार, ऐसा व्यक्ति जो बिना विश्वास के प्रभु भोज में भाग लेने आता है अपने आप को ख्रीष्ट के न्याय के संकट में डालता है, जिसकी चेतावनी पौलुस ने 1 कुरिन्थियों 11:27-32 में दी थी। धर्मसुधारकों के लिए बात कलीसियाई विधियों की वैधता की नहीं किन्तु प्रभावोत्पादकता की थी, जो कि अभिन्न रीति से वास्तविक विश्वास की उपस्थिति से जुड़ी हुई थी।

चिन्ह और छाप

कलीसियाई विधियाँ चिन्ह और छाप के रूप में समझी जाती हैं। एक अर्थ में, विधि का चिन्हात्मक गुण वचन को प्रभावशाली रूप में दिखाया जाना है, जिसे पुराने नियम में हम परमेश्वर को अनेक बार करते हुए देखते हैं। परमेश्वर के नबी न केवल परमेश्वर के वचन बोलते थे, वे कुछ अवसरों पर उनको नाटकीयकरण रूप में भी दिखाते थे, कभी-कभी विचित्र प्रकार से। इसके अतिरिक्त, परमेश्वर ने ऐसे संस्कार और विधियाँ दी थीं जिनमें प्रतीकात्मक महत्व था, जैसे कि ख़तना और

फसह। ये अदृश्य, पारलौकिक, ईश्वरीय कार्यों के दृश्य, बाहरी चिन्ह थे। इसी रीति से मनुष्य संचार करते हैं। हम केवल शब्द नहीं बोलते हैं; हम बात करते समय हाथ हिलाते हैं और चलते फिरते हैं। हम अपने शब्दों को शरीर के हाव-भाव द्वारा और स्पष्ट करते हैं। कलीसियाई विधियाँ इसी रीति से कार्य करती हैं। इन दृश्य चिन्हों के द्वारा, अर्थात् कलीसियाई विधियों के द्वारा परमेश्वर अपने वचन के चित्रात्मक प्रदर्शन के द्वारा हमारी ज्ञानेन्द्रियों से संचार करता है।

कलीसियाई विधियाँ तो छाप भी हैं। प्राचीन जगत में, किसी व्यक्ति के वचन की प्रमाणिकता की पुष्टि करने के लिए छाप का उपयोग किया जाता था। यदि किसी राजा ने राजाज्ञा निकाली, तो वह आज्ञापत्र पर अपनी अँगूठी से मोम पर छाप लगाता था, जो इस बात की पुष्टि करती थी कि यह उसी की ओर से थी। ऐसा करने के द्वारा, उसने राजाज्ञा के पीछे के अधिकार को अभिव्यक्त किया। इसी रीति से, कलीसियाई विधियाँ छुटकारे हेतु की गईं परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं के लिए उसकी छाप का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे विश्वास करने वाले सभी लोगों के लिए दृश्य पुष्टिकरण हैं कि वे उन सब लाभों को प्राप्त करेंगे जो ख्रीष्ट में हमें दिए जाते हैं।

अध्याय 51

बपतिस्मा

Baptism

बपतिस्मा स्पष्ट रीति से एक ऐसी विधि है जिसे यीशु ख्रीष्ट ने स्थापित किया था। उसने अपने अनुयायियों को आज्ञा दी: "इसलिए जाओ और सब जातियों के लोगों को चेले बनाओ तथा उन्हें पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम से बपतिस्मा दो, और जो जो आज्ञाएँ मैंने तुम्हें दी हैं उनका पालन करना सिखाओ" (मत्ती 28:19-20)।

परन्तु मसीहियों के मध्य बपतिस्मा के विषय में गहन असहमतियाँ हैं। उदाहरण के लिए, कई मसीही समुदाय लोगों को तब तक बपतिस्मा नहीं देंगे जब तक वे वयस्क न हो जाएँ और विश्वास का अँगीकार न करें, जबकि अन्य समुदाय शिशुओं को जन्म के कुछ समय बाद बपतिस्मा देते हैं। इसमें और इसके समान अन्य विचारों में मतभेद के चलते, हम मसीही जीवन की इस महत्वपूर्ण विधि को कैसे समझें?

यूहन्ना का बपतिस्मा

बहुत लोग विश्वास करते हैं कि बपतिस्मा का आरम्भ यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने किया था, परन्तु यूहन्ना का बपतिस्मा और नए नियम की विधि जिसे हम मसीही समुदाय में मनाते हैं एक समान नहीं हैं। यूहन्ना द्वारा आरम्भ किया गया बपतिस्मा विशेषकर यहूदी राष्ट्र के लिए था, और यह पुराने नियम के समय में आरम्भ हुआ।

शताब्दियों से परमेश्वर ने मसीहा के आने की प्रतिज्ञा की थी, जिससे कि जब उद्धारकर्ता जगत में प्रवेश होने वाला था, और जिस प्रकार से पुराने नियम ने पहले कहा था, परमेश्वर ने उसके आने

के लिए तैयारी करने हेतु जंगल से एक नबी को भेजा। यूहन्ना ही वह नबी था, और वह ऐसे लोगों के लिए मसीहा के आगमन की घोषणा करने के लिए आया जो तैयार नहीं थे।

पुराने नियम और नये नियम के बीच के समय में, यहूदियों में एक प्रथा उभरी जिसे "धर्मान्तरित बपतिस्मा" *(proselyte baptism)* कहा जाता था। यह ग़ैरयहूदियों के लिए शुद्धिकरण की विधि थी, एक ऐसा स्नान जो ऐसे लोगों के शुद्ध होने का प्रतीक था जो अशुद्ध माने जाते थे। यदि कोई ग़ैरयहूदी जन यहूदी बनना चाहता था, तो उसे तीन बातें करनी होती थीं। उसे यहूदीवाद पर विश्वास का अँगीकार करना था। फिर, यदि वह पुरुष था, तो उसे ख़तना कराना था। अन्ततः, उसे धर्मान्तरित बपतिस्मा के शुद्धिकरण संस्कार में से होकर जाना होता था क्योंकि वह विधि के अनुसार अशुद्ध माना जाता था।

यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने बहुतों को स्तम्भित किया जब उसने घोषणा करी कि *यहूदियों* को उसी प्रकार से शुद्ध होने की आवश्यकता थी। यह केवल ग़ैरयहूदी नहीं थे जिनको मन फिराव और मसीहा के आने के लिए तैयारी की आवश्यकता थी; यहूदियों को भी अपने आप को तैयार करना था। इसलिए यूहन्ना ने यहूदी लोगों से कहा, "मन फिराओ, क्योंकि स्वर्ग का राज्य निकट आ गया है" (मत्ती 3:2)। फरीसीगण यूहन्ना के सन्देश से भड़क गए क्योंकि वे अपनी सुरक्षा को पुरानी वाचा से प्राप्त करते थे।

जब यीशु आया, उसने नई वाचा को और उसके साथ वाचा के एक नये चिन्ह को भी स्थापित किया। पुराने नियम में, परमेश्वर ने अपनी वाचाओं की पुष्टि चिन्हों के द्वारा की थी। नूह के साथ बनाई गई वाचा का चिन्ह मेघधनुष था, जिसका अर्थ था कि वह फिर से कभी भी जल के माध्यम से पृथ्वी को नाश नहीं करेगा। जब परमेश्वर ने अब्राहम और उसके वंश के साथ वाचा में प्रवेश किया, तो उसने उसके साथ ख़तना के चिन्ह को स्थापित किया। उस समय ख़तना परमेश्वर की प्रतिज्ञा का चिन्ह बन गया।

समय के साथ बहुत लोग जिनमें फरीसी भी थे, यह सोचने लगे कि ख़तना उद्धार का साधन है। पौलुस इस दृष्टिकोण के विरुद्ध रोमियों को लिखी गई पत्री में तर्क करता है: "क्योंकि जो प्रकट में यहूदी है, वह यहूदी नहीं; न ही वह ख़तना, ख़तना है जो बाह्य या देह में हो। परन्तु यहूदी वही है जो मन से है; ख़तना वही है जो आत्मा के द्वारा हृदय का है, न कि लेख के द्वारा; और उसकी प्रशंसा मनुष्यों की ओर से नहीं, वरन् परमेश्वर की ओर से होती है" (2:28-29)।

पौलुस यह भी जोड़ता है कि यद्यपि ख़तना का चिन्ह बचाता नहीं है, परन्तु यह चिन्ह अर्थहीन नहीं है। ख़तना उन सब के लिए परमेश्वर की वाचा की प्रतिज्ञा का चिन्ह था जिन्होंने उस पर अपना

भरोसा रखा। ख़तना परमेश्वर की प्रतिज्ञा की वैधता को प्रदर्शित करता था, परन्तु परमेश्वर की प्रतिज्ञा केवल विश्वास के द्वारा ही पूरी होनी थी।

ख़तना नई वाचा का चिन्ह नहीं था। उन यहूदीवादियों के साथ पौलुस के विवाद का विषय यही था, जो दृढ़ता से कहते थे कि मसीहियत को ग्रहण करने वाले सभी लोगों का ख़तना किया जाना चाहिए। पौलुस चाहता था कि यहूदीवादी यह समझें कि ख़तना न केवल वाचा की प्रतिज्ञा का चिन्ह था परन्तु यह उसके श्राप का भी चिन्ह था। वे सब लोग जो पुरानी वाचा की माँगों को पूरा करने में विफल हुए परमेश्वर की उपस्थिति से हटा दिए गए। परन्तु क्रूस पर ख्रीष्ट ने श्राप को पूरा किया। इसलिए, जो लोग नई वाचा के अधीन होते हुए भी ख़तना की माँग पर अड़े रहते थे, वे तो पुरानी वाचा की माँगों की ओर लौट रहे थे।

यीशु का बपतिस्मा

इसलिए नई वाचा का चिन्ह यूहन्ना का बपतिस्मा नहीं है; यह यीशु का बपतिस्मा है। यीशु ने शुद्धिकरण के संस्कार को लिया और इसकी पहचान को इस्राएल से नहीं परन्तु अपनी नई वाचा के साथ जोड़ा। इसके परिणामस्वरूप, बपतिस्मा ने नई वाचा के समुदाय में प्रवेश के बाहरी चिन्ह के रूप में ख़तने का स्थान ले लिया। यह आवश्यक नहीं है कि जिन लोगों को बपतिस्मा दिया जाता है वे बचाए ही जाते हैं; परन्तु उनके पास परमेश्वर की प्रतिज्ञा है कि ख्रीष्ट के सभी लाभ उनके हैं यदि वे विश्वास करते हैं और जब वे विश्वास करते हैं।

मार्टिन लूथर ने शैतान के आक्रमण के कठिन समयों का अनुभव किया। जब वह इस प्रकार से घिरा होता था, तो वह ऊँचे स्वर से शैतान से कहता था, "मेरे पास से चला जा! मैं बपतिस्मा प्राप्त कर चुका हूँ!" दूसरे शब्दों में, लूथर विश्वास के द्वारा परमेश्वर की उन प्रतिज्ञाओं को थामे हुए था जो इस वाचा के चिन्ह में उसके लोगों के लिए संचारित की जाती हैं। यह बपतिस्मा का महत्व है; यह एक प्रभावशाली रीति से चित्रित किया गया शब्द है। यह सभी विश्वास करने वालों के लिए परमेश्वर की प्रतिज्ञा का वचन है। पौलुस ने लिखा:

> सावधान रहो कि कोई तुम्हें उस तत्त्वज्ञान और व्यर्थ की बातों के द्वारा भ्रम में न डाले जो मनुष्यों की परम्परा और जगत की प्रारम्भिक शिक्षा के अनुसार तो है, पर ख्रीष्ट के अनुसार नहीं। क्योंकि उसमें परमेश्वरत्व की समस्त परिपूर्णता सदेह वास करती है, और तुम उसी में परिपूर्ण किए गए हो। और वही समस्त प्रधानता और अधिकार का शिरोमणि है। उसी में तुम्हारा भी ऐसा ख़तना हुआ है जो हाथ से नहीं वरन् ख्रीष्ट के अनुसार ख़तना

> है, जिसमें शारीरिक देह उतार दी जाती है, और बपतिस्मा में तुम उसके साथ गाड़े गए और उसी के साथ जिलाए भी गए। यह उस विश्वास के द्वारा हुआ जो परमेश्वर के सामर्थ्य पर है जिसने ख्रीष्ट को मरे हुओं में से जिलाया। (कुलुस्सियों 2:8-12)

यहाँ पौलुस ऐसे ख़तना की बात करता है जो हाथों से नहीं किया गया; वह पुराने नियम के ख़तने और नए नियम के बपतिस्मा के मध्य में एक सीधा सम्बन्ध देखता है।

बपतिस्मा हमारे पुनरुज्जीवन का चिन्ह है, अर्थात् कि हम आत्मिक मृत्यु से जिला दिए गए हैं और नई सृष्टि बना दिए गए हैं। चिन्ह अपने आप इसे पूरा नहीं करता है; यह केवल उस ओर संकेत करता है जो इसे पूरा करता है—अर्थात् पवित्र आत्मा। जिस प्रकार हमें पानी के साथ बपतिस्मा दिया जाता है, परमेश्वर उन लोगों को अपने पवित्र आत्मा के द्वारा बपतिस्मा देने की प्रतिज्ञा करता है जो ख्रीष्ट में हैं। इसके अतिरिक्त, बपतिस्मा ख्रीष्ट की मृत्यु और उसके पुनरुत्थान में हमारी सहभागिता का भी चिन्ह है। एक बहुत ही वास्तविक अर्थ में, क्रूस पर हम ख्रीष्ट के साथ मरे क्योंकि वे हमारे ही पाप थे जिनको उसने लिया था।

पौलुस बल देता है कि हमें ख्रीष्ट के दुःख में सहभागी होने के लिए बुलाया जाता है, योग्यता प्राप्त करने के लिए नहीं परन्तु स्वेच्छा से उसके अपमान में सहभागी होने के द्वारा अपने क्रूसित उद्धारकर्ता के साथ अपनी पहचान जोड़ने के लिए। यह भी, बपतिस्मा द्वारा चिन्हित किया जाता है। पौलुस ने लिखा कि जब तक हम ख्रीष्ट के दुःखों में सहभागी होने के लिए तैयार न हों, हम उसकी महिमा में सहभागी नहीं होंगे। ख्रीष्ट ने प्रतिज्ञा की थी कि उसके विश्वासयोग्य शिष्य सताए जाएँगे (लूका 21:16-17)। उसके लोगों को उस रीति से दुःख उठाने के लिए बुलाया जाएगा, परन्तु वे कष्ट उस महिमा के साथ तुलना के योग्य भी नहीं हैं जिन्हें परमेश्वर ने अपने लोगों के लिए स्वर्ग में रखा है (रोमियों 8:18)। बपतिस्मा ख्रीष्ट की मृत्यु में, उसके पुनरुत्थान में, उसके दुःख में, उसके अपमान में और उसकी महिमा में हमारी सहभागिता का चिन्ह है।

एक अर्थपूर्ण प्रतिज्ञा

कुछ कलीसियाएँ तर्क करती हैं कि केवल ऐसे वयस्कों को बपतिस्मा दिया जा सकता है जो एक सचेतन विश्वास का अँगीकार करते हैं। किन्तु ऐतिहासिक रीति से, अधिकतर लोगों ने विश्वास किया है कि जिस प्रकार से पुराने नियम की वाचा की प्रतिज्ञा अब्राहम और उसके वंश को दी गई थी, नये नियम की वाचा की प्रतिज्ञा विश्वासी और उनके वंश को दी गई है; और जिस प्रकार पुरानी वाचा का चिन्ह विश्वासी और उनके बच्चों को दिया जाता था, नई वाचा का चिन्ह भी विश्वासी और उनके

बच्चों को दिया जाता है। जिस प्रकार बपतिस्मा विश्वास का एक चिन्ह है, वैसे ही ख़तना विश्वास का चिन्ह था, और हम यह तर्क नहीं कर सकते हैं कि विश्वास का चिन्ह किसी के बच्चों को नहीं दिया जाना चाहिए। प्राथमिक बात यह है कि न तो ख़तना और न ही बपतिस्मा विश्वास प्रदत्त करता है। वे परमेश्वर की उस प्रतिज्ञा को प्रदत्त करते हैं जो सब विश्वास करने वालों के लिए है।

जॉन कैल्विन ने तर्क किया कि कलीसियाई विधि का प्रभाव कभी भी उसके दिए जाने के समय से नहीं बँधा होता है; उद्धार चिन्ह के दिए जाने से पहले, उसके साथ या उसके बाद आ सकता है, जैसे कि ख़तने के साथ होता था। और बपतिस्मा की वैधता लेने या देने वाले पर निर्भर नहीं होती है। यह उस परमेश्वर के चरित्र पर निर्भर है जिसकी प्रतिज्ञा का यह चिन्ह है।

अध्याय 52

प्रभु भोज

The Lord's Supper

जब हम प्रेरितों के काम की पुस्तक और आरम्भिक मसीही समुदाय के जीवन का अध्ययन करते हैं, तो हम पाते हैं कि लोगों ने प्रभु भोज को मनाने के लिए इकट्ठा होने को बहुत महत्व दिया। सम्पूर्ण कलीसियाई इतिहास में यह केन्द्रीय कलीसियाई विधि रही है। इसकी जड़ें नए नियम में हैं, परन्तु हम पुराने नियम में फसह की विधि में इसके अग्रगामी को देखते हैं।

परिवर्तित फसह

यीशु की मृत्यु से पहले उसने अपने शिष्यों से कहा कि एक भाड़े के स्थान पर एक ऊपरी कक्ष में, अन्तिम बार फसह को मनाने के लिए तैयारी करें। जब वे एकत्रित हुए, तो उसने उन्हें बताया कि उसकी अभिलाषा थी कि उनके साथ अन्तिम बार फसह मनाए (लूका 22:7-15)। वहाँ जब वे फसह मना रहे थे, तो यीशु ने आराधना पद्धति को परिवर्तित किया और उसने अपने शिष्यों से कहा कि वह रोटी उसकी देह थी जो उनके लिए तोड़ी गई थी (19 पद)। ऐसा करने के द्वारा, उसने पुराने नियम के फसह के अर्थ को परिवर्तित कर दिया। फिर उसने फसह के भोज के दाखरस को लिया और घोषणा की कि यह उसका लहू था (20 पद)। इस प्रकार उसने छुटकारे के इतिहास में एक नए आयाम को स्थापित किया। वहाँ ऊपरी कक्ष में नये नियम का जन्म हुआ।

हम प्रायः सोचते हैं कि नये नियम का युग वहाँ से आरम्भ हुआ जहाँ से नये नियम के लेख आरम्भ होते हैं—अर्थात् यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के आने की घोषणा के साथ। परन्तु नये नियम के ऐतिहासिक समय का वास्तविक आरम्भ तब हुआ जब नई वाचा स्थापित हुई। यह ऊपरी कक्ष में

आरम्भ हुआ, जब यीशु ने प्रभु भोज का प्रारम्भ किया। परमेश्वर ने जिस प्रकार से मिस्र में पहलौठों की मृत्यु की महामारी से लोगों के छुटकारे के स्मारक के रूप में पुराने नियम के फसह का उपयोग किया, उसी प्रकार से ख्रीष्ट ने कलीसिया के छुटकारे के लिए अपनी मृत्यु के स्मारक के रूप में प्रभु भोज को स्थापित किया।

प्रमुख विचार

क्योंकि ख्रीष्ट की मृत्यु मसीही विश्वास के लिए केन्द्रीय है, प्रभु भोज का मनाया जाना अति महत्वपूर्ण है और उसी कारण से यह सम्पूर्ण कलीसियाई इतिहास में विवाद का एक अन्य स्रोत रहा है। सोलहवीं शताब्दी की एक त्रासदी थी कि धर्मसुधारक प्रभु भोज के अर्थ के विषय में सहमति तक नहीं पहुँच पाए। जॉन कैल्विन और मार्टिन लूथर अपने ईश्वरविज्ञान में एक दूसरे के जितना निकट थे, उतना ही वे एक दूसरे से प्रभु भोज के महत्वपूर्ण आयामों के विषय में भिन्न दृष्टिकोण रखते थे।

उपस्थिति का प्रकार

इस कलीसियाई विधि में तब और अब के केन्द्रीय विवाद का सम्बन्ध ख्रीष्ट की उपस्थिति के प्रकार से है। प्रभु भोज के स्वभाव के बड़े दृष्टिकोण में रोमन कैथोलिक, लूथरवादी और कैल्विनवादियों के दृष्टिकोण सम्मिलित हैं।

रोमन कैथोलिक दृष्टिकोण को "सत्त्वपरिवर्तनवाद" *(transubstantiation)* कहा जाता है। सरल शब्दों में, रोमी कलीसिया विश्वास करती है कि मिस्सा *(mass)* के समय जब पुरोहित रोटी और दाखरस को आशीषित करता है तो एक आश्चर्यकर्म होता है। रोटी और दाखरस के साधारण *(ordinary)* तत्त्व *(element)* यीशु ख्रीष्ट की वास्तविक *(actual)* देह और उसके वास्तविक लहू में परिवर्तित हो जाते हैं। इस सिद्धान्त को अरस्तू *(Aristotle)* के दर्शनशास्त्र के उपयोग के द्वारा आकार दिया गया। वास्तविकता को परिभाषित करने के प्रयासो में, अरस्तू ने किसी वस्तु के *सारतत्त्व (essential)* और *संयोगिक (accidental)* गुणों में भेद किया। मैं चाक के टुकड़े को उसके रंग और गोल आकार के द्वारा पहचान सकता हूँ, परन्तु मैं उसके अस्तित्व के भीतरी सार में प्रवेश नहीं कर सकता हूँ। अरस्तू के अनुसार, चाक के टुकड़े का भीतरी सार उसका सत्त्व *(substance)* है; उसके बाहरी गुण उसके *ऐक्सिडेन्शिया (accedentia-संयोगिक गुण)* मात्र हैं, जो चाक के भौतिक गुण हैं।

इस ढाँचे को सत्त्वपरिवर्तन के सूत्र में प्रभु भोज पर लागू करते हुए रोम ने कहा कि रोटी और दाखरस के भीतरी सार ख्रीष्ट की देह और उसके लहू में परिवर्तित हो जाते हैं यद्यपि रोटी का

ऐक्सिडेन्शिया, उसका रूप इत्यादि, वैसे ही बने रहते हैं। अरस्तू की बात का अनुसरण करते हुए, फिर वहाँ दोहरा आश्चर्यकर्म है क्योंकि किसी भी वस्तु के *ऐक्सिडेन्शिया* उसके सत्त्व से सम्बन्धित होते हैं। चाक, चाक के जैसी इसलिए दिखती है क्योंकि उसके पास चाक के *ऐक्सिडेन्शिया* हैं। किसी वस्तु के सत्त्व में और उसके बाहरी गुणों में सर्वदा एक सिद्ध सम्बन्ध होता है। किन्तु मिस्सा के आश्चर्यकर्म में हम रोटी के *ऐक्सिडेन्शिया* को बिना उसके सत्त्व के पाते हैं और यीशु की देह के सत्त्व को बिना उसके *ऐक्सिडेन्शिया* के पाते हैं—एक दोहरा आश्चर्यकर्म।

लूथर ने इस धारणा पर यह कहते हुए आपत्ति जताई कि ख्रीष्ट की उपस्थिति तत्त्वों *(elements)* का स्थान नहीं लेती है परन्तु वह तो रोटी और दाखरस में जोड़ी जाती है, किन्तु अदृश्य रीति से। दूसरे शब्दों में, तत्त्वों में, उनके साथ, और उनके नीचे ख्रीष्ट शारीरिक रीति से उपस्थित है। इस दृष्टिकोण को “विधिक मिलन” *(sacramental union)* कहा जाता है और कभी-कभी इसे “सहसत्त्ववाद” *(consubstantiation)* कहा जाता है। अंग्रेज़ी में *कॉन (con)* उपसर्ग का अर्थ “के साथ” है, और यह संकेत करता है कि यीशु की देह और उसका लहू कैसे रोटी और दाखरस के भौतिक तत्त्वों के साथ हैं। इसलिए लूथर ने इस बात पर बल दिया कि ख्रीष्ट की देह भोज में शारीरिक रीति से उपस्थित है, यह एक ऐसा दृढ़ विश्वास है जिसे वह कलीसियाई विधि को स्थापित करते हुए यीशु के इन शब्दों के आधार पर मानता था: “यह मेरी देह है।” लूथर ने तर्क दिया कि यीशु कभी भी यह नहीं कहता कि रोटी उसकी देह थी यदि वास्तव में, ऐसा न होता।

कैल्विन ने बल दिया कि एक शारीरिक देह, जैसे कि यीशु के पास है, एक समय में केवल एक ही स्थान पर हो सकती है, और क्योंकि यीशु की देह स्वर्ग में है इसलिए वह कलीसियाई विधियों में शारीरिक रीति से उपस्थित नहीं हो सकती है। परन्तु यीशु का परमेश्वरीय स्वभाव एक समय में सर्वत्र हो सकता है; इसलिए वह प्रभु भोज के समय सच में उपस्थित है, किन्तु आत्मिक रीति से।

सारांश में, रोमन कैथोलिक, लूथरवादी, और कैल्विनवादी सब सहमत हैं कि प्रभु भोज में ख्रीष्ट सच में उपस्थित है; विवाद इस बात से सम्बन्धित है कि क्या यह शारीरिक रीति से उपस्थित है या आत्मिक रीति से।

काल कारक (The Time Factor)

प्रभु भोज में सम्मिलित काल कारक तिहरा है। भूतकाल के सम्बन्ध में, प्रभु भोज पापियों के लिए प्रभु की मृत्यु का एक स्मारक है। प्रेरित पौलुस भोज की स्थापना के समय यीशु के शब्दों का वर्णन करता है:

> जो बात मैंने तुम्हें सौंपी है वह मुझे प्रभु से मिली थी, कि प्रभु यीशु ने जिस रात वह पकड़वाया गया, रोटी ली, और उसने धन्यवाद देकर रोटी तोड़ी और कहा, “यह मेरी देह है जो तुम्हारे लिए है: मेरे स्मरण के लिए यही किया करो।” इसी प्रकार भोजन के पश्चात् उसने यह कहते हुए कटोरा भी लिया, “यह मेरे लहू में नई वाचा का कटोरा है। जब जब तुम इसमें से पीओ तब तब मेरे स्मरण के लिए यही किया करो।” (1 कुरिन्थियों 11:23-25)

जब यीशु ने प्रभु भोज को स्थापित किया तो उसने यह भी कहा, “जब तक परमेश्वर का राज्य न आ जाए, मैं दाखरस नहीं पीऊँगा” (लूका 22:18)। उससे हम देखते हैं कि प्रभु भोज हमें उस भविष्य के विषय में भी सोचने के लिए विवश करता है जब हम स्वर्ग में प्रभु की मेज़ के भोज में, मेमने के विवाह-भोज में सहभागी होंगे। यहाँ प्रभु भोज का सम्बन्ध भविष्य से है।

उसी समय, जब जब हम इस भोज में सहभागी होते हैं, वर्तमान में व्यक्तिगत रीति से जी उठे ख्रीष्ट से भेंट करने का लाभ होता है। इसलिए इसमें एक वर्तमान की वास्तविकता, भूतकाल की बातों की स्मृति और उस धन्य भविष्य की आशा है जिसकी प्रतिज्ञा परमेश्वर ने अपने लोगों के लिए की है।

भाग आठ

युगान्तविज्ञान

Eschatology

अध्याय 53

मृत्यु और मध्यवर्ती अवस्था

Death and the Intermediate State

इस अध्याय के साथ, हम "युगान्तविज्ञान" नामक विधिवत् ईश्वरविज्ञान के उपभाग के साथ अपने अध्ययन का आरम्भ करते हैं। यह शब्द यूनानी शब्द *एस्काटोन (eschaton)* से आता है, जो तथाकथित अन्तिम बातों की ओर संकेत करता है। युगान्तविज्ञान का एक आरम्भिक आयाम मरणोत्तर जीवन और वह भयानक घटना है जो हमें वहाँ ले जाती है—मृत्यु।

मनुष्यों के सामने सबसे बड़ी समस्या मृत्यु है। हम उसके विषय में विचारों को अपने मस्तिष्कों से दूर रखने का प्रयास कर सकते हैं, परन्तु हम अपनी नश्वरता के प्रति अपनी चेतना को पूर्णतः मिटा नहीं सकते हैं। हम जानते हैं कि मृत्यु की छाया हमारी प्रतीक्षा कर रही है।

मृत्यु का उद्गम

प्रेरित पौलुस लिखता है, "अतः जिस प्रकार एक मनुष्य के द्वारा पाप ने जगत में प्रवेश किया, तथा पाप के द्वारा मृत्यु आई, उसी प्रकार मृत्यु सब मनुष्यों में फैल गई, क्योंकि सब ने पाप किया—क्योंकि व्यवस्था के दिए जाने तक पाप जगत में तो था, पर जहाँ व्यवस्था नहीं वहाँ पाप की गणना नहीं होती। तथापि मृत्यु ने आदम से लेकर मूसा तक शासन किया, उन पर भी जिन्होंने आदम के अपराध के समान पाप नहीं किया था" (रोमियों 5:12-14)। हम देखते हैं कि मूसा के द्वारा व्यवस्था के दिए जाने से पहले भी पाप था और यह इस तथ्य में प्रकट होता है कि व्यवस्था के दिए जाने से पहले मृत्यु होती थी। मृत्यु का तथ्य पाप की उपस्थिति को प्रमाणित करता है और पाप का

तथ्य व्यवस्था की उपस्थिति को प्रमाणित करता है, जो आरम्भ से मनुष्यों के लिए भीतर से प्रकट की गई थी। इस प्रकार, मृत्यु पाप के सीधे परिणामस्वरूप जगत में आई।

यह सांसारिक जगत मृत्यु को प्राकृतिक व्यवस्था के भाग के रूप में देखता है, जबकि मसीही मृत्यु को पतित व्यवस्था के भाग के रूप में देखता है; यह मनुष्य की आरम्भिक स्थिति नहीं थी। मृत्यु पाप के प्रति परमेश्वर के न्याय के रूप में आई। आरम्भ से, पाप एक मृत्युदण्ड के योग्य अपराध था। परमेश्वर ने आदम और हव्वा से कहा, "तू वाटिका के किसी भी पेड़ का फल बेखटके खा सकता है, परन्तु जो भले और बुरे के ज्ञान का वृक्ष है, उस में से कभी न खाना, क्योंकि जिस दिन तू उसमें से खाएगा उसी दिन तू अवश्य मर जाएगा" (उत्पत्ति 2:16-17)। जिस मृत्यु की चेतावनी परमेश्वर ने दी थी, वह न केवल आत्मिक थी परन्तु शारीरिक भी थी। आदम और हव्वा शारीरिक रीति से उस दिन नहीं मरे जिस दिन उन्होंने पाप किया; परमेश्वर ने उन्हें दण्ड देने से पहले कुछ समय के लिए जीने का अनुग्रह प्रदान किया। फिर भी, वे अन्ततः पृथ्वी से मर मिटे।

मृत्यु में आशा

प्रत्येक मनुष्य एक पापी है और इसलिए उस पर मृत्यु की दण्डाज्ञा सुनायी गयी है। हम सब उस दण्ड के दिये जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। किन्तु मसीहियों के लिए ख्रीष्ट ने मूल्य चुका दिया है। मसीही लोग मृत्यु को इस संसार से अगले संसार तक अवस्थांतर के क्षण के रूप में देखते हैं। पौलुस बन्दीगृह में था जब उसने लिखा:

> मैं जानता हूँ कि तुम्हारी प्रार्थनाओं और यीशु ख्रीष्ट के आत्मा की सहायता से इस कैद का प्रतिफल मेरा छुटकारा होगा। मेरी हार्दिक आशा और अभिलाषा यह है कि मैं किसी बात में लज्जित न होऊँ, परन्तु जैसे पूरे साहस से ख्रीष्ट की महिमा मेरी देह से सदा होती रही है वैसे ही अब भी हो, चाहे मैं जीवित रहूँ या मर जाऊँ। क्योंकि मेरे लिए जीवित रहना तो ख्रीष्ट, और मरना लाभ है। परन्तु यदि सदेह जीवित रहूँ तो इसका अर्थ मेरे लिए फलदायी परिश्रम है; परन्तु मैं किस बात को चुनूँ, यह नहीं जानता। मैं इन दोनों के बीच असमंजस में पड़ा हूँ। मेरी लालसा तो यह है कि प्रस्थान करके ख्रीष्ट के पास जा रहूँ, क्योंकि यह अति उत्तम है, परन्तु तुम्हारे कारण शरीर में जीवित रहना मेरे लिए अधिक आवश्यक है। (फिलिप्पियों 1:19-24)

हम में से बहुत लोग इस स्थल में पौलुस के शब्दों से अचम्भित हो जाते हैं। यद्यपि हम क़ब्र पर ख्रीष्ट की विजय में आनन्दित होते हैं, हम फिर भी मृत्यु से डरते हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ,

मैं मृत्यु से नहीं डरता हूँ, परन्तु मैं मृत्यु की प्रक्रिया से डरता हूँ। मसीहियों को पीड़ादायक मृत्यु से बचने की कोई निश्चियता नहीं दी गई है; हमारी निश्चयता है कि उसके मध्य और मृत्यु के बाद जहाँ हम जाएँगे, परमेश्वर की उपस्थिति हमारे साथ होगी। इस सच्चाई को ध्यान में रखते हुए, पौलुस ने लिखा है कि, "मेरे लिए जीवित रहना तो ख्रीष्ट, और मरना लाभ है।" उसने एक असाधारण जीवन जीया, और वह बहुत दुःख सहने पाया क्योंकि वह उत्साह के साथ अपने अनन्त जीवन के सत्य के विषय में दृढ़ निश्चयी था। उसने आनन्द के साथ अपने जीवन और देह को जोखिम में डाला क्योंकि उसके जीवन का प्रत्येक क्षण ख्रीष्ट के विषय में था। इस पृथ्वी पर जीवन ख्रीष्ट की सेवा करने का एक साधन था, और मृत्यु ख्रीष्ट के साथ होने का साधन थी। मसीही के लिए मृत्यु, बहीखाते के सकारात्मक भाग में पड़ती है।

पौलुस जीवन और मृत्यु के विषय में अपने दृढ़ विश्वास पर पुनः बल देता है: "मैं इन दोनों के बीच असमंजस में पड़ा हूँ। मेरी लालसा तो यह है कि प्रस्थान करके ख्रीष्ट के पास जा रहूँ क्योंकि यह अति उत्तम है, परन्तु तुम्हारे कारण शरीर में जीवित रहना मेरे लिए अधिक आवश्यक है।" पौलुस पृथ्वी पर अपनी सेवकाई को करते रहना चाहता था, परन्तु उसका हृदय स्वर्ग में था। वह उन लोगों से प्रेम करता था जिनकी वह सेवा कर रहा था, परन्तु वह घर जाने के लिए उत्सुक था, "कि प्रस्थान करके ख्रीष्ट के पास जा रहूँ, क्योंकि यह अति उत्तम है।"

हमारी प्रवृति है कि हम प्रायः मृत्यु और जीवन के मध्य अन्तर को अच्छे और बुरे के मध्य अन्तर के रूप में देखते हैं, परन्तु प्रेरित ने बात को ऐसे नहीं देखा। उसने अन्तर को अच्छे और उत्तम के मध्य अन्तर के रूप में देखा। जीवित रहना अच्छा है। हाँ, जीवन में बहुत पीड़ा है और कुछ लोग दुःख उठाने के इस स्तर तक पहुँचते हैं कि वे मरना चाहते हैं; परन्तु हम में से अधिकाँश लोग, पीड़ा और मर्मभेदी दुःख और निराशाओं के होते हुए भी जीना चाहते हैं। जीवन जीने में आनन्द है, इसलिए हम उत्साह के साथ जीवन को थामते हैं। फिर भी मसीहियों के लिए, मृत्यु इससे उत्तम है क्योंकि हम तुरन्त ख्रीष्ट के साथ होने के लिए जाते हैं, जो एक ऐसी आशा है जिसकी पुष्टि ख्रीष्ट के पुनरुत्थान के द्वारा हो गई है।

बाइबल सिखाती है कि मृत्यु भी है और अन्तिम पुनरुत्थान भी है। जब हम प्रेरितों का विश्वास वचन दोहराते हैं और कहते हैं, "मैं देह के पुनरुत्थान पर विश्वास करता हूँ," हम उस भरोसे को व्यक्त कर रहे हैं कि हमारे शरीर जिला उठाए जाएँगे। एक दिन हमारी हड्डियाँ जी उठेंगी, ठीक वैसे ही जैसे ख्रीष्ट उसी शरीर के साथ क़ब्र से बाहर आया जिसके साथ वह अन्दर गया था, यद्यपि उसका शरीर बड़े प्रभावशाली रूप से परिवर्तित हुआ था। यीशु का शरीर महिमान्वित हो गया था, वह नाशमान से अविनाशी में परिवर्तित हो गया था। पौलुस लिखता है:

> पर अब ख्रीष्ट तो मृतकों में से जिलाया गया है, और जो सोए हुए हैं उनमें वह पहला फल है। क्योंकि जब एक मनुष्य के द्वारा मृत्यु आयी तो एक ही मनुष्य के द्वारा मृतकों का पुनरुत्थान भी आया। जिस प्रकार आदम में सब मरते हैं उसी प्रकार ख्रीष्ट में सब जिलाए जाएँगे, पर हर एक अपने क्रम के अनुसार: प्रथम फल ख्रीष्ट है, तब ख्रीष्ट के आगमन पर उसके लोग। (1 कुरिन्थियों 15:20-23)

हम नहीं जानते कि हम स्वर्ग में कैसे दिखेंगे, परन्तु वहाँ हम एक दूसरे को अवश्य पहचानेंगे। हमारे पास ऐसे शरीर होंगे जिन्हें पहचाना जा सके। भविष्य में सर्वोत्तम अवस्था महिमान्वित देह है। यहाँ पृथ्वी पर शरीर के साथ जीना अच्छा है, परन्तु सर्वोत्तम अभी शेष है।

तब और अब के मध्य

ईश्वरविज्ञानी "मध्यवर्ती अवस्था" *(the intermediate state)* की बात करते हैं, जिससे उनका तात्पर्य उस समयकाल से है जो हमारी मृत्यु और अन्तिम पुनरुत्थान के मध्य में है। जब हम मरते हैं, हमारे शरीर क़ब्र में जाएँगे, परन्तु हमारे प्राण सीधे स्वर्ग में जाएँगे और तुरन्त यीशु ख्रीष्ट की उपस्थिति में होंगे। मध्यवर्ती अवस्था में हम में से प्रत्येक के पास शरीर के बिना प्राण होगा, परन्तु सब सम्भावित परिस्थितियों में उत्तम परिस्थिति तो बाद में होगी, अर्थात् ख्रीष्ट के राज्य की परिपूर्णता में, जब हमारे प्राण अविनाशी और महिमान्वित शरीरों को धारण करेंगे।

मृत्यु के समय हम किसी प्रकार की प्राण निद्रा *(soul sleep)* में प्रवेश नहीं करेंगे, जैसा कि कुछ विधर्मियों ने सिखाया है, जिनके अनुसार हम व्यक्तिगत अचेतना और ख्रीष्ट से पृथक अवस्था में होंगे। बाइबलीय दृष्टिकोण यह है कि हम इस रीति से एक व्यक्तिगत, सचेत अस्तित्व की अटूट निरन्तरता का अनुभव करेंगे कि मृत्यु के तुरन्त बाद हम सक्रिय रीति से ख्रीष्ट की तथा परमेश्वर की उपस्थिति में होंगे। हम प्रायः अपने शरीरों में आयुवृद्धि के प्रति अनभिज्ञ होते हैं, क्योंकि हम वास्तव में तो अपनी ही देह के भीतर रहते हैं अर्थात्—अपने मस्तिष्कों में, आत्माओं में और प्राणों में। यह न तो केवल वही सचेत अस्तित्व की व्यक्तिगत निरन्तरता बनी रहेगी, किन्तु उससे भी एक अधिक उत्तम अवस्था होगी क्योंकि हम ख्रीष्ट की उपस्थिति में जी रहे होंगे।

पौलुस के असमंजस का उत्तर मृत्यु पर प्राप्त उसकी विजय हुई, जब वह ख्रीष्ट के साथ होने के लाभ का अनुभव करने के लिए अनन्त निवास को गया।

अध्याय 54

पुनरुत्थान

The Resurrection

जिस यूनानी शब्द का हम “पुनरुत्थान” के रूप में अनुवाद करते हैं, *अनस्टासिया (anastasia)*, उसका शाब्दिक अर्थ है “पुनः खड़ा होना” या “पुनः उठना।” हम प्रायः भविष्य के हमारे पुनरुत्थान के विषय में केवल व्यक्तिगत अस्तित्व की निरन्तरता के रूप में सोचा करते हैं, जिसमें प्राण स्वर्ग में परमेश्वर की उपस्थिति में निरन्तर बना रहता है जबकि क़ब्र में शरीर का क्षय हो रहा होता है। परन्तु, पुनरुत्थान वास्तव में उस भौतिक शरीर के विषय में है, जो कि क़ब्र में क्षय का तब तक अनुभव करता है जब तक कि वह नये जीवन के लिए उठ न जाए।

प्रथम फल

पहली शताब्दी से, कलीसिया ने शरीर के पुनरुत्थान की पुष्टि की है, *रेज़रक्टियोनिस कार्निस (resurrectionis carnis)*, जिसमें केवल ख्रीष्ट का शारीरिक पुनरुत्थान ही नहीं परन्तु उसके लोगों का भी शारीरिक पुनरुत्थान सम्मिलित है। यह सत्य पवित्रशास्त्र के विभिन्न स्थानों में पाया जाता है। पौलुस ने लिखा:

> यदि वास्तव में परमेश्वर का आत्मा तुम में वास करता है, तो तुम शरीर में नहीं, वरन् आत्मा में हो। परन्तु यदि किसी में ख्रीष्ट का आत्मा न हो तो वह उसका नहीं है। यदि ख्रीष्ट तुम में है तो यद्यपि शरीर पाप के कारण मृतक है, फिर भी आत्मा धार्मिकता के कारण जीवित है। यदि उसका आत्मा जिसने यीशु को मृतकों में से जीवित किया तुम में निवास करता है, तो वह जिसने ख्रीष्ट यीशु को मृतकों में से जीवित किया, तुम्हारी मरणहार देहों को भी अपने आत्मा के द्वारा जो तुम में वास करता है, जीवित करेगा। (रोमियों 8:9-11)

कुछ लोग कहते हैं कि यह स्थल केवल हमारे भीतरी मनुष्यत्व के नवीकरण या पुनरुज्जीवन की बात कर रहा है, जिसमें हम आत्मिक मृत्यु से आत्मिक जीवन में जिलाए जाते हैं। यह विचार निश्चित रूप से पौलुस की सोच में सम्मिलित है, परन्तु वह जोड़ता है कि जिस आत्मा ने यीशु की नाशमान देह को जिलाया, वही आत्मा हमारी नाशमान देहों को भी मृत्यु से जिलाएगा। पौलुस इस सिद्धान्त को बारम्बार सिखाता है, विशेषकर जब वह आदम और अन्तिम आदम ख्रीष्ट में तुलना करता है। जिस प्रकार पहले आदम के द्वारा मृत्यु संसार में आयी, वैसे ही मृत्यु पर विजय अन्तिम आदम की सेवकाई के फलस्वरूप आती है। मृत्यु से ख्रीष्ट के शारीरिक पुनरुत्थान को पौलुस एक अकेली घटना के रूप में नहीं परन्तु बहुतों में से प्रथम के रूप में देखता है। ख्रीष्ट उन लोगों का प्रथम फल बना जो मृतकों में से जिलाए जाएँगे (1 कुरिन्थियों 15:20)।

पवित्रशास्त्र ख्रीष्ट के पुनरुत्थान से पहले कई पुनरुत्थान का वर्णन करता है, जिसमें पुराने नियम में सारपत की विधवा का पुत्र (1 राजा 17:17-24), और नये नियम में नाइन की विधवा का पुत्र (लूका 7:11-15), याईर की पुत्री (लूका 8:41-42, 49-56), और लाज़र (यूहन्ना 11:1-44) सम्मिलित हैं; परन्तु उन पुनरुत्थित लोगों में से प्रत्येक बाद में फिर से मर गए। यीशु का पुनरुत्थान उन उदाहरणों से भिन्न था। ख्रीष्ट का पुनरुत्थान केवल पुनः जीवित होने से कहीं अधिक था; उसमें उसकी देह का एक बड़ा परिवर्तन भी सम्मिलित था। क़ब्र में लेटाई गई देह और क़ब्र से निकली देह में निरन्तरता थी। यह तो पहले के पुनरुत्थान की घटनाओं के विषय में भी सच था। फिर भी यीशु के पुनरुत्थान में अनिरन्तरता का भी तत्त्व था। उसकी देह ने एक बड़े परिवर्तन का अनुभव किया। वह उसी देह के साथ वही जन था, परन्तु उसकी देह महिमान्वित हो गई थी।

एक अत्यावश्यक सिद्धान्त

कुरिन्थियों को लिखी गई अपनी पहली पत्री में, पौलुस ख्रीष्ट के पुनरुत्थान का एक लम्बा स्पष्टीकरण और बचाव देता है। वह उन लोगों को जो सामान्य रीति से पुनरुत्थान के विषय में सन्देहवादी हैं, एक *असंगति-प्रदर्शन* तर्क के द्वारा सम्बोधित करता है, जिसके विषय में हमने पहले कहा था कि यह तर्क करने की ऐसी तकनीक है जिसमें एक व्यक्ति यह दिखाने के लिए अपने विरोधी के आधार वाक्य को उसके तार्किक निष्कर्ष पर ले जाता है कि वह असंगत है। इस पत्री में, पौलुस इस आधार वाक्य से तर्क करता है कि कोई पुनरुत्थान नहीं है, और वह निष्कर्ष निकालता है कि यदि कोई

पुनरुत्थान नहीं है, तो ख्रीष्ट जिलाया नहीं गया (1 कुरिन्थियों 15:13)। जहाँ कोई ऐसी बात है जो विश्वव्यापी रीति से नकारी गई है, तो किसी भी विशिष्ट परिस्थिति में वह सम्भव नहीं हो सकती है।

पौलुस फिर कहता है कि यदि ख्रीष्ट जिलाया नहीं गया था, तो हम अभी भी अपने पाप में हैं (17 पद)। इसलिए बिना पुनरुत्थान के कोई मसीही विश्वास ही नहीं है। पुनरुत्थान की अवधारणा सम्पूर्ण प्रेरितीय विश्वास के लिए पूर्ण रीति से अत्यावश्यक है।

वर्तमान में बहुत से ईश्वरविज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ख्रीष्ट की मृत्यु और पुनरुत्थान के जैसे मसीहियत के अलौकिक आयामों के बिना भी, हमारे पास एक उत्साहपूर्ण मसीहियत हो सकती है। उदाहरण के लिए रूडॉल्फ बुल्टमान, जिन्होंने 1 कुरिन्थियों 15 का एक सटीक एवं पैनी दृष्टि वाला अर्थनिरूपण *(exegesis)* किया और स्पष्ट रीति से समझाया कि प्रेरित ने क्या कहा था, परन्तु ठीक उसके बाद उन्होंने कहा कि पौलुस से भूल हो गई थी। वर्तमान की कलीसिया में बहुत लोगों के साथ ही, बुल्टमान ने भी यह निष्कर्ष निकाला कि पुनरुत्थान के केन्द्रीय महत्व के विषय में प्रेरितीय साक्षी झूठी है।

लोग बिना पुनरुत्थान पर विश्वास किए एक धर्म को मान सकते हैं, और वे उसे मसीही धर्म भी कह सकते हैं, परन्तु उसका ख्रीष्ट के बाइबलीय सन्देश और मूल मसीही विश्वास के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। पौलुस ने कहा कि पुनरुत्थान से हटकर कोई मसीही विश्वास नहीं है, और यदि पुनरुत्थान नहीं है, तो मसीही लोग सर्वाधिक दयनीय लोग हैं क्योंकि वे अपनी आशा को एक झूठी बात में रखते हैं (19 पद)।

यह कहने के पश्चात् पौलुस ख्रीष्ट के पुनरुत्थान के सत्य के लिए अपने तर्क को इन नकारात्मक निहितार्थों पर निर्भर नहीं करता है। वह पुनरुत्थान की अनेक साक्षियों की ओर इंगित करता है—प्रेरितों की साक्षी की ओर, जिसमें उसकी साक्षी भी सम्मिलित है, और उन पाँच सौ लोगों की साक्षी की ओर जिन्होंने उसके जिलाए जाने के पश्चात् ख्रीष्ट को देखा (3-8 पद)।

पौलुस आगे कहता है कि ख्रीष्ट जिलाया गया और उसे एक महिमान्वित देह दी गई, और परमेश्वर ने जो उसके लिए किया, उसने प्रतिज्ञा की है कि वह ऐसा सब मसीहियों के लिए भी करेगा: "जिस प्रकार आदम में सब मरते हैं उसी प्रकार ख्रीष्ट में सब जिलाए जाएँगे, पर हर एक अपने क्रम के अनुसार: प्रथम फल ख्रीष्ट है, तब ख्रीष्ट के आगमन पर उसके लोग। इसके पश्चात् अन्त होगा। उस समय वह समस्त शासन, अधिकार और सामर्थ्य का अन्त करके राज्य को परमेश्वर पिता के हाथ में सौंप देगा" (22-24 पद)।

पुनरुत्थान की देह

फिर पौलुस पुनरुत्थान की देह की प्रवृति को सम्बोधित करता है: “परन्तु कोई कहेगा, ‘मृतक कैसे जिलाए जाते हैं? और वे किस प्रकार की देह में आते हैं’” (35 पद)। दूसरे शब्दों में, हमारी पुनरुत्थित देह कैसी दिखेंगी? क्या हम वैसे दिखेंगे जैसे हम मृत्यु के समय थे? पौलुस इस प्रकार से उत्तर देता है: “हे मूर्ख! जो कुछ तू बोता है जब तक वह मर न जाए जिलाया नहीं जाता। और जो कुछ तू बोता है, तू वह देह नहीं बोता जो उत्पन्न होने वाली है, परन्तु निरा दाना, चाहे गेहूँ का या किसी और अनाज का। परन्तु परमेश्वर अपनी इच्छानुसार उसे देह देता है, और हर एक बीज को उसकी विशेष देह” (36-38 पद)। प्लेटो के तर्क का उपयोग करते हुए पौलुस प्रकृति से उदाहरण को लेता है। किसी फल को उगाने के लिए, पहले एक बीज का बोया जाना होगा, और इससे पहले वह बीज जीवन ला सके, उसको निश्चित रूप से क्षय का सामना करना होगा। जब अन्ततः फल आता है, तो वह उस बीज की नाईं किसी भी रीति से नहीं दिखता है। पुनरुत्थान के सम्बन्ध में, क़ब्र में जाने वाली देह उस बीज की नाईं है; हमें तो मरना ही है। फिर भी मृत्यु में, देह परिवर्तित होती है। वहाँ निरन्तरता होगी, ठीक उसी प्रकार से जैसे बीज और फल में निरन्तरता होती है, परन्तु हमारी पार्थिव देह और महिमान्वित देह के बीज के मध्य में महत्वपूर्ण अनिरन्तरता भी होगी।

हमारी पुनरुत्थित देह मानवीय और पहचानने योग्य होंगी। यीशु की पुनरुत्थित देह के साथ रहस्यमय घटनाएँ घटीं। वह सर्वदा तुरन्त पहचाना नहीं गया; हम इस बात को उन लोगों के उदाहरण में देखते हैं जिन्होंने इम्माऊस के मार्ग पर उससे भेंट की (लूका 24:13-31)। हम नहीं जानते हैं कि यीशु को पहचानने में उनकी विफलता यीशु में परिवर्तन के कारण थी या फिर परमेश्वर द्वारा यीशु की पहचान को छिपाए जाने के कारण थी। उसी प्रकार से, मरियम मगदलीनी ने यीशु को तब तक नहीं पहचाना जब तक यीशु ने उससे बात नहीं की (यूहन्ना 20:11-16)। फिर भी जब यीशु ऊपरी कक्ष में अपने चेलों से मिला, तो उन्होंने उसे तुरन्त पहचान लिया। इस प्रकार से कुछ परिवर्तन तो होंगे, परन्तु हम नहीं जानते कि ये परिवर्तन किस सीमा तक होंगे। वास्तव में, हम नहीं जानते हैं कि जिस देह में यीशु ऊपरी कक्ष में आया था, क्या वह महिमान्वीकरण के अन्तिम चरण में थी या उस समय भी परिवर्तन हो रहे थे। उसने मरियम से कहा, “मुझे मत छू, क्योंकि मैं अब तक पिता के पास ऊपर नहीं गया हूँ” (यूहन्ना 20:17), जिसे कुछ लोग एक संकेत के रूप में मानते हैं कि यीशु तब अपनी महिमान्वित देह में पुनर्गठित होनी की प्रक्रिया में था। किन्तु, यह केवल अनुमान ही है।

हमारी पुनरुत्थान की देह के सम्बन्ध में, हम मान सकते हैं कि हमारी आधारभूत मानवीय क्षमताएँ उपस्थित होंगी; हमारे पास तब भी मस्तिष्क, इच्छाशक्ति और स्नेह होंगे। आधारभूत भिन्नता यह होगी कि नई देह में मरने की क्षमता नहीं होगी; हम नाशमान बोए जाते हैं और अविनाशी जिलाए जाएँगे (1 कुरिन्थियों 15:53), परन्तु इसलिए नहीं कि हम अन्तर्निहित रूप से अविनाशी होंगे। यूनानी लोग विश्वास करते थे कि प्राण शाश्वत है और इसलिए उनमें नष्ट हो जाने की क्षमता नहीं है, जबकि मसीही विश्वास करते हैं कि प्राण सृजे जाते हैं, शाश्वत नहीं हैं। हम सर्वदा के लिए स्वर्ग में जीएँगे, इसलिए नहीं क्योंकि हमारा अस्तित्व अन्तर्निहित रीति से अविनाशी होगा परन्तु इसलिए क्योंकि हम परमेश्वर के आदेश के द्वारा अमर बना दिए जाएँगे। परमेश्वर हमें नाश नहीं होने देगा। परमेश्वर का बनाए रखने वाला अनुग्रह और प्रेम हमारी अमरता को सुनिश्चित करेंगे।

पुनरुत्थान के विषय में अपने लेख में, पौलुस प्रकृति से उदाहरण देता है:

> सब शरीर एक समान नहीं, परन्तु मनुष्यों का शरीर एक प्रकार का है, पशुओं का दूसरे प्रकार का। पक्षियों का शरीर अन्य है तो मछलियों का भिन्न प्रकार का। स्वर्गीय देह हैं और पार्थिव देह भी हैं, परन्तु स्वर्गीय देह का तेज और है तो पार्थिव देह का और। सूर्य का तेज और है, चाँद का तेज और, फिर तारों का तेज भी और है, वरन् एक तारे का तेज दूसरे से भिन्न है। (39-41 पद)

पौलुस हमें बता रहा है कि चारों ओर देखें और उसके विभिन्न रूपों में जीवन की समीक्षा करें जिससे कि हम समझ सकें कि अभी बहुत कुछ आना शेष है:

> मृतकों का जी उठना भी ऐसा ही है। नश्वर देह बोई जाती है और अविनाशी देह जिलाई जाती है, अनादर के साथ बोई जाती है और महिमा के साथ जिलाई जाती है, निर्बल दशा में बोई जाती है और सामर्थ्य में जिलाई जाती है, स्वाभाविक दशा में बोई जाती है और आत्मिक दशा में जिलाई जाती है। जबकि स्वाभाविक देह है तो आत्मिक देह भी है। इसलिए यह भी लिखा है, "पहला मनुष्य, आदम, जीवित प्राणी बना," और अन्तिम आदम जीवनदायक आत्मा। अतः पहले आत्मिक नहीं वरन् स्वाभाविक था, और तब आत्मिक आया। पहला मनुष्य पृथ्वी से है अर्थात् पार्थिव, दूसरा मनुष्य स्वर्ग से है। जैसे

वह पार्थिव है, वैसे ही वे भी हैं जो पार्थिव हैं, और जैसा वह स्वर्गीय है, वैसे ही वे भी हैं जो स्वर्गीय हैं। (42-48 पद)

पौलुस तब अपनी मुख्य बात को रखता है: "जैसे हमने उस पार्थिव का रूप धारण किया है, वैसे ही उस स्वर्गीय का भी रूप धारण करेंगे" (49 पद)। अन्तिम पुनरुत्थान की आशा यही है—हम ख्रीष्ट के समान होंगे, क्योंकि वह हमें पुनरुत्थान की वही महिमा प्रदान करेगा जिसे उसने प्राप्त की थी।

अध्याय 55

परमेश्वर का राज्य

The Kingdom of God

जब यीशु के चेलों ने उससे कहा कि उन्हें प्रार्थना करना सिखाए, तो उसने उन्हें एक आदर्श प्रार्थना दी, प्रभु की प्रार्थना (मत्ती 6:9-13)। उस प्रार्थना के एक भाग में, उसने उन्हें निर्देश दिया कि यह निवेदन करें, "तेरा राज्य आए। तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है वैसे ही पृथ्वी पर भी पूरी हो" (10 पद)। यहाँ यीशु ने परमेश्वर के लोगों के लिए एक प्राथमिकता को स्थापित किया कि वे राज्य के आने के लिए प्रार्थना करें।

प्रश्न यह है कि जिस राज्य के लिए हम प्रार्थना करते हैं, क्या वह पहले से ही प्रकट किया जा चुका है, या उसका प्रकट होना अभी शेष है। यह मसीही समुदाय में एक विवाद की बात है। पुराने नियम के विद्वान जॉन ब्राइट *(John Bright)* ने अपनी पुस्तक *परमेश्वर का राज्य (The Kingdom of God)* में कहा कि राज्य वह विषय है जो पुराने नियम को नये नियम के साथ बाँधता है। पुराने नियम के आरम्भिक समय से ही परमेश्वर ने एक भविष्य के राज्य के विषय में प्रतिज्ञा करना आरम्भ किया था जहाँ उसकी सम्प्रभुता विश्वव्यापी तथा अनन्त होगी। परन्तु यह प्रतिज्ञा, वर्तमान में सम्पूर्ण संसार पर परमेश्वर के सम्प्रभु शासन का खण्डन करना नहीं था। जिस समय से परमेश्वर ने सृष्टि की थी, उसने तब से शासन किया है। इसके विपरीत, प्रतिज्ञा का सम्बन्ध परमेश्वर की प्रभुता के प्रति सब प्राणियों की स्वैच्छिक अधीनता से है। वर्तमान में इस जगत का राज्य मूल रूप से अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह में है, जिस पर परमेश्वर ने सृष्टि के क्षण से राज्य किया है।

इसलिए पुराने नियम में प्रतिज्ञा, एक विश्वव्यापी, अनन्त राज्य की थी। यह इस अर्थ में विश्वव्यापी नहीं होगी कि सभी बचाए या छुड़ाये जाएँगे परन्तु यह कि सभी आज्ञा मानेंगे। कुछ लोग स्वेच्छा से आज्ञा मानेंगे; वे सत्यनिष्ठ भक्ति में होकर घुटना टेकेंगे। अन्य लोग अधीनता के

लिए बाध्य किये जाएँगे। एक दिन आएगा जब सभी देशों के लोग परमेश्वर के अभिषिक्त राजा, मसीहा की अधीनता को स्वीकार करेंगे।

नये नियम के लेखक परमेश्वर के राज्य और स्वर्ग के राज्य, दोनों की बात करते हैं। "स्वर्ग का राज्य" वाक्याँश मत्ती के सुसमाचार में पाया जाता है, जबकि अन्य सुसमाचार के लेखक, विशेषकर लूका, "परमेश्वर के राज्य" की बात करते हैं। यह भिन्नता इस तथ्य के कारण है कि मत्ती एक यहूदी के रूप में यहूदी श्रोताओं के लिए लिख रहा था। यहूदी लोग परमेश्वर के पवित्र नाम के प्रति रक्षात्मक थे और इसलिए वे *वर्णनात्मक (periphrasis)* भाषा का उपयोग करते थे, जो कि किसी बात को कहने के लिए घुमावदार प्रकार की अभिव्यक्ति का उपयोग था। जैसे हमने पिछले अध्याय में कहा था, पुराने नियम में यहूदियों ने परमेश्वर के लिए *एडोनाय (प्रभु)* को एक प्रतिस्थापन्न या वर्णनात्मक *(periphrastic)* उल्लेख के रूप में उपयोग किया था। मत्ती इसी बात को राज्य के लिए उपयोग करता है; "स्वर्ग" केवल "परमेश्वर" के लिए एक यहूदी प्रतिस्थापन्न था।

हो चुका है किन्तु अभी नहीं

स्वयं को सुसमाचारवादी कहने वाले बहुत से लोग विश्वास करते हैं कि परमेश्वर का राज्य पूर्ण रीति से भविष्य में है, यद्यपि इसके लिए कोई बाइबलीय आधार नहीं है। यह दृष्टिकोण कलीसिया को राज्य के विषय में ऐसी शिक्षाओं से वंचित करता है जो स्पष्ट रीति से नये नियम में प्रस्तुत किये गये हैं। वास्तव में, नया नियम राज्य के विषय में यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले की उद्घोषणा के साथ आरम्भ होता है: "मन फिराओ, क्योंकि स्वर्ग का राज्य निकट आ गया है" (मत्ती 3:2)। पुराने नियम के नबियों ने भविष्य में किसी समय आने वाले राज्य के विषय में बात की, परन्तु यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के समय में तो वह लगभग प्रकट ही हो गया था। यह "निकट आ गया" था। यदि हम यूहन्ना के सन्देश का ध्यान से अवलोकन करें, तो हम देखते हैं कि राज्य के विषय में उसकी उद्घोषणा में अत्यावश्यक चेतावनियाँ थी: "कुल्हाड़ा अब भी पेड़ों की जड़ पर रखा हुआ है" (मत्ती 3:10) और "उसका सूप उसके हाथ में है" (लूका 3:17)। समय समाप्त हो रहा था, और लोग तैयार नहीं थे।

कुछ ही समय बाद, इसी सन्देश के साथ ख्रीष्ट सामने आया: "समय पूरा हुआ है, और परमेश्वर का राज्य निकट है, मन फिराओ और सुसमाचार पर विश्वास करो" (मरकुस 1:15)। परन्तु, यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले और यीशु के व्यवहार में भिन्नताएँ थी। यूहन्ना एक वैरागी था; जिसका जीवन अत्यधिक स्वयं के परित्याग द्वारा चिन्हित था। वह टिड्डियाँ और वन मधु खाता था, और पुराने नियम के नबियों जैसे वस्त्र पहनता था। दूसरी ओर, यीशु पर "पेटू और पियक्कड़" होने

का आरोप लगाया गया (मत्ती 11:19)। वह काना के विवाह में गया और चुंगी लेने वालों के साथ उसने एक भोज किया, जिसके कारण यूहन्ना के चेलों ने उससे पूछा, "क्या कारण है कि हम और फरीसी तो उपवास करते हैं, परन्तु तेरे चेले उपवास नहीं करते?" (मत्ती 9:14)। यीशु ने उत्तर दिया, "जब तक दूल्हा बारातियों के साथ है, क्या वे शोक कर सकते हैं? परन्तु वे दिन आएँगे जब दूल्हा उनसे अलग कर दिया जाएगा, और तब वे उपवास करेंगे" (15 पद)।

किसी और समय फरीसियों ने उससे पूछा कि परमेश्वर का राज्य कब आएगा, और यीशु ने उत्तर दिया, "देखो, परमेश्वर का राज्य तुम्हारे मध्य है" (लूका 17:21)। राज्य उनके मध्य था क्योंकि राजा वहाँ था। एक और अवसर पर उसने कहा, "परन्तु यदि मैं परमेश्वर की उँगली से दुष्टात्माओं को निकालता हूँ तो परमेश्वर का राज्य तुम्हारे पास आ पहुँचा है" (लूका 11:20)।

इसलिए यूहन्ना राज्य के निकट होने के विषय में घोषणा करते हुए पहले आया। फिर यीशु राज्य की उपस्थिति की घोषणा करते हुए आया। इसके बाद स्वर्गारोहण में उसके छुटकारे के कार्य का शिखर आया, जब वह अपने राज्याभिषेक के लिए पृथ्वी से गया, जहाँ परमेश्वर ने उसको राजा घोषित किया। जब यीशु जैतून पर्वत पर खड़ा था और जाने के लिए तैयार था, तो उसके चेलों ने उससे पूछा, "प्रभु, क्या तू इसी समय इस्राएल के राज्य को पुनः स्थापित कर देगा?" (प्रेरितों के काम 1:6)। वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब यीशु अपनी चाल चलेगा, रोमियों को भगाएगा और अपने राज्य को स्थापित करेगा, परन्तु यीशु ने उत्तर दिया, "उन समयों अथवा कालों का जानना जिन्हें पिता ने निर्धारित किया है, तुम्हारा काम नहीं है। परन्तु जब पवित्र आत्मा तुम पर आएगा तब तुम सामर्थ्य पाओगे, और यरूशलेम, सारे यहूदिया और सामरिया में, यहाँ तक कि पृथ्वी के छोर तक तुम मेरे साक्षी होगे" (7-8 पद)।

राज्य के विषय में उनके प्रश्न के उत्तर में, यीशु ने कलीसिया के आधारभूत उद्देश्य को दिया। लोग उसके राजपद के प्रति अन्धे होंगे, इसलिए शिष्यों को उसे दृश्य बनाने का कार्य दिया गया। कलीसिया का आधारभूत कार्य परमेश्वर के राज्य की साक्षी देना है। हमारा राजा अभी राज्य करता है इसलिए परमेश्वर के राज्य को पूर्णतः भविष्य में ही रखना नये नियम के एक अत्यधिक महत्वपूर्ण बिन्दु से वंचित होना है। हमारा राजा आ चुका है और उसने परमेश्वर के राज्य का उद्घाटन कर दिया है। राज्य का भविष्य-सम्बन्धित आयाम उसकी अन्तिम परिपूर्णता *(consummation)* है।

राज्य के दृष्टान्त

यीशु ने बहुधा दृष्टान्तों के द्वारा सिखाया और उन दृष्टान्तों का प्राथमिक विषय परमेश्वर का राज्य था। कई दृष्टान्तों का आरम्भ ऐसे होता है, "परमेश्वर का राज्य इस प्रकार है...।" दृष्टान्त स्पष्ट करते हैं कि राज्य में प्रगति होती है। राज्य छोटा आरम्भ हुआ, परन्तु समय के साथ यह बढ़ता गया और यह तब तक बढ़ता जाएगा जब तक यह सब कुछ को घेर न ले। यीशु ने कहा कि राज्य सबसे छोटे बीज, राई के बीज के समान है (मत्ती 13:31-32; मरकुस 4:30-32; लूका 13:18-19)। उसने उसे ख़मीर के समान भी कहा, जो आटे में फैलता है जिससे कि वह आटा बड़ा हो जाता है (मत्ती 13:33; लूका 13:20-21) पुराने नियम ने नबूवत की थी कि राज्य बिना हाथों के काटे गए एक ऐसे पत्थर के समान होगा, जो कि एक बड़ा पहाड़ बनेगा (दानिय्येल 2:35)।

यीशु ने यह भी स्पष्ट किया कि उसके चेलों के रूप में हमें उसके राज्य को खोजना चाहिए। उसने कहा, "परन्तु तुम पहले परमेश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकता की खोज में लगे रहो तो ये सब वस्तुएँ तुम्हें दे दी जाएँगी" (मत्ती 6:33)। यीशु के अनुसार, मसीही जीवन की प्राथमिकता, राज्य की खोज करना है। यहाँ पर *प्रोटोस (prōtos)* वह यूनानी शब्द है जिसे "पहले" के रूप में अनुवादित किया गया है। इस शब्द का अर्थ केवल किसी श्रृंखला में पहला नहीं है; इसका अर्थ है महत्व के सम्बन्ध में पहला। यीशु के अनुसार, राज्य की खोज करना मसीही जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है।

ख्रीष्ट राज्य करता है

ख्रीष्ट अभी उस मेमने के रूप में राज्य करता है जो परमेश्वर के राज्य को पाने के योग्य है। उस राज्य का आरम्भ हो गया है और वह बढ़ रहा है, परन्तु उसकी परिपूर्णता तब तक नहीं होगी जब तक ख्रीष्ट मानव इतिहास की समाप्ति पर आकर सब राज्यों को अधिकार में न कर ले। उस समय, यह राज्य, जो अब अदृश्य है, दृश्य बन जाएगा। यद्यपि यह राज्य अभी अदृश्य है, परन्तु यह अवास्तविक नहीं है। और परिपूर्णता के समय, जिस सृष्टि को हम जानते हैं, उसका पूर्ण रूप से नवीनीकरण हो जाएगा और ख्रीष्ट अपने राज्य को सदा के लिए उसकी महिमा में स्थापित करेगा।

अध्याय 56

सहस्राब्दी

The Millennium

सहस्राब्दी की अवधारणा युगान्तविज्ञान सम्बन्धित साहित्य के स्वभाव के कारण, युगान्तविज्ञान का एक बहुत ही विवादित भाग है। सहस्राब्दी का पहला उल्लेख, अर्थात् उस समयकाल का जो एक हज़ार वर्षों के लिए है, प्रकाशितवाक्य 20 में आता है, और वहाँ इसको शैतान के बाँधने के सम्बन्ध में सन्दर्भित किया गया है:

> तब मैंने एक स्वर्गदूत को स्वर्ग से उतरते देखा, जिसके हाथ में अथाह-कुण्ड की कुंजी और एक बड़ी ज़ंजीर थी। उसने उस अजगर, उस पुराने साँप को, जो इबलीस और शैतान है, पकड़ा और हज़ार वर्ष के लिए बाँध दिया, और उसे अथाह-कुण्ड में डालकर बन्द कर दिया तथा उस पर मुहर लगा दी कि जब तक हज़ार वर्ष पूरे न हो जाएँ, वह जातियों को धोखा न दे। इन बातों के पश्चात् उसे थोड़े समय के लिए छोड़ा जाना आवश्यक है।
>
> तब मैंने सिंहासन देखे, और लोग उन पर बैठ गए और उन्हें न्याय करने का अधिकार दिया गया। मैंने उन लोगों की आत्माओं को देखा, जिनके सिर यीशु की गवाही देने और परमेश्वर के वचन के कारण काटे गए थे, और जिन्होंने न पशु न उसकी मूर्ति की पूजा की थी, न अपने मस्तकों और हाथों पर उसकी छाप लगवाई थी; वे जीवित होकर ख्रीष्ट के साथ हज़ार वर्ष तक राज्य करते रहे। वे मृतक जो शेष रह गए थे हज़ार वर्ष पूर्ण होने तक जीवित न हुए। यह प्रथम पुनरुत्थान है। धन्य और पवित्र वे हैं जो प्रथम पुनरुत्थान

के भागी हैं: इन पर दूसरी मृत्यु का कोई अधिकार नहीं, परन्तु वे परमेश्वर और ख्रीष्ट के याजक होंगे और उसके साथ हज़ार वर्ष तक राज्य करेंगे।

हज़ार वर्ष पूर्ण होने पर शैतान कैद से छोड़ दिया जाएगा। वह पृथ्वी के चारों कोनों की जातियों को अर्थात् गोग और मागोग को भरमाने और उनको एकत्रित करके युद्ध करने निकलेगा। उनकी गिनती समुद्र की बालू के सदृश होगी। (प्रकाशितवाक्य 20:1-8)

युगान्तविज्ञान सम्बन्धित साहित्य का अर्थानुवाद

सहस्राब्दी के विषय में विचार करते समय, ईश्वरविज्ञानीगण उसके स्वभाव और परमेश्वर के राज्य की परिपूर्णता के लिए उसके कालानुक्रमिक *(chronological)* सम्बन्ध के विषय में रुचि रखते हैं। इन बातों का जिस प्रकार से उत्तर दिया जाता है, वह इस बात को निर्धारित करता है कि व्यक्ति पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद *(premillennialism),* सहस्त्रवर्षीयहीनवाद *(amillennialism),* या पश्चसहस्त्रवर्षीयवाद *(postmillennialism),* या किसी अन्य युगान्त-सम्बन्धित मत को मानता है। इन नामों के उपसर्ग या मध्यप्रत्यय प्रतिबिम्बित करते हैं कि उनके मानने वाले क्या विश्वास करते हैं कि सहस्राब्दी कब होती है।

प्रकाशितवाक्य 20 पवित्रशास्त्र में एकमात्र ऐसा स्थान है जहाँ सहस्राब्दी का वर्णन किया गया है। यह तथ्य कि यह एक ही स्थान में आया है, इसके महत्व को घटाता नहीं है, परन्तु बात इस कारण से जटिल है क्योंकि यह बाइबल की एक ऐसी पुस्तक में आती है जो अत्यन्त चित्रात्मक है। इस शैली के साहित्य के लिए अर्थानुवाद *(interpretation)* के ऐसे नियमों की आवश्यकता है जो अन्य प्रकार के साहित्य के नियमों से भिन्न हैं।

धर्मसुधारकों द्वारा स्थापित बाइबलीय अर्थानुवाद का आधारभूत सिद्धान्त था *शाब्दिक अर्थानुवाद (literal interpretation), सेन्सस लिटरालिस (sensus literalis),* जिसका अर्थ है कि पवित्रशास्त्र के उत्तरदायी अर्थानुवादकों *(interpreters)* को उस रीति से बाइबल को अर्थानुवादित करना चाहिए जिस अर्थ में वह लिखी गई थी। काव्य साहित्य को काव्य के रूप में अर्थानुवादित किया जाना चाहिए, उपदेशात्मक *(didactic)* साहित्य को उपदेशात्मक के रूप में अर्थानुवादित किया जाना चाहिए, इत्यादि। एक क्रिया को क्रिया समझा जाना चाहिए, संज्ञा को संज्ञा, उपमा को उपमा, और रूपक को रूपक।

इसके विपरीत, "अभिधेयार्थवाद" *(literalism)* नामक अर्थानुवाद की विधि भावशून्य *(wooden)* अर्थानुवाद को लागू करती है, जो काव्य साहित्य में अच्छे से कार्य नहीं करता है। उदाहरण के लिए, जब भजनकार कहता है कि नदियाँ ताली बजाती हैं (98:8), तो हम उसका अर्थ यह नहीं समझते हैं कि नदियों में किसी प्रकार के हाथ जुड़ जाते हैं और वे ताली बजाने लगती

हैं। हम इस प्रकार के काव्य चित्रणों को इस प्रकार के अति अभिधेयार्थवादी रीति से अर्थानुवादित नहीं करते हैं।

जब नबूवतीय शैली के साहित्य के अर्थानुवाद की बात आती है, तो प्रश्न यह है कि क्या इसमें भाषा चित्रात्मक है या साधारण गद्य, किन्तु इसके विषय में व्यापक असहमति है। कुछ लोग विश्वास करते हैं कि बाइबल के प्रति विश्वासयोग्य होने के लिए हमें नबूवतों को पूर्णतः अभिधेयार्थवादी रीति से अर्थानुवादित करना चाहिए, परन्तु यह हमें चक्रों में सदैव के लिए घुमा सकता है।

सहस्राब्दी के मत

आइए हम विभिन्न सहस्राब्दी के मतों की मुख्य विशेषताओं को संक्षिप्त में देखें।*

पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद (Premillennialism)

पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद सिखाता है कि ख्रीष्ट के आगमन के बाद पृथ्वी पर एक यथार्थ, सहस्राब्दी का राज्य होगा। यहाँ का *पूर्व-* उपसर्ग, इस विश्वास की ओर संकेत करता है कि ख्रीष्ट सहस्राब्दी की स्थापना से पहले आएगा। आज पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद के दो प्रसिद्ध रूप हैं: युगवादी पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद *(dispensational premillennialism)* और ऐतिहासिक पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद *(historic premillennialism)*।

युगवादी *(Dispensational)* ईश्वरविज्ञान सिद्धान्त की एक सम्पूर्ण प्रणाली है। यह मुख्यतः इस बात के लिए जानी जाती है कि इसके पास बाइबल की नबूवतों को समझने के लिए एक विशिष्ट पद्धति है। युगवादी पूर्वसहस्त्रवर्षीयवादी विश्वास करते हैं कि पुराने नियम में इस्राएल से की गई राज्य की नबूवतें यथार्थ रूप से वर्तमान के यहूदी देश में पूरी होंगी। वे मन्दिर के यथार्थ पुनर्निर्माण और बलिदान की प्रणाली की यथार्थ पुनःस्थापना की आशा रखते हैं।

युगवादियों के युगान्त सम्बन्धित मत के लिए यह विश्वास आधारभूत है कि परमेश्वर के पास छुटकारे की दो भिन्न योजनाएँ हैं, एक इस्राएल के लिए और एक कलीसिया के लिए। पारम्परिक युगवादी पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद सिखाता है कि ख्रीष्ट ने यहूदियों को दाऊद के राज्य को देने का प्रयास किया, परन्तु यहूदियों ने उसको मना कर दिया इसलिए दाऊद के राज्य का आना, जो एक यहूदी राज्य होना था, भविष्य के किसी समय तक टल गया। वे यह भी विश्वास करते हैं कि अभी कलीसिया का अस्तित्व "कलीसियाई युग" में है, जो कि बाइबलीय इतिहास के अनेक बड़े समय काल या युगों में से एक है। कलीसियाई युग ख्रीष्ट के प्रथम आगमन *(advent)* और भविष्य के

* इस विषय में अधिक जानकारी के लिए देखें, R.C. Sproul, *The Last Days according to Jesus: When Did Jesus Say He Would Return?* (Grand Rapids, Mich.: Baker, 2000).

आने वाले राज्य के मध्य एक *कोष्टक (parenthesis)* है। युगवादी पूर्वसहस्त्रवर्षीयवादी विश्वास करते हैं कि कलीसिया विश्व में अपने प्रभाव को अन्ततः खो देगी और कलीसियाई युग के अन्त के निकट धर्मत्यागी हो जाएगी, और वह ख्रीष्ट के आने के बाद तक पुनःस्थापित नहीं की जाएगी। अन्त में, ख्रीष्ट लौटेगा और महाक्लेश से पहले अपने सन्तों को मेघारोहित *(rapture)* करेगा।

अपने लोगों को मेघारोहित *(रैपचर)* करने के लिए ख्रीष्ट के इस लौटने को, दो आगमनों *(returns)* में से पहले के रूप में देखा जाता है। अपने पहले आगमन के समय वह अपने लोगों को बादलों पर उठाएगा और इस प्रकार से उन्हें महाक्लेश *(tribulation)* की पीड़ा और सताव से छुड़ाएगा। फिर ख्रीष्ट अपने राज्य को स्थापित करने के लिए फिर से आएगा। वह एक यहूदी राजनीतिक राज्य का प्रशासन करेगा जिसका मुख्यालय यरूशलेम में होगा, और वह राज्य यथार्थतः एक हज़ार वर्ष के लिए होगा। उस समय में, शैतान को बाँधा जाएगा, मन्दिर का पुनर्निर्माण होगा, और पुराने नियम की बलिदान की प्रणाली पुनःस्थापित की जाएगी। सहस्राब्दी के अन्त के निकट शैतान छोड़ा जाएगा और यरूशलेम में ख्रीष्ट और उसके अनुयायियों पर आक्रमण होगा। उस समय ख्रीष्ट स्वर्ग से न्यायदण्ड की माँग करेगा और अपने शत्रुओं को नाश करेगा, दुष्टों का न्याय होगा और अन्तिम अनन्त व्यवस्था का आरम्भ हो जाएगा।

युगवादी पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद का यह संस्करण, जिस में कलीसिया महाक्लेश से पहले मेघारोहित की जाती है, सुसमाचारवादियों में सबसे अधिक व्याप्त है। अन्य संस्करण भी हैं, जो मेघारोहण को महाक्लेश के सम्बन्ध में विभिन्न समयों में रखते हैं जबकि शेष प्रणाली मूल रूप से वैसी ही रहती है। परन्तु, यद्यपि महाक्लेश से पहले मेघारोहण लोकप्रिय है क्योंकि यह मसीहियों को आशा देता है कि वे युग के अन्त के महाक्लेश से बचेंगे, मैं इसके समर्थन के लिए पवित्रशास्त्र में तनिक भी प्रमाण नहीं देखता हूँ।

ऐतिहासिक पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद *(Historic premillennialism)* थोड़ा भिन्न है। यह सिखाता है कि कलीसिया ख्रीष्ट के राज्य का आरम्भिक चरण है, जिसकी नबूवत पुराने नियम के नबियों द्वारा की गई थी। कलीसिया इतिहास में कभी-कभी विजयी होगी परन्तु अन्ततः अपने उद्देश्य में विफल होगी। कलीसियाई युग के अन्त के पास जब विश्वभर में दुष्टता बढ़ती जाएगी तो वह अपना प्रभाव खो देगी और भ्रष्ट हो जाएगी। कलीसिया विश्व-भर में एक ऐसे कष्ट में से होकर जाएगी जिसे "महाक्लेश" कहा जाता है, जो हमारे सामने के इतिहास के अन्त का चिन्ह होगा। महाक्लेश के अन्त में ख्रीष्ट आएगा और अपनी कलीसिया को मेघारोहित करेगा, मृतक सन्तों को जिलाने के लिए और धर्मियों का न्याय करने के लिए, और यह सब कुछ पलक

झपकते ही हो जाएगा। ख्रीष्ट फिर अपने महिमान्वित सन्तों के साथ पृथ्वी पर उतरेगा, हर-मगिदोन *(Armageddon)* का युद्ध लड़ेगा, शैतान को बाँधेगा, और एक वैश्विक राजनीतिक राज्य स्थापित करेगा, जिसमें ख्रीष्ट यरूशलेम से एक हज़ार वर्षों के लिए राज्य करेगा। सहस्राब्दी के अन्त में, शैतान को खोल दिया जाएगा और ख्रीष्ट के राज्य के विरुद्ध महाविद्रोह होगा। अन्त में, परमेश्वर अग्नि जैसे उग्र न्याय के साथ यीशु और सन्तों को छुड़ाएगा, जिसके बाद पुनरुत्थान और दुष्टों का न्याय होगा।

सहस्त्रवर्षीयहीनवाद (Amillennialism)

सहस्त्रवर्षीयहीनवादी मत, जो दोनों पूर्वसहस्त्रवर्षीयवादी मतों के कुछ बिन्दुओं को मानता है, विश्वास करता है कि कलीसियाई युग राज्य का वह युग है जिसकी नबूवत पुराने नियम में की गई थी। नये नियम की कलीसिया परमेश्वर का इस्राएल बन गई है। सहस्त्रवर्षीयहीनवादी विश्वास करते हैं कि शैतान का बाँधा जाना पृथ्वी पर यीशु की सेवाकाल में हुआ; शैतान को तब बाँधा गया जब सुसमाचार का प्रचार संसार में हुआ, और उसका यह बाँधा जाना अभी भी बना हुआ है। जिस सीमा तक ख्रीष्ट वर्तमान में विश्वासियों के हृदयों में राज्य करता है, विश्वासी उस संस्कृति पर कुछ प्रभाव डालते हैं जिसमें वे रहते हैं, परन्तु वे संस्कृति को पूर्ण रीति से परिवर्तित नहीं करेंगे। अन्त के निकट दुष्टता का विकास अधिक तीव्र होगा, जिसके कारण महाक्लेश होगा और एक वास्तविक ख्रीष्ट-विरोधी आएगा। ख्रीष्ट इतिहास को समाप्त करने के लिए आएगा, सब मनुष्यों को जिलाएगा और उनका न्याय करेगा और अनन्त व्यवस्था को स्थापित करेगा। अनन्त काल में छुड़ाए गए लोग स्वर्ग में अथवा एक पूर्णतः नवीनीकृत पृथ्वी में होंगे।

पश्चसहस्त्रवर्षीयवाद (Postmillennialism)

पश्चसहस्त्रवर्षीयवाद की कई विषेशताएँ हैं। पहला, वह यह मानती है कि पुराने नियम की नबूवत के अनुसार, ख्रीष्ट का मसीहाई राज्य का उद्घाटन पृथ्वी पर उसकी सेवकाई के समय, पृथ्वी पर स्थापित हुआ था—और कलीसिया इस्राएल है। दूसरा, राज्य मूलतः छुटकारा सम्बन्धित और आत्मिक है न कि राजनीतिक और भौतिक। तीसरा, राज्य इतिहास पर एक परिवर्तनकारी प्रभाव डालेगा, यह एक ऐसा विश्वास है जो पश्चसहस्त्रवर्षीयवादी युगान्त-विज्ञान का विशेष गुण है। यह आशावादी है कि समय के साथ यीशु ख्रीष्ट की कलीसिया के प्रभाव से संस्कृति पर एक सकारात्मक, छुड़ाने वाला प्रभाव पड़ेगा। निर्बलता और भ्रष्टता के समयों के बाद भी, कलीसिया अन्ततः इस जगत की दुष्टता

पर विजयी होगी, जिसके कारण परमेश्वर का राज्य धीरे-धीरे पृथ्वी पर फैल जाएगा। यह ख्रीष्ट की राजकीय सामर्थ्य के साथ परन्तु पृथ्वी पर उसकी शारीरिक उपस्थिति के बिना स्थापित होगा। अन्त में, पश्चसहस्त्रवर्षीयवादी विश्वास करते हैं कि महान् आदेश सफल होगा। पश्चसहस्त्रवर्षीयवादियों को पूर्वसहस्त्रवर्षीयवादियों और सहस्त्रवर्षीयहीनवादियों से भिन्न करने वाली बात यह विश्वास है कि पवित्रशास्त्र कलीसिया के युग में महान् आदेश की सफलता को सिखाता है।

पश्चसहस्त्रवर्षीयवादियों के भीतर भिन्नताएँ भी हैं, जिस प्रकार शेष मान्यताओं के भीतर भी पाई जाती हैं। अतीतवाद *(preterism)* कहे जाने वाले दृष्टिकोण पर भी एक विवाद है, जो कि पूर्ण-अतीतवाद *(full-preterist)* और आँशिक-अतीतवाद *(partial-preterist),* दोनों रूप में पाया जाता है।

अतीतवाद (Preterism)

आँशिक *(partial)* अतीतवाद का मानना है कि बहुत सारी नबूवतें पहली शताब्दी में पूरी हो गईं थीं—विशेषकर 70 ईसवी में यरूशलेम के विनाश से सम्बन्धित घटनाओं में। अधिकाँश आँशिक अतीतवादी कहते हैं कि प्रकाशितवाक्य के पहले बीस अध्याय घटित हो चुके हैं जबकि अन्तिम दो अध्याय अभी पूरे नहीं हुए हैं। आँशिक अतीतवादी अपने विचार में प्रायः यह मानते हुए पश्चसहस्त्रवर्षीयवादी होते हैं कि सहस्राब्दी (जो यथार्थ् एक हज़ार वर्ष नहीं है) ख्रीष्ट के प्रथम आगमन के साथ आरम्भ हो गया।

इसके विपरीत, पूर्ण *(full)* अतीतवाद सिखाता है कि ख्रीष्ट के आने के सम्बन्ध में *सभी* नबूवतें—जिसमें सहस्राब्दी और अन्तिम न्याय सम्मिलित हैं—पहली शताब्दी में पूरी हो गईं। पूर्ण अतीतवाद को विधर्मी *(heretical)* माना जाता है, क्योंकि यह पवित्रशास्त्र के एक मौलिक सत्य को नकारता है: अर्थात् राजा के पुनःआगमन को।

हम जिस भी युगान्त-विज्ञानीय दृष्टिकोण को मानें, हमें उसे नम्रता के साथ मानना होगा क्योंकि हम भविष्य को नहीं जानते हैं। हम सब पीछे की ओर देख सकते हैं, परन्तु हम आने वाले समय के लिए परमेश्वर के कार्यक्रम को नहीं जानते हैं। हमें नम्र होकर यह स्वीकार करना होगा कि यह सम्भव है कि हमारा युगान्त-ईश्वरविज्ञानीय दृष्टिकोण सटीक नहीं है। किन्तु उसी समय, नये नियम की अधिकाँश सैद्धान्तिक शिक्षा का सम्बन्ध भविष्य की बातों से है, इसलिए जिस प्रकार से हम भविष्य के विषय में परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं को समझते हैं, वह तो हमारे व्यक्तिगत भरोसे पर और ख्रीष्ट द्वारा कलीसिया को दिए गए मिशन में हमारी सहभागिता पर बड़ा प्रभाव डालेगा।

अध्याय 57

ख्रीष्ट का पुनःआगमन

The Return of Christ

सन् 1948 में इस्राएल राष्ट्र की स्थापना के बाद, बहुत से मसीही स्विट्ज़रलैण्ड के ईश्वरविज्ञानीय कार्ल बार्थ की सम्मति को मानने लगे कि एक हाथ में बाइबल पकड़ें और दूसरे में समाचार-पत्र। यहूदी राष्ट्र की पुनःस्थापना और 1967 में यहूदियों द्वारा यरूशलेम की प्राप्ति ने अन्तिम समय और विशेषकर यीशु के पुनःआगमन में लोगों की रुचि को जगाया। इसका कारण जैतून उपदेश *(Olivet discourse)* में मन्दिर और यरूशलेम शहर के विनाश के विषय में यीशु की नबूवत है, जिसको उसने इस प्रकार से समाप्त किया: "जब तक ग़ैरयहूदियों का समय पूरा न हो, यरूशलेम ग़ैरयहूदियों के पैरों के नीचे रौंदा जाएगा" (लूका 21:24)।

पवित्रशास्त्र की शिक्षा

यह स्थल सुसमाचारों में एकमात्र ऐसा स्थान है जहाँ हम "ग़ैरयहूदियों का समय" वाक्याँश को पाते हैं। फिर भी, रोमियों को लिखी गई पत्री में इसी प्रकार का वाक्याँश भविष्य की बातों में बहुत रुचि को जगाता है: "इस्राएल का एक भाग तब तक कठोर बना रहेगा, जब तक ग़ैरयहूदियों की संख्या पूर्ण न हो जाए" (रोमियों 11:25)। यहाँ पौलुस उन यहूदी लोगों के विषय में लिख रहा है, जिन्होंने मसीहा का और पवित्र जड़ अर्थात् इस्राएल में ग़ैरयहूदियों के कलम लगाए जाने को तिरस्कार दिया था। वह आगे कहता है कि परमेश्वर ने सदा के लिए यहूदियों को नहीं निकाल दिया है परन्तु भविष्य में उनमें एक कार्य करेगा जब ग़ैरयहूदियों का समय पूरा हो जाएगा।

इन बाइबलीय स्थलों के प्रकाश में, 1948 और 1967 में मध्य-पूर्व की घटनाओं ने बहुतों को यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित किया कि हम छुटकारे के इतिहास के अन्तिम दिनों के द्वार पर हैं और ख्रीष्ट का पुनःआगमन निकट है। अनुमानों को बढ़ाने का एक कारण था इक्कीसवीं सहस्राब्दी

(millennium) का निकट आना। यीशु के पुनःआगमन की अपेक्षा तब बहुत तीव्र हो गई और उसका आना अभी भी एक अत्यधिक रुचि का विषय बना रहता है।

हमने पहले कहा था कि नये नियम में अधिकाँश सैद्धान्तिक विषय-वस्तु परमेश्वर के राज्य के भविष्य के पक्षों से सम्बन्धित है, और परमेश्वर के लोगों के लिए यीशु के पुनःआगमन से अधिक महत्वपूर्ण नबूवत का कोई भी और तत्त्व नहीं है। पुनःआगमन की प्रभु द्वारा की गई प्रतिज्ञा, एक मसीही की धन्य आशा है फिर भी यीशु के पुनःआगमन का समय और उसके आने का ढंग बहुत ही विवादित विषय हैं।

प्रेरितों के काम के आरम्भ में, हम इस जगत से यीशु के प्रस्थान के विषय में पढ़ते हैं:

> इतना कहने के पश्चात् वह उनके देखते-देखते ऊपर उठा लिया गया, और बादल ने उसे उनकी आँखों से ओझल कर दिया। जबकि वह जा रहा था तो वे उसे जाते हुए आकाश की ओर एकटक देख रहे थे, और देखो, दो पुरुष श्वेत वस्त्र पहिने हुए उनके पास आ खड़े हुए, और कहने लगे, "गलीली पुरुषो, तुम खड़े-खड़े आकाश की ओर क्यों देख रहे हो? यही यीशु जो तुम्हारे पास से स्वर्ग पर उठा लिया गया है, वैसे ही फिर आएगा जैसे तुमने उसे स्वर्ग में जाते देखा है।" (प्रेरितों के काम 1:9-11)

यीशु के पुनःआगमन के विषय में नये नियम में कई नबूवतें हैं, और इन नबूवतें के साथ विशिष्ट तत्त्व पाए जाते हैं। पहले, हमारे पास आश्वासन है कि ख्रीष्ट का पुनःआगमन व्यक्तिगत होगा; दूसरे शब्दों में, वह देह में आएगा। दूसरा, उसका पुनःआगमन दृश्य होगा। तीसरा, उसका पुनःआगमन महिमा में होगा; यह गौरवमय धूमधाम से होगा। हम इन सभी तत्त्वों को यहाँ प्रेरितों के काम 1 में देखते हैं। 11 पद पुष्टि करता है कि "यही यीशु"—वही जिसके उठाए जाने को प्रेरितों ने अभी देखा था—"वैसे ही" फिर से आएगा। दूसरे शब्दों में, यीशु के पुनःआगमन की रीति उसके प्रस्थान के समानान्तर होगी। उसका प्रस्थान दृश्य था, और वह महिमा के बादलों पर चढ़ा था; इसलिए, युग के अन्त में उसका पुनःआगमन उतना ही दृश्य और उतना ही महिमामय होगा।

ख्रीष्ट के पुनःआगमन की विचारधाराएँ

किन्तु, इन स्पष्ट भविष्यद्वाणियों के होने के बाद भी, ख्रीष्ट के दैहिक, दृश्य, महिमामय पुनःआगमन का विषय वादविवाद का बिन्दु है, जो कि विशेषकर उच्चतर आलोचना के प्रभाव के कारण हुआ

है। मेरी पुस्तक *यीशु के अनुसार अन्तिम दिन (The Last Days according to Jesus)* में, मैं उन आलोचनात्मक विचारधाराओं का सारांश प्रस्तुत करता हूँ जो नये नियम के लेखों और यीशु की शिक्षाओं की विश्वसनीयता पर आक्रमण के साथ-साथ बढ़े हैं।* उदाहरण के लिए, ऐल्बर्ट श्वाइट्ज़र *(Albert Schweitzer)* ने ऐतिहासिक यीशु की अपनी खोज में यह कहा कि यीशु ने राज्य की परिपूर्णता की अपेक्षा अपने जीवन काल में की थी जिसके कारण उसने सत्तर शिष्यों को उनके कार्य पर भेजा था (लूका 10), और जब ऐसा नहीं हुआ तो वह निराश हुआ। श्वाइट्ज़र के अनुसार यीशु के मन में यरूशलेम में उसका प्रवेश राज्य के आगमन के लिए निर्णायक क्षण होने वाला था, और जब राज्य नहीं आया तो यीशु ने अपने आप को क्रूस पर ले जाने के लिए दे दिया। इसके बाद उसकी यह पुकार, "हे मेरे परमेश्वर, हे मेरे परमेश्वर, तू ने मुझे क्यों छोड़ दिया?" (मत्ती 27:46) यीशु की निराशा को इंगित करता है।

अन्य विद्वानों ने तर्क दिया है कि नये नियम के लेखक और स्वयं यीशु अपेक्षा करते और सिखाते थे कि यीशु का व्यक्तिगत पुनःआगमन मसीहियों की प्रथम पीढ़ी के जीवनकाल में होगा। वे कहते हैं कि क्योंकि ऐसा नहीं हुआ, हम नये नियम के लेखों को अविश्वसनीय मानकर हटा सकते हैं और यीशु को प्रेम के आदर्श मात्र के रूप में समझ सकते हैं। इस आलोचनात्मक विचारधारा के प्रत्युत्तर में, सी.एच. डॉड *(C.H. Dodd)* ने "सम्पादित युगान्तविज्ञान" *(realized eschatology)* की बात की, जिसका अर्थ है नये नियम की सभी नबूवतें और ख्रीष्ट का पुनःआगमन सब वास्तव में पहली शताब्दी में पूर्ण हो गए। यीशु की कुछ टिप्पणियों के सम्बन्ध में, जैसा कि, "मैं तुमसे सच कहता हूँ कि यहाँ खड़े हुओं में से कुछ, जब तक मनुष्य के पुत्र को उसके राज्य में आता हुआ न देख लें, मृत्यु का स्वाद न चखेंगे" (मत्ती 16:28), डॉड ने कहा कि यीशु अपने भविष्य के आगमन के विषय में नहीं परन्तु उसकी महिमा के दृश्य प्रकटीकरण के विषय में कह रहे थे जो उसके रूपान्तरण, पुनरुत्थान, और स्वर्गारोहण के समय हुए।

सबसे विवादित स्थल जैतून उपदेश में पाया जाता है, विशेषकर मत्ती के सुसमाचार की अभिव्यक्ति में, जिसमें यीशु भविष्य की घटनाओं का वर्णन करता है, जिसमें मन्दिर और यरूशलेम का विनाश और उसका पुनःआगमन सम्मिलित हैं। यीशु के शिष्यों ने उससे पूछा: "हमें बता ये बातें कब होंगी, और तेरे आने का तथा इस युग के अन्त का क्या चिन्ह होगा?" (मत्ती 24:3)। शिष्यों के प्रश्न के प्रत्यक्ष उत्तर में, यीशु ने कहा, "मैं तुम से सच कहता हूँ, कि जब तक ये सब बातें पूरी न

---

* आर.सी. स्प्रोल, *यीशु के अनुसार अन्तिम दिन: यीशु ने क्या कहा कि वह कब पुनः आएगा? (The Last Days according to Jesus: When Did Jesus Say He Would Return?)* (ग्रैण्ड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर, 2000)

हो जाएँ इस पीढ़ी का अन्त न होगा" (34 पद)। ऐसा प्रतीत होता है कि ख्रीष्ट कह रहा था कि ये बातें एक मानवीय पीढ़ी के समय के भीतर पूरी होंगी, जो कि यहूदी सन्दर्भ में लगभग चालीस वर्षों का समय था। यदि ख्रीष्ट का क्रूसीकरण 30 ईसवी के आसपास हुआ, तो हम अपेक्षा कर सकते हैं कि उस भविष्यद्वाणाी की पूर्ति लगभग 70 ईसवी में हुई होगी, जो कि वही समय है जब मन्दिर का विनाश तथा यरूशलेम का पतन रोमियों के हाथ हुआ।

आलोचकगण तर्क करते हैं कि यद्यपि मन्दिर का नाश हुआ और नगर को पराजित कर दिया गया, किन्तु यीशु नहीं आया जो कि उसे एक झूठा नबी प्रमाणित करता है। परन्तु इन विशिष्ट नबूवतों से अधिक और कोई बात यीशु की पहचान और खराई को स्पष्टता से प्रमाणित नहीं करती हैं। जिन घटनाओं की उसने नबूवत की, यहूदी लोगों के लिए पूर्णतः अकल्पनीय थी, जो यह सोचते थे कि परमेश्वर का मन्दिर और पवित्र नगर अविनाशी थे। फिर भी इससे पहले कि ये घटनाएँ घटीं, यीशु ने विशेषकर इन घटनाओं की नबूवत की थी। यह विडम्बना की बात है कि जिस स्थल को ख्रीष्ट और बाइबलीय लेखों के विश्वसनीयता के लिए अखण्डनीय प्रमाण के रूप में कार्य करना चाहिए, उसी खण्ड को आलोचकों ने नये नियम की विश्वसनीयता और यीशु की खराई को अस्वीकार करने के लिए उपयोग किया है।

इस स्थल के विषय में, सुसमाचारवादी कहते हैं कि जैतून उपदेश में *पीढ़ी* किसी जीवनकाल या समयकाल के लिए नहीं परन्तु एक प्रकार के लोगों के लिए उपयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में, इस सन्दर्भ में *पीढ़ी* का अर्थ था कि जिस प्रकार के लोग यीशु के समय यरूशलेम में रह रहे थे, उसी प्रकार के लोग इन सब भविष्य की घटनाओं के समय तक होंगे। यह, इस स्थल का एक सम्भावित किन्तु असम्भाव्य अर्थानुवाद है क्योंकि सुसमाचारों में *पीढ़ी* शब्द को बार बार एक विशेष लोगों के समूह के लिए उपयोग किया जाता है।

अन्य लोग तर्क करते हैं कि "ये सब बातें," इसमें केवल पहले दो तत्त्व ही पाए जाते हैं, अर्थात् मन्दिर और यरूशलेम का विनाश। पूर्ण अतीतवाद सिखाता है कि यीशु 70 ईसवी में आया और ख्रीष्ट के आने से सम्बन्धित सभी नबूवतें तब अदृश्य रूप में पूरी हो गईं जब उसने यरूशलेम पर अपना न्यायदण्ड दिया। पूर्ण अतीतवादी तर्क करते हैं कि नबूवत की बाइबलीय भाषा प्रायः विनाशकारी चित्रण का उपयोग करती है। उदाहरण के लिए, पुराने नियम में न्याय करने हेतु परमेश्वर के आगमन का वर्णन करने के लिए नबी चन्द्रमा के लहू में परिवर्तित होने की बात करते हैं

(योएल 2:31), और उसी प्रकार की भाषा का उपयोग यीशु के आगमन के सम्बन्ध में किया जाता है (मत्ती 24:2)। पूर्ण अतीतवादी विश्वास करते हैं कि 70 ईसवी में यीशु यहूदी राष्ट्र पर न्याय करते हुए आया, और वह यहूदीवाद का अन्त था। वह अन्तिम न्याय था। यह इतिहास का नहीं परन्तु यहूदी युग का अन्त था, और यह ग़ैरयहूदी युग का आरम्भ था।

पूर्ण अतीतवाद के साथ समस्या यह है कि नये नियम में अन्य स्थल हैं जो संकेत करते हैं कि हमारे पास भविष्य में यीशु के व्यक्तिगत, दृश्य आगमन की आशा करने के बहुत कारण हैं। फिर भी, मैं यह सोचता हूँ कि आँशिक अतीतवाद को गम्भीरता से लिया जाना चाहिए—कि 70 ईसवी में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। मुझे इस बात का निश्चय है कि जैतून उपदेश में यीशु वास्तव में, इस्राएल पर आने वाले अपने न्याय की बात कर रहा था, परन्तु मैं नहीं सोचता हूँ कि वह अपने राज्य की अन्तिम परिपूर्णता की बात कर रहा था।

अन्तिम विश्लेषण में, कोई भी निश्चयता के साथ नहीं जानता कि यीशु कब आने वाला है। फिर भी, परमेश्वर के लोग होने के कारण, हमारे पास एक धन्य आशा है और यीशु के वचन की खराई पर विश्वास करने के बहुत कारण हैं। उसकी प्रतिज्ञाएँ विफल नहीं होती हैं, और हम उसके व्यक्तिगत, दृश्य, और महिमामय पुनःआगमन की बाट जोहते हैं।

अध्याय 58

अन्तिम न्याय

The Final Judgment

उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी के दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे ने परमेश्वर की मृत्यु की घोषणा की। जब उसने ऐसा किया, तो बुद्धिवादी जगत में आशावाद की अभूतपूर्व भावना जाग उठी, जिसने यूरोपीय तथा अमरीकी संस्कृति पर बड़ा प्रभाव डाला था। बहुत से लोगों ने नीत्शे की घोषणा का स्वागत किया। समाचारों ने मानववाद *(humanism)* के लिए एक बड़ी विजय के इस विचार के साथ उद्घोषणा किया कि मानवजाति अलौकिक ईश्वर के प्रति दासत्व से छूटकर उसके स्थान पर प्रोद्यौगिकी और शिक्षा पर निर्भर होने के लिए स्वतन्त्र हो गया है। लोगों ने प्रत्याशा लगाई कि संसार से बीमारी, युद्ध, अज्ञानता और सभी बातें हटा दी जाएँगी जो मानव सभ्यता को त्रस्त करती हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के फ्रान्सीसी दार्शनिक ऑगस्टे कॉम्टे *(Auguste Comte)* ने कहा कि इतिहास तीन भागों में विभाजित है: बचपन, किशोरावस्था, और वयस्कता। पाश्चात्य सभ्यता के विकास का वर्णन करते हुए, उसने कहा कि इसके बचपन में लोगों ने अपने जीवन को धर्म के सन्दर्भ में परिभाषित किया, परन्तु जैसे ही सभ्यता किशोरावस्था में बढ़ी, उन्होंने धर्म के स्थान पर अभौतिक दर्शनशास्त्र *(metaphysical philosophy)* को अपनाया। उसने कहा कि विज्ञान के युग के आने से पहले वयस्कता का आरम्भ नहीं हुआ और यह आशावादी प्रत्याशा थी कि विज्ञान क्या उत्पन्न करेगा जिसने लोगों में आनन्द को प्रेरित किया। प्रथम विश्व युद्ध को इस विकासपरक आशावाद के लिए एक बड़ी ठोकर के रूप में देखा गया, परन्तु उन लोगों ने भी जो युद्ध के आरम्भ से निराश थे उन्होंने अपनी मनुष्य-केन्द्रित आशाओं को यह घोषणा करते हुए पकड़े रखा कि यह सन्घर्ष “सब युद्धों का अन्त करने वाला युद्ध” होगा। निस्सन्देह उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध के यहूदियों के नरसंहार *(Holocaust)* की, या ज्यां-पाल सार्त्र *(Jean-Paul Sartre),* अल्बैर

काम़ू *(Albert Camus)* और अन्य लेखकों के लेखों में नास्तिकीय अस्तित्ववाद के निराशावादी दर्शनशास्त्र की प्रत्याशा नहीं की थी। उन्नीसवीं शताब्दी की आशावाद के केन्द्र में कथित अच्छा समाचार यह था कि क्योंकि परमेश्वर का अस्तित्व नहीं है, इसलिए अन्तिम न्याय से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, और क्योंकि कोई न्याय नहीं है, कोई नैतिक उत्तरदायित्व भी नहीं है।

एक निन्दात्मक युग

जब हम वर्तमान के निराशावाद पर विचार करते हैं, तो हम यह जान जाते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी के आशावाद से इसका एक मौलिक परिवर्तन हो चुका है। मनुष्य को अब एक वैश्विक दुर्घटना के रूप में देखा जाता है जो शून्यता के अथाह कुण्ड की ओर अनवरत चला जा रहा है। आज के शून्यवादी अस्तित्ववाद *(nihilistic existentialism)* का विचार यह है कि यदि मनुष्य अन्ततः अपने जीवन के लिए उत्तरदायी नहीं है, तो इसका अर्थ यही हो सकता है कि अन्ततः उसके जीवन का कोई महत्व नहीं है। वह आशावाद घोर उत्साहहीनता में परिवर्तित हो गया है, जिससे कि समाज मादक पदार्थों और अन्य साधनों की ओर इस भयंकर विचार से बचने के लिए चला गया है कि हमारे जीवन निरर्थक हैं।

इन सब के विरुद्ध में नये नियम और यीशु की स्पष्ट शिक्षा है कि हमारे जीवनों का महत्व है और हम उत्तरदायी हैं—ये वे सत्य हैं जो कि बिना किसी दार्शनिक जाँच-पड़ताल और चिन्तन के प्रत्येक मनुष्य जानता है। लोगों के हृदयों में परमेश्वर का बोध है। उनके सृष्टिकर्ता ने उन्हें विवेक दिया है और वे जानते हैं कि वे इसके लिए उत्तरदायी ठहराये जाएँगे कि वे अपने जीवन को कैसे जीते हैं। ऐसा दिन आएगा जब परमेश्वर अपनी पवित्र व्यवस्था के स्तर के अनुसार प्रत्येक पुरुष और स्त्री का न्याय करेगा।

जब वह एथेन्स में था, तो प्रेरित पौलुस ने एक ऐसा मन्दिर देखा जिसे अनजाने परमेश्वर के लिए खड़ा किया गया था, इसलिए अपने समय के दार्शनिकों की उपस्थिति में उसने कहा, "इसलिए जिसे तुम अनजाने में पूजते हो, उसी का सन्देश मैं तुम्हें सुनाता हूँ। . . . अज्ञानता के समयों की उपेक्षा करके परमेश्वर अब हर जगह के सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि पश्चात्ताप करें" (प्रेरितों के काम 17:23, 30)। पौलुस की आज्ञा का विस्तार सार्वभौमिक था। परमेश्वर मनुष्य की विभिन्न अनाज्ञाकारिता के प्रति सहनशील रहा था, परन्तु उद्धार के इतिहास में एक निर्णायक घटना घटी थी और पश्चात्ताप करने की आवश्यकता तत्काल थी। पौलुस ने आगे कहा, "उसने एक दिन निश्चित किया है जिसमें, एक मनुष्य के द्वारा जिसको उसने नियुक्त किया है, वह धार्मिकता से संसार का न्याय करेगा; और उसने मृतकों में से उसे जिलाकर इस बात को सब मनुष्यों पर प्रमाणित कर दिया है" (31 पद)।

पौलुस के शब्दों के प्रति प्रतिक्रिया यह थी: "जब उन्होंने मृतकों के पुनरुत्थान की बात सुनी तो

कुछ लोग ठट्ठा करने लगे, परन्तु दूसरों ने कहा, 'हम इस विषय में तुझ से फिर कभी सुनेंगे।' इस पर पौलुस उनके मध्य में से चला गया। परन्तु कुछ लोग उसके साथ हो लिए और उन्होंने विश्वास किया, जिनमें दियुनुसियुस अरियुपगुस का सदस्य और दमरिस नाम की एक महिला तथा उनके साथ अन्य और लोग भी थे" (32-34 पद)।

समय परिवर्तित नहीं हुआ है। जब हम लोगों को बताते हैं कि परमेश्वर ने एक दिन नियुक्त किया है जब वह धार्मिकता से संसार का न्याय करेगा, तो लोग हँसते हैं। वहाँ एथेन्स में, कुछ ही लोगों ने पौलुस को गम्भीरता से लिया और आज भी कुछ ही लोग विश्वास करते हैं।

प्रेरितीय साक्षी का एक अभिन्न भाग यह उद्घोषणा थी कि परमेश्वर ने न्याय का एक दिन नियुक्त किया है। इस प्रकार के दिन का आरम्भ प्रेरितों ने नहीं किया था; वास्तव में यीशु ने भी इसका आरम्भ नहीं किया, यद्यपि यीशु ने इसके विषय में बहुधा बात की थी। इसकी जड़ें गहरी रीति से पुराने नियम में हैं, जिसमें लोगों को उस दिन की चेतावनी दी गई जब स्वर्ग और पृथ्वी का न्यायाधीश सब बातों का लेखा लेगा।

कई वर्षों पूर्व जब मैं एक विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र सिखा रहा था, तब मैंने परमेश्वर के अस्तित्व के पक्ष के पारम्परिक तर्कों के प्रति इम्मानुएल कान्ट *(Immanuel Kant)* की आलोचना और उसके स्वयं के उस तर्क के विषय में व्याख्यान दिया था, जो कि "निर्धारक अनिवार्यता" *(the categorical imperative)* के विषय में उसकी समझ पर आधारित था। कान्ट ने कहा कि हर मनुष्य में "कर्तव्य" *(oughtness)* की अनुभूति उसके विवेक में निर्मित है, जो नैतिकता को चलाती है। कान्ट ने प्रश्न उठाया कि क्या कर्तव्य की यह अनुभूति निरर्थक है। यदि कर्तव्य की नैतिक अनुभूति का कोई आधार नहीं है, तो फिर अर्थपूर्ण नैतिकता का निर्माण करने का कोई भी प्रयास नष्ट हो जाता है और अर्थपूर्ण नैतिकता के बिना, सभ्यता को नहीं बनाए रखा जा सकता है। अच्छे और बुरे की इस अनुभूति को अर्थपूर्ण होने के लिए कान्ट ने कहा कि न्याय का होना अनिवार्य है; दूसरे शब्दों में, धार्मिकता को पुरस्कृत किया जाना चाहिए और दुष्टता को दण्ड मिलना चाहिए। परन्तु, यह स्पष्ट है कि न्याय सर्वदा स्थिर नहीं होता है, जिसने कान्ट को यह प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित किया कि दुष्ट क्यों सफल होते हैं और धर्मी क्यों दुःख उठाते हैं। उसने निष्कर्ष निकाला कि क्योंकि इस जीवन में न्याय नहीं होता है, तो क़ब्र के पश्चात किसी प्रकार का जीवन होना चाहिए जिससे कि न्याय का वितरण किया जा सके। बाद में मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि कक्षा के एक विद्यार्थी ने केवल अन्तिम न्याय के विषय में कान्ट के अनुमान के विषय में सुनकर मसीहियत को अपना लिया।

किन्तु यीशु के लिए अन्तिम न्याय कोई अनुमान की बात नहीं किन्तु ईश्वरीय उद्घोषणा की बात थी, और उसने बारम्बार लोगों को इस निश्चित वास्तविकता के विषय में सावधान किया, उदाहरण के लिए उसने कहा, “मैं तुमसे कहता हूँ, जो भी निकम्मी बात मनुष्य बोलेंगे, न्याय के दिन वे उसका लेखा देंगे” (मत्ती 12:36)। यह यशायाह नबी की बात का स्मरण दिलाता है, जिसने जब परमेश्वर की पवित्रता को अपने सामने देखा, तो तुरन्त अपनी अयोग्यता के विचार से भावविह्वल हो गया और उसने कहा, “मुझ पर हाय, मैं तो नाश हुआ, क्योंकि मैं अशुद्ध होंठवाला मनुष्य हूँ, मैं अशुद्ध होंठवाले मनुष्यों के बीच में रहता हूँ” (यशायाह 6:5)। यदि हमारे निकम्मे शब्दों का न्याय होगा, तो हमारे प्रत्येक जानबूझकर कहे गए शब्दों का और कितना न्याय होगा?

वर्षों पश्चात्, मैं एक ऐसे विद्यार्थी से मिला जो उस कक्षा में था जिसे मैंने सिखाया था और जिसने बाद में तंत्रिका विज्ञान *(neuroscience)* की पढाई की। बातचीत में, उसने उस व्याख्यान को स्मरण किया जिसे मैंने कान्ट और अन्तिम न्याय के विषय में दिया था। उसने फिर मस्तिष्क के कार्य करने की रीति के विषय में मुझे वैज्ञानिक दृष्टिकोण बताया। उसने समझाया कि हमारे प्रत्येक अनुभव को मस्तिष्क में अंकित किया जाता है। उसने कहा कि वास्तव में एक मानव मस्तिष्क में पायी जाने वाली जानकारी को रखने के लिए एक बड़े भवन के आकार के कम्प्यूटर की आवश्यकता पड़ेगी। उसने फिर अपनी वैज्ञानिक समझ को अन्तिम न्याय के साथ यह कहते हुए जोड़ा कि वह कल्पना करता है कि न्याय के दिन परमेश्वर प्रत्येक मानव मस्तिष्क के सभी अनुभवों को फिर से देखेगा—प्रत्येक विचार, शब्द और कार्य—जिससे कि प्रमाण की स्पष्टता मनुष्य को तर्क-वितर्क करने के लिए अयोग्य ठहराएगी। मेरे भूतपूर्व विद्यार्थी के चित्रण की बात यह है कि चाहे हमारे पास मस्तिष्क का सचेतन अभिलेख हो या न हो, परमेश्वर हमारे प्रत्येक विचार, शब्द और कार्य से अवगत है।

यीशु की शिक्षा

अधिकतर उपदेशों को एक चर्मोत्कर्ष के साथ निर्मित किया जाता है, और यह यीशु के पहाड़ी उपदेश के विषय में भी सत्य है। उस उपदेश के अन्त में यीशु ने कहा:

> झूठे नबियों से सावधान रहो जो भेड़ों के वेश में तुम्हारे पास आते हैं, परन्तु भीतर से वे भूखे, फाड़-खाने वाले भेड़िए हैं। उनके फलों से तुम उन्हें पहचान लोगे। क्या कँटीली झाड़ियों से अंगूर या काँटों से अंजीर तोड़े जाते हैं? इसी प्रकार प्रत्येक अच्छा पेड़ अच्छा फल देता है, परन्तु निकम्मा पेड़ बुरा फल देता है। अच्छा पेड़ बुरा फल नहीं दे सकता

> और न ही निकम्मा पेड़ अच्छा फल दे सकता है। प्रत्येक पेड़ जो अच्छा फल नहीं देता, काटा और आग में झोंक दिया जाता है। अतः तुम उनके फलों से उन्हें पहिचान लोगे। (मत्ती 7:15-20)

बहुत से सुसमाचारवादी इस बात से अनभिज्ञ हैं कि यीशु ने अन्तिम न्याय के विषय में बात की, परन्तु उसने स्पष्ट रीति से इसके विषय में बात की थी और उसने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति का न्याय उसके कार्यों के अनुसार होगा। हम केवल विश्वास के द्वारा धर्मीकरण के सिद्धान्त पर बल देते हैं, परन्तु कभी-कभी कार्यों के स्थान पर विश्वास के द्वारा छुटकारा के विषय में हमारे उत्साह के कारण हम सोचते हैं कि परमेश्वर के लिए कार्य महत्वपूर्ण नहीं हैं। परन्तु यहाँ हम पढ़ते हैं कि न्याय कार्यों के अनुसार होगा। अन्तिम न्याय के समय परमेश्वर अपने लोगों में जो प्रतिफल देगा, वह कार्यों के अनुसार होगा। मसीहियों के रूप में हमें उत्साहित किया जाता है कि हमारी आज्ञाकारिता के स्तर के अनुसार प्रतिफल दिये जाएँगे। इसलिए कार्य बहुत महत्वपूर्ण हैं, चाहे अच्छे या बुरे, क्योंकि वे सब न्याय में लाए जाएँगे।

यीशु ने आगे कहा:

> प्रत्येक जो मुझ से, “हे प्रभु, हे प्रभु” कहता है, स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न करेगा, परन्तु जो मेरे स्वर्गीय पिता की इच्छा पर चलता है, वही प्रवेश करेगा। उस दिन बहुत लोग मुझ से कहेंगे, “हे प्रभु, हे प्रभु, क्या हमने तेरे नाम से नबूवत नहीं की और तेरे नाम से दुष्टात्माओं को नहीं निकाला और तेरे नाम से बहुत से आश्चर्यकर्म नहीं किए?” तब मैं उनसे स्पष्ट कहूँगा, “मैंने तुम को कभी नहीं जाना; हे कुकर्मियो, मुझ से दूर हटो।” (21-23 पद)

न्याय के दिन लोग दावा करेंगे कि वे यीशु को जानते हैं और वे बल देकर उसे “हे प्रभु” सम्बोधित कहेंगे। वे दोवा करेंगे कि उन्होंने अच्छे कार्य किये और कलीसिया के कार्यक्रमों में भाग लिया था, फिर भी यीशु स्पष्ट रूप से कहेगा कि वह उन्हें कभी भी नहीं जानता था।

मत्ती के ही सुसमाचार में बाद में, यीशु स्वर्ग के राज्य के विषय में एक दृष्टान्त बताता है:

> तब स्वर्ग के राज्य की तुलना उन दस कुँवारियों से की जाएगी जो अपने दीपक लेकर दूल्हे से मिलने को निकलीं। उनमें से पाँच मूर्ख और पाँच बुद्धिमान थीं। क्योंकि मूर्खों ने

जब दीपक लिए तो उन्होंने अपने साथ तेल नहीं लिया, परन्तु बुद्धिमानों ने अपने दीपकों के साथ कुप्पियों में तेल भी लिया। जब दूल्हे के आने में देर हो रही थी तो वे सब ऊँघने लगीं और सो गईं। परन्तु आधी रात को पुकार मची: "देखो, दूल्हा आ रहा है! उस से भेंट करने चलो!" तब वे सब कुँवारियाँ उठ बैठीं और अपना-अपना दीपक ठीक करने लगीं। और मूर्खों ने बुद्धिमानों से कहा, "हमें भी अपने तेल में से कुछ दो, क्योंकि हमारे दीपक बुझने पर हैं।" परन्तु बुद्धिमानों ने उत्तर दिया, "नहीं यह हमारे लिए और तुम्हारे लिए पूरा न होगा। अच्छा है तुम दुकानदारों के पास जाकर अपने लिए मोल लो।" जब वे मोल लेने को चली गईं तो दूल्हा आ गया, और जो तैयार थीं, वे उसके साथ विवाह-भोज में अन्दर चली गईं। तब द्वार बन्द कर दिया गया। बाद में वे दूसरी कुँवारियाँ भी आकर कहने लगीं, "स्वामी, हे स्वामी, हमारे लिए द्वार खोल दे!" परन्तु उसने उत्तर दिया, "मैं तुमसे सच कहता हूँ, मैं तुम्हें नहीं जानता।" इसलिए जागते रहो, क्योंकि तुम न तो उस दिन को जानते हो और न ही उस घड़ी को। (मत्ती 25:1-13)

हमारा प्रभु हमें और संसार को ये गम्भीर चेतावनियाँ देता है। परमेश्वर ने एक दिन नियुक्त किया है, और उसने एक न्यायाधीश को नियुक्त किया है और न्यायाधीश स्वयं प्रभु ही है। जब हम उस न्याय सिंहासन के सामने खड़े होंगे, तो उत्तम यह होगा कि तैयार पाए जाएँ।

अध्याय 59

अनन्त दण्ड

Eternal Punishment

पिछले अध्याय में हमने, नये नियम में विशेषकर स्वयं यीशु के होठों से प्रस्तुत किए गए अन्तिम न्याय की जाँच-पड़ताल की थी। ऐसा नहीं है कि अन्तिम न्याय में लोगों का बिना गम्भीरता के मूल्याँकन होगा; वरन् यह स्वर्ग के न्यायालय के सन्दर्भ में होगा, जहाँ सब लोगों का न्यायाधीश हमारे द्वारा किए गए सब कार्यों का लेखा लेगा। सुनवाई के अन्त में, "दोषी" या "निर्दोष" के निर्णय की घोषणा होगी जो कि इस बात पर निर्भर होगी कि अभियुक्त ख्रीष्ट की धार्मिकता द्वारा ढाँपा गया है या नहीं। उन लोगों के लिए जो ख्रीष्ट के हैं, पुरस्कार होगा, परन्तु उन लोगों के लिए जो ख्रीष्ट के नहीं हैं, दण्ड होगा।

अन्तिम न्याय एक सिद्ध रीति से धर्मी न्यायी और धर्मी न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा, इसलिए उसमें कुछ भी मनमाना या अधर्मी नहीं होगा। हम अपने कार्यों के आधार पर अथवा ख्रीष्ट के कार्य के आधार पर परमेश्वर के न्याय का सामना करेंगे। यदि हमने एक भी पाप किया है, परमेश्वर की पवित्रता के विरुद्ध एक अपमान—जो हमने निश्चय ही किया है—तो हमें ख्रीष्ट की तीव्र आवश्यकता है। जैसे कि भजनकार ने कई शताब्दियाँ पूर्व प्रार्थना की थी, "हे याह, यदि तू अधर्मों का लेखा लेता, तो हे प्रभु, कौन टिक पाता?" (भजन 130:3)। उत्तर सुस्पष्ट है: कोई भी नहीं। बुरा समाचार यह है कि परमेश्वर अधर्मों का लेखा अवश्य लेता है। धन्य व्यक्ति वह है जिस पर प्रभु दोष नहीं लगाता है। यह सुसमाचार का केन्द्र है।

प्रकाशन के अनुसार

क्योंकि न्याय सिद्ध रीति से धर्मी होगा, पवित्रशास्त्र स्पष्ट करता है कि यह उस प्रकाश के अनुसार किया जाएगा जो हमारे पास है। तो फिर उस निर्दोष व्यक्ति का क्या होगा जिसने यीशु ख्रीष्ट के

सुसमाचार को कभी सुना ही नहीं है? इसका उत्तर यह है कि परमेश्वर कभी भी निर्दोष लोगों को दण्डित नहीं करता है। जो लोग निर्दोष हैं, उनको परमेश्वर के न्याय के विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु नए नियम के अनुसार, कोई भी निर्दोष नहीं हैं। कोई भी परमेश्वर के न्याय के सिंहासन के सामने आकर यह नहीं कह सकता कि, "मेरे पास प्रकाशन का प्रकाश नहीं था"; यही रोमियों 1 का महत्व है। वहाँ पौलुस लिखता है कि परमेश्वर का प्रकोप कुकर्मियों पर उण्डेला जा रहा है क्योंकि उन्होंने परमेश्वर के उस ज्ञान को दबाया है जो प्रकृति के द्वारा स्पष्ट है। वे परमेश्वर से फिर गए हैं और उन्होंने परमेश्वर को परमेश्वर के रूप में आदर देने से मना कर दिया है। इसलिए कोई भी परमेश्वर के न्याय के सिंहासन के सामने खड़े होकर यह नहीं कह सकता है कि वह नहीं जानता था कि कोई परमेश्वर अस्तित्व में भी था।

अन्तिम न्याय में जिन लोगों ने यीशु के विषय में कभी नहीं सुना, वे यीशु का तिरस्कार करने के लिए दण्डित नहीं किए जाएँगे। परमेश्वर उस प्रकाश के अनुसार न्याय करता है जो प्रत्येक व्यक्ति के पास है, और ऐसे लोगों को परमेश्वर द्वारा यीशु का तिरस्कार करने के लिए दण्डित करना अन्याय होगा जिन्होंने उसके विषय में सुना ही नहीं। किन्तु फिर भी, यीशु ऐसे लोगों के पास आया, जो यीशु का तिरस्कार करने के लिए नहीं परन्तु पिता का तिरस्कार करने के लिए पहले ही से परमेश्वर के न्याय के अधीन थे—जिसको वे उस प्रकाशन के द्वारा जानते थे जो उसने प्रकृति में दिया था। यदि हमारे पास बाइबल भी नहीं होती, तब भी आकाशमण्डल परमेश्वर की महिमा का वर्णन करता (भजन 19:1; रोमियों 1:20)। वास्तव में, हमारे विवेक साक्षी देते हैं कि हम जानते हैं कि परमेश्वर कौन है और यह भी कि हमने उसकी व्यवस्था का उल्लंघन किया है (रोमियों 2:15)।

अन्तिम न्याय के समय जिस नियति के अधीन हम होंगे, वह अपरिवर्तनीय होगी। बहुत से लोग मृत्यु के बाद के दूसरे अवसर की आशा करते हैं, भले ही वह काल्पनिक पापशोधन-स्थल *(purgatory)* क्यों न हो जहाँ वे अपने ऋण को चुका सकते हैं और स्वर्ग में प्रवेश कर सकते हैं, फिर भी पवित्रशास्त्र उसके लिए थोड़ी भी आशा नहीं देता है। बाइबल बताती है कि "मनुष्यों के लिए एक ही बार मरना और उसके बाद न्याय का होना नियुक्त किया गया है" (इब्रानियों 9:27)।

नरक

अन्तिम न्याय के विषय में जो बात हममें सबसे अधिक घिन उत्पन्न कराती है, वह है नरक का सिद्धान्त। जब मैं सेमिनरी में था तो एक विद्यार्थी ने हमारे प्राध्यापक जॉन गर्स्टनर से पूछा कि हम स्वर्ग में आनन्दित कैसे होने पाएँगे यदि वहाँ पहुँचकर हम पाएँ कि हमारे प्रियजनों में से कुछ तो नरक में हैं। डॉ. गर्स्टनर ने उत्तर दिया कि हम उसके विषय में दुःखी नहीं होंगे परन्तु इसके विपरीत हम आनन्द मनाएँगे, क्योंकि यह परमेश्वर को महिमा देगा और उसकी पवित्रता को निर्दोष

ठहराएगा। सभी विद्यार्थी एक साथ चकित हो गए, परन्तु जैसे-जैसे मैंने उनके शब्दों पर विचार किया, तो मैं समझने पाया कि वे क्या कह रहे थे। जब हम अपने नश्वर शरीरों में हैं, यद्यपि हम में ख्रीष्ट के प्रति स्नेह है, फिर भी हमारे आधारभूत स्नेह इस संसार पर आधारित हैं। हम परमेश्वर की धार्मिकता के निर्दोष ठहराए जाने से अधिक अपने परिवार के सदस्यों और मित्रों की भलाई के विषय में अधिक चिन्तित हैं, परन्तु जब हम अपने महिमान्वित अवस्था में स्वर्ग में पहुँचेंगे तो ऐसा नहीं होगा।

यदि हम कल्पना करें कि किसी कमरे में एक ओर पूर्ण धार्मिकता का प्रतिनिधित्व करते हुए यीशु खड़ा है, और पूर्ण दुष्टता का प्रतिनिधित्व करते हुए दूसरी ओर एडोल्फ़ हिटलर खड़ा है, तो हम ऐसे मित्र को जिसे हम धर्मी मानते हैं, उस कमरे में कहाँ रखेंगे। हमें उसे ख्रीष्ट से जितना सम्भव दूर तथा हिटलर के ठीक पास खड़ा करना होगा, वास्तव में इस चित्र में इस कमरे को तो असीमित रीति से विशाल होना होगा। क्योंकि यीशु पाप-रहित है, ख्रीष्ट और पापियों के मध्य की खाई अगाध है। पाप में पतित हमारे सन्दर्भ को देखते हुए, हम हिटलर को तो समझ सकते हैं, परन्तु अपनी सिद्ध धार्मिकता के द्वारा यीशु हमारी कल्पना को चकरा देता है। यही कारण है कि हमें यह सोचने में समस्या होती है कि परमेश्वर अपने न्याय को पूर्ण करने के कार्य में हमारे प्रियजनों को नरक भेजेगा।

नया नियम नरक को अन्धकार के रूप में, आग की एक झील के रूप में, और एक बन्दीगृह के रूप में वर्णित करता है। उदाहरण के लिए:

> उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी पर निकल कर पवित्र लोगों की छावनी और प्रिय नगरी को घेर लिया। तब स्वर्ग से आग ने गिरकर उन्हें भस्म कर दिया। उनको भरमाने वाला शैतान उस अग्नि और गन्धक की झील में डाल दिया गया जहाँ वह पशु और झूठा नबी भी डाले गए थे। वे अनन्तकाल तक दिन-रात पीड़ा में तड़पते रहेंगे।
>
> फिर मैंने एक बड़ा श्वेत सिंहासन और उसे देखा जो उस पर बैठा था। उसकी उपस्थिति से आकाश और पृथ्वी भाग गए और उन्हें कोई स्थान न मिला। तब मैंने छोटे बड़े सब मृतकों को सिंहासन के समक्ष खड़े हुए देखा, और पुस्तकें खोली गईं, तथा एक और पुस्तक खोली गई जो जीवन की पुस्तक है, और उन पुस्तकों में लिखी हुई बातों के आधार पर सब मृतकों का न्याय उनके कामों के अनुसार किया गया। समुद्र ने उन मृतकों को जो उसमें थे दे दिया, और मृत्यु और अधोलोक ने अपने मृतक दे दिए। उनमें

से प्रत्येक का न्याय उसके कामों के अनुसार किया गया। मृत्यु और अधोलोक आग की झील में डाले गए। यह आग की झील दूसरी मृत्यु है। जिस किसी का नाम जीवन की पुस्तक में लिखा हुआ न मिला, वह आग की झील में फेंक दिया गया। (प्रकाशितवाक्य 20:9-15)

मुझे सन्देह है कि नरक यथार्थ में आग की झील है, परन्तु वह जो भी है, जो लोग वहाँ पर हैं वे अपना सब कुछ देना चाहेंगे और वह सब कुछ करना चाहेंगे जिससे कि उन्हें वहाँ न रहना पड़े। जिस वास्तविकता को कोई भी प्रतीक इंगित करता है, वह प्रतीक से सर्वदा ही अधिक तीव्र होता है और इसलिए हम इस विचार से कोई सान्त्वना नहीं पा सकते हैं कि नरक के विषय में नये नियम की भाषा प्रतीकात्मक है। यदि यह प्रतीकात्मक है, तो वास्तविकता अवश्य ही प्रतीक से बुरी होगी।

हम लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं, "मेरा जीवन तो पृथ्वी पर नरक है," परन्तु वह तो केवल अतिश्योक्ति ही है, क्योंकि व्यक्ति का जीवन जितना भी कठोर क्यों न हो, यह नरक की तुलना में कुछ भी नहीं है। बहुत ही दयनीय स्थिति में दुःख उठाने वाला व्यक्ति भी सर्वशक्तिमान परमेश्वर के सामान्य अनुग्रह का बहुत लाभ उठाता है, जो कि उन लोगों से पूर्णतः हटाया जाता है जो नरक में हैं। नरक एक निश्चित् अर्थ में परमेश्वर से अलगाव है किन्तु सम्पूर्ण अर्थ में नहीं। यह परमेश्वर के अनुग्रह, चिन्ता और प्रेम से अलगाव है, परन्तु स्वयं परमेश्वर से नहीं। नरक में पाए जाने वाले लोगों की सबसे बड़ी समस्या शैतान नहीं; वरन् परमेश्वर है। परमेश्वर नरक में है, सक्रिय रीति से दुष्टों को दण्डित करते हुए। जब हम बचाए जाते हैं, तो हम परमेश्वर से बचाए जाते हैं। हम उसके भीषण प्रकोप और दण्ड के अनाश्रयता से बचाए जाते हैं।

नया नियम यह भी सिखाता है कि नरक में दण्ड के स्तर हैं, जिस प्रकार से स्वर्ग में लोगों को वितरित किए जाने वाले पुरस्कार में स्तर हैं। किसी ने एक बार कहा कि स्वर्ग में सब के पास भरा हुआ प्याला होगा, परन्तु सब के पास एक ही आकार का प्याला नहीं होगा। यीशु ने बहुधा उन लोगों में भेद किया जिनका प्रतिफल अधिक होगा और जिनका प्रतिफल कम होगा।

जब एक हत्यारे को कई आजीवन कारावास के दण्ड सुनाये जाते हैं, तो हमें लगता है कि यह अनावश्यक है। क्योंकि लोगों के पास तो एक ही जीवन है। किन्तु, न्याय के अनुसार हर अपराध अलग है और इसलिए प्रत्येक अपराध अलग दण्ड के योग्य है, और यह सिद्धान्त अनन्तकाल पर लागू होता है। हम तो अपराधियों को सात हत्याओं के लिए सात बार दण्ड नहीं दे सकते हैं, परन्तु

परमेश्वर ऐसा कर सकता है और जो व्यक्ति एक व्यक्ति की हत्या करता है वह ऐसा दण्ड पाएगा जो उस व्यक्ति से सात गुणा कम होगा जो सात लोगों की हत्या करता है। परमेश्वर का दण्डात्मक न्याय सिद्ध होगा, जिससे कि दण्ड सर्वदा अपराध के अनुकूल होगा और यही कारण है कि पौलुस चेतावनी देता है कि हम प्रकोप के दिन के लिए क्रोध संचित न करें (रोमियों 2:5)। यीशु हमें स्वर्ग में धन संचय करने के लिए बुलाता है; इसके विपरीत, पौलुस कहता है कि जो लोग स्वर्ग में धन नहीं संचित कर रहे हैं, वे नरक में दण्ड संचित कर रहे हैं, जो उनको प्राप्त होने वाले न्याय के स्तर को बढ़ाएगा।

कुछ वर्षों से, सुसमाचारवादी समूहों में इस विधर्मी सिद्धान्त का पुनर्जागरण हुआ है जिसका नाम विनाशवाद *(annihilationism)* है, जिसके अनुसार अन्तिम न्याय के समय विश्वासियों को मृतकों में से जिलाकर प्रतिफल दिया जाएगा, परन्तु दुष्टों को केवल मिटा दिया जाएगा। दूसरे शब्दों में, उनके अस्तित्व का अन्त होता है, और यह उनका दण्ड है—जीवन की हानि। ऐतिहासिक रीति से, मसीहियों ने विश्वास किया है कि पवित्रशास्त्र के अनुसार, नरक का दण्ड सचेतन और अनन्त है। नरक में पड़े पापी मिटा दिए जाने की लालसा करते हैं, जिससे कि उनका अस्तित्व समाप्त हो जाए क्योंकि परमेश्वर के दण्ड के सामने प्रतिदिन खड़े होने के विपरीत कोई भी अन्य विकल्प अच्छा ही होगा।

अन्तिम विश्लेषण में, हम नरक के विस्तारपूर्वक विवरण को नहीं जानते हैं, और यदि हम सच कहें, तो हमें स्वीकार करना होगा कि हम जानना *चाहते* भी नहीं हैं। परन्तु, यदि हम यीशु और प्रेरितों के शब्दों को गम्भीरता से लेते हैं, तो हमें नरक को गम्भीरता से लेना होगा। यदि हम नरक के विषय में बाइबलीय साक्षी पर वास्तव में विश्वास करते हैं, तो यह न केवल इस बात को परिवर्तित कर देगा कि हम कैसे जीते हैं, परन्तु इस को भी कि हम कलीसिया के उद्देश्य के सम्बन्ध में कैसे कार्य करते हैं।

अध्याय 60

स्वर्ग और पृथ्वी का नया बनाया जाना

Heaven and Earth Made New

आज बहुत लोग सन्देह करते हैं कि मृत्यु के पश्चात् भी जीवन है। वे यह कहते हुए अनन्त जीवन पर विश्वास करने वाले उन लोगों को तुच्छ जानते हैं कि स्वर्ग के लिए हमारी आशा केवल हमारी इच्छाओं का प्रकटीकरण है। वे हमारे भरोसे के इस आधार पर प्रश्न उठाते हैं कि आगामी जगत वर्तमान जगत से उत्तम होगा।

मसीहियों के रूप में हमारा उत्तर ख्रीष्ट की साक्षी है, दोनों उसके पुनरुत्थान की और उसकी शिक्षा की। यीशु ने कहा, "पुनरुत्थान और जीवन मैं ही हूँ। जो मुझ पर विश्वास करता है यदि मर भी जाए फिर भी जीएगा" (यूहन्ना 11:25)। ऊपरी कक्ष के उपदेश में, जिस रात को वह पकड़वाया गया, यीशु ने कहा, "तुम्हारा हृदय व्याकुल न हो। परमेश्वर पर विश्वास रखो और मुझ पर भी विश्वास रखो" (यूहन्ना 14:1)। उसने उपदेश का आरम्भ एक आज्ञार्थक से किया: "न हो।" आज्ञार्थक का अर्थ है कि इसमें बाध्यता है। हमें आज्ञा मिली है कि स्वर्ग में अपने भविष्य के विषय में हमारे हृदयों को व्याकुल नहीं होना चाहिए। यीशु ने यह भी कहा:

> मेरे पिता के घर में रहने के बहुत-से-स्थान हैं। यदि न होते, तो मैं तुमसे कह देता, क्योंकि मैं तुम्हारे लिए जगह तैयार करने जाता हूँ। और यदि मैं जाकर तुम्हारे लिए जगह तैयार करूँ तो फिर आकर तुम्हें अपने यहाँ ले जाऊँगा कि जहाँ मैं हूँ, वहाँ तुम भी रहो, और जहाँ मैं जा रहा हूँ तुम वहाँ का मार्ग जानते हो।" (2-4 पद)

यीशु अपने शिष्यों के साथ था और उनके मध्य से हटाया जाने वाला था, और वे व्याकुल थे। उसने उन्हें सान्त्वना दी, और उसने इन शब्दों के साथ अपने आश्वासन को दृढ़ किया: "यदि न होते, तो मैं तुमसे कह देता, क्योंकि मैं तुम्हारे लिए जगह तैयार करने जाता हूँ।" अन्य शब्दों में, यदि स्वर्ग एक झूठी आशा थी जिसको शिष्य थामे हुए थे, तो यीशु उनकी त्रुटि को सुधार देता। परन्तु, यह सब सत्य है और यीशु वास्तव में उनके लिए वहाँ एक स्थान तैयार करने के लिए उनसे आगे जा रहा था। यह है अपने लोगों के लिए ख्रीष्ट की प्रतिज्ञा: प्रत्येक उस जन के लिए जो ख्रीष्ट पर भरोसा करता है, ख्रीष्ट के पिता के घर में एक स्थान तैयार है। इसलिए, स्वर्ग की वास्तविकता के विषय में भरोसा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त कारण है।

प्रतिज्ञा किया गया आनन्द

यूहन्ना की पहली पत्री में, हमें अपने भविष्य की अवस्था के विषय में कुछ अन्तर्दृष्टि दी जाती है:

> देखो, पिता ने हमें कैसा महान् प्रेम प्रदान किया है कि हम परमेश्वर की सन्तान कहलाएँ; और वही हम हैं। इस कारण संसार हमें नहीं जानता, क्योंकि संसार ने उसे भी नहीं जाना। प्रियो, हम परमेश्वर की सन्तान हैं और अब तक यह प्रकट नहीं हुआ कि हम क्या होंगे। पर यह जानते हैं कि जब वह प्रकट होगा तो हम उसके सदृश होंगे, क्योंकि हम उसको ठीक वैसा ही देखेंगे जैसा वह है। प्रत्येक जो उस पर ऐसी आशा रखता है, वह अपने आप को वैसा ही पवित्र करता है जैसा कि वह पवित्र है। (1 यूहन्ना 3:1-3)

नये नियम में पाये जाने वाले युगान्त-विज्ञान सम्बन्धी स्थलों में से यह स्थल, भले ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु फिर भी यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल है। यह विश्वासियों को प्रतिज्ञा देता है कि हम स्वर्ग में परम सुख के सर्वोच्च शिखर का आनन्द उठाएँगे, अर्थात् "आनन्दप्रद दर्शन" *(the beatific vision)* या *परमेश्वर का दर्शन (visio dei)*। *आनन्दप्रद (beatific)* शब्द उसी शब्द से आता है जहाँ से हमें *धन्य वाणी (beatitude)* शब्द प्राप्त होता है। धन्य वाणी पहाड़ी उपदेश में यीशु के कथन हैं, जिनमें वह आशीष के शब्दों की घोषणा करता है (मत्ती 5:3-12)। वे धन्यता की प्रतिज्ञाएँ हैं, आनन्द का एक ऐसा स्तर जो पृथ्वी के आनन्द या हर्ष से बढ़कर है। जब परमेश्वर प्राण को धन्यता देता है, तो यह एक सर्वोच्च आनन्द या हर्ष है। यह धन्यता यहाँ 1 यूहन्ना के आनन्दप्रद दर्शन में सम्मिलित है। यह इतना अद्भुत है कि वह दर्शन स्वयं अपने साथ आशीष की परिपूर्णता ले आता है।

आनन्दप्रद दर्शन परमेश्वर का दर्शन है। यूहन्ना कहता है कि हम नहीं जानते हैं कि हम स्वर्ग में क्या होंगे, परन्तु एक बात जो हम जानते हैं, वह यह है कि हम उसके जैसे होंगे, क्योंकि हम उसको वैसा देखेंगे *जैसा वह है।* हम उसे वैसा देखेंगे *जैसे वह स्वयं में है।* हम केवल परमेश्वर के एक अप्रत्यक्ष प्रकटीकरण को नहीं—जैसे जलती हुआ झाड़ी या बादल और आग का खम्भा—परन्तु उसके अनावृत रूप को देख पाएँगे। मूसा को परमेश्वर की क्षणिक महिमा की झलक देखने की अनुमति दी गई, परन्तु वह परमेश्वर के मुख को नहीं देख सका (निर्गमन 34:5-7)। इस संसार के प्रत्येक मनुष्य को आमने-सामने और आत्मीय रीति से परमेश्वर के मुख को देखना वर्जित है। हमें उस परमेश्वर के प्रति पवित्रता के लिए समर्पित होने के लिए बुलाया गया है जिसे हमने कभी नहीं देखा है। हम एक ऐसे स्वामी की सेवा करते हैं जो हमारे लिए अदृश्य है। फिर भी हमसे प्रतिज्ञा की गई है कि एक दिन हम उसे देखेंगे। धन्यवाणियों में हम पाते हैं कि दयावन्तों, कंगालों, या मेल कराने वालों को परमेश्वर को देखने की प्रतिज्ञा नहीं दी गई। वरन् यीशु कहता है कि, "धन्य हैं वे जिनके मन शुद्ध हैं, क्योंकि वे परमेश्वर को देखेंगे" (मत्ती 5:8)। परमेश्वर को न देखने का कारण हमारी आँखों से नहीं जुड़ा हुआ है। यह हमारे हृदयों से जुड़ा हुआ है। परन्तु जब हम महिमा में प्रवेश करेंगे और अपने पवित्रीकरण की परिपूर्णता को प्राप्त करेंगे, तब परमेश्वर को सीधे और बिना साधन से देख पाने की बाधा हटा दी जाएगी।

जब मैं टीवी पर बास्केटबॉल का खेल देखता हूँ, तो क्या मैं वास्तव में बास्केटबॉल के उस खेल को देख रहा होता हूँ? मैं तो वहाँ उपस्थित नहीं हूँ; खेल मुझसे मीलों दूर खेला जा रहा है। मैं एक प्रसारण को देख रहा हूँ, जो एक प्रतिरूप है। उस खेल और मेरे मध्य एक माध्यम है जिससे कि मैं उस माध्यम के द्वारा खेल के विषय में जानता हूँ। एक माध्यम एक मध्यस्थ होता है; इस प्रकरण में, यह किसी घटना के चित्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान में संचारित करता है। जब मैं टीवी पर खेल देखता हूँ, तो मैं केवल खेल के चित्रों को देखता हूँ। यदि मैं वास्तव में खेल के स्थान पर उपस्थित होता, तो क्रीड़ा-स्थान का प्रकाश उन चित्रों को मेरी आँखों तक पहुँचाता। परन्तु यदि भले ही मेरे पास देखने की सिद्ध क्षमता होती, और यदि मैं बिना किसी प्रकाश वाले किसी कमरे में बन्द होता, तो मैं कुछ नहीं देख पाता। देख पाने योग्य होने के लिए हमें प्रकाश और चित्रों दोनों की आवश्यकता है।

हमारी वर्तमान की दृष्टि भी माध्यम के द्वारा कार्य करती है। जोनाथन एडवर्ड्स ने कहा कि महिमा में हमारे प्राण अदृश्य परमेश्वर को प्रत्यक्ष रीति से देखेंगे। वह कैसा होगा हम नहीं जानते हैं, परन्तु हम परमेश्वर के वचन के माध्यम से जानते हैं कि स्वर्ग में हमारे प्राणों का आनन्द उसको वैसे देखने से होगा जैसे वह है।

स्वर्ग का स्वभाव

प्रकाशितवाक्य की पुस्तक में, प्रेरित यूहन्ना उस दर्शन का वर्णन करता है जिसे उसको पतमुस के टापू पर दिया गया था। उस दर्शन में ख्रीष्ट ने यूहन्ना को बहुत सी बातें दिखाईं, जिनमें नया आकाश और नई पृथ्वी सम्मिलित हैं:

> तब मैंने नया आकाश और नई पृथ्वी को देखा क्योंकि पहिला आकाश और पहिली पृथ्वी मिट गईं थी, और कोई समुद्र भी न रहा। फिर मैंने पवित्र नगरी, नए यरूशलेम को परमेश्वर की ओर से स्वर्ग से उतरते देखा; वह ऐसी सजाई गई थी जैसी दुल्हिन अपने पति के लिए सिंगार किए हो। तब मैंने सिंहासन से एक ऊँची आवाज़ को यह कहते सुना, "देखो, परमेश्वर का डेरा मनुष्यों के बीच में है, वह उनके मध्य निवास करेगा। वे उसके लोग होंगे तथा परमेश्वर स्वयं उनके मध्य रहेगा, और वह उनकी आँखों से सब आँसू पोंछ डालेगा; फिर न कोई मृत्यु रहेगी न कोई शोक, न विलाप और न पीड़ा रहेगी। पहिली बातें बीत गई हैं।" (प्रकाशितवाक्य 21:1-4)

हम पढ़ते हैं कि स्वर्ग में समुद्र नहीं होगा, जिस बात को यदि हम यथार्थ रीति से समझें, तो यह समुद्र तट से प्रीति रखने वालों को निराश कर सकता है। किन्तु इब्री लोगों के लिए समुद्र हिंसा का चित्र था। इस्राएल का समुद्र तट पथरीला और असमतल था। इसके साथ ही यह आक्रमण करने वाले लूटेरों का प्रवेश स्थान था और भूमध्यसागर से प्रचण्ड वायु चलती थी। समस्त इब्रानी काव्य में समुद्र एक नकारात्मक चित्रण हैं; नदी, झरना और कुँआ सकारात्मक चित्रण के रूप में कार्य करते हैं। इसलिए हम यूहन्ना के दर्शन को यह संकेत करते हुए समझते हैं कि वहाँ पर कोई प्रचण्ड प्राकृतिक आपदाएँ नहीं होंगी।

स्वर्ग में आँसू भी अनुपस्थित होंगे। हम आँसुओं को दुःख और शोक के साथ जोड़ते हैं। हम में से बहुत लोग स्मरण करते हैं कि कैसे जब हम बच्चे थे, जब हम दुःखी होते थे, तो हमारी माताएँ हमें हमारे आँसुओं को अपने कपड़ो से पोंछते हुए सान्त्वना देती थीं। बहुधा हम अगले दिन भी रोते थे और हमें फिर से सान्त्वना की आवश्यकता पड़ती थी। परन्तु जब परमेश्वर हमारे आँसुओं को पोंछता है, वे फिर से नहीं आएँगे क्योंकि वे बातें हटा दी जाएँगी जो हमें अब रुलाती हैं। कोई मृत्यु, दुःख, या पीड़ा नहीं होंगी। ये पहले की बातें बीत चुकी होंगी।

जैसे यूहन्ना अपने विवरण को आगे बढ़ाता है, हम कुछ आश्चर्यजनक बातों को पाते हैं कि

स्वर्ग कैसा होगा और कैसा नहीं होगा (18-21 पद)। हमें बताया गया है कि वहाँ क्या होगा और क्या नहीं होगा। हम ऐसी सड़कें पाएँगे जो इतने शुद्ध सोने की होंगी कि वे पारदर्शी होंगी। हमें ऐसे फाटकों के विषय में बताया जाता है जो भव्य मोतियों से निर्मित हैं और ऐसी नींव जो बहुमूल्य पत्थरों से सुसज्जित है। भेदसूचक *(Apocalyptic)* साहित्य कल्पनात्मक है, इसलिए हम यह सोचते हैं कि ये स्वर्ग के चित्रात्मक वर्णन हैं, परन्तु मैं आश्चर्य नहीं करूँगा यदि परमेश्वर यहाँ वर्णित नगर के जैसे ही एक नगर का निर्माण करे।

यूहन्ना हमें और भी बताता है: "मैंने नगर में कोई मन्दिर न देखा, क्योंकि सर्वशक्तिमान प्रभु परमेश्वर और मेमना ही मन्दिर है। उस नगर को सूर्य और चाँद के प्रकाश की आवश्यकता नहीं, क्योंकि परमेश्वर की महिमा ने उसे आलोकित किया है और मेमना उसका दीपक है" (22-23 पद)। कोई मन्दिर, सूर्य या चाँद नहीं होंगे। इस पृथ्वी पर एक मन्दिर या कलीसिया, परमेश्वर की उपस्थिति का दृश्य चिन्ह है, परन्तु स्वर्ग में मन्दिर की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि हम परमेश्वर की वास्तविक उपस्थिति में होंगे। कोई सृजे हुए प्रकाश के स्रोत—सूर्य, चाँद या तारों—की भी आवश्यकता नहीं होगी। परमेश्वर और मेमना की महिमा का प्रकाश पूरे नगर को ज्योतिर्मय करेगा और कोई रात नहीं होगी क्योंकि परमेश्वर की प्रज्वलित, तेजोमय, उज्जवल महिमा कभी नहीं रुकती है। स्वर्ग परमेश्वर के स्पष्ट, अनावृत तेज से चमकेगा।

हम किसके लिए जीते हैं? उदाहरण के लिए, जोनाथन एडवर्ड्स ने एक ऐसे व्यक्ति का वर्णन किया जो वर्षों से धन संचय करता है जिससे कि वह लम्बी छुट्टी पर जा सके। अपने गन्तव्य तक पहुँचने के लिए, उसको यात्रा करनी पड़ेगी, इसलिए पहली रात को वह सड़क के किनारे के विश्रामालय में रुकता है। परन्तु, अगले दिन अपनी यात्रा में आगे बढ़कर गन्तव्य की ओर जाने के स्थान पर, वह सब कुछ का परित्याग करने और वही विश्रामालय में रुक जाने का निर्णय लेता है। हम अपने जीवन को ठीक ऐसे ही जीते हैं। हम इस संसार के जीवन को दृढ़ता से थामते हैं क्योंकि हम उस महिमा के विषय में आश्वस्त नहीं हैं जिसे पिता ने अपने लोगों के लिए स्वर्ग में स्थापित की है। हमारी सब आशाएँ और हमारे सब आनन्द, जिनकी हम प्रतीक्षा करते हैं—और उससे भी अधिक—उस अद्भुत स्थान में प्रचुरता से पाए जाएँगे। हमारा सबसे महान् क्षण तब होगा जब हम द्वार से होकर निकलेंगे और आँसुओं और दुःख के इस संसार को, इस मृत्यु की घाटी को छोड़ेंगे और मेमने की उपस्थिति में प्रवेश करेंगे।

परिशिष्ट

विश्वास वचन

प्रेरितों का विश्वास वचन *(THE APOSTLES' CREED)*

मैं विश्वास करता हूँ सर्वशक्तिमान परमेश्वर पिता पर, जो स्वर्ग और पृथ्वी का सृष्टिकर्ता है।

और यीशु ख्रीष्ट पर उसका एकलौता पुत्र, हमारा प्रभु; जो पवित्र आत्मा द्वारा गर्भ में आया, कुँवारी मरियम से जन्मा, पुन्तियुस पिलातुस के अधीन दुःख उठाया, क्रूसित हुआ, मारा, और गाड़ा गया; वह अधोलोक में उतरा। तीसरे दिन वह मृतकों में से फिर जी उठा; वह स्वर्ग पर चढ़ गया, और सर्वशक्तिमान पिता परमेश्वर के दाहिने हाथ पर विराजमान है; वहाँ से वह जीवितों और मृतकों का न्याय करने के लिए आएगा।

मैं विश्वास करता हूँ पवित्र आत्मा पर, पवित्र विश्वव्यापी कलीसिया पर, संतों की संगति पर, पापों की क्षमा पर, देह के पुनरुत्थान पर, और अनन्त जीवन पर। आमीन।

नीकिया का विश्वास वचन *(THE NICENE CREED)*

हम विश्वास करते हैं एक परमेश्वर पर,
जो पिता है, जो सर्वशक्तिमान है,
जो स्वर्ग और पृथ्वी का
और समस्त दृश्य एवं अदृश्य वस्तुओं का सृष्टिकर्ता है।

हम विश्वास करते हैं एक प्रभु पर, यीशु ख्रीष्ट परमेश्वर का एकमात्र पुत्र, सनातनकाल से पिता से उत्पन्न, परमेश्वर से परमेश्वर, ज्योति से ज्योति, सच्चे परमेश्वर

से सच्चा परमेश्वर, सनातन से उत्पन्न है, रचा नहीं गया; पिता के साथ एक ही अस्तित्व है। उस के द्वारा सब वस्तुएँ रची गईं। हम मनुष्यों के लिए और हमारे उद्धार के निमित्त वह स्वर्ग से नीचे आया: पवित्र आत्मा के सामर्थ्य से वह कुँवारी मरियम से देहधारी हुआ और मनुष्य बना। हमारे लिए वह पुन्तियुस पिलातुस के शासन में क्रूस पर चढ़ाया गया; उसने मृत्यु का सामना किया और गाड़ा गया। वह तीसरे दिन जी उठा पवित्रशास्त्र के अनुसार; वह स्वर्ग पर चढ़ गया, और पिता की दाहिनी ओर विराजमान है। वह जीवितों और मृतकों का न्याय करने के लिए पुनः महिमा में आएगा, और उसके राज्य का कभी अन्त न होगा।

हम विश्वास करते हैं पवित्र आत्मा पर, जो प्रभु और जीवन का दाता है, जो पिता और पुत्र से अग्रसर है। पिता और पुत्र के साथ उसकी आराधना और स्तुति की जाती है। उसने नबियों के द्वारा बातें की हैं। हम विश्वास करते हैं एक पवित्र विश्वव्यापी और प्रेरितीय कलीसिया पर। हम मानते हैं पापों की क्षमा के लिए एक बपतिस्मा को। हम मृतकों के पुनरुत्थान की और आनेवाले संसार के जीवन की प्रतीक्षा करते हैं। आमीन।

चाल्सीदोन का विश्वास वचन *(THE CREED OF CHALCEDON)*

फिर, पवित्र पिताओं का अनुसरण करते हुए, हम सभी एकमत होकर मनुष्यों को शिक्षा देते हैं कि वे उस एक ही पुत्र का, अर्थात् हमारे प्रभु यीशु ख्रीष्ट का अँगीकार करें, जो परमेश्वरत्व में सिद्ध और मनुष्यत्व में भी सिद्ध है; जो वास्तव में परमेश्वर और वास्तव में मनुष्य है; जिसके पास बुद्धिसम्पन्न आत्मा और शरीर है; जो परमेश्वरत्व में पिता के साथ अभिन्नतत्त्व, और मनुष्यत्व में हमारे साथ एकतत्त्व है; जो सब बातों में हमारी नाईं है फिर भी निष्पाप है; जो परमेश्वरत्व में सब युगों से पहले पिता का एकलौता है, परन्तु मनुष्यत्व में इन अन्तिम दिनों में, हमारे लिए और हमारे उद्धार के निमित्त, परमेश्वर की माता, कुँवारी मरियम से जन्मा; उस एक ही ख्रीष्ट, पुत्र, प्रभु, एकलौते, के विषय में स्वीकार किया जाना चाहिए कि उसमें दो स्वभाव हैं, बिना भ्रम के, बिना परिवर्तन के, बिना विभाजन के, बिना अलगाव के; इन दो स्वभावों की भिन्नता को किसी भी रीति से इनकी संयुक्ति द्वारा हटाया नहीं जाता है, परन्तु प्रत्येक स्वभाव के गुण बने रहते हैं,

और एक ही व्यक्ति और एक ही निर्वाह में, बिना दो व्यक्तियों में खण्डित या विभाजित हुए, परन्तु एक ही पुत्र, और एकलौता, परमेश्वर का वचन, प्रभु यीशु ख्रीष्ट है; जैसा कि आरम्भ से नबियों ने उसके विषय में घोषणा की है, और स्वयं प्रभु यीशु ख्रीष्ट ने हमें शिक्षा दी है, और पवित्र पिताओं के विश्वास वचन ने हमें सौंपा है।

विषय सूचकाँक

Aaron, हारून, 116
Abel, हाबिल, 263–64
Abraham, अब्राहम, 33, 68, 79, 115–17, 121, 130–31, 157
absurdity, असंगति-प्रदर्शन, 197–98, 256, 300–301
accommodation theory, समायोजन सिद्धान्त, 136
activism, सक्रियतावाद, 250
Adam, आदम, 104–5, 108–9, 113–15, 118–19, 123–24, 161, 296, 300
Adonai, एडोनाय, 141–42, 306
adoption, लेपालकपन, 240, 242–46
adoration, उपासना, 276
adultery, व्यभिचार, 105, 203
advocate, अधिवक्ता/ एडवोकेट, 184–85
affections, स्नेहों, 102, 103, 328
AIDS, एड्स, 218
alcohol, मदिरा, 203
alienation, अलगाव, 104–6
already and not yet, हो चुका किन्तु अभी नहीं, 306–7
ambiguity, अस्पष्टता, 110
amillennialism, सहस्त्रवर्षीयहीनवाद, 313
Amos, आमोस, 22
analogia entis, प्राणी की समरूपता, 101
analogical speech, सादृश्यमूलक वाणी, 51
analogy of being, प्राणी होने की सादृश्यता, 102–3
analytical justification, विश्लेषणात्मक धर्मीकरण, 233, 236
Ancient of Days, अनादिकाल का प्राचीन, 131, 142
angels, स्वर्गदूत, 93–98
annihilationism, विनाशवाद, 330
anomalies, विसंगतियाँ, 9
Anselm of Canterbury, कैन्टरबरी का ऐन्सेल्म, 154, 156
anthropology, नृविज्ञान, 3, 4
anthropomorphism, मानवीकरण, 48–49
antichrist, ख्रीष्टविरोधी, 107, 313
antinomianism, व्यवस्थाविरोधवाद, 203, 237–38, 250–51
anxiety, चिन्ता, 79
Apocrypha, अपोक्रिफा, 39
apostasy, धर्मत्याग, 254–55, 312
Apostles, प्रेरित, 21–23, 37
and the church, और कलीसिया, 270–72
succession of, का उत्तराधिकार, 42
testimony of, की साक्षी, 131
Apostles' Creed, प्रेरितों का विश्वास वचन, 144, 148, 153, 337
archaeology, पुरातत्त्व विज्ञान, 9
Arianism, एरियसवाद, 133
Aristotle, अरस्तू, 234, 290–91
Arminianism, अरमिनियसवाद, 226, 231
ascension, स्वर्गारोहण, 147–48
aseity, स्वयंभूति, 62–64, 79–81
assensus, *असेन्सस*, 238
assurance, आश्वासन, 76
atheism, नास्तिकतावाद, 87
atomism, परमाणुवाद, 10, 17
atonement, प्रायश्चित्त 154–59
extent of, का विस्तार, 166–69
as substitution, प्रतिस्थापनीय रूप में, 160–65
Augustine, ऑगस्टीन, 11, 14–15, 30, 109, 112, 117, 222, 261–62, 266
authenticity, प्रमाणिकता, 37, 209–10
authority, अधिकार
of angels, स्वर्गदूतों का, 95–96
of Apostles, प्रेरितों का, 270–72
of Scripture, पवित्रशास्त्र का, 25–29, 40–44
authorship, लेखकत्व, 26–27

Balaam, बिलाम, 176
baptism, बपतिस्मा, 234, 273, 279–80, 282
of Holy Spirit, पवित्र आत्मा का, 188–93

of Jesus Christ, यीशु ख्रीष्ट का, 286–87
of John the Baptist, यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले का, 284–86
Barth, Karl, कार्ल बार्थ, 29, 101, 102, 160, 315
beatific vision, आनन्दप्रद दर्शन, 332–33
being, प्राणी, 58–59, 60
Berkhouwer, G.C., जी. सी. बर्खावर, 215
biblical criticism, बाइबलीय आलोचना, 12–13
biblical theology, बाइबलीय ईश्वरविज्ञान, 10–11
big bang theory, महाविस्फोट सिद्धान्त, 87
biology, जीवविज्ञान, 4
blessing, आशीष, 164, 332
body देह
of Christ, ख्रीष्ट की, 197
church as, के रूप में कलीसिया, 265
resurrection of, का पुनरुत्थान, 302–4
bride price, वधू मूल्य, 155
Bright, John, जॉन ब्राइट, 305
Bultmann, Rudolph, रूडॉल्फ बुल्टमान, 29, 301

Caiaphas, काइफा, 29
Cain, कैन, 263–64
calling, बुलाहट, 74, 230
Calvinism, कैल्विनवाद, 166, 226
Calvin, John, जॉन कैल्विन, 11, 19, 28, 48, 73, 221–22, 232, 277, 288, 291
Camus, Albert, अल्बैर कामू, 321
canonicity, ग्रन्थसंग्रहण, 35–39, 42–43
carnal Christian, शारीरिक मसीही, 248
categorical imperative, निर्धारक अनिवार्यता, 322
catholicity, विश्वव्यापकता, 269–70
causality, कार्य-कारण, 63
chance, संयोग, 80, 89–90
chaos, अस्तव्यस्तता, 174
charisma, *ख़रिस्मा*, 175
charismatic movement, चमत्कारी आन्दोलन, 188–90
Christianity, मसीहियत, 127
Christology, ख्रीष्टविज्ञान, 4, 127
Christus victor, *क्रिस्टस विक्टर*, 156
church कलीसिया
as Apostolic, का प्रेरितीय होना, 270–72
authority of, का अधिकार, 40, 43
as body of Christ, ख्रीष्ट की देह के रूप में, 196–98
as catholic, विश्वव्यापी, 269–70
as holy, पवित्र, 267–68
marks of, के चिन्ह, 272–73
mission of, का मिशन/उद्देश्य, 307
as one, का एक होना, 266–67
and state, और राज्य, 152
visibility of, की दृश्यता, 262–63
worship in, में आराधना, 274–78
circumcision, ख़तना, 256, 285–86
civic virtue, नागरिक सद्गुण, 110, 111
civil magistrate, सरकार, 139
Clement of Rome, रोम का क्लेमेन्ट, 195
comfort, सान्त्वना, 76, 81, 83
Comforter, सान्त्वनादाता, 182–84
common grace, सामान्य अनुग्रह, 329
communicable attributes, संचारीय गुण, 66–70
communion of saints, सन्तों की सहभागिता, 246
comparative religion, तुलनात्मक धर्म, 242–43
Comte, Auguste, ऑगस्टे कॉम्टे, 320
concurrence, समवर्तियता, 81–83
condescension, स्तर से उतरना, 48
confirmation, दृढ़ीकरण, 280
confusion, भ्रम, 110
Congar, Yves, ईव कॉन्गार, 263
congruous merit, उपयुक्त योग्यता, 234
conscience, विवेक, 15
consistency, समनुरूपता 6–7
consubstantiation, सहसत्त्ववाद, 291
contingency, अनिश्चयता, 90
contradiction, विरोधाभास, 57–58
controversy, विवाद, 11, 54, 133
conversion, हृदय-परिवर्तन, 173, 191, 193, 239–41, 248, 252
cooperation, सहकारिता, 250
Cornelius, कुरनेलियुस, 191–92
corruption, भ्रष्टता, 267, 273
cosmological argument, विश्व-कारण-युक्ति, 63
cosmos, विश्व-व्यवस्था, 174
Council of Chalcedon चाल्सीदोन की महासभा, (451), 132, 133–37
Council of Nicea नीकिया की महासभा, (325), 132, 133, 266, 269
Council of Trent, ट्रेन्ट की महासभा, 40–41

covenant, वाचा, 120–24, 163–64, 285
covenant of redemption, छुटकारे की वाचा, 122–23
creation, सृष्टि, 16, 79–80
as *ex nihilo*, *एक्स निहिलो* के रूप में, 87–91
of man, मनुष्य की, 99–103
creativity, रचनात्मकता, 91
culture, संस्कृति, 313–14
curse, शाप, 164

David, दाऊद, 152–53, 180
Day of Atonement, प्रायश्चित्त का दिन, 151, 161
death, मृत्यु, 162, 179–80, 227–28, 295–98
debt, ऋण, 157–58
decretive will, आज्ञप्तिपरक इच्छा, 72–74
demons, दुष्टात्माएँ, 93–98, 207, 238
Descartes, René, रेने डेकार्ट, 5–6
destiny, नियति, 221
Deus absconditus, ड्यूस अब्सकॉन्डिटस, 71–72
Deus pro nobis, डियुस प्रो नोबिस, 78
Deus revelatus, ड्यूस रेवलेटस, 71–72
dictation theory, श्रुतिलेख सिद्धान्त, 28
Didache, डिडखे, 36
dignity, गरिमा, 99, 100, 105
disciple, शिष्य, 270–71
discipline, अनुशासन, 263, 273
dispensationalism, युगवाद, 311–12
diversity, विभिन्नता, 196–97, 204
Docetism, डोसेटिस्टवाद, 133–34
doctrine, सिद्धान्त, 12
Dodd, C.H., सी. एच. डॉड, 317
double predestination, दोहरा पूर्वनिर्धारण, 223, 228–30
dreams, स्वप्न, 21
dualism, द्वैतवाद, 97
dual-source theory, दोहरे-स्रोत सिद्धान्त, 41
dynamis, *डायनामिस*, 175

ecclesiology, कलीसिया विज्ञान, 261
ecumenical movement, कलीसिया-एकतावर्धक आन्दोलन, 266
edification, आत्मिक निर्माण, 204
Edwards, Jonathan, जोनाथन एडवर्ड्स, 11, 108, 117, 333, 335
effectual calling, प्रभावशाली बुलाहट, 226–31
efficacy, प्रभावोत्पादकता, 282, 288
Einstein, Albert, ऐल्बर्ट आइंस्टीन, 9
election, चुनाव, 168–69, 222, 253
Elijah, एलिय्याह, 23, 208
Elisha, एलीशा, 96
empiricism, इन्द्रियानुभववाद, 6
Enlightenment, ज्ञानोदय, 89
envy, ईर्ष्या, 105
epistemology, ज्ञानमीमाँसा, 20–21
equivocal speech, द्वयार्थक वाणी, 50–51
Esau, एसाव, 224, 255
eschatology, युगान्तविज्ञान, 4, 295, 309
essence, सारतत्त्व, 58–59
estrangement, सम्बन्ध-विच्छेदन, 104
eternality, अनन्तता, 52, 56, 64, 66
eternal punishment, अनन्त दण्ड, 326–30
ethics, नैतिकता, 322
Eutyches, यूतुखुस, 133–34
evangelicalism, सुसमाचारवाद, 167
evangelism, सुसमाचार-प्रचार, 218
Eve, हव्वा, 104–5, 108–9, 114, 123–24, 296
evil, बुराई, 106–7, 108
evolution, उद्विकास, 99
exaltation, महिमा/ बड़ाई, 146, 147–48
excommunication, बहिष्करण, 263
existence, अस्तित्व, 59–60
existentialism, अस्तित्ववाद, 5, 320–21
ex nihilo, *एक्स निहिलो,* 91–92
ex nihilo nihil fit, *एक्स निहिलो निहिल फिट,* 88–91
expiation, कोपसन्तुष्टि, 162–63
expiration, एक्सपिरेशन/ श्वास बाहर निकालना, 27
extraordinary, असाधारण, 207–8, 210
extreme unction, अन्तिम विलेपन, 281
Ezekiel, यहेजकेल, 22, 115

faith विश्वास
and inerrancy, और त्रुटिहीनता, 31
and regeneration, और पुनरुज्जीवन, 229
as saving, बचाने वाला, 237–41
false prophets, झूठे नबी, 22
federalism, संघवाद, 117–19
fiducia, *फिडुश्या*, 238–39
final judgment, अन्तिम न्याय, 320–25

finitude, सीमितता, 48
firstfruits, प्रथम फल, 299–300
First Letter of Clement, क्लेमेन्ट की पहली पत्री, 36, 38
flesh, शरीर, 202–3
foreknowledge, पूर्वज्ञान, 78, 230
fortune tellers, ज्योतिषी, 73
fruits फल
of conversion, हृदय-परिवर्तन का, 239–41
of the Spirit, आत्मा का, 201–6
fulfillment, परिपूर्णता, 23, 132

Gabriel, जिब्राईल, 96, 174
Gehenna, गेहन्ना, 146
gender, लिंग, 102
general revelation, सामान्य प्रकाशन, 14–19
Gentiles, ग़ैरयहूदियों, 192–93, 315, 319
gentleness, नम्रता, 205
Gerstner, John, जॉन गर्स्टनर, 327–28
Gideon, गिदोन, 21, 175
gifts, वरदान, 74, 194–200
glorification, महिमान्वीकरण, 181, 230
glory, महिमा, 145, 317, 335
glossolalia, ग्लोसोलालिया, देखें अन्य भाषाओं में बात करना,
Gnosticism, गूढ़ज्ञानवाद, 36, 271
God परमेश्वर
attributes of, के गुण, 61–70
authority of, का अधिकार, 26, 43
character of, का चरित्र, 3–4, 6–7
command of, की आज्ञा, 91–92
as Father, पिता के रूप में, 242–43
image of, का स्वरूप, 100–101, 112
knowledge of, का ज्ञान, 47–51, 223
oneness of, का एक होना, 52–57
presence of, की उपस्थिति, 335
separation from, से अलगाव, 329
sovereignty of, की सम्प्रभुता, 76–83
will of, की इच्छा, 71–75
golden chain, सुनहरी लड़ी, 230–31
goodness, भलाई, 67–68
good Samaritan, दयालु सामरी, 217, 218
gospel, सुसमाचार, 232–33, 273
Gospels, सुसमाचार की पुस्तकें, 128–31
governmental theory, शासकीय मत, 156
grace, अनुग्रह, 68–69, 123–24
as common, सामान्य अनुग्रह, 216–18
definition of, की परिभाषा, 216
Great Commission, महान् आदेश, 314
grief, शोक, 334
Guest, John, जॉन गेस्ट, 162
guilt, दोषबोध, 118, 163, 235, 326
hamartiology, पापविज्ञान, 4
Harnack, Adolf von, अडॉल्फ वॉन हार्नाक, 243
hatred, घृणा, 105
heaven, स्वर्ग, 331–35
hell, नरक, 146, 167, 326–30
hendiadys, हेंडायाडिस, 101
heresy, विधर्मता, 37, 94, 133–34, 137, 250–51, 271, 314
hierarchy, पदानुक्रम, 95–96
higher criticism, उच्चतर आलोचना, 30
historical theology, ऐतिहासिक ईश्वरविज्ञान, 11
Hitler, Adolf, एडोल्फ़ हिटलर, 184, 328
holiness, पवित्रता, 56, 66–67, 328
holy orders, पुरोहिताभिषेक, 280–81
Holy Spirit, पवित्र आत्मा, 27, 67, 141
baptism of, का बपतिस्मा, 188–93
calling of, की बुलाहट, 231
and the church, और कलीसिया, 268
divinity of, की ईश्वरीयता, 56
fruit of, का फल, 201–6
gifts of, के वरदान, 194–200
in the New Testament, नए नियम में, 178–81
in the Old Testament, पुराने नियम में, 173–77
and original sin, और मूल पाप, 111
regeneration of, का पुनरुज्जीवन, 122
honor, आदर, 275
hope, आशा, 296–98
Humani Generis (1950), *हुमानी जेनेरिस,* 41
humanism, मानववाद, 99, 320
humiliation, अपमान, 144–47
humility, दीनता, 183–84
hymns, भजन, 278

idolatry, मूर्तिपूजा, 55–56, 277

imago Dei, *इमागो डेय/ परमेश्वर का स्वरूप*, 100–101, 112
immediate revelation, माध्यम रहित प्रकाशन, 18–19
immortality, अमरता, 303
immutability, अपरिवर्तनीयता, 50, 62, 64, 134
impenitence, पश्चात्ताप न करना, 263
imputation, अभ्यारोपण, 234–35
incarnation, देहधारण, 23–24, 144–47
incense, गन्धरस, 278
incommunicable attributes, असंचारीय गुण, 61–65
incomprehensibility, अबोध्यता, 47–48
independence, स्वतन्त्रता, 62
individualism, व्यक्तिवाद, 265
inerrancy, त्रुटिहीनता, 30–34
infallibility, अचूकता, 30–34
infinity, असीमता, 66
infusion, अन्तर्वाह, 234–35, 280
injustice, अन्याय, 68, 225
innocence, निर्दोष, 327
inspiration, प्रेरणा, 27–29, 139, 181
instrumental cause, साधन कारण, 233–34
intermediate state, मध्यवर्ती अवस्था, 295–98
invisible church, अदृश्य कलीसिया, 262–63
Irenaeus, इरेनियस, 30, 271
Isaac, इसहाक, 79, 121
Isaiah, यशायाह, 22
Israel, इस्राएल, 311, 313, 315, 319

Jacob, याकूब, 82, 121, 224
Jeremiah, यिर्मयाह, 22, 150
Jeremias, Joachim, जोकीम जेरेमियस, 243
Jesus Christ यीशु ख्रीष्ट
  and angels, और स्वर्गदूत, 94–95
  baptism of, का बपतिस्मा, 286–87
  in the Gospels, सुसमाचार में, 128–31
  image of, का स्वरूप, 103
  names of, के नाम, 138–42
  nature of, का स्वभाव, 133–37
  offices of, के पद, 149–53, 175
  in the Old Testament, पुराने नियम में, 132
  return of, का आगमन, 315–19
  on Scripture, पर पवित्रशास्त्र, 28–29, 31–34
  as second Adam, दूसरे आदम के रूप में, 124, 160–61, 300
  sonship of, का पुत्रत्व, 243–44
  states of, की अवस्था, 143–48
  union with, के साथ मिलन, 242–46
Jesus Seminar, जीज़स सेमिनार, 133
Joel, योएल, 190–91
John (Apostle), यूहन्ना (प्रेरित), 127–28, 242
John the Baptist, यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला, 129, 306–7
Joseph, यूसुफ, 81–82
Joseph of Arimathea, अरमतियाह का यूसुफ, 146
joy, आनन्द, 205–6, 332–33
Judaism, यहूदी धर्म, 32, 52, 192, 319
Judaizers, यहूदीवादी, 255–56, 286
Judas Iscariot, यहूदा, 83, 257
judgment, न्याय, 320–25
Julius Caesar, जूलियस सीज़र, 78
justice, न्याय, 68–70, 124, 157, 216, 224–25, 322
justification, धर्मीकरण, 230, 232–36

Kant, Immanuel, इमानुएल कान्ट, 322–23
Kempis, Thomas à, थॉमस ए केम्पिस, 249
kindness, कृपा/ नम्रता, 183–84, 206
kingdom of God, परमेश्वर का राज्य, 305–8, 324–25
kingship, राजपद/ राजा होना, 152–53
knowledge, ज्ञान, 8, 17, 20–21
  of God, परमेश्वर का, 47–51
  vs. wisdom, बनाम बुद्धि, 70

labor, कार्य/परिश्रम, 105–6
Lamont, Robert J., रॉबर्ट जे. लामॉन्ट, 247
last rites, अन्तिम संस्कार, 281
law, व्यवस्था, 75
Lazarus, लाज़र, 227
legalism, व्यवस्थावाद, 250
Levi, लेवी, 116–17
liberalism, उदारवाद, 217–18, 272
life, जीवन, 178–80
limited atonement, सीमित प्रायश्चित्त, 166, 169
limited inerrancy, सीमित त्रुटिहीनता, 31
literalism, अभिधेयार्थवाद, 310–11

Locke, John, जॉन लॉक, 5–6
logos, *लोगोस/वचन*, 4, 6, 54–55, 56
lord, प्रभु, 139–42
Lord's Supper, प्रभु भोज, 273, 281, 282, 289–92
love, प्रेम, 67, 204
  of benevolence, परोपकार का, 219
  of complacency, आत्मसन्तोष का, 219
Lucifer. *see* Satan, लूसिफर *देखिए* शैतान
Luke (evangelist), लूका (सुसमाचार प्रचारक), 37, 129
Lutheranism, लूथरवाद, 156
Luther, Martin, मार्टिन लूथर, 11, 25–26, 71–72, 110, 197, 222, 232, 233, 235, 281, 286, 291

magicians, जादूगर, 211
Marcion, मार्सियन, 37
Mark (evangelist), मरकुस (सुसमाचार प्रचारक), 37, 129
marriage, विवाह, 74, 121, 155, 280
Marx, Karl, कार्ल मार्क्स, 105
Mary (mother of Jesus), मरियम (यीशु की माता), 41–42, 174
Mary Magdalene, मरियम मगदलीनी, 302
Matthew (Apostle), मत्ती (प्रेरित), 128–29
maturity, परिपक्वता, 13, 181, 201
mediate revelation, माध्यम द्वारा प्रकाशन, 18–19
mediators, मध्यस्थ, 149
Melchizedek, मलिकिसिदक, 115–17, 144, 151
membership, सदस्यता, 262–63
mercy, दया, 68–69, 224–25
merit, मूल्य/ योग्यता, 216, 234
messengers, सन्देशवाहक, 96–97
Messiah, मसीहा, 138–39, 284–85
Micah, मीका, 70
millennium, सहस्राब्दी, 309–14
Mill, John Stuart, जॉन स्टुअर्ट मिल, 63
ministry, सेवकाई, 95–96
miracles, चमत्कार, 23, 194, 207–11
mistakes, त्रुटियाँ, 110–11
monergism, ईशैककृतिवाद, 226–29
Monophysites, मॉनोफिसाइट, 133–34
monotheism, एकेश्वरवाद, 52, 54
moral debt, नैतिक ऋण, 157–58
moral inability, नैतिक अक्षमता, 109–12
morality, नैतिकता, 102
Mormonism, मॉर्मनवाद, 200
Moses, मूसा, 21, 23, 33, 114, 120, 121, 175–76, 190, 208, 209, 211
motivation, प्रेरणा, 110
murder, हत्या, 105
music, संगीत, 278
mutation, परिवर्तन, 90
mystery, रहस्य, 136
mythology, मिथक, 93–94, 114–15

natural theology, प्राकृतिक ईश्वरविज्ञान, 16–17
nature, स्वभाव/प्रकृति, 80
negation, नकारने के द्वारा, 107, 134
neoorthodoxy, नवशास्त्रसम्मतवाद, 29, 101
neo-Pentecostalism, नवपिन्तेकुस्तवाद, 189
Nestorianism, नेस्टोरियनवाद, 134, 136
neutrality, तटस्थता, 108–9
New Age, नया युग, 243–44
new covenant, नई वाचा, 285–86
Nicene Creed, नीकिया का विश्वास वचन, 266, 269, 337–38
Nicodemus, नीकुदेमुस, 180, 208
Nietzsche, Friedrich, फ्रेडरिक नीत्शे, 183–84, 185, 320
nihilism, शून्यवाद, 321
Noah, नूह, 121, 285
nonjustice, ग़ैर-न्याय, 68, 224
norm, मानक, 35
nothingness, शून्यता, 89
notitia, *नोटिश्या*, 238
novelty, नयापन, 10

Old Testament, पुराना नियम, 132
  Holy Spirit in, में पवित्र आत्मा, 173–77
  worship in, में आराधना, 277–78
Olivet Discourse, जैतून उपदेश, 317–18
omnipotence, सर्वशक्ति, 49, 50, 56, 62
omnipresence, सर्वोपस्थिति, 66
omniscience, सर्वज्ञान, 33, 50, 56, 66, 136
optimism, आशावाद, 320–21
original sin, मूल पाप, 108–12, 113

Ouija boards, वीजी बोर्ड/ प्रश्नफलक बोर्ड, 73, 74

parables, दृष्टान्त, 308
Paraclete, पैराक्लीट/ अधिवक्ता, 182–87
paradigm shift, प्रतिमान विस्थापन, 8–9
paradox, असत्याभास, 57–58
particularism, विशिष्टमुक्तिवाद, 166–67
Passover, फसह का पर्व, 289–90
patience, धीरज, 183–84, 206
Paul पौलुस
on the ascension, स्वर्गारोहण के विषय में, 147–48
on the atonement, प्रायश्चित्त के विषय में, 157
authority of, का अधिकार, 22–23, 27, 37
on blessing, आशीष के विषय में, 164
on the cross, क्रूस के विषय में, 29
on grace, अनुग्रह के विषय में, 216
and Hebrews, और इब्रानियों, 38–39
on imitating God, परमेश्वर के अनुसरण के विषय में, 66, 67
on knowledge of God, परमेश्वर के ज्ञान के विषय में, 17–18
on novelty, नवीनता के विषय में, 10
on providence, ईश्वरीय-प्रावधान के विषय में, 77–78
on the resurrection, पुनरुत्थान के विषय में, 300–304
on Scripture, पवित्रशास्त्र के विषय में, 12
on sin, पाप के विषय में, 106, 113–14
on spiritual death, आत्मिक मृत्यु के विषय में, 179–80
on spiritual gifts, आत्मिक वरदान के विषय में, 195–96, 197–98
unity of, की एकता, 10–11
peace, शान्ति, 240
pecuniary debt, आर्थिक ऋण, 157–58
penance, कायाक्लेश, 234, 280
Pentecost पिन्तेकुस्त, 177, 187, 189–91, 193, 194
Pentecostalism, पिन्तेकुस्तवाद, 188–90
perfectionism, सिद्धतावाद, 188, 248–49
persecution, सताव, 141, 182, 185, 312
perseverance of the saints, सन्तों का डटे रहना, 252–57
person, व्यक्ति, 58–59
personality, व्यक्तित्व, 277
pessimism, निराशावाद, 99, 320–21
Peter (Apostle), पतरस (प्रेरित), 27, 37, 38, 42, 192, 257
Philip, फिलिप्पुस, 24
philosophy, दर्शनशास्त्र, 4, 5–6, 57–58, 59–60, 88–89, 321–22
physics, भौतिक विज्ञान, 8–9
Pius XII (pope), पायस XII (पोप), 41
Plato, प्लेटो, 59, 117, 302
pluralism, अनेकवाद, 5
pneumatology, आत्माविज्ञान, 4, 178, 202
polytheism, बहुईश्वरवाद, 52, 53, 54
Pontius Pilate, पुन्तियुस पिलातुस, 29, 130, 146
pope, पोप, 42
postmillennialism, पश्चसहस्त्रवर्षीयवाद, 313–14
power, सामर्थ्य, 49, 175–77, 208
praise, स्तुति, 65, 275–76
prayer, प्रार्थना, 199
preceptive will, आदेशात्मक इच्छा, 72–75
predestination, पूर्वनिर्धारण, 77, 220–23, 230–31
pre-existence, पूर्व-अस्तित्व, 117
preincarnation, देहधारणपूर्व, 143–44
premillennialism, पूर्वसहस्त्रवर्षीयवाद, 311–13
prescience, पूर्वबोध, 223–24
preterism, अतीतवाद, 314, 318–19
pride, घमण्ड, 203
priesthood, याजकपन, 116–17, 148, 150–51
priesthood of all believers, सभी विश्वासियों का याजकपन, 196–97
privation, अभाव, 107
Procrustes, प्रोक्रस्टीस, 6
profession of faith, विश्वास का अँगीकार, 248, 252
prolegomena, प्रोलेगोमेना/ प्रस्तावना, 44
prophecy, नबूवत, 198–99
prophetic literature, नबूवतीय शैली का साहित्य, 310–11
prophets, नबी, 21–23, 149–50
propitiation, कोपसन्तुष्टि, 162–63
proselyte baptism, धर्मान्तरित बपतिस्मा, 285
Protestants, प्रोटेस्टेन्ट, 30, 39, 41
on image of God, परमेश्वर के स्वरूप के विषय

में, 101
on justification, धर्मीकरण के विषय में, 233, 235
on sacraments, विधियों/ संस्कारों के विषय में, 281–82
providence, ईश्वरीय-प्रावधान, 76–83, 168, 216
punishment, दण्ड, 115, 326–30
purgatory, पापशोधन-स्थल, 327
purpose, उद्देश्य, 5

quietism, नैष्कर्म्यवाद, 250

ransom theory, फिरौती का मत, 155
rapture, मेघारोहण, 312
rationalism, तर्कबुद्धिवाद, 5
rationality, तर्कसंगतता, 102
realism, यथार्थवाद, 115–17
realized eschatology, सम्पादित युगान्तविज्ञान, 317
recognition, पहचाना, 302
reconciliation, मेल-मिलाप, 104, 112, 156, 241
redemption, छुटकारा, 20, 122, 123, 154–55
regeneration, पुनरुज्जीवन, 67, 122, 179, 228–30, 287
relationship, सम्बन्ध, 102
relativism, सापेक्षवाद, 5
religion, धर्म, 3
repentance, पश्चात्ताप, 239–40, 255
representation, प्रतिनिधित्व, 118
reprobation, परित्यक्ति, 223
reproof, ताड़ना, 12–13
responsibility, उत्तरदायित्व, 78–79, 102–3
resurrection, पुनरुत्थान, 147, 211, 297, 299–304
revelation, प्रकाशन, 6–7, 75
as general, सामान्य, 14–19
as special, विशेष, 20–24
reverence, आदर, 276
reward, पुरस्कार, 324, 329
righteousness, धार्मिकता, 68–70, 157, 236
Roman Catholics, रोमन कैथोलिक, 39, 40–42, 210
on image of God, परमेश्वर के विषय में, 100
on justification, धर्मीकरण के विषय में, 233–34
on sacraments, विधियों/ संस्कारों के विषय में, 279–81, 290–91
Russell, Bertrand, बर्ट्रेंड रसल, 63

Sabbath, सब्त, 56, 131
sacerdotalism, पुरोहितवाद, 281
sacraments, विधियाँ/ संस्कार, 273, 279–83
sacrifices, बलिदान, 151, 161–62, 275
Sagan, Carl, कार्ल सेगन, 174
salvation, उद्धार, 215
losing of, का खोना, 252–57
Samson, शिमशोन, 175
sanctification, पवित्रीकरण, 67, 181, 188, 247–51
Sartre, Jean-Paul, ज्यां पाल सार्त्र, 99, 320–21
sarx, *सार्क्स*, 202–3
Satan, शैतान, 93–98, 168, 239
and baptism, और बपतिस्मा, 286
and betrayal, और विश्वासघात, 257
and millennium, और सहस्राब्दी, 309–10, 312–13
and miracles, और आश्चर्यकर्म, 207, 211
and ransom theory, और फिरौती मत, 155
satisfaction theory, सन्तुष्टि मत, 156–59
Saul, शाऊल, 176
saving faith, बचाने वाला विश्वास, 237–41
scapegoat, बलि का बकरा, 161, 162
Schaeffer, Francis, फ्रान्सिस शेफर, 218
scholasticism, विद्यानुरागवाद, 30
Schweitzer, Albert, ऐल्बर्ट श्वाइट्ज़र, 317
science, and theology, विज्ञान और ईश्वरविज्ञान, 8–10
Scripture, पवित्रशास्त्र
authority of, का अधिकार, 25–26, 40–44
as incarnate, देहधारी रूप में, 23–24
infallibility and inerrancy of, की अचूकता एंव त्रुटिहीनता, 30–34
inspiration of, की प्रेरणा, 27–29
unity of, की एकता, 6, 10–11
sea, समुद्र, 334
seals, मुहर, 282–83
secularism, धर्मनिरपेक्षता, 87
seekers, खोजी, 112
self-creation, स्व-निर्माण, 64, 88–90

self-esteem, आत्मसम्मान, 105
semi-Pelagianism, अर्ध-पेलेजियसवाद, 226, 228, 253
sensitivity, संवेदनशीलता, 205
sensus divinitatis, *सेन्सस डिविनिटाटिस*, 19
separation, अलगाव, 329
Sermon on the Mount, पहाड़ी उपदेश, 323–24, 332
servants, सेवक, 140
Shema, *शेमा*, 52–53
Shepherd of Hermas, हेरमास का चरवाहा, 36
signs, चिन्ह, 208, 209, 211, 282–83
Simeon, शमौन, 129
simplicity, सरलता, 62
simul iustis et peccator, *सिमुल इयुस्टिस एट पेक्केटोर*, 233
sin, पाप, 13, 69, 81, 103
  and death, और मृत्यु, 295–96
  nature of, का स्वभाव, 104–7
  as original, मूल रूप में, 108–12, 113
  removal of, का हटाया जाना, 161–62
  transmission of, का प्रसारण, 113–19
slander, निन्दा, 105
slavery, दासत्व, 155
sociology, समाजशास्त्र, 3
sola fide, *सोला फिडे*, 232
sola Scriptura, *सोला स्क्रिप्चुरा*, 26, 42
solipsism, अहंमात्रवाद, 88
Son of Man, मनुष्य का पुत्र, 131, 142
sorrow, दुःख, 334
soteriology, उद्धारविज्ञान, 215
soul sleep, प्राण निद्रा, 298
special revelation, विशेष प्रकाशन, 16, 20–24
speech, वाणी, 50–51
spiritual death, आत्मिक मृत्यु, 179–80. 227–28, 300
spirituality, आत्मिकता, 201–2
spontaneous generation, स्वतः उत्पत्ति, 89
stewardship, भण्डारीपन, 217
strength, सामर्थ्य, 185, 205
subsistence, निर्वाह, 59–60
substance, सत्त्व, 58–59
suffering, दुःख उठाना, 81, 287, 297
sufficiency, पर्याप्तता,166–67
sui generis, *सुई जेनेरिस*/ अद्वितीय, 136
supernaturalism, अलौकिकवाद, 218, 301
symbolism, चित्रात्मकता, 310, 329
synergism, सहक्रियावाद, 226, 229, 250
systematic theology, विधिवत् ईश्वरविज्ञान, 5–7, 11–12, 44, 47
systems, प्रणाली, 4–5
tabernacle, मिलापवाला तम्बू, 278
talent, योग्यता, 74
tarot cards, टैरो कार्ड, 73
temptation, परीक्षा, 97, 124
Tertullian, टर्टूलियन, 30, 59
theft, चोरी, 105
theology ईश्वरविज्ञान
  assumptions of, की पूर्वधारणाएँ, 6–7
  definition of, की परिभाषा, 4–5
  and science, और विज्ञान, 8–10
  sources of, के स्रोत, 10–12
  value of, का महत्व, 12–13
theophany, ईश्वरदर्शन, 21, 144
Thomas (Apostle), थोमा (प्रेरित), 55–56, 130
Thomas Aquinas, थॉमस अक्वाइनस, 11–12, 14–15, 136, 226–27, 279
tithe, दसवाँस, 116–17
tongues, speaking in, अन्य भाषाओं में बात करना, 188, 189, 194–95, 197–98, 199–200
tradition, परम्परा, 40–41
transcendence, पारलौकिकता, 66, 90–91, 101
transfiguration, रूपान्तरण, 145–46, 317
transgression, उल्लंघन, 106
transmission, प्रसारण, 113–19
transubstantiation, सत्त्वपरिवर्तन, 290–91
tribulation, महाक्लेश, 312
Trinity, त्रिएकता, 54–56, 57–60, 122–23, 173, 179
tritheism, त्रिदेववाद, 54
trustworthiness, विश्वसनीयता, 318
truth, सत्य, 3–4, 5, 15, 21, 34
TULIP, ट्यूलिप, 166, 169
unconditional election, अप्रतिबन्धित चुनाव, 169
ungodliness, भक्तिहीनता, 107
union with Christ, ख्रीष्ट के साथ मिलन, 242–46
uniqueness, अद्वितीयता, 52–53
unity, एकता, 6, 52–53, 266–67

universalism, सर्वमुक्तिवाद, 166–67
univocal speech, एकार्थक वाणी, 50
unrighteousness, अधार्मिकता, 107
Upper Room Discourse, ऊपरी कक्ष का उपदेश, 186, 331–32

verbum Dei, *वरबम डेय*, 26
via affirmationis, *वाया अफर्मेशनिस*, 50
via eminentiae, *वाया एमिनेनशिये*, 50
via negationis, *वाया नेगेशनिस*, 49–50
visible church, दृश्य कलीसिया, 262–63
visio Dei, परमेश्वर का दर्शन, 332
vocation, आजीविका, 105–6
volition, इच्छाशक्ति, 102, 103
vox Dei, *वॉक्स डेय*, 26

Warfield, B.B., बी. बी. वॉरफील्ड, 27
Westminster Shorter Catechism, वेस्टमिंस्टर की छोटी प्रश्नोत्तरी, 106
wisdom, बुद्धि, 70
wonders, चमत्कार, 208, 211
works, कार्य, 237, 247–51, 279–80, 324
worldview, विश्वदृष्टिकोण, 77, 87
worship, आराधना, 65, 264, 274–78
wrath, प्रकोप, 124

Yahweh, यहोवा, 141

वचन सूचकाँक

उत्पत्ति
1. 174
1:1. 87
1:1–2. 174
1:2. . . . . 122, 174
1:26. . . . . .100, 101
1:26–28. 100
2:7. 178
2:16–17. 296
3. 114
3:15. 156
4. 264
6:5. 111
14. 115
14:18–20. 144
18:25. . . . . .68, 157
22:7. 79
22:8. 79
45:4–8. 82
50:19–20. 82

निर्गमन
2:20. 22
3:14. 21
4:1. 209
20:3. . . . . .53, 72
28:2. 278
28:3. 177
28:40. 278
34:5–7. 333

लैव्यव्यवस्था
11:44. 66

गिनती
11:5. 176
11:14–15. 176
11:16–17. 176
11:24–25. 190
11:29. 176
11:29. 190

व्यवस्थाविवरण
6:4–5. 53
6:6–9. 53
28:3–6. 164
28:15–19. 164
29:29. . . . . 71, 72, 75

यहोशू
5:13–15. 143

1 राजा
17:17–24. 300

2 राजा
6:17. 96

भजन संहिता
1:1–2. 74
1:4. 74
8. 141
8:1. 141
11:3. 272
19:1. . . . . .15, 327
34:8. 278
50:10. 48

98:8. 310
103:12. 162
110. . . . . .115, 151, 153
110:1. 151
110:1–4. 151
119:105. 75
130:3. . . . . 232, 326

नीतिवचन
3:5–6. 73
9:10. 70

यशायाह
6:1–3. 95
6:5. 323
53:5. 163
53. 146
53. 147
53:8–9. 146
66:1. 48

यिर्मयाह
23:28. 150

यहेजकेल
18:2. 115

दानिय्येल
2:35. 308
7:13. 131
7:13–14. 142

योएल
2:23. 195
2:31. 319

आमोस
9:11. 152

मीका
6:8. 70

मत्ती
2:1–11. 145
3:2. . . . . 285, 306
3:10. 306
3:16. 145
3:17. 244
4:6. 96
4:11. 96
5:3–12. 332
5:8. 333
5:18. . . . . 29, 32
5:45. 216
6:9–13. 305
6:10. 305
6:25. 79
6:33. . . . . 202, 308
7:15–20. 324
7:17–18. 69
7:20. 204
7:21–23. . . . . .141, 324
7:22–23. 262
9:6. 131
9:14. 307
9:15. 307
10. 271
10:40. . . . . 22, 271
11:19. 307
12:32. 56
12:36. 323
13:3–8. 253
13:24–30. . . . . .255, 261
13:31–32. 308
15:8. 140
16:18. . . . . 42, 268
16:28. 317
17:2–8. 146
17:5. 244
22:37. 53
22:37–39. 110
24:2. 319
24:3. . . . . 135, 317
24:34. 318
24:36. . . . . 33, 135
25:1–13. 325
25:34–36. 217
26:26–29. 282

26:53. 96
27:46. . . . . 165, 317
27:54. 130
28:18. 271
28:18–20. 56
28:19. 282
28:19–20. 284

मरकुस

1:15. 306
1:22. 244
2:7. 56
2:10. . . . . .56, 131
2:28. 131
4:30–32. 308
8:38. 96
10:17–18. 67
10:18. 111

लूका

1:34. 174
1:35. 174
2:1. 220
2:8–14. 145
2:8–20. 129
2:14. 96
2:25. 184
2:29–31. 129
2:41–52. 129
3:17. 306
4:5. 139
4:6. 139
4:18–19. 139
4:21. 139
5:24. 131
7:11–15. 300
8:41–42. 300
8:49–56. 300
10. . . . . .270, 317
10:25–37. 217
11:20. 307
12:48. 267
13:18–19. 308
17:21. 307
21:16–17. 287
21:24. 315
22:7–15. 289
22:18. 292
22:19. 289
22:20. 289
22:31. 97
22:31–32. 257
22:42. 123
23:4. 130
23:32–43. 262
24:13–31. 302

यूहन्ना

1:1. . . . . .143, 150
1:1–2. 150
1:1–5. 54
1:3. 122
1:10–13. 244
1:12. 244
1:14. . . . . 143, 146
1:29. 129
2:11. 208
3:1–5. 229
3:2. . . . . .129, 180, 208
3:3. . . . . 111, 180
3:6. 202
3:10. 180
3:12. 33
4:19. . . . . .129, 150
4:19–20. 276
4:21–24. 276–77
4:24. 49
4:29. 150
5:18. 131
6:37. 168
6:44. 227
6:48–50. 130
6:63. 111
6:64. 167
6:65. 111
6:70. 257
8:3–11. 205
8:46. 130

8:54–56. 271
8:56. 131
8:58. . . . . 131, 143
10:9. 130
10:10. 179
10:14. 130
10:35. 32
11:1–44. 300
11:25. 331
11:43. 227
12:28. 244
12:49. . . .42, 130, 150, 271
13:21. 257
13:27. 257
14–17. 186
14:1. 331
14:2–4. 331
14:6. 130
14:8–10. 24
14:11. 209
14:16. 182
14:25–27. 186
14:26. 56
15:5. 130
15:18–19. 182
15:24–16:4. 183
16:12–15. 186
17:5. 143
17:11. 257
17:15. 257
17:17. 32
17:22–23. 266
17:24. 257
18:36. 153
19:5. 130
19:30. 155
20:11–16. 302
20:17. 302
20:25. 55
20:28. . . . . .55, 130

प्रेरितों के काम

1:6. 307
1:7–8. 307
1:8. 193
1:9–11. 316
1:11. 316
2. . . . . 177, 198
2:1–4. 189
2:12. 189
2:13–18. 190
2:34–36. 148
8. 191
8:14–17. 191
10. 191
10:44–46. 191
10:46–48. 192
17:16–34. 10
17:23. 321
17:28. . . . . .62, 80
17:30. 321
17:31. . . . . .211, 321
17:32–34. 322
19. 192

रोमियों

1. . . . . 17, 275, 327
1:16–17. 233
1:18. . . . . .17, 101
1:18–25. 275
1:19. 18
1:20. . . . . .18, 327
1:21. 18
2:15. . . . . .19, 327
2:28–29. 285
2:5. 330
3:1–2. 268
3:10. . . . . 67, 111
3:10–12. 112
3:23. 106
3:26. 157
5:1. 240
5:2. 241
5:12–14. 295
5:12–18. 114
8–9. 224
8:9–11. 299
8:12–17. 244–45

8:18. . . . . .81, 287
8:22. 103
8:22–23. 104
8:28. . . . . .76, 77, 83
8:28–30. 230
8:29–30. 77
8:31. 77
8:31–37. 78
8:37. 185
9. 219
9:6. 268
9:10–13. 224
9:13. 219
9:14. 224
9:15. . . . . 216, 224
9:16. 225
11:25. 315
12:1. 275
15:18–19. 56

1 कुरिन्थियों

2. 17
2:11. 181
2:14. 17
6:19–20. 155
6:20. 140
7:23. 140
9:27. 254
11:23–25. 292
11:27–32. 282
12–14. . . . . .194, 195
12:1. 195
12:2–3. 195
12:3. 140
12:4–11. 196
12:12–13. 196
12:13. 193
12:14–19. 197
12:27–28. 198
12:29. 198
12:29–30. 198
12:31. 198
13. 195
13:1. . . . . .195, 198
13:8–10. 198
14:1. 198–99
14:2–6. 199
14:5. 198
14:33. 174
15. 301
15:3–8. 301
15:13. 301
15:17. 301
15:19. 301
15:20. 300
15:20–23. 298
15:22–24. 301
15:35. 302
15:36–38. 302
15:39–41. 303
15:42–45. 147
15:42–48. 303–4
15:45. 178
15:49. 304
15:53. 303

2 कुरिन्थियों

5:16. 202
11:14. 98
13:14. 56

गलातियों

2:16. 232
3:8. 164
3:9–13. 165
3:10–14. 256
5. 203
5:16. 201
5:16–18. 202
5:19–21. 203
5:22–26. 203–4

इफिसियों

1. 222
1:3–6. 221
1:5. 223
2. 180
2:1–3. . . . . .179, 226

2:4–7. 227–28
2:8–10. 228
2:19. 269
2:20. 266
2:21–22. 266
4:4–5. 267
4:9–10. 147–48
4:11. 270
4:11–12. 11
5:1–2. 66
5:2. 67

फिलिप्पियों
1:3–6. 253
1:19–24. 296
2:5–11. 141
2:12–13. 249
4:4. 205
4:7. 184

कुलुस्सियों
2:8–12. 287

1 थिस्सलुनीकियों
4:3. . . . . 73, 201

1 तीमुथियुस
2:5. 149
5:8. 78

2 तीमुथियुस
3:16. . . . . 26, 27
3:16–17. 12

इब्रानियों
1:1–2. 24
1:1–3. 20
1:1–6. 95
1:3. . . . . 103, 131
1:13–14. 95
2:1–4. 209
5:5–6. 148
6. 38
6:1–6. 254
6:9. 256
7. 115
7:2. 116
7:3. 116
7:6–10. 117
7:7. 116
8:3–6. 120
9:14. 56
9:27. 327
10:1–4. 162
10:4. 151
11:4. 264
12:2. 254
13:2. 96
13:8. 7
13:15. 275

याकूब
1:5. 70
1:27. 217
2:14. 238
2:17. 238
2:19. 238
3:1. 33
4:7. 97
5:14–15. 281

1 पतरस
1:16. 66
2:5. 266
5:8. 97

2 पतरस
1:16–18. 146
3:16. 27
3:16. 38

1 यूहन्ना
1:8. 67
2:1. 185
2:2. 168
2:19. 252
3:1–2. 242
3:1–3. 332

4:4. 97
4:16. 67

प्रकाशितवाक्य
5:1–3. 127
5:4–7. 127
5:12. 127
5:12–14. 274
20. . . . . .309, 310
20:1–8. 309–10
20:9–15. 328–29
21:1–4. 334
21:18–21. 335
21:22–23. 335

फॉर द ट्रूथ

फॉर द ट्रूथ एक प्रकाशन सेवा है जो भारत की कलीसिया के लिए विश्वासयोग्य बाइबलीय संसाधन छापने, प्रकाशित करने, और वितरित करने के लिए अस्तित्व में है। हमारी आशा है कि हम:

1. पुरानी और नई पुस्तकों का हिन्दी भाषा में अनुवाद करें, प्रकाशित करें, और वितरित करें।
2. स्थानीय लेखकों द्वारा लिखे गए संसाधनों को विकसित करें, प्रकाशित करें और वितरित करें।

अधिक जानकारी के लिए:

https://forthetruth.in

मोबाइल: +91 8604685533

यूट्यूब: forthetruth.in

ई-मेल: forthetruthindia@gmail.com

इंस्टाग्राम@forthetruthindia

facebook.com/forthetruthindia

मार्ग सत्य जीवन

मार्ग सत्य जीवन एक सेवा है जो कलीसिया की उन्नति के लिए हिन्दी में बाइबलीय तथा विश्वासयोग्य संसाधन (सन्देश, लेख, छोटे वीडियो) उपलब्ध कराती है।

अधिक जानकारी के लिए:

https://margsatyajeevan.com

यूट्यूब: Marg Satya Jeevan

पॉडकास्ट: https://anchor.fm/marg-satya-jeevan

ई-मेल: enquirymsj@gmail.com

इंस्टाग्राम@margsatyajeevan

facebook.com/margsatyajeevan

लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ – हिन्दी

लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ की हिन्दी वेबसाइट इसलिए अस्तित्व में है जिससे कि जितने अधिक लोगों तक सम्भव हो सके उन तक परमेश्वर की पवित्रता को उसकी पूर्णता में उद्घोषित करें, उसकी शिक्षा दें और उसकी रक्षा करें।

अधिक जानकारी के लिए:

https://hi.ligonier.org

facebook.com/LigonierHI

कौन बनना चाहेगा ईश्वरविज्ञानी ?

बहुत लोग *ईश्वरविज्ञान* शब्द के प्रति यह मानते हुए नकारात्मक प्रतिक्रिया करते हैं कि इसमें सिद्धान्त के छोटे बिन्दुओं के विषय में नीरस, निष्फल विवाद सम्मिलित हैं। उनको पवित्रशास्त्र के आधारभूत सत्यों पर ध्यान देना भाता है और वे यह भी घोषणा करते हैं, "ख्रीष्ट के अतिरिक्त कोई अन्य विश्वास वचन है ही नहीं।"

परन्तु जैसा कि डॉ. आर.सी. स्प्रोल तर्क देते हैं कि सभी लोग ईश्वरविज्ञानी हैं। यह इसलिए है कि जब भी हम बाइबल की किसी भी शिक्षा के विषय में सोचते हैं और उसको समझने का प्रयास करते हैं, तो तब हम ईश्वरविज्ञान में सम्बद्ध हो रहे होते हैं। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि हम अर्थानुवाद की समय द्वारा परखी गईं उचित पद्धतियों का उपयोग करते हुए बाइबल की अनेक शिक्षाओं को विधिवत् रीति से एक साथ रखें, जिससे कि हम एक ऐसे ईश्वरविज्ञान की समझ पर पहुँचें जो समनुरूपता और सत्य पर आधारित है।

सभी हैं ईश्वरविज्ञानी: विधिवत् ईश्वरविज्ञान का एक परिचय में डॉ. स्प्रोल इसी कार्य को करते हैं। यह पुस्तक सिद्धान्त के सूक्ष्म बिन्दुओं के विषय में एक नीरस चर्चा तो कदापि नहीं है। इसके विपरीत डॉ. स्प्रोल एक बार फिर से जटिल विषयों को सरलता से समझने योग्य बनाने के अपने विशिष्ट गुण को प्रदर्शित करते हुए, मसीही विश्वास के आधारभूत सत्यों का सर्वेक्षण करते हैं और हमें पुनः स्मरण दिलाते हैं कि परमेश्वर कैसा है और उसने अपने लोगों के लिए इस संसार में तथा उसके पश्चात् आने वाले समय के लिए क्या किया है।

लिग्निएर लाइब्रेरी

forthetruth.in

ISBN: 9788195763146